राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन

राजस्थानी कहावतें—एक अध्ययन

(राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखक

कन्हैयालाल सहल, एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष

हिन्दी तथा संस्कृत-विभाग,

बिड़ला आर्ट्‌स कालेज, पिलानी

१९५८

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा—दिल्ली

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

आसफअली रोड	नई दिल्ली
फव्वारा	दिल्ली
माईहीरा गेट	जालन्धर
लाल बाग	लखनऊ

मूल्य ८·५०

गौरीशंकर शर्मा, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं
सत्यपाल धवन, दि सैन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, कमला नगर, दिल्ली, द्वारा मुद्रित

उपक्रम

प्रस्तुत अध्ययन एक नूतन और मौलिक प्रयास है। इससे पूर्व राजस्थानी भाषा के विभिन्न क्षेत्रों के कुछ संग्रह प्रकाशित हो चुके थे और उनकी भूमिकाओं में इस विषय पर विचार भी व्यक्त किए गये थे तथापि ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं था जिसमें राजस्थानी भाषा की कहावतों को लेकर उनका सर्वांगीण अध्ययन उपस्थित किया गया हो। और राजस्थानी भाषा में ही क्यों, जहाँ तक मुझे ज्ञात है, किसी भाषा-विशेष की कहावतों का इस प्रकार का अध्ययन अन्य किसी भारतीय भाषा के साहित्य में भी नहीं मिलता। सबसे प्रथम विषय की नवीनता ने ही मुझे इस ओर आकृष्ट किया था।

जहाँ तक प्रबन्ध की मौलिकता का प्रश्न है, निम्नलिखित तथ्यों की ओर इंगित कर देना अनुपयुक्त न होगा—

(१) ऐसी कहावतें ग्रन्थ के भीतर स्थान-स्थान पर उद्धृत की गई हैं जिनका मूल आधार रामायण, महाभारत, जातक तथा कथासरित्सागर आदि ग्रन्थों में मिल जाता है। इस प्रकार की कहावतें जहां एक ओर नेत्रोन्मीलन का काम करती हैं, वहाँ दूसरी ओर उनके द्वारा राजस्थान में कहावती साहित्य की परम्परा पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(२) बंगाली, मराठी, गुजराती और तमिल जैसी कतिपय भाषाओं को छोड़ कर भारतीय भाषाओं में कहावत-सम्बन्धी सैद्धान्तिक विवेचन से सम्बन्ध रखने वाले ग्रन्थ अत्यन्त विरल हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय द्वारा इस अभाव को दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न किया गया है। इसी प्रसंग में कहावत, मुहावरा, प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र, मर्मोक्ति आदि शब्दों का तारतम्य भी बड़ी स्पष्टता के साथ प्रतिपादित हुआ है।

(३) राजस्थानी कहावतों का रूपात्मक अध्ययन इस ग्रन्थ का अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण अंश है। इस प्रकार के अध्ययन के लिए मुझे राजस्थानी भाषा की सहस्रों लोकोक्तियों के रूपों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करना पड़ा है। ऐसा करते हुए ही इस तथ्य की प्रतीति मुझे हुई कि राजस्थानी भाषा में अनेक तथाकथित कहावतें ऐसी हैं जो आकार-प्रकार की दृष्टि से कहावतों में परिगणित न की जाकर "लौकिक न्यायो" के अंतर्गत रखी जानी चाहिएँ। इस प्रकार के दृष्टान्तों की सहायता से मैंने राजस्थानी भाषा में "लौकिक न्यायों" की उद्भावना की है जिनमें से कुछ परिशिष्ट में भी संकलित कर दिये गये हैं। कहावत और "लौकिक न्याय" के साम्य और वैषम्य का सैद्धांतिक विवेचन भी इसी ग्रन्थ में प्रथम बार हुआ है।

रूपात्मक अध्ययन के सिलसिले में ही राजस्थानी भाषा में प्रचलित "अधूरे-

पूरों" ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया। संग्रह करते-करते सैंकड़ों अधूरे-पूरे संग्रहीत हो गए जिनमें से चुने हुए १७४ पद्य परिशिष्ट में दे दिये गये हैं। "अधूरे-पूरों" का कोई स्वतन्त्र संग्रह इससे पहले मुद्रित नहीं हुआ था। अधिकांश 'अधूरे-पूरे' मुझे श्री अगरचन्द जी नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हुए।

विषयानुसार वर्गीकरण को भी यथाशक्ति वैज्ञानिक और मौलिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है।

राजस्थानी कहावतों के इस अध्ययन को पूरा करने में मुझे करीब ११ वर्ष लग गये। सन् १९४३ में मैंने सर्वप्रथम इस काम में हाथ डाला था। सन् १८५३ में लक्ष्मण आर्य द्वारा प्रकाशित "मारवाड़ रा ओखाणा" तथा उसी वर्ष डायमण्ड बुक-डिपो, जोधपुर, के लिए तैयार की हुई "मारवाड़ी कहावत" जैसी इनी-गिनी पुस्तिकाओं को छोड़कर उस समय राजस्थानी कहावतों का कोई भी महत्त्वपूर्ण संग्रह नहीं निकला था। "मारवाड़ रा ओखाणा" में १३१३ ओखाणों का संग्रह हुआ है जिसमें कहावतों के साथ-साथ यत्र-तत्र मुहावरे भी आ गये हैं। इसमें कहीं कोई अर्थ अथवा टिप्पणी नहीं है। "मारवाड़ी कहावत" के प्रथम संस्करण में २०० कहावतों और मुहावरों का समानान्तर अंग्रेजी रूपों के साथ संग्रह हुआ था। इसका द्वितीय संस्करण सन् १९१० में निकला जिसमें कहावतों और मुहावरों की संख्या बढ़ाकर ४०८ करदी गई। इससे पहले सन् १८९२ के रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में श्री लालचन्द्र विद्याभास्कर "Marwari Weather Proverbs" प्रकाशित करवा चुके थे। इसी प्रकार Adama Archibald ने "The Western Rajputana States" में कुछ मारवाड़ी कहावतों को अंग्रेजी अनुवाद सहित पाठकों के समक्ष रखा था।

किन्तु इस प्रकार की अल्प सामग्री के आधार पर कोई अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था। इसलिए दत्तचित्त होकर मैंने राजस्थानी कहावतों के संग्रह का कार्य आरम्भ किया। सर्वप्रथम अपनी स्मरण-शक्ति के बल पर मैंने कुछ कहावतें लिख डालीं और उन्हें लेकर मैं गाँव-गाँव घूमता रहा और लोगों को सुना-सुनाकर कहावतें इकट्ठी करता रहा। किसी से कहावतें लिखवाने के लिए कहा जावे तो वह यों ही तुरत-फुरत कहावतें नहीं लिखा पाता, कहावतें तो प्रसंग उपस्थित होने पर ही याद आया करती हैं किन्तु जब मैं अपनी संगृहीत कहावतें सुनाता तो श्रोताओं को भी भाव-साहचर्य के कारण तत्सदृश दूसरी कहावतों का स्मरण हो आता और इस प्रकार मेरे संग्रह में वृद्धि होती रहती। राजस्थान के विभिन्न गाँवों में फैले हुए अपने अनेक छात्रों और मित्रों द्वारा भी मैंने कहावतें इकट्ठी करवाईं। जिन दिनों मैं इस प्रकार कहावतें इकट्ठी कर रहा था, उन्हीं दिनों प्रसिद्ध साहित्य-सेवी श्रद्धेय पंडित झाबरमल्ल जी शर्मा ने राजस्थानी कहावतों का अपना संग्रह मेरे उपयोग के लिए सुलभ कर दिया। पंडित जी का वरद हस्त सदा ही मुझ पर रहा है। उनके स्नेह और आशीर्वाद का संबल पाकर ही मैं इस प्रयास में सफल हो सका हूँ। फिर श्री लक्ष्मीनिवास जी बिड़ला की प्रेरणा से मैंने करीब तीन हज़ार कहावतें अर्थ और टिप्पणी सहित सम्पादित कर

बंगाल-हिन्दी-मण्डल, कलकत्ता, के समक्ष प्रस्तुत कीं। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति पर सन् १९४५ में मण्डल ने मुझे पुरस्कृत भी किया।

सन् १९४५ के बाद मेरा ध्यान राजस्थानी कहावतों पर प्रबन्ध लिखने की ओर गया। तब से श्री अगरचन्द जी नाहटा का सतत परामर्श और प्रोत्साहन मुझे मिलता रहा। इतना ही नहीं, उन्होंने मेरे अध्ययन के लिए, राजस्थान रिसर्च सोसाइटी तथा अन्य व्यक्तियों द्वारा किये हुए सब संग्रहों को भी, जो उनके पास उपलब्ध थे, सुलभ कर दिया। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में उनकी कृपा से "ओखाणा री वात" देखने को मिली। पर उस प्रति की जीर्ण-शीर्ण हालत के कारण उससे विशेष लाभ नहीं उठाया जा सका। हाँ, उससे इतना अवश्य ज्ञात हुआ कि इन बातों में से प्रत्येक का शीर्षक एक कहावत है जिसकी कथा राजस्थानी गद्य में दी हुई है। इसके अलावा भी श्री नाहटा जी ने, जो स्वयं सब प्रकार की सामग्री के भण्डार हैं, अपनी अमूल्य हस्तलिखित प्रतियों तथा अपने पुस्तकालय की पुस्तकों का बिना किसी रोक-टोक के मुझे उपयोग करने दिया। उनकी उदारता और सहृदयता के लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

बिड़ला सैन्ट्रल लाइब्रेरी, पिलानी; नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता; अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर; तथा बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा के पुस्तकालय से मुझे इस कार्य में अत्यन्त सहायता मिली है।

मैंने अपने इस अध्ययन में मेवाड़, जोधपुर, बीकानेर, शेखावाटी, आबू, सिरोही आदि सभी स्थानों की कहावतों का प्रयोग किया है। अपने द्वारा एकत्रित तथा अन्य साधनों से उपलब्ध इस विशाल राज्य की प्रतिनिधि कहावतों के आधार पर मैंने अपना यह अध्ययन प्रस्तुत किया है। मुद्रित ग्रन्थ, हस्तलिखित प्रतियाँ, लोक-साहित्य और शिष्ट साहित्य सभी की छानबीन मैंने की है और अध्ययन को यथाशक्ति पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया है।

जो राजस्थानी कहावतों के संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, उनका स्थान-स्थान पर इस प्रबन्ध के भीतर उल्लेख हुआ है किन्तु ऐसी भी बहुत सी कहावतें इस ग्रन्थ में उद्-धृत की गई हैं जहाँ किसी संकलन-ग्रन्थ का नाम नहीं दिया गया है। इस प्रकार की कहावतें या तो मेरे निजी संग्रह की कहावतें हैं अथवा मेरे स्मृति-कोष की संचित निधि हैं।

मेवाड़ी, जोधपुरी, बीकानेरी जो कहावत जिस रूप में मुझे मिली, उसी रूप में मैंने उसे रख दिया है।

इस अध्ययन में मुझे जिन ग्रन्थों से सहायता मिली है, उनका प्रबन्ध में यथास्थान उल्लेख हुआ है। उपयोगी पुस्तकों की एक सूची भी प्रबन्ध के अन्त में दे दी गई है।

विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रहने के कारण कहावतों के ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक अध्ययन का ग्रन्थ में समावेश नहीं किया गया है। यह अध्ययन अलग पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा रहा है प्रबन्ध के परिशिष्ट में कुछ तुलनात्मक कहावतें भी दे दी गई हैं।

अन्त में राजस्थान विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति जिन्होंने इस शोध-प्रबन्ध के प्रकाशनार्थ पन्द्रह सौ रुपयों की सहायता प्रदान की है, आभार प्रदर्शित करना मैं अपना परम आवश्यक कर्त्तव्य समझता हूँ; इसी प्रकार विश्वविद्यालय अनुदान-आयोग (University Grants Commission) का भी मैं हृदय से अनुगृहीत और कृतज्ञ हूँ जिसने इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए पन्द्रह सौ रुपयों का अनुदान स्वीकृत किया है।

पिलानी

३० जनवरी, १९५८ कन्हैयालाल सहल

विषयानुक्रमणिका

चतुर्थ अध्याय उपसंहार (२६२—२६५)

परिशिष्ट १ (२६६—२७६)

विषय पृष्ठ

परिशिष्ट २ (२७७-२८५)

परिशिष्ट ३ (२८६—२८७)

सहायक पुस्तकों की सूची (२८८-२९०)

प्रथम अध्याय

कहावत का पर्यालोचन

१. कहावतों का महत्त्व

संसार के सभी देशों और जातियों में कहावतों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। दुनिया की शायद ही कोई भाषा ऐसी हो जिसमें कहावतों का प्रयोग न हुआ हो। सांसारिक व्यवहार-पटुता और सामान्य-बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कहावतें मानव-स्वभाव और व्यवहार-कौशल के सिक्के के रूप में प्रचलित होती हैं और वर्तमान पीढ़ी को पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती हैं। पथ-प्रदर्शन की दृष्टि से भी उनकी उपादेयता सहज ही समझ में आ सकती है। क्या घर और क्या बाहर, प्रायः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उद्बोधन और चेतावनी के रूप में चिरकाल से कहावतें उपयोगी सिद्ध होती रही हैं। समाज में मनुष्य किस तरह व्यवहार करे जिससे लोक-जीवन के साथ-साथ उसका व्यक्तिगत जीवन भी सुखमय हो सके, इसका निर्देश प्रचलित कहावतों में साधारणतः मिल जाता है। सामान्यतः मनुष्य कुछ खोकर सीखता है किन्तु वही शिक्षा उसे अगर कहावतों के रूप में सुलभ हो जाय तो वह बहुत से कंटकाकीर्ण पथों से अपनी रक्षा कर सकता है। यदि प्रत्येक अनुभव के लिए मनुष्य को मूल्य चुकाना पड़े तो उसके लिए जीवन बड़ा दूभर हो जाय। एक व्यक्ति के मुख से निकली हुई कहावत का तथ्य जब हमारे दैनिक जीवन में प्रत्यक्ष होने लगता है तो कहावत की प्रामाणिकता पर मानो एक छाप-सी लग जाती है।

बहुधा ऐसा भी देखने में आया है कि अनेक प्रकार की युक्तियों से, अनेक प्रकार के तर्क-वितर्कों से जिस सन्देह का समाधान नहीं होने पाता, वह सन्देह बात की बात में एक समयोचित लोकोक्ति द्वारा दूर हो जाता है, हमारी समस्त शंकाओं का समाधान हो जाता है, कहावत की स्वीकृति में हम अपना सिर हिलाने लगते हैं, सब वाद-विवाद समाप्त हो जाता है और तुरन्त ही उस सारगर्भित उक्ति के तथ्य पर हम पूर्ण रूप से विश्वास करने लगते हैं। जीवन में अनेक ऐसे अवसर आये हैं जब कहावतों की इस आश्चर्यजनक शक्ति को देखकर मैं मन ही मन ताकता रह गया हूँ! बहुत वर्ष हुए, डा० फैलन ने एक ऐसे व्यक्ति का दृष्टान्त दिया था जो किसी काम के करने की बड़ी डींग हाँक रहा था, यद्यपि वह काम उसके बूते से बाहर था। उसको बढ़-बढ़ कर बातें बनाते हुए देख, श्रोतागणों में से एक ने कहा "हाथी घोड़ा मर गये, गधा पूछे कितना पानी?" इस कहावत के सुनते ही वह व्यक्ति खिसियाकर पीछे हट गया, उसकी बोलती ही बन्द हो गई।[1] लगता है, जैसे कहावत स्वतः एक बड़ी भारी दलील हो, ऐसी दलील जिसके सामने सबको हार माननी पड़ती है। न्याय में आप्त वाक्य को प्रमाण माना गया है किन्तु कहावत का महत्त्व किसी भी आप्त वाक्य

---

1. Vide Pioneer, Dec. 9th, 1884.

से कम नहीं। कहावती न्यायालय में निर्णय हो जाने के बाद, उसकी कहीं कोई अपील नहीं होती। कहावत ने जो निर्णय दे दिया, वही अन्तिम है। किसी तथ्य की प्रामाणिकता का कहावत से बड़ा कोई प्रमाण नहीं समझा जाता।

यह कहावती जगत् भी एक विलक्षण लोक है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की उक्तियों को भी यदि जनता स्वीकार न करे तो वे भी लोकोक्तियों के गौरवपूर्ण पद पर आसीन नहीं हो सकतीं। कहावतों की बड़ी महिमा है, कोई उनकी अवमानना न करे।[1]

"लोकोक्ति जनता-जनार्दन की उक्ति है" इस आशय की कहावतें लेटिन आदि अनेक भाषाओं में प्रचलित हो गई हैं।[2] तमिल भाषा में भी एक इसी प्रकार की कहावत सुनी जाती है।

ईसा मसीह ने कहावतों द्वारा शिक्षा दी, गौतम बुद्ध ने उपदेश देने में लौकिकी गाथाओं का प्रयोग किया। स्वयं अरस्तू जैसे सुविख्यात दार्शनिक ने सर्वप्रथम कहावतों का संग्रह किया। इस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल से कहावतों को अमित सम्मान मिलता रहा है। ज्ञान-वृद्धों और वयोवृद्धों की बात हम बड़े ध्यान से सुनते हैं। फिर लोकोक्तियों में तो पर्वतों की-सी प्राचीनता है, न जाने किस पुरा काल से वे लोगों को आनन्दित करती रही हैं और कितने व्यक्तियों के अनमोल अनुभवों का भण्डार उनमें संचित है। काल-समुद्र की लहरियों पर तैरती हुई उक्तियों में से बहुत सी अपने सत्य के बल पर सुरक्षित रह सकी हैं। ऐसी लोकोक्तियाँ, जिनका सत्य पुराना नहीं पड़ा है, जीवन रूपी व्याकरण के लिए पाणिनि के सूत्रों की भाँति ही उपयोगी हैं।

योरप आदि देशों में तो शिक्षण-पद्धति में भी कहावतों का बड़ा उपयोग किया जाता है। रचना-शास्त्र का अध्यापक विचार-विश्लेषण की आदत डालने के लिए अपने छात्रों के सामने एक कहावत रख देता है जिसको लेकर वे या तो किसी कथानक की उद्भावना करते है अथवा लोकोक्ति के तथ्य को चरितार्थ करने वाली किसी घटना का आविष्कार करते हैं। कभी-कभी किसी कहावत को वाद-विवाद का रूप भी दे दिया जाता है जिससे पक्ष और विपक्ष में अपने विचारों को प्रकट करने का अवसर छात्रों को मिल जाता है।

शिक्षा में ही क्यों, जापान जैसे देशों में तो खेलों तक में कहावतों का प्रयोग किया गया है। जापान के प्रोफेसर कोची दोई ने लिखा है कि मेरे बचपन में बच्चे जिन ताशों से खेलते थे, उनकी संख्या ५० होती थी। हर एक पत्ते पर कहावत प्रदर्शित की जाती थी। कोई बच्चा कहावत पढ़ता था और वह कहावत-विशेष जिस पत्ते पर मुद्रित रहती थी, उसका पता लगाने की प्रतिस्पर्द्धा हम में चला करती थी। उन कार्डों पर मुद्रित एक कहावत थी—"Three men together are as wise as Munjusri."[3]

---

1. Acquaint thyself with proverbs, for of them thou shalt learn instruction.......Ecclesiasticas. 8, 8.
2. Vox populi, Vox dei. (Latin)
   खलक की जबान खुदा का नक्कारा (उर्दू)
3. Introduction to the Proverbs of Japan by prof. kochi Doi.

साहित्य की दृष्टि से भी कहावतों का महत्त्व कम नहीं। कहावतें भाषा का शृंगार हैं, उनके प्रयोग से भाषा में सजीवता और स्फूर्ति का संचार हो जाता है। विशेषतः उपन्यास और कहानियों में तो लोकोक्तियों का होना एक प्रकार से अनिवार्य हो उठता है। स्व० प्रेमचन्दजी की रचनाओं में जो कहावतों की बहार दिखलाई पड़ती है, उससे उनके द्वारा लगाया हुआ साहित्योपवन अत्यन्त हरा-भरा और सजीव दिखाई पड़ता है। लोकोक्तियों के यथास्थान प्रयोग से उन्होंने भाषा में जादू भर दिया है। एक अरबी कहावत के अनुसार वाणी में कहावत का वही स्थान है जो भोजन में नमक का है।

भाषा-विज्ञान के अध्येता के लिए भी कहावतें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। बोल-चाल अथवा साहित्य में प्रयुक्त होने वाले बहुत से शब्द समय पाकर अप्रचलित हो जाते हैं किन्तु कहावतों में इस प्रकार के शब्द सुरक्षित रह जाते हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल प्रत्येक कहावत का भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अध्ययन आवश्यक समझते हैं। उन्होंने दिखलाया है कि बैल के लिए "पोठ्यो" शब्द सं० प्रोष्ठ का सूचक है जो राजस्थानी भाषा में बच गया है। हिन्दी की अन्य बोलियों में वह अप्रयुक्त है। यह भी वैदिक युग का शब्द है—प्रोष्ठपद अर्थात् प्रोष्ठ के पैर के आकार वाला। यह एक नक्षत्र का मशहूर नाम था।[1]

कहावतों के अध्ययन का महत्त्व अब प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। लोगों को अब इस तथ्य की प्रतीति होने लगी है कि जिस प्रकार पुराने सिक्कों और शिलालेखों का अन्वेषण किया जाता है, उसी प्रकार कहावतों के क्षेत्र में भी अनुसंधान और अध्ययन किये जाने की आवश्यकता है। सिक्कों और शिलालेखों का तो राजाओं और अभिजात-वर्ग से सम्बन्ध है किन्तु कहावतों के द्वारा सामाजिक जीवन, पुराने रीति-रिवाज, नृवंश-विद्या आदि सभी पर प्रकाश पड़ता है। कहावतें वे आलोक-दीप हैं जिनकी सहायता से अन्धकारपूर्ण अतीत भी चमक उठता है। भारतवर्ष के अनेक स्थानों में पर्दा-प्रथा के कारण स्त्रियों के अन्तःपुर में प्रवेश निषिद्ध है, किन्तु कहावती दुनिया में कहीं कोई पर्दा नहीं। स्त्रियाँ परदेशियों के सामने भी अपना हृदय खोलकर रख देती हैं। अनेक कहावतें तो स्त्रियों द्वारा ही निर्मित होती हैं।[2]

"जाति-विज्ञान और संस्कृति के विद्वानों का कथन है कि जनता की विचार-धारा जनकथाओं, कहावतों और मुहावरों आदि में व्यक्त होती है। यह बात सोलहों आने सही है। कहावतें और मुहावरे श्रमिक-जनता की सम्पूर्ण सामाजिक और ऐतिहासिक अनुभूतियों के संक्षिप्त रूप हैं। लेखक के लिए इस सामग्री का अध्ययन करना आवश्यक है।······मैंने कहावतों और मुहावरों आदि से बहुत कुछ सीखा है।"

—गोर्की

१. भूमिका (मेवाड़ की कहावतें); पृष्ठ १२, १३।

2. Preface to Eastern Proverbs and Emblems by Rev. J. Long. page 6.

२. 'कहावत' की व्युत्पत्ति

'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अभी ऐकमत्य नहीं है। इस शब्द की कुछ सम्भाव्य अथवा अनुमानित व्युत्पत्तियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं :—

(१) पंडित रामदहिन मिश्र के विचार से 'कहावत' का मूल रूप 'कथावत्' है। कथाओं की तरह कहावतें भी लोक में प्रसिद्ध हैं। इनका आधार भी कथाओं का ही कुछ खंडित-मंडित रूप है, इसी से कहावत को लोकोक्ति भी कहते हैं। प्राकृत व्याकरण के नियमानुसार 'थ्' का 'ह्' हो जाता है। प्लाट ने भी 'कहावंत' शब्द की व्युत्पत्ति 'कथावत्' से मानी है अर्थात् कहावत उसे कहते हैं जिसके मूल में कोई कथा हो।[1]

(२) प्राकृत 'कहाप्' धातु से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए 'त्त' प्रत्यय जोड़कर 'कहापत्त-कहावत' बन सकता है।[2]

(३) मूल धातु 'कथ्' है, इसमें तो सन्देह नहीं। उससे उत्पन्न, 'कथोद्घात', 'कथावृत्त' या 'कथावस्तु' से इस शब्द की उत्पत्ति होना सम्भव है।

(४) अपभ्रंश में 'आभाणक, अहान' आदि का प्रयोग मिलता है किन्तु कहावत के किसी पूर्व रूप का नहीं। हो सकता है, यह शब्द संस्कृत के किसी मूल रूप से व्युत्पन्न न हो, इसमें उर्दू-फारसी शब्द-रचना का कुछ हाथ हो। स्वर्गीय आचार्य केशवप्रसाद जी मिश्र का मत था कि 'कह' धातु के आगे अरबी 'आवत' प्रत्यय लग कर 'कहावत' शब्द बना है।

(५) 'बनना' से 'आव' प्रत्यय जोड़ने पर जैसे 'बनाव' बनता है, उसी प्रकार कहना (कह्) से 'आव' प्रत्यय जोड़ने पर 'कहाव' बन सकता है। अरबी में जिस प्रकार 'त' प्रत्यय जोड़ने पर 'मुसाफिरत' और 'मुसाहबत' शब्द बनते हैं, उसी प्रकार 'कहाव' के आगे 'त' प्रत्यय लगने से 'कहावत' बन सकता है जिसका अर्थ है कहने की दशा, कही हुई स्थिति अर्थात् उक्ति। यद्यपि 'कह' अरबी धातु नहीं है और उसके पीछे अरबी प्रत्यय सामान्यतः नहीं लगना चाहिए किन्तु सादृश्य के बल पर, सम्भव है, अरबी प्रत्यय लगकर 'कहावत' शब्द बन गया हो।

(६) सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉक्टर सिद्धेश्वर वर्मा के मतानुसार हिन्दी शब्द 'कहावत' का अभिधेयार्थ है उक्ति। इसकी व्युत्पत्ति हिन्दी 'कहना' से हुई है जिसके आगे दो प्रत्यय जुड़े हैं—(१) 'आव' जैसा कि सुझाव में देखा जाता है और (२) 'अत' प्रत्यय कहावत की संक्षिप्तता और सारगर्भितता का सूचक है।[3]

(७) किसी विद्वान् ने 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति 'कथापत्य' अथवा 'कथापुत्र' से मानी है। 'कथापत्य' शब्द का अर्थ है कथा का अपत्य अथवा

१. किशोर; नवम्बर १९५१; पृष्ठ २९७।

२. डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

3. "The Hindi word (*Kahāvat*) Literally means a "saying". It is derived from Hindi (*Kahnā*) to say, by the addition of two suffixes. (1) (*āv*),as in (*Sujhāv*), which is a purely nominal suffix and (2) (at), being a dimumitive suffix which suggests the shortness and pithiness of a proverb." —Dr. Siddheshwar Varma

आत्मज। कथापत्य से कहावत शब्द का बन सकना सम्भव है अथवा कथापुत्र से कहावत की निरुक्ति की जा सकती है। राजस्थान में दुर्गादास अथवा उनके वंशजों के लिए दुर्गावत शब्द का प्रयोग होता है। इसी प्रकार शक्तावत, नाथावत आदि के सम्बन्ध में भी समझना चाहिए। दुर्गावत का 'वत' संस्कृत के पुत्र शब्द से निकला हुआ माना जाता है जिसका प्राकृत में 'उत्त' बन जाता है। जिस प्रकार दुर्गापुत्र से दुर्गा उत्त—दुर्गाउत बन जाता है, उसी प्रकार, सम्भव है, कथा-पुत्र से कहा उत्त-कहा उत—कहावत बन गया हो।[1]

किन्तु इस प्रकार की व्युत्पत्ति को केवल अटकलबाजी समझना चाहिए। प्रथम तो अपत्य और पुत्र शब्द सामान्यत: चेतन वस्तुओं[2] के ही आगे जोड़े जाते हैं, फिर दूसरी बात यह है कि कहावत शब्द मूलत: राजस्थानी भाषा का नहीं है, इसलिए राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार इस शब्द की व्युत्पत्ति का अन्वेषण उचित नहीं जान पड़ता।

(८) 'कहावत' का सीधा अर्थ किया जाय तो उसके दो टुकड़े होते हैं 'कह+आवत' यानी जिसे लोग परम्परा से कहते सुनते चले आते हों। आज कोई चाहे कि मैं अच्छे से अच्छा टुकड़ा कह दूँ और वह कहावत के दायरे में दाखिल हो जाय तो यह नामुमकिन है। टुकड़ा चाहे जितना संक्षिप्त हो, चाहे जितना बड़ा कहने वाला हो और चाहे जितनी सुन्दरता से टुकड़ा कहा गया हो, वह कहावत नहीं बन सकता, जैसे एक ही दिन में पत्थर शिव नहीं बन सकता। उसे नदी में बहुत रगड़ खानी होगी, दूर-दूर बहना होगा या संगतराश की छीनी की चोट खानी होगी; तब कहीं जाकर वह कहावत के मन्दिर में प्रवेश पायेगा।[3]

यह व्युत्पत्ति विद्वानों द्वारा चाहे मान्य हो या न हो किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की निरुक्ति स्वत: कहावत का एक सुन्दर लक्षण भी है क्योंकि कहावत वही है जिसे परम्परा से लोग कहते-सुनते चले आते हैं।

'कहावत' शब्द के उक्त निर्वचन को पढ़कर हमारा ध्यान एक दूसरे शब्द 'कहनावत' की ओर जाता है जो 'कहावत' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ—

सांची भई कहनावति वा कवि ठाकुर कान सुनी हती जोऊ।
माया मिली नहिं राम मिले दुविधा में गये सजनी सुनु दोऊ॥ —ठाकुर

---

१. कहा (प्राकृत) = कथा। कथा+अपत्य=कथापत्य। कथापत्य—कथापत्—कथावत कथावत—कहावत। अथवा कहा+उत=कहाउत। 'कहाउत' से कहावत, जैसे दुर्गा उत से दुर्गावत, शकता उत से शकतावत आदि।
देखिये 'लोकवाणी' दीपावलि विशेषांक में प्रकाशित 'सिरोही की कहावतें' —संकलनकर्त्ता श्री गो०

२. कहावत के पर्याय के रूप में "कहनूत" शब्द का प्रयोग कभी-कभी हिन्दी में देखा जाता है जिसकी व्युत्पत्ति कहना+ऊत प्रत्यय से मानी गई है, यद्यपि इस ऊत प्रत्यय के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि यह अप्रत्ययवाचक है।
—हिन्दी शब्दसागर (पहला भाग); पृष्ठ ५१५

३. श्री महावीरप्रसादजी पोद्दार के एक कहावत-विषयक निबन्ध से उद्धृत।

'कहनावत' शब्द भी कहना+आवत से व्युत्पन्न माना जाता है जिसका अर्थ है, वह उक्ति जो कहने में आती है।[1]

'कहनावत' के स्थान में कभी-कभी 'कहनावतिया' शब्द का प्रयोग भी देखा जाता है। जैसे—

साँची भई कहनावतिया अरी ऊँची दुकान की फीकी मिठाई।[2]

(६) 'कहावत' शब्द का एक अर्थ हो सकता है 'कही हुई बात'। उस हालत में 'कहावत' का 'वत' (बात-वार्त्ता) का रूपान्तर माना जायगा। 'काल गया पर कहावत रह गई' तथा 'जुग जासी पण बात न जाय' दो समानार्थक लोकोक्तियाँ हैं। पहली लोकोक्ति में तो 'कहावत' शब्द का प्रयोग हुआ है, दूसरी लोकोक्ति का बात भी 'कहावत' का ही द्योतक अथवा उसका लघु रूप जान पड़ता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी बातचीत अथवा वार्तालाप के अर्थ में 'बतकही' शब्द का प्रयोग किया है—

(क) **करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लुभान।**
मुख सरोज मकरन्द छबि करत मधुप इव पान॥

(ख) **मनहु हर उर जुगल मारध्वज के मकर लागि श्रवननि करत मेरु की बतकही।**

ऐसा लगता है मानो 'कही बत' (कही हुई बात) को उलट कर रख देने से 'बतकही' बन गया हो। नहीं कहा जा सकता कि 'कहावत' और 'बतकही' को उलट कर रखे हुए 'कहीबत' में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना कहाँ तक युक्ति-संगत हैं किन्तु राजस्थान में कहावत के अर्थ में प्रचलित 'कहबत' शब्द इस प्रसंग में हमारा ध्यान आकृष्ट किये बिना नहीं रहता।

(१०) भारत के वर्तमान शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल कलाम आजाद 'कहावत' शब्द के इस प्रकार द्विधा-विभाजन के पक्ष में नहीं हैं। उनकी मान्यता है कि 'कहावत' शब्द 'कहना' से निकला है, लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि कहावत कह+बात, इन दो पदों में विभक्त है। कहावत के 'वत' या 'बत' का अर्थ 'बात' नहीं है। बात के अर्थ में 'वत' की कल्पना निरी कष्ट-कल्पना होगी। साहित्य के इतिहास में व्याकरण बाद में आता है, इसलिए बाद में बने हुए नियमों के आधार पर हम प्रत्येक शब्द का निर्णय नहीं कर सकते। हम केवल यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार 'कहानी' शब्द सर्वसाधारण द्वारा प्रयुक्त होने पर 'कथा' के अर्थ में रूढ़ हो गया है, उसी प्रकार 'कहावत' शब्द भी 'उक्ति या प्रवाद' के अर्थ में प्रचलित हो गया है। इस शब्द का विकास अवश्य 'कहना' से हुआ है किन्तु वर्तमान समय में यह शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त होता है, वह अर्थ इस शब्द को प्रयोग या रूढ़ि के कारण प्राप्त हुआ है; ऐसा नहीं हुआ है कि किसी ने जान-बूझकर इसे व्याकरण के किसी निर्दिष्ट

१. हिन्दी शब्द-सागर (पहला भाग), पृष्ठ ५१५।
२. बोलचाल (श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय) भूमिका; पृष्ठ ११८।

नियम से संबद्ध करने का प्रयास किया हो और तब यह कोई विशिष्ट अर्थ देने लगा हो।[1]

शब्दों के निर्माण का इतिहास बड़ा मनोरंजक होता है। योरोपीय भाषा के विश्लेषणात्मक रूप धारण करने से पहले उसमें पूर्णतः बने-बनाये शब्द ही थे। ये शब्द अलग-अलग अंशों के सम्मिलित रूप हैं, इस धारणा की कोई गंध भी न थी। बोलने वाले भी बने-बनाये शब्दों के आधार पर ही बोलते थे, उनके पास प्रकृति और प्रत्ययों का कोई अलग-अलग जत्था नहीं था कि प्रकृति और प्रत्यय को मिला कर गढ़-गढ़ कर वे शब्दों का प्रयोग करते। किन्तु इसका आशय यह भी नहीं है कि बोलने वाले जिन-जिन शब्दों का प्रयोग करते थे, वे सब के सब या तो उनके सुने हुए होते थे अथवा ऐसे शब्द होते थे जिन्होंने उनकी स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लिया था। शब्दों के गढ़ने की शक्ति भी उनमें थी किन्तु जो शब्द गढ़े जाते थे, वे पहले के सीखे हुए बने-बनाये शब्दों के सादृश्य पर ही गढ़े जाते थे।[2]

सम्भव है, जैसा मौलाना आज़ाद कहते हैं, कहावत भी एक ऐसा शब्द हो जिसे व्याकरण के निश्चित नियमानुसार प्रकृति-प्रत्ययों द्वारा सिद्ध करने की आवश्यकता न हो किन्तु इतना तो वे भी स्वीकार करते हैं कि यह शब्द 'कहना' से ही निकला है और प्रयोग के कारण लोकोक्ति के अर्थ में रूढ़ हो गया है। प्रश्न यह है कि यदि यह एकात्मक शब्द है तो उस शब्द का पता लगना चाहिए जिसके सादृश्य पर यह गढ़ा गया है।

(११) कहावत शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषा-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का मत है—

"The origin of the word Kahāwat would appear to be old Indo Aryan Kathay √ Kathā + Early M.I.A. causative or denominative affix (Śatr)—ant· *Kathāpayanta 7 *Kadhāvayanta 7 *Kahāvaanta Kahāvanta 7 Kahāwat."

डा० चाटुर्ज्या का मत पांडित्यपूर्ण तो अवश्य है तथापि निश्चयात्मकता का स्वर इसमें भी नहीं है।

(१२) टर्नर के नेपाली शब्दकोश में 'कहावत' शब्द का अनुमानित मूलरूप

1. Kahawat originally comes from kahna but it cannot be said that it is equal to Kah+Bat. 'Wat', or 'Bat' as meaning a thing seems to be too far-fetched. Grammar comes later in the history of literature, and therefore we cannot judge every word according to rules of later origin. We may simply say that Kahawat has come to mean 'a saying or proverb,' just as kahani has, by common usage, come to mean a story. It is, of course, a word which has grown from 'kahna' without any conscious attmept to co-ordinate it with any fixed rule of Grammar and has, by long usage, come to mean as it does at present. (Maulana Azad in a letter addressed to the writer)

२. सादृश्य नुं स्वरूप (डा० हरिवल्लभ भायाणी); भारतीय विद्या; वर्ष ३; अंक १।

'कथावार्त्ता' बतलाया गया है।[1] सुप्रसिद्ध विद्वान् मुनि जिनविजयजी तथा महापंडित राहुल सांकृत्यायन भी 'कथा-वार्ता' को ही कहावत का मूल रूप मानने के पक्ष में हैं। डा० बाबूराम सक्सेना के मत से भी 'कहावत' का सम्बन्ध सं० कथावार्त्ता से है मगर हिन्दी शब्द का अर्थ कथावार्त्ता के अर्थ से बिलकुल भिन्न है और यहाँ अर्थादेश स्पष्ट है।[2]

ऊपर की पंक्तियों में कहावत शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मतमतान्तर उपस्थित किये गये हैं तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि इस शब्द की सभी संभावनाओं पर विचार कर लिया गया है। बहुत से ऐसे शब्द होते हैं जिनकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में 'इदमित्थं' नहीं कहा जा सकता। कहावत भी एक ऐसा ही शब्द है। कुछ विद्वान् ऐसे हैं जो इस शब्द के निर्वचन में अरबी-फारसी प्रत्ययों का आश्रय लेते हैं जब कि दूसरे विद्वान् इसे हिन्दी-संस्कृत के प्रत्ययों से व्युत्पन्न मानते हैं। व्युत्पत्ति-शास्त्री अथवा वैयाकरण किसी शब्द के मूल रूप का अन्वेषण करते हैं और फिर उसे व्याकरण के सूत्रों द्वारा सिद्ध कर देते हैं। किन्तु वे इस बात पर ध्यान नहीं देते कि जिस मूल रूप से वे किसी तद्भव शब्द को उद्भूत मानते हैं, वह मूल रूप कभी उस भाषा-विशेष में प्रचलित रहा भी था या नहीं। कथावत्, कथा-वस्तु, कथापत्य, कथावृत्त आदि से यद्यपि 'कहावत' शब्द व्याकरण द्वारा सिद्ध किया जा सकता है तथापि संस्कृत-साहित्य में लोकोक्ति के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग नहीं देखा जाता। इसलिए जब तक संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि में लोकोक्ति के अर्थ में प्रयुक्त 'कहावत' शब्द के मूल रूप का पता नहीं चलता, तब तक इस प्रकार की व्युत्पत्तियों द्वारा हमारा समाधान नहीं हो सकता। प्रयोग के आधार पर नियमों का निर्धारण होना चाहिए, न कि नियमों के आधार पर प्रयोग का निर्धारण।

जैसा ऊपर कहा गया है, 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कह सकना संभव नहीं है, तथापि निष्कर्ष के रूप में यहाँ दो विकल्प रखे जा सकते हैं।

(१) यदि 'कहावत' शब्द संस्कृत के किसी शब्द से हिन्दी में आया है तो 'कथावार्त्ता' एक ऐसा शब्द है जिससे उसका घनिष्ठ सम्बन्ध जान पड़ता है। 'कथा-वार्त्ता' का प्राकृत रूप 'कहावत्ता' तो ध्वनि और अर्थ दोनों की दृष्टि से 'कहावत' शब्द से अत्यधिक मिल जाता है।

ऊपर जिस अर्थादेश की चर्चा डा० सक्सेना ने की है, उसकी संभावना यहाँ हो सकती है क्योंकि एक भाषा जब दूसरी भाषा से शब्द ग्रहण करती है तो अनेक बार अर्थादेश हो जाया करता है। दूसरी बात यह है कि 'कथावार्त्ता' शब्द 'कथावत्' आदि की तरह कोई कल्पित शब्द नहीं है; यह प्रयोग में भी आता है।

(२) यदि 'कहावत' शब्द सादृश्य के आधार पर प्रचलित हुआ है तो

१. कहाउत कहावत् (Nepali) पंजाबी कहौत, सिन्धी 'कहात' ⌊_ *कथावार्त्ता ? कथा (V. S. V. Kahanu) वार्ता (V.S.V. teat.)।

२. अर्थ-विज्ञान (डाक्टर बाबूराम सक्सेना); पृष्ठ १२५।

'लिखावट', 'सजावट' आदि के सादृश्य पर कहावट (कहावत) शब्द का बन सकना असंभव नहीं है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राजस्थानी भाषा में कथन के अर्थ में 'कुहावट', 'कुवावट' आदि शब्द बोलचाल में अब भी प्रयुक्त होते हैं।

३. कहावत के पर्याय-शब्द

(१) **विदेशी भाषाओं में प्रयुक्त**—विश्व की विभिन्न भाषाओं मे 'कहावत' के पर्याय-रूप में प्रयुक्त शब्द यहाँ दिये जा रहे हैं ताकि इस शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश पड़ सके। ग्रीक भाषा में कहावत के लिए शब्द है 'Paroemia' जिसका सम्बन्ध उस सर्वसामान्य उक्ति से है जो बहुत समय से लोगों की ज़बान पर रही है और जिसे गली-कूचे के सभी व्यक्ति जानते हैं। इटली की भाषा और लेटिन का 'Proverbio' शब्द कहावत के अर्थ में प्रयुक्त होता है। टस्कन भाषा का शब्द है 'Dettato' जिसका आशय उस उक्ति से है जिसकी बार-बार आवृत्ति होती रहती है क्योंकि लोकोक्ति को पीढ़ी दर पीढ़ी लोग सुनते रहते हैं जिससे वह स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेती है। स्पेन की भाषा में कहावत का पर्याय-शब्द है 'Refran' जिसका अर्थ है वह कथन जो बार-बार दोहराया जाता है। इस भाषा में 'Proverbio' सूक्ति के अर्थ में व्यवहृत होता है, कहावत के अर्थ में नहीं। तुर्की भाषा में लोकोक्ति के लिए 'Atalar Sozu' का प्रयोग होता है जिसका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है पूर्वजों, बाप-दादों अथवा बड़ों की उक्तियाँ। चीन की साहित्यिक भाषा में कहावत के अर्थ में 'Yen' या 'Yen Yu' प्रचलित है जिसका अर्थ है 'सुसंस्कृत अथवा सिद्ध शब्द'; बोलचाल की भाषा में Su-hua अथवा 'Su-Yu' का प्रयोग होता है जिसका अर्थ है सर्वसामान्य वार्ता अथवा सर्वसामान्य उक्ति। अरबी भाषा में 'Mathal' या 'Tamthal' कहावत अथवा उपमा के अर्थ में व्यवहृत शब्द है जो व्युत्पत्ति की दृष्टि से सादृश्य अथवा समता का वाचक है। वस्तुतः शब्द-चित्रों की सहायता से यह लोक-व्यवहार का कथात्मक निदर्शन है। रूस और बलगेरिया की भाषा में 'Poslovitsa' लोकोक्ति के अर्थ में प्रयुक्त शब्द है। जैकोस्लोवाकिया की भाषा में इसी अर्थ का द्योतक 'Prislovi' शब्द है। इस्टोनिया का 'Vanasona' पुराने शब्द के अर्थ में व्यवहृत है। फिनलैंड की भाषा में कहावत का पर्याय शब्द है "Sanalasku" जिसका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है किसी शब्द का गिर जाना। जार्जिया में लोकोक्ति के लिए प्रयुक्त शब्द है 'अंदाज' जिसने वर्तमान साहित्य में अपनी जड़ जमा ली है। यह फारसी शब्द उदाहरण या आकार के अर्थ में व्यवहृत है। प्राचीन ज़माने में जार्जियन शब्द 'Igavi' कहावत और नीति-कथा दोनों के अर्थ में प्रयुक्त होता था।

हेब्रू का 'Mashal' शब्द कहावत, उपमा अथवा सादृश्य के अर्थ में व्यवहृत होता है। जापानी के 'Kota-waza' का व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है वे शब्द जो सक्रिय हैं। फारसी भाषा में कहावतों के लिए 'Amsal' शब्द का प्रयोग होता है जो अरबी शब्द 'Masal' का बहुवचन रूप है। धात्वर्थ की दृष्टि से 'Masal' वह उक्ति है जो किसी तत्सम अन्य वस्तु को स्मृति-पथ में ले आती है। पोलैंड की भाषा का 'Przyslowie' शब्द ठीक ग्रीक भाषा के 'Paroemia' के अर्थ का द्योतक है। श्याम में कहावत

के लिए 'Sup'hasit' का प्रयोग होता है। यह शब्द पालि 'सुभासितो' से निकला है जिसका अर्थ होता है श्रेष्ठ उक्ति। जर्मन भाषा में लोकोक्ति के अर्थ में 'Sprich-Worter' का व्यवहार होता है। इस पद के 'Sprach' का अर्थ है वाणी और "wort" का अर्थ है शब्द। कहावत के लिए जैबो शब्द है 'Da' le' kpa'; नीति-कथा के अर्थ में भी यही शब्द प्रयुक्त होता है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इस शब्द का अर्थ होता है "पुरानी बातों को लेना और उन्हें वर्तमान स्थिति पर घटित करना"। 'Proverbo' शब्द तो निरी शुष्क वार्ता के अर्थ में व्यवहृत होता है किन्तु कहावत के अर्थ में प्रयुक्त लेटिन का 'Proverbium' शब्द आलंकारिक उक्ति का अर्थ देता है। लेटिन भाषा में लोकोक्ति का पर्याय शब्द 'Sakamvards' है जिसका अर्थ है कथनीय अथवा आवृत्ति-योग्य शब्द। मलय भाषा में कहावत के लिए 'Umpama-an' या 'Per-umpama-an' शब्द प्रचलित है। यह शब्द 'Umpama' से निकला है जिसका अर्थ है "सादृश्य, समानता, सारूप्य, तत्सदृश दृष्टान्त अथवा उदाहरण।" इसलिए 'Umpama-an' का अर्थ हुआ कहावत, नीति-कथा, रूपक-प्रयोग अथवा किसी को सिद्ध करने के लिए निदर्शन। लिखने में कहावतों की अवतारणा करते समय इस भाषा में 'Saperti Kata arif' अर्थात् 'विज्ञजन ऐसा कहते हैं' का प्रयोग किया जाता है।[1]

विस्तार-भय से विदेशी भाषाओं से अधिक उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं।

(२) **भारत की भाषाओं में प्रयुक्त**—संस्कृत में कहावत के लिए आभाणक, प्रवाद, लोकोक्ति, लोकप्रवाद, लौकिकी गाथा, प्रायोवाद आदि शब्दों का प्रयोग होता है। श्री क्षितीशचन्द्र चट्टोपाध्याय के संपादकत्व में प्रकाशित होने वाले 'मञ्जूषा' नामक संस्कृत पत्र में आभाणकादि के अन्तर्गत ही कहावतों का संग्रह किया गया है। वेदान्तग्रन्थों के भाष्यों में भी अनेक स्थानों पर 'आभाणक' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

वाल्मीकि रामायण में कहावत के अर्थ में प्रवाद, लोकप्रवाद तथा लौकिकी गाथा का प्रयोग हुआ है। क्रमशः उदाहरण लीजिये—

प्रवादः सत्य एवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप
पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले । ६।११४।६७.
लोकप्रवादः सत्योऽयं पंडितैः समुदाहृतः
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥ ५।२५।१२.
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मे ॥
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ ६।१२६।२.

अर्थात् रावण-वध के अनन्तर मन्दोदरी रावण को लक्ष्य में रख कर कह रही है—'हे राजन्! इस भूतल पर पतिव्रताओं के आँसू अकस्मात् ही नहीं गिरते, यह प्रवाद आपके पक्ष में चरितार्थ हो गया।' (६।११४।६७)

अशोक वाटिका में दुखिया सीता की उक्ति है—'पंडितों द्वारा समुदाहृत यह लोक-प्रवाद सत्य ही है कि चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, किसी की भी अकाल-मृत्यु दुर्लभ होती है।' (५।२५।१२)

---

1. Racial Proverbs (Seluoyn Gurney Champion) pp. 15-16-17.

भरत हनुमान् से कहते हैं—यह लौकिकी गाथा मुझे कल्याण-प्रद जान पड़ती है कि यदि मनुष्य जीवित रहा तो चाहे सौ वर्ष बीत जायँ, उसे कभी-न-कभी आनन्द प्राप्त होता ही है। (६।१२६।२)

कादम्बरी में बाण भट्ट ने भी कहावत के पर्याय के रूप में 'लोकप्रवाद' पद का ही प्रयोग किया है।

'सत्योऽयं लोकप्रवादो यत्विपद्विपदं संपत्संपदमनुबध्नाति।'[1]

अर्थात् यह लोक-प्रवाद सत्य है कि विपत्ति, विपत्ति के पीछे और सम्पत्ति, सम्पत्ति के पीछे बँधी चलती है।

टीकाकार ने 'लोकप्रवाद' की व्याख्या करते हुए इसे 'लोगों का चिरन्तन वचन व्यापार' कहा है।[2]

इसी प्रकार कथासरित्सागर में 'प्रवाद' का प्रयोग देखिये—

"सत्यः प्रवादो यच्छिद्रेष्वनर्था यान्ति भूरिताम्।"

अर्थात् यह प्रवाद सत्य है कि विपत्ति पर विपत्तियाँ आया करती हैं।

पालि में कहावत के लिये 'भासितो' शब्द का व्यवहार होता है।

'पाइअसद्दमहण्णवो' में लोकोक्ति के पर्याय के रूप में 'आहाण' और 'आहाणय' शब्दों का प्रयोग हुआ है। श्रीमद्धनेश्वरमुनीश्वर विरचित 'सुर सुन्दरी चरिअं' में 'आहाण' और 'किंवदन्ती' पाठान्तर के साथ-साथ कहावत के लिए 'आहीण'[3] शब्द भी व्यवहृत हुआ है।

यथा,

अह भणइ पुहइ-नाहो ईसिं हसेऊण, देवि ! तं सच्चं।
आहीणं संजायं जं सम्मइ एत्थ लोगम्मि ॥ ६६ ॥ (बीओ परिच्छेओ)

अर्थात् पृथ्वीनाथ कुछ हँस कर कहते हैं कि इस लोक में प्रचलित यह आख्यान सत्य है।

रत्नशेखर सूरि (सं० १४१६ वि०) की 'सिरवाल कहा' में कहावत के लिए 'अक्खाणयं' शब्द प्रयुक्त हुआ है—

अहवा नरवर तुमए एयं अक्खाणयं कयं सच्चम्।
पाऊण पाणियं फिर पच्छा पुच्छिज्जए गेहं ॥ ७।२६ ॥

अथवा हे नरवर ! यह कहावत तुमने सच्ची कर दिखाई; पानी पीकर फिर पीछे घर को पूछता है।

अपभ्रंश में 'अहाणउ' (आभाणक) शब्द कहावत के अर्थ में व्यवहृत होता

---

१. कादम्बरी (बाण भट्ट और भूषण भट्ट) काशीनाथ पांडुरंग द्वारा संपादित, संस्करण सातवाँ; पृ० १४६।

२. लोकप्रवादो जनानां चिरंतनो वचनव्यापारः (वही, पृष्ठ १४६)।

३. कविवर समयसुन्दर कृत 'सीताराम चौपाई में' भी कहावत के लिए एक स्थान पर 'आहीण' शब्द का प्रयोग हुआ है।

उंघतणइ बिछाणउ लाधउ, आहीणइ दूकांणउ वे।
मुंगनइ चाउल माँहि घी घणउ प्रीसाणऊवे ॥

[ऊँघते को बिछौना मिल गया, मूँगों में, चावलों में घी खूब परोसा गया।
मिलाइये—'घी ढुल्यो तो मूँगां माँही।']

है किन्तु इस भाषा में भी ऐसा कोई शब्द नहीं मिलता जिसे 'कहावत'-शब्द का पूर्व-रूप कहा जा सके।

कुछ आधुनिक भारतीय भाषाओं से 'कहावत' शब्द के पर्यायों का आकलन यहाँ किया जा रहा है :—

भाषा	पर्याय.
तमिल	Pazamoli. (Old saying.)
तेलुगु	Sameta. (Proverb)
मलयालम.	Pazam chol.
मराठी.	म्हण, म्हणणी, आणा, आहणा, न्याय, लोकोक्ति।
बंगला	प्रवाद, वचन, प्रवचन, लोकोक्ति, प्रचलित वाक्य।
गुजराती	कहेवत, कहेणी, कहेती, कथन, उखाणुं।
हिन्दी	कहावत, कहनावत, कहाउत, कहनूत, उपखान, पखाना, लोकोक्ति।
उर्दू	जर्बुल मिस्ल।
लहंदी	अखाण।
गढ़वाली	पखाणा।
मिकिर भाषा. आसामी.	लंबीर, लंबरिम।
राजस्थानी	ओखाणो, कहबत, कैवत, कुवावत, कुवावट।
मालवी	केवात।

४. कहावत की परिभाषा

(१) **तटस्थ लक्षण**—कहावत की असंख्य परिभाषाएँ उपलब्ध हैं। एक विचारक ने संक्षिप्तता, सारगर्भितता और सप्राणता (चटपटापन) को कहावत के तीन अनिवार्य तत्त्वों के रूप में ग्रहण किया है।[1] किन्तु कहावत के सम्बन्ध में तीन 'सकारों' का यह सिद्धान्त सर्वांश में उचित नहीं जान पड़ता। पहले तत्त्व को लेकर ही विचार कीजिये। बहुत सी कहावतें संक्षिप्त होती हैं, उनमें 'गागर में सागर' भरा होता है। शेक्सपियर ने संक्षिप्तता को वाग्वैदग्ध्य का प्राण माना है[2] और सच कहा जाय तो कवि का यह सिद्धान्त कहावतों के सम्बन्ध में तो सर्वाधिक चरितार्थ होता है। उदाहरण के लिए कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये :

(१) पंच परमेसर अर्थात् पंच परमेश्वर होते हैं।

1. Lessons in Proverbs. (R. C. Trench.) p. 7.
2. Brevity is the soul of wit. (Hamlet).

(२) काती सब साथी अर्थात् फसलें चाहे जब बोई गई हों, कार्तिक में सब साथ ही पकती हैं।

(३) भतीजो तीजो अर्थात् भतीजा सम्बन्ध में तीसरा होता है, उससे विशेष आशा नहीं की जा सकती।

(४) नौकरी ना करी अर्थात् नौकरी तो न करना ही अच्छा।

(५) खेती धणियाँ सेती अर्थात् खेती मालिक की निगरानी से ही फलदायिनी होती है।

इस प्रकार की और भी बहुत सी कहावतें सहज ही उद्धृत की जा सकती हैं जिससे लोकोक्ति की संक्षिप्तता पर प्रकाश पड़ता है किन्तु संक्षिप्तता तो एक सापेक्ष शब्द है। किसे संक्षिप्त कहा जाय और किसे असंक्षिप्त ? एक अरबी कहावत का उदाहरण लीजिये :

"शुतुरमुर्ग से किसी ने कहा—ले चल। उसने उत्तर दिया—मैं पक्षी हूँ, भार-वहन नहीं कर सकता।" तब किसी ने कहा—उड़ चल। तुरन्त ही शुतुरमुर्ग कह उठा—मैं उड़ नहीं सकता क्योंकि मैं ऊँट हूँ।[1]

यह कहावत ऐसी है जिसे और संक्षिप्त नहीं किया जा सकता किन्तु है यह लोकोक्ति ही, चाहे कितनी ही लम्बी क्यों न हो। एक राजस्थानी कहावत लीजिये—

"ठाकराँ, घोड़ी ठेका तीन देसी। ठाकर यार तो पहले ही ठेकै नीचै आसी, दोय तो एकली देसी।" अर्थात् किसी ने कहा—ठाकुर साहब, जिस घोड़ी पर आप सवार हो रहे हैं, वह तीन बार उछाल मारेगी। उत्तर मिला कि ठाकुर तो पहली उछाल में ही ज़मीन पर गिर पड़ेगा, दो उछाल तो घोड़ी अकेली देगी।

सामान्यतः कहावतें लम्बी नहीं होतीं किन्तु कभी-कभी प्रश्नोत्तर के रूप में कुछ उक्तियाँ इस प्रकार प्रचलित हो जाती हैं कि हम उन्हें कहावतों के अतिरिक्त दूसरा नाम दे ही नहीं सकते। राजस्थानी भाषा में प्रश्नोत्तर के रूप में प्रचलित अनेक कहावतें उपलब्ध हैं।

लोकोक्ति संक्षिप्त हो, इसका अर्थ यह नहीं है कि जो उक्ति अपेक्षाकृत लम्बी हो, उसको लोकोक्ति का नाम दिया ही न जाय, क्योंकि विश्व के लोकोक्ति-साहित्य में लम्बी कहावतों का भी अभाव नहीं है। लोकोक्ति की संक्षिप्तता से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि उसमें न्यूनतम शब्दों का प्रयोग हो, अनावश्यक एक भी शब्द उसमें न आने पाये। इस प्रकार स्पष्ट है कि संक्षिप्तता लोकोक्ति की अनिवार्य विशेषता नहीं है।

सारगर्भितता कहावत का दूसरा अनिवार्य गुण बतलाया गया है। कहावतें सामान्यतः सारगर्भित होती हैं और यही कारण है कि वे इतने समय तक प्रचलित रहती हैं। "पेली लिखने पछे दे, भूल पड्याँ कागज सूँ ले"[२] एक राजस्थानी कहावत

1. They said to the camel-bird (*i.e.* the ostrich), "Carry". It answered, "I cannot, for I am a bird." They said, "Fly". It answered, "I cannot, for I am a camel."

(*Quoted by R. C. Trench in 'Lessons in Proverbs'.*)

२. मेवाड़ की कहावतें; भाग १ (पं० लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ६१।

है जिसका तात्पर्य यह है कि लेन-देन करते समय लिख लेना चाहिए, फिर यदि कोई भूल पड़ जाती है तो बहीखाते की जाँच से निकल जाती है। हम प्रायः देखते हैं कि जो अपनी स्मरण-शक्ति पर भरोसा कर लेन-देन करते हैं, उन्हें हमेशा पश्चात्ताप करना पड़ता है। इसी प्रकार एक दूसरी कहावत में कहा गया है, "मूँघो रोवे एक बार, सूँघो रोवे बार-बार"[१] अर्थात् मँहगी चीज़ लेने से एक बार तो दाम ज्यादा लगते हैं पर चीज़ अच्छी मिल जाती है। सस्ती लेने से पहले तो दाम कम लगते हैं किन्तु वह सदा कष्ट देने वाली होती है। इस कहावत में जो तथ्य प्रकट हुआ है, वह प्रतिदिन के अनुभव से स्वयंसिद्ध है। जो लोग दूसरों को रुपया उधार देते हैं, वे अपने लिए आफ़त मोल ले लेते हैं। उधार लेने वाला बराबर चुका नहीं सकता, अतः उससे लड़ाई हो ही जाती है। 'उधार दीजै दुसमण कीजै' तथा 'उधार देवणो लड़ाई मोल लेवणो है' जैसी कहावतों में यही बात कही गई है।

किन्तु सभी कहावतें एक समान सारगर्भित होती हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। "कपड़ा फाट गरीबी आई। जूती टूटी चाल गमाई" अर्थात् कपड़े फट गये और गरीबी आ गई। ज्यों ही जूते टूटे, चाल का मज़ा जाता रहा। कहने का तात्पर्य यह है कि फटे वस्त्र और टूटे जूते गरीबी के द्योतक होते हैं। सारगर्भितता की दृष्टि से इस कहावत का कोई विशेष महत्त्व नहीं जान पड़ता किन्तु यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि अधिकांश कहावतें सारगर्भित होती हैं।

सप्राणता अथवा चटपटापन भी, जो कहावत का तीसरा गुण बतलाया गया है, प्रत्येक कहावत के सम्बन्ध में लागू नहीं होता। चटपटी होने से उक्ति का महत्त्व बढ़ जाता है जैसा कि नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट है :

१. 'दादो घी खायो, म्हारी हथेली सूँघल्यो' अर्थात् दादा ने घी खाया, हमारी हथेली सूँघलो। बात-बात में पूर्वजों की शेखी बघारने वाले पर व्यंग्योक्ति के रूप में इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।

२. 'लुगाई कै पेट में टाबर खटा ज्याय, बात कोनी खटावै' अर्थात् स्त्री के पेट में बच्चा समाया रहता है, बात नहीं समाती!

किन्तु ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमें अभिव्यक्ति का कोई वैचित्र्य नहीं मिलता। 'धन खेती, धिक चाकरी', 'बड़ाँ की बड़ी ई बात', 'बाँट कर खाणा अर सुरग में जाणा' जैसी कहावतों में कोई चटपटापन नहीं है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि संक्षिप्तता, सारगर्भितता और सप्राणता किसी उत्कृष्ट कहावत के तो अपरिहार्य गुण अवश्य हैं, किन्तु कहावत-मात्र के अनिवार्य गुण ये नहीं हैं।

(२) **स्वरूप लक्षण**—ब्रह्म का विवेचन करते हुए वेदान्त-ग्रन्थों में तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण की चर्चा की गई है। किसी वस्तु का स्वरूप लक्षण पदार्थ के सत्य तात्त्विक रूप का परिचय कराता है। परन्तु तटस्थ लक्षण किंचित्कालावस्थायी

१. राजस्थानी कहावतां, भाग दूसरो, सम्पादक स्वामी नरोत्तम दास और श्री मुरलीधर व्यास; पृष्ठ ८७।

आगन्तुक गुणों का ही निर्देश कराता है। कहावत का स्वरूप लक्षण क्या है? उसका सत्य तात्त्विक रूप क्या है? उसकी आत्मा क्या है? कहावत अथवा लोकोक्ति के सम्बन्ध में संक्षिप्तता, सारगर्भितता तथा सप्राणता का जो उल्लेख किया गया है, वहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि ये तीनों गुण हर एक लोकोक्ति में अनिवार्यतः नहीं पाये जाते। इससे स्पष्ट है कि इन तीनों के आधार पर लोकोक्ति के स्वरूप का निर्धारण नहीं हो सकता, इन तीनों का समावेश लोकोक्ति के तटस्थ लक्षण में अवश्य किया जा सकता है। लोकोक्ति, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, जब तक लोक की उक्ति न हो, ऐसी उक्ति न हो जिसको लोक स्वीकार करले, तब तक उसे लोकोक्ति के नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता, उसे और कोई नाम भले ही दिया जाए।[1] गेटे की एक उक्ति लीजिये :

"किसी भवन में रहने के लिए भवन-शिल्पी होना आवश्यक नहीं।" इसमें लोकोक्ति के अन्य सब गुण हैं किन्तु लोगों की ज़बान पर न आ सकने के कारण इसे लोकोक्ति का गौरव प्राप्त न हो सका। शिलर की उक्ति है 'Heaven and earth fight in vain against a dunce' यह भी लोकोक्ति न बन सकी क्योंकि उसी की उक्ति रही। राजस्थानी में 'मूरख नै टक्को दे देणो पण अक्कल न देणी' ने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया। 'मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिलहिं विरंचि सम' तुलसीदास की यह सूक्ति भी लोकोक्ति की तरह ही उद्धृत की जाती है, अथवा परस्पर वार्तालाप में प्रयुक्त होती है। इस आशय की कहावत संसार की अनेक भाषाओं में मिलती हैं। चीन की निम्नलिखित कहावत भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है :

"One has never so much need of his wit as when he has to deal with a fool."

१७वीं शती के पूर्वार्द्ध में जेम्स हॉवल नाम का एक अंग्रेज़-लेखक हो चुका है जिसने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। कहावतों पर उसने बहुत-कुछ काम किया था। उसने केवल दूसरों की कहावतें ही इकट्ठी नहीं कीं, अपितु उसने पाँच सौ कहावतें इस उद्देश्य से स्वयं भी बना डालीं कि वे आगामी पीढ़ियों के काम आएँ, और इन पाँच सौ कहावतों को भी उसने अपने संग्रह में सम्मिलित कर लिया। उसके द्वारा निर्मित कुछ कहावतों के उदाहरण लीजिए :

(१) गर्व एक ऐसा पुष्प है जो दानव के बगीचे में उगता है।

(२) श्रद्धा एक कुलीन स्त्री है और अच्छे कार्य उसके अनुचर हैं।

उक्त दोनों उक्तियों में कहावत के अन्य गुण तो मिलते हैं किन्तु लोकप्रियता का गुण, जो कहावत का प्राण है, इनमें नहीं है। इसलिए हॉवल द्वारा गढ़ी हुई उक्तियों ने संग्रह की ही शोभा बढ़ायी, लोकोक्ति के पद पर वे आसीन न हो सकीं। हॉवल द्वारा निर्मित उक्तियाँ प्राज्ञोक्तियाँ हैं, लोकोक्तियाँ नहीं। कहावत वस्तुतः लोक

1. To attain the rank of a proverb, a saying must either spring from the masses or be accepted by the people as true. In a profound sense it must be vox populi.

(*Encyclopaedia of Religion and Ethics—Hastings vol. x, p. 412*)

की उक्ति है । इस बात को स्वयं हॉवल ने भी स्वीकार किया है ।[1]

उक्त ऊहापोह के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि संक्षिप्तता, सारगर्भितता और चटपटापन सामान्यतः किसी भी कहावत के, किन्तु विशेषतः किसी उत्कृष्ट कहावत के, अपरिहार्य गुण हैं पर लोकप्रियता कहावत-मात्र का अनिवार्य लक्षण है ।[2]

(३) **लोकोक्तियों का सत्य और विरोधाभास**—ऊपर जो लोकोक्ति की सत्यता के सम्बन्ध में हॉवल का उद्धरण दिया गया है, उससे यह न समझा जाय कि लोकोक्ति का सत्य सार्वजनीन व सार्वदेशिक होता है । कुछ कहावतें ऐसी भी मिल जाती हैं जिसमें आपाततः विरोध दिखाई पड़ता है । भाई बरोबर बैरी नहीं, और भाई बरोबर प्यारो नहीं," इस लोकोक्ति में एक ही साँस में दो विरोधी बातें कह दी गई हैं । जहाँ एक कहावत में कहा गया है 'कपूत आयो भलो न जायो', वहीं एक दूसरी कहावत में कहा गया है 'खोटो पीसो, खोटो बेटो, ओडीवर को माल' अर्थात् खोटा पैसा और कुपुत्र कभी न कभी विपत्ति-काल में काम दे ही देते हैं । कहावतों में इस प्रकार के विरोधाभास को देखकर चौंकने की आवश्यकता नहीं क्योंकि हमारा जीवन ही अनेक प्रकार के विरोधाभासों से परिपूर्ण है । कहावत वस्तुतः सम्पूर्ण सत्य नहीं है; वे सत्य के लिए संकेतमात्र उपस्थित करती हैं । जिस प्रकार दर्पण-विशेष की भिन्नता के कारण प्रतिबिम्बों में भी भिन्नता आ जाती है, उसी प्रकार देश, काल और परिस्थितियों की भिन्नता के कारण जीवन-दर्पण में हमें भिन्न-भिन्न रंग दिखाई पड़ते हैं । सत्य वास्तव में एक बहुमुखी देव है जिसके मुखों की इयत्ता का अनुमान तक नहीं किया जा सकता । चरम सत्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर देते-देते तो बड़े-बड़े दार्शनिकों की बुद्धि भी हैरान हो गई है । स्टीवेन्सन ने तो यहाँ तक कह दिया था कि निरपेक्ष सत्य-जैसी कोई वस्तु नहीं, हमारे सब सत्य अर्द्ध-सत्य मात्र हैं ।[3] इसलिए कहावतों का सत्य यदि सार्वदेशिक और सार्वकालिक न हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं । मार्ग-दर्शन के लिए कहावतें श्रेष्ठ साधन का काम देती हैं, किन्तु कोई उन्हें चरम सत्य का पर्याय समझने की भूल न करे । शास्त्रीय शब्दावलि का प्रयोग करें तो हम कह सकते हैं कि वे निरपवाद और निरपेक्ष सत्य नहीं, वे सत्य के लिए एक दृष्टिकोण मात्र हैं ।[4]

भिन्न स्थान से लिए हुए चित्र में जैसे भिन्नता आ जाती है, वैसे ही इस संसार

1. "The people's voice, the voice of God we call,
And what are proverbs but the people's voice
Coined first and current made by common choice ?
Then sure they must have weight and truth withal."

2. Four qualities are necessary to constitute a proverb, brevity (or, as some prefer to put it, conciseness) sense, piquancy or salt (Trench) and popularity.

(*Encyclopaedia of Religion and Ethics Hastings, vol. x, p. 412*)

3. There is nothing like absolute truth, all our truths are half-truths.

4. Proverbs are moral universals, not logical universals; they admit exceptions.

को देखने में भी दृष्टिकोण की भिन्नता सर्वत्र मिलेगी और यह एक दृष्टि से वांछनीय भी है। जीवन का यथार्थ मूल्यांकन गणित के नियमों की तरह नहीं किया जा सकता। परिस्थितियों आदि की भिन्नता से हमारे जीवन के अनुभवों के मूल्य भी बदलते रहते हैं।

कहावतों में विरोधाभास का मुख्य कारण यह है कि उनके निष्कर्ष में वैज्ञानिक निष्कर्ष का-सा सत्य नहीं रहता। कुछ उदाहरण सामने आये और उनके आधार पर एक लोकोक्ति चल निकली। बहुत से कुपुत्रों को जब देखा गया कि वे किसी काम के नहीं तो एक कहावत बन गई 'कपूत आयो भलो न जायो'। पर जब एक बार ऐसा भी देखा गया कि किसी कुपुत्र द्वारा भी कोई भलाई का काम सम्पन्न हो गया तो इस प्रकार की कहावत बन गई होगी 'खोटो पीसो, खोटो बेटो, ओडीवर को माल' अर्थात् खोटा पैसा और कुपुत्र कभी विपत्ति-काल में काम दे ही देते हैं। पहली कहावत क्योंकि प्रचलित हो गई, वह भी बनी रही और दूसरी भी सत्य का आश्रय पाकर प्रचलित हो गई। तर्कशास्त्र के शब्दों में यदि हम कहें तो कह सकते हैं कि कहावतों का सत्य "अवैज्ञानिक होता है, सीमित घटनाओं को लक्ष्य में रखकर वह प्रवृत्त होता है।"[१]

विश्व की बहुत सी भाषाओं में कहावतों के सम्बन्ध में कुछ कहावतें प्रचलित हैं जिनमें कहा गया है कि कहावतें झूठ नहीं बोलतीं।[२] और इसका प्रमुख कारण यह है कि वे दैनिक अनुभव की दुहिताएँ हैं,[३] वे अनुभव की सन्तान हैं।[४] इटली की एक कहावत में कहा गया है कि कहावतों को कहावतें कहते ही इसलिए हैं कि वे सिद्ध हो चुकी हैं। डिजरेली[५] के शब्दों में "शताब्दियाँ बीत जाने पर भी लोकोक्तियों रूपी मानसिक फर्नीचर के दीमक नहीं लग पाई है; इतना ठोस है यह फर्नीचर।"[६]

जो कुछ लोग कहते हैं, वह सत्य हो सकता है, असत्य भी हो सकता है लेकिन

1. A proverb is not scientific induction. It is unscientific induction based on limited uncontradicted experience. Proverbs are based on induction per simple innumeration.

2. A Proverb does not tell a lie. (Estonian)
A Proverb never lies. (German)
Proverbs do not lie. (Russian)
There are no proverbial sayings which are not true. (Don Quixote)
If there is falsity in a proverb, then milk can be sour. (Malayalam).
Old sayings contain no lies. (Basque)

3. Proverbs are the daughters of daily experience. (Dutch)

4. Proverbs are the children of experience. (English)

5. Proverbs are so called because they are proved. (Italian)

6. Centuries have not worm-eaten the solidity of this ancient furniture of mind

जिसे सभी लोग कहते हैं, वह असत्य कैसे हो सकता है ?[1] कहावतें अपने सत्य के कारण ही चिरकाल तक जीती हैं, और सत्य ही एक ऐसी वस्तु है जो पुरानी नहीं पड़ती। इसीलिए कहा गया है कि 'काल गया पर कहावत रह गई'।

इमर्सन ने कहावतों के बारे में जो कहा है "Proverbs are the literature of reason, or the statement of absolute truth, without qualification. like the sacred books of each nation, they are the sanctuary of its institutions" उसका अर्थ केवल यही समझा जाना चाहिए कि जो जाति जिन कहावतों का प्रयोग करती है, उस जाति के लोग अपनी कहावतों को निरपेक्ष सत्य के रूप में ग्रहण करते हैं; नहीं तो, जैसा ऊपर दिखाया जा चुका है, सभी कहावतों का सत्य निरपेक्ष तथा निरपवाद नहीं होता। टी. टी. मुंगर के शब्दों में 'लोकोक्तियाँ अर्द्ध सत्य मात्र होती हैं।'[2]

(४) **कुछ प्रसिद्ध परिभाषाएँ**—एक प्राचीन वैयाकरण ने कहावत की यह परिभाषा दी थी 'A proverbs is a saying without an author' अर्थात् कहावत वह उक्ति है जिसका कोई निर्माता न हो। यह हो सकता है कि कहावत के रचयिता का हमें ज्ञान न हो किन्तु यह निश्चित है कि कहावतें अपने आप उत्पन्न नहीं हो गयीं; सब से पहले किसी न किसी के मुख से तो कहावत निकली ही होगी। लोक-मानस जिस बात को मानता है, सोचता है अथवा ग्रहण करता है, उसी को एक चतुर व्यक्ति ने एक मनोरम उक्ति के रूप में जड़ दिया होगा, और क्योंकि उस उक्ति में लोक-मानस का विश्वास सन्निहित था, वह उक्ति केवल एक व्यक्ति की उक्ति नहीं रह गयी, उस उक्ति ने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया। लार्ड रसल ने इसी अर्थ में लोकोक्ति को एक व्यक्ति की विदग्धता और अनेक का ज्ञान कहा होगा।[3] किन्तु यहाँ पर भी ध्यान देने की बात यह है कि एक की उक्ति होने से ही कोई उक्ति लोकोक्ति का रूप धारण नहीं कर लेती; लोकोक्ति होने के लिए यह अनिवार्यतः आवश्यक है कि जन-मानस की छाप उस पर अङ्कित हो; लोक-हृदय उस उक्ति के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करे। कोई उक्ति एक मुख से निकली, वह सब की जबान पर आ गई और सब की हो गई। किसी लोकोक्ति के प्रचलन में अधिकांश लोक-समुदाय साधनभूत होता है, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि लोकोक्ति के लोकोक्ति बनने में एक ही व्यक्ति का हाथ नहीं रहता, समस्त लोक-समुदाय उसे लोकोक्ति का रूप देने में योग देता है। इस अर्थ में वह किसी व्यक्ति-विशेष की रचना नहीं कही जा सकती; क्योंकि, जब से उसका प्रचलन हुआ, तभी से उस उक्ति को लोगों ने अपनी करके माना। कौन जानता है लोको-

1. It may be true what some men say, it must be true what all men say. (English)

2. Proverbs are usually but half-truths and seldom contain the principle of the action they teach. (T. T. Munger)

3. A Proverb is the wit of one and the wisdom of many. (Lord Russel)

क्तियों के उन निर्माताओं को जिनकी उक्तियाँ हज़ारों वर्ष बीत जाने पर आज भी लोगों की ज़बान पर हैं ?

लोक-मानस में लोकोक्ति के निर्माता का मानस विनिमज्जित हो गया; उसका नाम भुला दिया गया और लोकोक्ति जनता-जनार्दन की उक्ति बन गई। लोकोक्ति के निर्माता को अवश्य इस बात से मूक संतोष होता रहा होगा कि उसकी उक्ति लोक की उक्ति बन रही है, और फिर दूसरी बात यह भी है कि लोकोक्ति की उद्भावना में निर्माता के नाम का डिंडिम-घोष करके जब एक व्यक्ति को महत्त्व दिया जाने लगता है, तब जन-मानस इस भावना के प्रति विद्रोह कर उठता है, किन्तु जब जनता इस बात को स्वीकार कर लेती है कि उक्ति व्यक्ति-विशेष की नहीं, समस्त लोक-समुदाय की है, तब वह उक्ति जोरों से चल पड़ती है, उसके व्यापक प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता।

कहावत की वैज्ञानिक परिभाषा देना बड़ा कठिन कार्य है। अरस्तू[1] के शब्दों में 'संक्षिप्त और प्रयोग के लिए उपयुक्त होने के कारण विध्वंस और विनाश में से बचे हुए अवशेष को कहावत की संज्ञा दी गई है।" टेनीसन[2] के शब्दों में "कहावतें वे रत्न हैं जो पाँच शब्द लम्बे होते हैं और जो अनंत काल की अँगुली पर सदा जगमगाते रहते हैं।" ज़ूबर्ट[3] ने कहावतों को "ज्ञान के संक्षेपीकरण" के नाम से अभिहित किया है। सर्वेंटीस[4] के मत से "कहावतें वे छोटे-छोटे वाक्य हैं जो जीवन के दीर्घकालीन अनुभवों को अन्तर्हित किए हुए हैं।" ऐग्रीकोला[5] की दृष्टि में 'कहावतें वे संक्षिप्त वाक्य हैं जिनमें सूत्रों की तरह आदिम पुरुषों ने अपनी अनुभूतियों को भर दिया है।" इरेस्मस[6] का मत है कि कहावतें वे प्रसिद्ध और सुप्रयुक्त उक्तियाँ हैं जिनकी एक विलक्षण ढंग से रचना हुई हो।" बाइबिल[7] में कहा गया है कि "कहावत ज्ञानी जनों की उक्तियों का निरूपण है।" डिज़रेली[8] के मतानुसार "कहावतें

1. A proverb is the remnant of the ancient philosophy preserved amidst very many destructions on account of its brevity and fitness for use. (Aristotle)

2. Jewels five words long that on the stretched forefinger of all time sparkle for ever. (Tennyson)

3. Proverbs may be said to be the abridgments of wisdom. (Joubert)

4. Short sentences drawn from long experience. (Cervantes)

5. Short sentences into which, as in rules, the ancientas have compressed life. (John Agricola)

6. Well-known and well-used dicta framed in a sort of out-of the way form and fashion. (Erasmus)

7. A proverb is the interpretation of the words of the wise. (Bible)

8. These fragments of wisdom, the proverbs in the earliest ages serve as the unwritten laws of morality. (Disraeli)

पांडित्य के अंश हैं जो मानव-सृष्टि के आदिम-काल में अलिखित नैतिक कानून का काम देती थीं।"

एक आधुनिक लेखक[1] ने कहावतों को "भौतिकवाद की बीजगणित" का नाम दिया है। डाक्टर वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में "लोकोक्तियाँ मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। वे मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती रहती है।"

उक्त सभी परिभाषाओं में कहावत के मूल तत्त्व लोकप्रियता की उपेक्षा की गई है। किसी उक्ति में कितने ही गुण चाहे क्यों न हों, जब तक वह लोक की उक्ति नहीं होगी, लोकोक्ति या कहावत नहीं कहला सकेगी। ऊपर दी हुई कई परिभाषाएँ लोकोक्तियों की परिभाषाएँ न होकर प्राज्ञोक्तियों की परिभाषाएँ हो गई हैं। जिसने कहावतों को 'जन-समूह के ज्ञान और चातुर्य के नवनीत' की संज्ञा दी थी, उसने लोकोक्ति के सम्बन्ध में अधिक सूझ-बूझ का परिचय दिया था।

(५) **निष्कर्ष**—इस प्रकार कहावत की असंख्य परिभाषाएँ दी जा सकती हैं किन्तु किसी निर्दोष परिभाषा की ओर इंगित कर देना सरल काम नहीं है। हाँ, परिभाषाओं में त्रुटियाँ निकालना अवश्य सरल कार्य है। कहावत के स्वरूप को लक्ष्य में रखते हुए हम कह सकते हैं कि अपने कथन की पुष्टि में, किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से, किसी बात को किसी की आड़ में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी को उपालम्भ देने व किसी पर व्यंग्य कसने आदि के लिए अपने में स्वतन्त्र अर्थ रखने वाली जिस लोक-प्रचलित तथा सामान्यतः सारगर्भित, संक्षिप्त एवं चटपटी उक्ति का लोग प्रयोग करते हैं, उसे लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जा सकता है।

कहावत का यह लक्षण बहुत व्यापक होते हुए भी सर्वथा निर्दोष होने का दावा नहीं करता।

५. कहावत और मुहावरा

कहावतों के ऐसे बहुत से संग्रह निकले हैं जहाँ कहावतों के साथ-साथ अनेक मुहावरों का भी समावेश कर लिया गया है। कुछ संग्रहकर्त्ता तो जान-बूझकर कहावतों के साथ मुहावरों को भी अपने संग्रहों में स्थान देते हैं किन्तु ऐसे संग्रहों का भी अभाव नहीं है जहाँ कहावत और मुहावरे की विभाजन-रेखा स्पष्ट न होने के कारण कहावतों और मुहावरों का एकत्र सम्मेलन हो जाता है जो अवांछनीय है। ऐसी स्थिति में कहावत और मुहावरे के तारतम्य पर विचार कर लेना आवश्यक है।

१. **रोजमर्रा और मुहावरा**—'मुहावरा' अरबी शब्द है जो 'हौर' शब्द से बना है। इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ परस्पर बातचीत और एक दूसरे के साथ सवाल-जवाब करना है। हिन्दी शब्दसागर के विद्वान् सम्पादकों के मतानुसार 'मुहावरा' लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य या वह प्रयोग है जो किसी एक ही बोली या लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष अभिधेय अर्थ से

1. Algebra of materialism. (*People of India by Risley, p. 125*)

विलक्षण हो। किसी एक भाषा में दिखाई पड़ने वाली असाधारण शब्द-योजना अथवा प्रयोग मुहावरे के नाम से अभिहित की जा सकती है। जैसे 'लाठी खाना' मुहावरा है क्योंकि इसमें 'खाना' शब्द अपने साधारण अर्थ में नहीं आया, लाक्षणिक अर्थ में आया है। लाठी खाने की चीज नहीं है, पर बोलचाल में 'लाठी खाना' का अर्थ 'लाठी का प्रहार सहना' लिया जाता है। इसी प्रकार 'गुल खिलना', 'घर करना', 'चमड़ा खींचना', 'चिकनी-चुपड़ी बातें' आदि मुहावरे के अन्तर्गत हैं। कुछ लोग इसे रोज़मर्रा या बोलचाल भी कहते हैं।[1]

किन्तु कुछ विद्वान् 'रोज़मर्रा' और 'मुहावरे' को एक नहीं मानते। हिन्दी के प्रसिद्ध वैयाकरण और लेखक पं० केशवराम भट्ट 'रोज़मर्रा' और 'मुहावरे' के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

"हिन्दी जिनकी मातृभाषा है, वह अपनी नित्य की बोलचाल में वाक्य-रचना जिस रीति से करते हैं, उसे रोज़मर्रा कहते हैं। जैसे 'कलकत्ते से पेशावर तक सात-आठ कोस पर एक पक्की सराय और एक कोस पर चबूतरा बना हुआ था।' यह वाक्य रोज़मर्रा के अनुसार नहीं है। इसकी जगह यों होना चाहिए—'कलकत्ते से पेशावर तक सात-सात आठ-आठ कोस पर एक पक्की सराय और कोस-कोस भर पर एक चबूतरा बना हुआ था।'

बोलने और लिखने में यथासम्भव रोज़मर्रे का विचार रखना बहुत ही आवश्यक है। बिना इसके लिखना या बोलना कौड़ी काम का नहीं।

बोलचाल या रोज़मर्रा नया गढ़ा नहीं जा सकता। जैसे पाँच-सात या सात-आठ वा आठ-सात पर अनुमान करके छः-आठ या आठ-छः या सात-नौ बोला जाय तो उसे रोज़मर्रा नहीं कहेंगे क्योंकि भाषा में कभी ऐसा नहीं बोलते। इसी तरह 'हर रोज़' की जगह 'हर दिन' 'रोज़-रोज़' की जगह 'दिन-दिन' या 'आये दिन' की जगह 'आये रोज़' बोलना रोज़मर्रा नहीं कहा जायगा।

कोई वाक्य या वाक्यांश अपना सामान्य अर्थ न जताकर कुछ और ही विलक्षण अर्थ जताये तो उसे मुहावरा (वाग्धारा) कहते हैं। जैसे 'रणजीतसिंह ने पठानों के दाँत खट्टे कर दिये', 'इतना कहते ही वह पानी-पानी हो गया' आदि।"

मौलवी अल्ताफ हुसैन हाली के मतानुसार "मुहावरे के दो रूप हैं—एक वह जिसको हम रोज़मर्रा या बोलचाल कह सकते हैं और दूसरा वह जो किसी वाक्य के सांकेतिक अथवा लाक्षणिक अर्थ द्वारा विदित होता है।"[2] 'पाँच-सात' यह रोज़मर्रे का उदाहरण है क्योंकि अहले-ज़बान उसको उसी तरह इस्तेमाल करते हैं जबकि ग़म खाना, कसम खाना, धोखा खाना, पछाड़ें खाना, 'ठोकर खाना' ये मुहावरे के दूसरे रूप के उदाहरण हैं। इसमें 'खाना' वास्तविक अर्थों (हक़ीक़ी) मानों में प्रयुक्त न होकर सांकेतिक अर्थों (मजाज़ी मानों) में प्रयुक्त हुआ है।

'रोज़मर्रे की पाबन्दी जहाँ तक सम्भव हो, लिखने और बोलने में ज़रूरी समझी

१. हिन्दी शब्दसागर, तीसरा भाग, पृष्ठ २७६३।
२. बोलचाल : श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय; भूमिका, पृष्ठ १२४।

गई है, यहाँ तक कि वाक्य में जितनी ही रोज़मर्रे की पाबन्दी कम होगी, उतना ही उसमें लालित्य कम होगा। परन्तु मुहावरे के लिए यह बात नहीं है। मुहावरा जो उत्कृष्ट रीति से बाँधा जाय तो निःसन्देह निकृष्ट आशय को उत्कृष्ट और उत्कृष्ट को उत्कृष्टतर कर देता है। पर हर जगह मुहावरे को बाँधना ऐसा कुछ आवश्यक नहीं। बिना मुहावरे के भी वाक्य ओजस्वी हो सकता है। मुहावरा मानों मनुष्य के शरीर में कोई सुन्दर अंग है और रोज़मर्रे को ऐसा जानना चाहिए जैसे अंगों का तारतम्य मनुष्य के शरीर में। लोग साधारणतः उसी लेख को बहुत पसन्द करते हैं जो रोज़मर्रे पर ध्यान देकर लिखा गया हो, और जो रोज़मर्रे के साथ मुहावरे की चाशनी भी हो तो वह उनको और भी अधिक स्वाद देता है।'

कभी-कभी एक ही उदाहरण में मौलाना हाली द्वारा निर्दिष्ट मुहावरे के दोनों स्वरूप मिल जाते हैं। जैसे 'तीन-पाँच करना' (झगड़ा टंटा-करना) उसको दोनों के मानों के लिहाज़ से मुहावरा कह सकते हैं क्योंकि यह तरकीब (व्यापार) अहले-ज़बान की बोल-चाल के भी मुवाफिक है, और उसमें तीन-पाँच का लफ़्ज़ अपने हक़ीक़ी मानों (वास्तविक अर्थों) में नहीं, वल्कि मजाज़ी मानों (सांकेतिक अर्थों) में बोला गया है।[1]

२. **मुहावरे का लक्षण**—पं० गयाप्रसाद शुक्ल मुहावरे को वाक्य नहीं मानते। उनकी दृष्टि में "मुहावरा वास्तव में लक्षणा या व्यंजना द्वारा सिद्ध वह वाक्यांश है, जो किसी एक ही बोली अथवा लिखी जाने वाली भाषा में प्रचलित हो और जिसका अर्थ प्रत्यक्ष (अभिधेय) अर्थ से विलक्षण हो।"[2] शुक्ल जी द्वारा दी हुई उक्त परिभाषा मूलतः हिन्दी शब्द-सागर की परिभाषा से मिलती-जुलती है।

श्री ब्रह्मस्वरूप दिनकर के मतानुसार "सब मुहावरे वाक्यांश होते हैं, परन्तु सब वाक्यांश मुहावरे नहीं होते।" 'नदी-तट पर' वाक्यांश है, पर मुहावरा नहीं। 'टेढ़ी खीर' मुहावरेदार वाक्यांश है, पर मुहावरा नहीं। मुहावरे के अन्त में क्रिया का संज्ञार्थक रूप रहता है। मुहावरे का शब्दार्थ नहीं लिया जाता किन्तु उसमें तथा लाक्षणिक अर्थ में कोई-न-कोई सम्बन्ध अवश्य रहता है। मुहावरों के शब्द नपे-तुले होते हैं, उनमें हेर-फेर संभव नहीं। 'पानी पानी होना' मुहावरा है, 'जल जल होना' नहीं।[3]

३. **मुहावरे के पर्याय**—गुजराती भाषा में मुहावरे के लिए 'रूढ़ि-प्रयोग' शब्द का प्रयोग होता है। रूढ़ि-प्रयोग व्याकरण और शब्द-कोश से अलग वस्तु है। भाषा का ज्ञान व्याकरण और शब्द-कोश से हो सकता है लेकिन जो ज्ञान इन दोनों से नहीं हो सकता, वह रूढ़ि-प्रयोग द्वारा सम्भव है। रूढ़ि-प्रयोग भाषा का ऐसा गुप्त भंडार है कि इसे जो खोलने का प्रयत्न करता है, वही इसे खोल सकता है। मात्र अभ्यास द्वारा ही यह प्राप्त किया जा सकता है। देश के रीति-रिवाजों और लोक की व्यावहारिक पद्धति पर लिखे हुए अनेक ग्रन्थों की अपेक्षा रूढ़ि-प्रयोगों द्वारा ही लोगों के

१. बोलचाल : श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय; भूमिका, पृष्ठ १२५।
२. हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप; 'दो शब्द' में से।
३. हिन्दी मुहावरे—ब्रह्मस्वरूप दिनकर शर्मा; 'विषय परिचय' से उद्धृत।

रहन-सहन और रीति-नीति का भली भाँति दर्शन कराया जा सकता है। वास्तव में भाषा का रहस्य इन्हीं के द्वारा उद्घाटित किया जा सकता है।[1]

पण्डित रामदहिन मिश्र के शब्दों में "संस्कृत तथा हिन्दी में मुहावरा शब्द के यथार्थ अर्थ का बोधक कोई शब्द नहीं है। प्रयुक्तता, वाग्रीति, वाग्धारा और भाषा-सम्प्रदाय आदि शब्दों को इसके स्थान पर रख सकते हैं। हिन्दी में मुहावरे के बदले में विशेषत: 'वाग्धारा' शब्द का व्यवहार देखा जाता है किन्तु मुहावरा शब्द के बदले 'भाषा सम्प्रदाय' शब्द का लिखना कहीं अच्छा है, क्योंकि वाग्रीति, वाग्धारा और प्रयुक्तता, इन तीनों शब्दों का अर्थ इससे ठीक-ठीक झलक जाता है, और भाषागत अन्यान्य विषयों का आभास भी मिल जाता है।[2]

यद्यपि विद्वानों ने मुहावरे के पर्यायवाची शब्द ढूँढ़ने का प्रयत्न किया है किन्तु हिन्दी में अभी तक कोई भी शब्द मुहावरे जितना प्रचलित नहीं हो पाया है। किसी विद्वान् ने मुहावरे के ध्वनि-साम्य पर 'मुख-व्यवहार' शब्द का मुहावरे के अर्थ में प्रयोग किया था किन्तु यह शब्द भी उस विद्वान् तक ही सीमित रहा।

संस्कृत में मुहावरे के लिए कोई उपयुक्त पर्याय शब्द चाहे न मिलता हो किन्तु मुहावरों का इस भाषा में कभी अभाव नहीं रहा। 'अंगुलिदाने भुजं गिलसि' (आर्या सप्तशती) तथा 'ईदृशं राजुकुलं दूरे वन्द्यताम्' (कपूर्रमंजरी) जैसे प्रयोग संस्कृत-ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी संस्कृत भाषा में मुहावरों का जो सैद्धान्तिक विश्लेषण नहीं मिलता, इसका संभवतः कारण यह है कि संस्कृत के आचार्य मुहावरों को लक्षणा के अन्तर्गत मानकर चले हैं।

४. **कहावत और मुहावरे का अन्तर**—कहावत और मुहावरे के स्वरूप-निर्धारण के बाद दोनों के पारस्परिक अन्तर को निम्नलिखित ढंग से समझाया जा सकता है—

(१) कहावत का वाक्य प्रायः सर्वत्र ज्यों का त्यों रहता है, क्या हुआ, यदि कभी कोई शब्द पहले-पीछे रख दिया गया।[3] किन्तु मुहावरे के वाक्यगत विविध प्रयोग हो सकते हैं। उदाहरणार्थ 'नामी चोर मार्यो जाय, नामी साहूकार कमा खाय' राजस्थानी की एक प्रसिद्ध कहावत है।[4] इसका प्रयोग बँधा-बँधाया है। सभी इस कहावत की इसी रूप में आवृत्ति करते हुए देखे जाते हैं। परन्तु मुहावरे के सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। मुहावरे का वाक्य काल, पुरुष, वचन और व्याकरण के अन्य अपेक्षित नियमों के अनुसार यथासम्भव बदलता रहता है। एक हिन्दी मुहावरा है 'मुँह बनाना'। धातु के समान व्याकरण के नियमानुसार इसके अनेक रूप बन सकते हैं यथा, 'मुँह बनाया, मुँह बनाते हैं, मुँह बनायेंगे, मैं मुँह बनाऊँगा, उन्होंने मुँह बनाना छोड़ दिया, उसका मुँह बनता ही रहा' आदि। इसी प्रकार 'आकाश-पाताल

---

१. रूढ़ि प्रयोग कोश—भोगीलाल भीखाभाई गांधी; सन् १८६८; प्रस्तावना, पृष्ठ ३।

२. मुहावरे—पंडित रामदहिन मिश्र; पृष्ठ ७।

३. पद्यों में छन्द के अनुरोध से कहावतों में भी यत्किंचित् परिवर्तन हो जाया करता है। जैसे—हाथ के कंगन को कहा आरसी ? (हाथ कंगन को आरसी क्या ?)
ऊँची दुकान की फीकी पिठाई। (ऊँची दुकान, फीका पकवान)।

४. मेवाड़ की कहावतें भाग १—पं० लक्ष्मीलाल जोशी; पृष्ठ ५४।

एक करना' एक मुहावरा है। इसके वाक्यगत दो प्रयोग लीजिए—

(क) डिप्टीगिरी के लिए वह आकाश-पाताल एक कर देगा।

(ख) बंग-भंग होने पर बंगालियों ने अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आकाश-पाताल एक कर दिया था।

उक्त दोनों उदाहरणों में कर्त्ता और काल के अनुसार मुहावरे सम्बन्धी वाक्यों में आवश्यक परिवर्तन हो गया है किन्तु कहावत में यह बात नहीं पाई जाती। एक कहावत है, 'अंधी पीसे, कुत्ते खायँ'। जब रहेगा तब इसका यही रूप रहेगा, अन्तर होने पर अर्थ-बोध में भी व्याघात होने लगेगा। 'अंधी पीसती है, कुत्ते खाते हैं अथवा अंधी पीसेगी, कुत्ते खायेंगे' इस प्रकार के प्रयोगों द्वारा उक्त कहावत उतनी बोधगम्य नहीं रह जायगी। इससे स्पष्ट है कि कहावत का रूप निश्चित होता है, और उसके शब्द भी प्राय: निश्चित रूप में ही बोले जाते हैं।[1]

(२) अर्थ की दृष्टि से लोकोक्ति स्वतः सम्पूर्ण होती है किन्तु मुहावरा नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि लोकोक्ति का रूप एक वाक्य का रूप होता है, जब कि मुहावरे का वाक्यगत प्रयोग किया जाता है। 'घण पूतां कुल हांण'[2] राजस्थानी की एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि अधिक पुत्रों से कुल की हानि होती है। उक्त कहावत एक पूरे वाक्य का रूप प्रस्तुत करती है।

इसके विपरीत 'जले पर नमक छिड़कना' एक मुहावरा है जो एक क्रिया मात्र है। जब तक इस क्रिया का किसी कर्त्ता से सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जायगा, तब तक उक्त मुहावरा कोई सम्बद्ध अर्थ नहीं देगा। मुहावरे का वाक्यगत प्रयोग ही उसे सम्बद्धता प्रदान करता है।

(३) जैसा ऊपर कहा गया है, मुहावरा वस्तुतः एक कार्य-व्यापार है, जब कि लोकोक्ति एक प्रकार का नैतिक अथवा व्यावहारिक कथन है। उदाहरण के लिए स्पेन तथा जर्मनी की दो कहावतें लीजिये—

Spanish. 'Give me where I may sit down, I will make where I may lie down.'

German. 'Who lets one sit on his shoulders, shall have him presently sit on his head.'

इन दोनों कहावतों के साथ-साथ राजस्थानी भाषा के इस वाक्य को लीजिए—

'आंगली पकड़तै-पकड़तै पूंच्यो पकड़ लियो' अर्थात् अँगुलि पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ लिया। प्रश्न यह है कि राजस्थानी भाषा के इस वाक्य को कहावत कहा जाय या मुहावरा? यद्यपि स्पेन और जर्मनी की दोनों लोकोक्तियों में जो बात कही गई है, करीब-करीब वही बात राजस्थानी के इस वाक्य में भी है किन्तु यह वाक्य जिस रूप में रखा गया है, वह लोकोक्ति का रूप नहीं है, यह एक मुहावरे का ही वाक्यगत प्रयोग है। हिन्दी शब्द-सागर के सम्पादकों ने भी 'उँगली पकड़ते पहुँचा

१. बोलचाल—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय; पृष्ठ १६७-१६८।
२. मारवाड़ रा ओखाणां; पृष्ठ २५।

पकड़ना' को मुहावरे के अन्तर्गत ही रखा है।[1]

राजस्थानी के उक्त वाक्य को यदि एक सामान्य कथन के रूप में इस प्रकार रख दिया जाय तो सम्भवतः यह कहावत का-सा रूप धारण करले।

"अँगुलि पकड़ते-पकड़ते पहुँचा पकड़ लिया जाता है।"

किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि 'अँगुलि पकड़ते पहुँचा पकड़ना' इसके वाक्यगत अनेक प्रयोग हो सकते हैं, कहावत की-सी अपरिवर्तनशीलता इसमें नहीं। इस मुहावरे का एक वाक्यगत प्रयोग लीजिये—

"मैंने तुम्हें बरामदे में जगह दी, अब तुम कोठरी में भी असबाब फैला रहे हो। भाई, उँगली पकड़ते पहुँचा पकड़ना ठीक नहीं।"

संस्कृत का 'अँगलिदाने भुजं गिलसि'[2] भी आकार-प्रकार की दृष्टि से मुहावरे का ही रूप प्रस्तुत करता है किन्तु इसी आशय को व्यक्त करने वाली निम्नलिखित दो उक्तियाँ निश्चित रूप से लोकोक्तियों के ही अन्तर्गत आयेंगी।

"Give a clown your finger and he will take your hand."[3]

"Give him an inch and he will take an ell."[4]

इससे जान पड़ता है कि लोकोक्ति मुहावरे की भाँति निरा कार्य-व्यापार नहीं है, उसका रूप कुछ ऐसा होना चाहिए जो नीतिपरक हो अथवा लोक-व्यवहार की कुछ मर्यादा बाँधता हो। लोकोक्ति साहित्य, यदि एक दृष्टि से देखा जाय तो, नीति-साहित्य ही है। मुहावरों में नीतिपरकता का प्रश्न उपस्थित नहीं होता, वहाँ प्रयोग की लाक्षणिकता अथवा ध्वन्यात्मकता अनिवार्यतः रहनी चाहिए।

इस दृष्टि से विचार किया जाय तो कहावतों का डील-डौल, रंग-ढंग और उनका उद्देश्य मुहावरों से भिन्न होता है।

(४) लोकोक्ति एक अप्रस्तुत प्रयोग है जब कि मुहावरा मुख्यतः लाक्षणिकता लिये रहता है यद्यपि यह सत्य है कि अनेक बार मुहावरा भी व्यंजना द्वारा सिद्ध होता है। 'वाङ्ला प्रवाद' के लेखक ने लोकोक्ति अथवा प्रवाद के सम्बन्ध में यथार्थ ही लिखा है—

"संस्कृत के कोष-काव्य में जिसे अन्यापदेश (एक वस्तु के उपलक्ष में दूसरी वस्तु की वर्णना) कहा गया है अथवा संस्कृत आलंकारिकों ने जिसे उपमा-ध्वनि, अप्रस्तुत प्रशंसा अथवा व्याज-स्तुति के नाम से अभिहित किया है, प्रवाद या लोकोक्ति में भी उसी प्रकार का संकेत सन्निहित रहता है।"[5]

अधिकांश कहावतों में दूसरे पर ढालकर कोई बात कही जाती है, इसलिए अप्रस्तुत कथन के रूप में ही कहावतों का प्रचलन हो पाता है। 'गरीब का कोई साथी नहीं, सभी समर्थ का साथ देते हैं' इस प्रस्तुत अर्थ को प्रकट करने के लिए 'उललतै

१. हिन्दी शब्द सागर, पहला भाग; पृष्ठ २९९।
२. आर्या सप्तशती।
3. Oxford Dictionary of Proverbs, p. 116.
४. वही; पृष्ठ ११७.
५. 'वाङ्ला प्रवाद'—श्री सुशीलकुमार दे; भूमिका, पृष्ठ ५।

पालड़ै को कोई भी सीरी कोनी, झुकतै पालड़ै का सै सीरी' जैसी अप्रस्तुत उक्तियों का प्रयोग कहावतों के रूप में किया जाता है।

किन्तु स्वास्थ्य, वर्षा आदि से सम्बन्ध रखने वाली कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जिन्हें हम अप्रस्तुत के रूप में ग्रहण नहीं कर सकते। यथा,

(क) 'ठंडो न्हावै, ऊनो खावै, जिण घर वैद कदे नहि जावै' अर्थात् जो शीतल जल से स्नान करता है और ताज़ा भोजन करता है, उसके घर पर वैद्य कभी नहीं जाता।

(ख) 'अम्बर राच्यो, मे माच्यो' अर्थात् लाल आसमान वर्षा का सूचक होता है। किन्तु ऊपर के विवेचन का यह अर्थ न समझा जाय कि कहावती वाक्य के अन्तर्गत लाक्षणिक पदों का प्रयोग नहीं होता। सम्पूर्ण कहावत अप्रस्तुत-कथन के रूप में प्रयुक्त होती है किन्तु लाक्षणिक पद-गर्भित लोकोक्ति अभिव्यक्ति के वैचित्र्य के कारण विच्छित्ति-विधायक होती हैं। उदाहरणार्थ 'नये नवाब, आसमान पर दिमाग़' एक कहावत है। 'आसमान पर दिमाग़' एक लाक्षणिक पद-विन्यास है जो उक्त कहावत के उत्तरार्द्ध में रखा गया है किन्तु समूची कहावत को लेकर यदि निर्णय करना हो तो हम इसे अप्रस्तुत-कथन ही कहेंगे। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि प्रत्येक कहावत में लाक्षणिक पदों का समावेश अनिवार्यतः होना चाहिए। ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमें कहीं कोई लाक्षणिक पद नहीं है, वे केवल अन्योपदेश के रूप में ही प्रयुक्त हुई हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कहावतें लीजिये—

(क) 'तावलो सो बावलो' अर्थात् जो प्रत्येक काम में उतावली करता है, वह पागल है।

(ख) 'आज ही मोडियो मूँड मुँडायो, आज ही ओला पड़्या' अर्थात् बाबा जी ने आज ही मूँड मुँडाया, आज ही ओले पड़े।

(५) अधिकांश मुहावरे नान्त रूप वाले होते हैं जैसे 'आग से खेलना, मिट्टी खराब करना, सबक पढ़ाना, सबको एक लाठी हाँकना' आदि। इस कारण व्याकरण के नियमानुसार उनके नाना रूप होते रहते हैं। किन्तु कुछ कहावतें भी ऐसी हैं जो नान्त रूप वाली हैं। उदाहरणार्थ—

'कम खा लेणा, पण कम क़ायदे नहीं रहणा' अर्थात् कम खा लेना अच्छा है किन्तु आत्मसम्मान गँवाकर रहना अच्छा नहीं।

किन्तु नान्त रूप के कारण ही किसी लोकोक्ति को मुहावरे की संज्ञा नहीं दी जा सकती। मुहावरे और लोकोक्ति में वस्तुतः मौलिक अन्तर है।

(६) लोकोक्ति में कम से कम दो शब्दों का होना आवश्यक है जब कि मुहावरे में कभी-कभी एक ही क्रिया से काम चल जाता है। वह उस पर 'मरता है', इस वाक्य में 'मरना' एक मुहावरा है जो आसक्त होने के अर्थ में प्रयुक्त है।

(७) सम्पूर्ण कहावतों का अन्तर्भाव लोकोक्ति-अलंकार में हो जाता है। कहावतों का प्रयोग मिलते ही, कोई पद्य लोकोक्ति-अलंकार का उदाहरण मान लिया जाता है। किन्तु मुहावरों के पक्ष में यह नियम लागू नहीं होता। मुहावरे लक्षणा और

व्यंजना पर आश्रित हैं, अतएव लगभग कुल अलंकार मुहावरों में आ जाते हैं। शब्दालंकार भी मुहावरों में मिलते है किन्तु कहावतों में उनका आधिक्य पाया जाता है। स्वभावोक्ति, ललित तथा गूढ़ोक्ति अलंकारों के अतिरिक्त मुहावरों में उपमा, उत्प्रेक्षा, आक्षेप, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्राचुर्य देखने को मिलता है।[1]

(८) कहावत और मुहावरे में एक अन्य प्रमुख अन्तर है। कहावतों को 'अनुभव की दुहिता' कहा गया है, और अनुभव की समानता दुनिया के प्रत्येक देश में देखने को मिलती है। यही कारण है कि एक देश की अनेक कहावतें दूसरे देश की कहावतों से बहुत-कुछ मिल जाती हैं। कभी-कभी तो बहुत सी कहावतें परस्पर अनूदित-सी जान पड़ती हैं किन्तु मुहावरों के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण लीजिए—

पीलु एटलुं सोनुं नहीं (गुजराती)
All is not gold that glitters. (English.)
रूप की रोवै, करम की खाय (राजस्थानी)
Beauty weeps while fortune enjoys. (English.)
रीतो घड़ो, छलकै घणो (राजस्थानी)
Empty vessel makes much noise. (English.)

अनुभव की समानता के कारण एक भाषा की कहावतों का दूसरी भाषा में अपेक्षया सरलता से अनुवाद हो सकता है किन्तु एक भाषा के मुहावरों का दूसरी भाषा में अनुवाद करना टेढ़ी खीर है।

फ्रेंच भाषा का एक मुहावरा है "A bon chat, bon rat" इसका अंग्रेजी अनुवाद "for good cat, good rat." अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त नहीं होता। अंग्रेजी भाषा में इसी आशय का द्योतक 'Tit for tat' एक दूसरा मुहावरा है। 'It rained cats and dogs' का अक्षरशः हिन्दी में अनुवाद करना हास्यास्पद होगा। हिन्दी का अपना ही मुहावरा प्रचलित है 'मूसलाधार वर्षा हुई'।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि "कहावत तो मानव-जाति के सामान्य अनुभवों का अक्षरदेह है जबकि मुहावरा भिन्न-भिन्न देश, जाति अथवा समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों की सूचक संज्ञा है।"[2] एक अन्य विद्वान् ने मुहावरों और कहावतों के अन्तर को निम्नलिखित शब्दों में प्रकट किया है—

"मुहावरे किसी वाक्य के वे सूक्ष्म-शरीर हैं, स्थूल-शरीर के बिना जिनकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती, लोकोक्ति-वाक्य भाषा रूपी समाज के वे प्रामाणिक व्यक्ति हैं जिनका व्यक्तित्व ही उनकी प्रामाणिकता का प्रमाण हो जाता है, जहाँ कहीं और जिस किसी के पास वे जा बैठें, उनकी तूती बोलने लगे।[3]

मुहावरे वस्तुतः किसी भाषा की वैयक्तिक चाल-ढाल है। जैसे मनुष्यों की

१. बोलचाल—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय; भूमिका, पृष्ठ १७४।
२. चबराकियांनुं तत्वदर्शन—फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता; पृष्ठ १३५-१३६।
३. हिन्दी मुहावरे—डा० ओमप्रकाश।

आकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं वैसे ही भाषा-विशेष के मुहावरे भी भिन्न-भिन्न होते हैं, उनके अपने-अपने चित्र-विचित्र प्रयोग होते हैं। किन्तु देश-विदेश की लोकोक्तियों में मुहावरों की-सी भिन्नता नहीं मिलती। एक ही माता-पिता की जैसे अनेक पुत्रियाँ होती हैं, प्रायः वैसे ही अनुभव रूपी माता-पिता की दुहिताएँ हैं ये लोकोक्तियाँ, और इसीलिए विभिन्न देशों की लोकोक्तियों में मानव-जाति की सामान्य सम्पत्ति बनने की क्षमता पाई जाती है।

६. कहावत और लौकिक न्याय

१. **'लौकिक न्याय' और अंग्रेजी पर्याय**—सन् १८७७ की डा० Bühler की काश्मीर-रिपोर्ट में न्याय शब्द का प्रयोग 'परिचित उदाहरणों से निकाले हुए अनुमान' के अर्थ में किया गया था। कर्नल जैकब ने लौकिक न्याय के पर्याय रूप में Maxim शब्द को ग्रहण किया था, किन्तु इस पर्याय से वे स्वयं सन्तुष्ट नहीं थे। उन्होंने तो केवल बड़े-बड़े विद्वानों द्वारा न्याय के अर्थ में गृहीत Maxim शब्द को देखकर ही इसे अपनाया था, अन्यथा उनकी मान्यता थी कि अंग्रेजी भाषा में न्याय के अर्थ को पूर्णतः व्यक्त करने वाला कोई उपयुक्त शब्द है ही नहीं। उन्होंने न्याय के अन्तर्गत दृष्टान्त, नियम और अधिकरण तीनों का सन्निवेश किया था। अंग्रेजी का Maxim शब्द इतना व्यापक नहीं कि वह उक्त तीनों प्रकार के अर्थों का वाचक बन सके। इसलिए जैकब के मतानुसार तो न्याय शब्द का अंग्रेजी अनुवाद न करके अंग्रेजी भाषा में भी इसे ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लेना चाहिए।[1]

२. **लौकिक न्याय का लक्षण**—हिन्दी शब्दसागर के सम्पादकों की दृष्टि में 'न्याय वह दृष्टान्त-वाक्य है जिसका व्यवहार लोक में कोई प्रसंग आ पड़ने पर होता है। यह कोई विलक्षण घटना सूचित करने वाली उक्ति है जो उपस्थित बात पर घटती हो। न्याय के पर्याय-रूप में सम्पादकों ने कहावत शब्द का भी प्रयोग किया है। ऐसे न्याय या दृष्टान्त-वाक्य बहुत से प्रचलित चले आते हैं और उनका व्यवहार प्रायः होता है।'

'संस्कृत में लौकिक न्याय के अन्तर्गत बहुसंख्यक सूत्र उस समय की या उससे पहले की लोक-विश्रुत कहावतें ही हैं। उसमें जो युक्ति-मूलक दृष्टान्त हैं, वे किसी एक समय के नहीं, भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पड़कर बुद्धिमानों को जो सच्चे अनुभव हुए, उन्हीं को उन्होंने सूत्रबद्ध करके जनता को सौंप दिया। जनता ने उनको उपयोगी समझकर अपना लिया। इस प्रकार भुक्तभोगियों के कितने ही सच्चे हृदयोद्गार लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हो गये।[2]

'संस्कृत साहित्य में सहस्रों स्थलों पर न्याय का प्रयोग हुआ है। इसका व्यवहार

१. लौकिक न्यायाञ्जलिः तृतीयो भागः, पृष्ठ २ (Preface)।
२. मालवी कहावतें, भाग १ का प्राक्कथन (पं० रामनरेश त्रिपाठी) पृष्ठ २।
मिलाइये : जिम श्वान अजाण्यो धाइने रोटी ले गयो।
बली काकताली नो न्याय उखाणो तिम थयो।
—स्व० मोहनलाल दलीचन्द देसाई द्वारा संगृहीत एक पांडुलिपि से

अधिकतर टीका-टिप्पणी, समालोचना, व्याख्या, शंका-समाधान आदि में देखा जाता है। ध्यानपूर्वक मनन करने से यह सर्वथा स्पष्ट हो जायगा कि न्याय में किसी घटना, किसी कहानी अथवा किसी विशेष अर्थ के बृहत् भाव सूत्र रूप में गुम्फित रहते हैं। 'देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर' वाली उक्ति यहाँ अक्षरशः चरितार्थ होती है। न्याय आकार-प्रकार में तो बहुत छोटा होता है पर भाव इसका बहुत गम्भीर रहता है। पूर्व समय में मुद्रण-यन्त्र के अभाव के कारण सूत्र-पद्धति प्रचलित थी और इसी से लोकोक्तियाँ भी न्याय शब्द के नाम पर सूत्र रूप में ग्रथित कर दी गयी थीं। प्रयोग में न्याय शब्द भी जुटा रहता है। यथा, घुणाक्षरन्यायः, काकतालीयन्यायः, पंकप्रक्षालनन्यायः, स्थालीपुलाकन्यायः। न्याय शब्द का व्यवहार कभी उपमा, कभी नियम, कभी सिद्धान्त, कभी उक्ति, कभी कहानी तथा कभी विशेष कार्य के अर्थ में होते पाया गया है। प्रसंगानुसार अर्थव्यंजना होती है। प्रत्येक न्याय में विशेष भाव की व्यंजना रहती है और ध्वन्यात्मक रूप से इसका प्रयोग होता है।[1]

संस्कृत के बहुत से निबन्धों में लोक-प्रसिद्ध युक्ति को न्याय की संज्ञा दी गई है।[2]

लोकोक्ति और न्याय दोनों एक ही हैं अथवा इन दोनों में अन्तर है, इस पर विचार करना आवश्यक है। न्याय के स्वरूप का विवेचन करने से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—

३. **लौकिक न्याय और कहावत का तारतम्य**—(१) अनेक न्याय ऐसे हैं जो केवल एक पदात्मक हैं। मात्स्य न्याय, टिट्टिभ न्याय आदि उदाहरणस्वरूप रखे जा सकते हैं। विश्व में शायद ही कोई ऐसी लोकोक्ति हो जो केवल एक पद में समाप्त हो जाती है। छोटी-से-छोटी लोकोक्ति के लिए भी कम-से-कम दो पद आवश्यक हैं। ट्रेंच के मतानुसार Voll, toll जर्मन-लोकोक्ति दुनिया की सबसे छोटी कहावत है।[3]

(२) बहुत से न्याय अथवा अधिकांश न्याय ऐसे हैं जो द्विशब्दात्मक हैं और जिनका सम्पूर्ण-वाक्य की भाँति प्रयोग नहीं होता। उदाहरणार्थ कुछ न्याय लीजिये—अजाकृपाणी न्याय, अन्धगज न्याय, काकतालीय न्याय, कूपमण्डूक न्याय, जामातृशुद्धि न्याय आदि। उक्त सभी न्यायों के मूल में कोई-न-कोई कथा मिलती है, जिसको जाने बिना इन न्यायों का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। बहुत सी कहावतें भी ऐसी होती हैं जिनके पीछे कोई-न-कोई कथा पायी जाती है, किन्तु कहावत सामान्यतः सम्पूर्ण वाक्य की भाँति प्रयुक्त होती है, दो-दो शब्दों में पदांश की तरह नहीं। कहावती रूप में क्रिया का कभी-कभी अभाव होने पर भी क्रिया सदा गम्य रहती है।

(३) कुछ न्याय ऐसे हैं जिन्हें लोक-प्रसिद्ध उपमाओं का नाम दिया जा सकता है। ऊषरवृष्टिन्याय, करस्थामलकन्याय, चक्रभ्रमणन्याय, अरण्यरोदन न्याय, अजागल-स्तन न्याय आदि उदाहरणस्वरूप रखे जा सकते हैं। कहावती उपमाओं के भी उदा-

१. संस्कृत लोकोक्ति सुधा—श्री जगदम्बाशरण पुस्तक; परिचय ख और ग पृष्ठ।

२. लोकप्रसिद्धयुक्तिर्न्यायः भूमिका भुवनेश लौकिक न्याय साहस्री।

3. Lessons in Proverbs by R. C. Trench; p. 8.

हरण मिलते हैं किन्तु लौकिक न्यायों में इस प्रकार की उपमाओं का प्राचुर्य दृष्टिगत होता है ।

(४) अनेक न्याय ऐसे भी उपलब्ध हैं जिन्हें यदि लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जाय तो किसी प्रकार का अनौचित्य नहीं दिखलाई पड़ता । नीचे जो उदाहरण दिये जा रहे हैं, उनमें लोकोक्ति के सभी लक्षण मिलते हैं ।

(क) अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् । —यदि समीप ही मधु मिलता हो तो पर्वत पर जाने से क्या प्रयोजन ?

(ख) भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिः ।—लहसन खाने पर भी रोग शान्त न हुआ । जैकब ने इस न्याय के लिए Maxim शब्द का प्रयोग न कर proverb शब्द का प्रयोग किया है ।

(ग) वरं सांशयिकान्निष्कादसांशयिकः कार्षापणः ।—अनिश्चित निष्क की अपेक्षा निश्चित कार्षापण श्रेष्ठ है ।

(घ) वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात् ।—कल के मयूर से आज का कपोत अच्छा । वात्स्यायन कामसूत्र के द्वितीय अध्याय में ग और घ सम्बन्धी उक्तियों का प्रयोग हुआ है जिन्हें जैकब भी proverbs कहना ही उपयुक्त समझते हैं ।[1]

(ङ) अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे । —जो अन्धे के सहारे लगा है, उसे पद-पद पर गिरना पड़ता है । इस न्याय का प्रयोग भामती में हुआ है जहाँ इसका आभाणक शब्द द्वारा उल्लेख किया गया है ।[2]

(च) सर्वं पदं हस्तिपदे निमग्नम् ।—हाथी के पैर में सब पैर समा जाते हैं ।[3]

(छ) शीर्षे सर्पो देशान्तरे वैद्यः । सर्प सिर पर और वैद्य देशान्तर में ।[4]

(ज) विक्रीते करिणि किमंकुशे विवादः । हाथी बिक जाने पर अंकुश पर विवाद कैसा ?

(झ) पुत्रलिप्सया देवं भजन्त्या भर्ताऽपि नष्टः ।—पुत्र-प्राप्ति की इच्छा से देवता की उपासना करती हुई का पति भी नष्ट हो गया ।

(ञ) वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चिन्तामणिं लब्धवान् ।—कौड़ी को तलाश करते हुए चिंतामणि हाथ लग गई । कबीर की साखियों में इसका निम्नलिखित रूप उपलब्ध होता है :

चौहटे चिन्तामणि चढ़ी, हाडी मारत हाथि ।

(५) कुछ न्याय ऐसे भी हैं जिनके कहावती रूप आज भी उपलब्ध होते हैं । उदाहरणार्थ :

(क) गोमहिषीन्यायः ।

एक राजस्थानी लोकोक्ति में कहा गया है कि 'गाय की भैंस के लागै और भैंस की गाय के लागै ?' अर्थात् गाय का भैंस से क्या सम्बन्ध और भैंस का गाय से

१. लौकिकन्यायांजलिः प्रथमो भागः ; पृ० ३१ ।
२. तथा चाभाणकः अन्धस्येवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे (भामती) ।
३. भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्री; पृष्ठ १८५ ।
४. वही; पृष्ठ २३५ ।

क्या सम्बन्ध ?

(ख) तरक्षडाकिनीन्यायः। इसी न्याय का प्रतिरूप 'डाकण ग्रौर जरख चढ़ी' राजस्थानी भाषा में उपलब्ध है।

(६) जैकब द्वारा संगृहीत और सम्पादित लौकिक न्यायांजलि में कहीं-कहीं न्याय के स्थान में निदर्शन और नियम शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा,

(क) तमः प्रकाशनिदर्शनम्। अर्थात् अंधकार और प्रकाश की युगपत् स्थिति का दृष्टान्त।

(ख) तैलकलुषितशालिबीजादंकुरानुदयनियमः। अर्थात् तैल से कलुषित शालि बीज के अंकुरित न होने का नियम।

(७) कहीं-कहीं प्रश्नोत्तर के रूप में भी न्यायों के उदाहरण मिलते हैं। जैसे,

प्रश्न

जागर्ति लोको ज्वलति प्रदीपः सखीजनः पश्यति कौतुकं मे।
क्षणैकमात्रं कुरु कान्त धैर्यं बुभुक्षितः किं द्विकरेण भुंक्ते॥

उत्तर

जागर्तु लोको ज्वलतु प्रदीपः, सखीजनः पश्यतु कौतुकन्ते।
क्षणैकमात्रं न करोमि धैर्यं बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्॥

भुवनेश लौकिकन्यायसाहस्री के सम्पादक ने "बुभुक्षितः किं द्विकरेण भुंक्ते" और "बुभुक्षितं न प्रतिभाति किंचित्" की न्यायों में गणना की है।

(८) न्यायों में एक आभाणक न्याय की भी गणना की गई है। 'वराटकान्वेषणे प्रवृत्तश्चिंतामणिं लब्धवान्' इसे आभाणक न्याय के अन्तर्गत रखा गया है। आनन्दघनकृत कुंथुनाथ स्तवन भी इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है जहाँ कहा गया है :

रजनी वासर बसती ऊजड़, गयण पयालो जाय।
सांप खाय नें मुखडूं थोथो, ए ऊखाणो न्याय॥

साँप दूसरे को काटता है किन्तु इससे साँप का पेट नहीं भरता। इसे 'ऊखाणो-न्याय या आभाणक-न्याय' कहा गया है।

(९) कुछ कवियों की उक्तियाँ भी ऐसी हैं जिन्हें न्याय के अन्तर्गत कर लिया गया है। उदाहरणार्थ :

(क) छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति (विष्णु शर्मा) अर्थात् विघ्न पर विघ्न आया करते हैं।

(ख) सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृता (श्री मद्‌भगवद्‌गीता) अर्थात् जैसे अग्नि धुएँ से आवृत्त रहती है, उसी प्रकार सब समारम्भ दोष से युक्त रहते हैं।

न्याय के उक्त स्वरूपों को देखने से स्पष्ट है कि संस्कृत-साहित्य में न्याय शब्द अत्यन्त व्यापक है। इसके अन्तर्गत लोक-प्रचलित पदांशों, प्रसिद्ध उपमाओं, विश्रुत दृष्टान्तों, सूक्तियों तथा आभाणकों अथवा लोकोक्तियों, सभी को स्थान मिल गया है। बहुत से न्याय ऐसे हैं जिन्हें कहावत की संज्ञा दी जा सकती है, अनेक न्याय ऐसे हैं जिन्हें पारिभाषिक दृष्टि से लोकोक्ति तो नहीं कहा जा सकता किन्तु जो सूत्र-शैली में ग्रथित ऐसे पद-समुच्चय हैं जो अपने में गम्भीर अर्थ छिपाये हुए हैं। दार्शनिक ग्रन्थों

के भाष्यों में इस प्रकार के न्यायों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। 'योगाद्रूढिर्बलीयसी' जैसे अनेक शास्त्रीय न्याय भी हैं जो कहावतों की अपेक्षा सिद्धान्त, नियम आदि के अधिक सन्निकट हैं।

यही कारण है कि कहावत और लौकिक न्याय के आपेक्षिक विवेचन में शास्त्रीय न्यायों को जान-बूझकर छोड़ दिया गया है।

प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति—प्रज्ञा सूत्र (Aphorism), व्यवहार-सूत्र (Maxim), मर्मोक्ति (Epigram) आदि प्राज्ञोक्ति के अन्तर्गत हैं। प्राज्ञोक्ति तथा लोकोक्ति के स्वरूप-निर्धारण में अनेक बार कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि संक्षिप्तता और सारगर्भितता आदि की दृष्टि से प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति में भी परस्पर समानता देखी जाती है किन्तु फिर भी प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति मूलतः एक दूसरे से भिन्न हैं जैसा कि नीचे के विवेचन से स्पष्ट होगा।

(१) **प्रज्ञासूत्र और कहावत**—अंग्रेजी का Aphorism शब्द ग्रीक Aphorismos से निकला है जिसका अर्थ है 'परिभाषा देना'। Apo का अर्थ है 'से' और Horos का अर्थ है 'सीमा'। इस प्रकार 'Aphorism' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हुआ 'किसी विचार-बिन्दु को सीमाबद्ध करके उसका लक्षण निर्धारित करना अर्थात् उसे निश्चयात्मक रूप देना।' प्रज्ञासूत्र एक प्रकार की ऐसी संक्षिप्त और सारगर्भित उक्ति है जिसमें किसी सामान्य सत्य की अभिव्यक्ति हुई हो।[1] कहावत और प्रज्ञा-सूत्र में मुख्य अन्तर यह है कि कहावत का सम्बन्ध सामान्य जनता से है, वह लोक की उक्ति अर्थात् लोकोक्ति है जब कि प्रज्ञासूत्र का सम्बन्ध विद्वानों अथवा प्राज्ञों से है, वह प्राज्ञों की उक्ति अथवा प्राज्ञोक्ति है।

पाश्चात्य देशों में प्रज्ञासूत्रों का जन्मदाता विश्वविख्यात ग्रीक वैद्य हीपोक्रैटस था जो ईसा से ४६० वर्ष पहले हुआ था किन्तु भारतवर्ष में सूत्रों की परम्परा बहुत प्राचीन है। हीपोक्रैटस से भी हजारों वर्ष पहले इस देश में सूत्रों की रचना होती आई है। ब्रह्मज्ञान तथा उस समय की अन्यान्य विद्याओं की रचना सूत्रों के रूप में हुई थी। अपने यहाँ 'सूत्र' शब्द की व्याख्या निम्नलिखित रूप में की गई है:

'अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवत् विश्वतोमुखम्।
अस्तोभं अनवद्यं च सूत्रं सूत्रविदो विदुः॥

अर्थात् सूत्र उसे कहते हैं जिसमें थोड़े अक्षर हों, अस्पष्टता न हो, अर्थ-गौरव से युक्त हो, विश्वतोमुखी हो, जिसमें पुनरावर्तन न हो और जो निर्दोष हो।

भारतीय ग्रन्थों को देखते हुए सूत्रों के दो वर्ग निर्धारित किये जा सकते हैं—(१) प्रज्ञा-सूत्र और (२) विद्या-सूत्र।

प्रज्ञा-सूत्रों का सम्बन्ध है आध्यात्मिक ज्ञान, धार्मिक तथा नैतिक उपदेश आदि से, जबकि विद्या-सूत्रों का सम्बन्ध ज्योतिष, व्याकरण, छन्द, नाट्य आदि विद्याओं से है। यहाँ प्रज्ञा-सूत्र तथा विद्या-सूत्रों के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

1. Aphorism is a short pithy statement containing truth of general import.

—*A Treasury of English Aphorisms by Logan Pearsall Smith. p. 44.*

प्रज्ञा-सूत्र

(१) एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति । (२) विद्ययाऽमृतमश्नुते । (३) अध्यात्मविद्या विद्यानाम् । (४) आचारः प्रथमो धर्मः । (५) यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति ।

विद्या-सूत्र

नाट्य-शास्त्रकार भरत मुनि का प्रसिद्ध रस सूत्र "विभावानुभावव्यभिचारि-संयोगात् रसनिष्पत्तिः" विद्या-सूत्र के उदाहरणस्वरूप रखा जा सकता है । इसी प्रकार 'योगाद्रूढिर्बलीयसी' जैसे शास्त्रीय न्याय भी, जिनका व्याकरण से सम्बन्ध है, विद्या सूत्र के अन्तर्गत हैं ।

२. **प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र**—बहुत से लोग ऐसे हैं जो प्रज्ञा-सूत्रों और व्यवहार-सूत्रों को एक ही समझते हैं किन्तु वास्तव में इन दोनों शब्दों में बड़ा अन्तर है । Maxim (व्यवहार-सूत्र) लेटिन शब्द Maxima से निकला है जिसका अर्थ है सबसे बड़ा । अंग्रेजी शब्द-कोष में 'सर्वाधिक गुरुतापूर्ण उक्ति को'[1] Maxim की संज्ञा दी गई है । प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र दोनों ही जीवन की किसी सचाई को प्रकट करते हैं किन्तु दोनों की पद्धति भिन्न-भिन्न है । प्रज्ञा-सूत्र विचार को लेकर प्रवृत्त होता है तथा व्यवहार-सूत्र का सम्बन्ध आचार-व्यवहार से है ।[2] प्रज्ञा-सूत्र तथा व्यवहार-सूत्र दोनों का एक-एक उदाहरण लीजिये—

"Eminent posts make great men greater and little men less" एक प्रज्ञा-सूत्र है, जबकि "When in doubt, keep silent." यह व्यावहारिक दृष्टि से शिक्षाप्रद होने के कारण एक व्यवहार-सूत्र है । किन्तु मॉर्ले ने प्रज्ञा-सूत्र और व्यवहार-सूत्र के अन्तर को कोई विशेष महत्त्व नहीं दिया है ।

३. **मर्मोक्ति और प्रज्ञा-सूत्र**—पाश्चात्य देशों में प्रथम श्रेणी के मर्मोक्तिकार के रूप में ला रॉशफोको (La Rochefoucauld) का नाम अत्यन्त विख्यात है । अपनी मर्मोक्तियों द्वारा इन्होंने फ्रांसीसी साहित्य को बहुत समृद्ध बनाया है । मर्मोक्तियों के अतिरिक्त इन्होंने करीब सात सौ व्यवहार-सूत्रों की भी सृष्टि की है जिनका विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है । ये मर्मोक्तियाँ तथा व्यवहार-सूत्र जितने संक्षिप्त हैं, उतनी ही विशुद्ध और ललित है उनकी अभिव्यक्ति । मानव-स्वभाव की गूढ़ता को प्रदर्शित करने में ये बेजोड़ सिद्ध हुए हैं ।[3]

किसी ऐसी निशानदार उक्ति को जो अपने पीछे एक प्रकार की चटक छोड़ जाय, 'मर्मोक्ति' कहते हैं ।[4] निशान (Point) और चटक (Sting) मर्मोक्ति के ये दो प्राण-बिन्दु हैं । संक्षिप्तता और ललित भाषा यदि मर्मोक्ति का शरीर है तो निशान

1. Maxim is a statement of the greatest weight.

2. "Aphorism only states some broad truth of general bearing, a maxim besides stating the truth, enjoins a rule of conduct as its consequence."

—*Studies in Literature by J. V. Morley; p. 62.*

३. चबराकियानुं तत्त्वदर्शन फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता; पृष्ठ ८३ ।

4. Any saying of a pointed character and a sting in its tail is an epigram.

और चटक, इसका अर्थचातुर्य रूप आत्मा है। किसी ने कहा है कि मधुमक्खी में जो गुण होते हैं, वे ही गुण मर्मोक्ति के लिए अनिवार्य हैं। छोटी-सी मधुर देह और पूँछ में डंक, ये ही मधुमक्खी की विशेषताएँ हैं जो मर्मोक्ति में भी मिलती हैं।[1] मर्मोक्ति में डंक से तात्पर्य उसकी चटक से है।

अंग्रेजी में जिसे Epigram (मर्मोक्ति) कहते हैं, उसका सम्बन्ध विद्या सूत्रों से न होकर प्रज्ञा-सूत्रों से है किन्तु प्रज्ञा-सूत्र और मर्मोक्ति में भी अन्तर है। प्रज्ञा-सूत्र के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह निशानदार अथवा धारदार हो किन्तु मर्मोक्ति के लिए ऐसा होना अनिवार्य है।

विषय के स्पष्टीकरण के हेतु कुछ मर्मोक्तियों के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) कविता जिसके वश में है, वह कवि नहीं है, जो कविता के वश में है, वही कवि है। (कवि नर्मद)

(ख) जहाँ आशा निराशा बन जाती है, वहाँ निराशा ही आशा का रूप धारण कर लेती है। (श्री गोवर्धनराम त्रिपाठी)

(ग) संयम बिना तलवार राक्षस को और तलवार बिना संयम साधु को शोभा देता है। (धूमकेतु)

(घ) यह स्पष्ट है कि कोई उपन्यास इतना बुरा नहीं हो सकता कि वह प्रकाशित करने योग्य न हो। हाँ, यह अवश्य सम्भव है कि कोई उपन्यास इतना अच्छा हो कि वह प्रकाशित करने योग्य न हो। (जार्ज बर्नर्ड शॉ)

(ङ) जो मनुष्य कहता है कि उसने जीवन को समाप्त कर दिया है, उसका तात्पर्य सामान्यतः यह होता है कि जीवन ने ही उसे समाप्त कर दिया है।

(आस्कर वाइल्ड)

संस्कृत-साहित्य में सूत्र, सूक्ति, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, नर्मोक्ति, मर्मोक्ति, छेकोक्ति, मुक्तक तथा सुभाषित आदि अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। किन्तु सुभाषित एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसमें प्रज्ञा-सूत्र, व्यवहार-सूत्र तथा मर्मोक्ति आदि सभी का समावेश किया जा सकता है। संस्कृत के सुभाषितों में से इन तीनों का एक-एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

प्रज्ञा-सूत्र

धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् अर्थात् धर्म का तत्त्व गुफा में छिपा हुआ है।

व्यवहार-सूत्र

"सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्" (भारवि) अर्थात् सहसा

---

1. The qualities rare in a bee that we meet
 In an epigram never should fail;
 The body should always be little and sweet,
 And sting should be left in its tail.
 What is an epigram ? A dwarfish whole,
 Its body brevity, and wit its soul.

—quoted in Stevenson's Book of Proverbs, Maxims and Familiar; Phrases p. 704.

कोई काम नहीं करना चाहिए क्योंकि अविवेक आपत्तियों का परम पद है।

मर्मोक्ति

'भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।
स्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा।'[1]

अर्थात् हमने भोग नहीं भोगे, हम ही भोग लिये गये, हमने तप नहीं तपे, हम ही तप्त हो गये, काल नहीं व्यतीत हुआ, हम ही व्यतीत हो गये, तृष्णा जीर्ण नहीं हुई, हम ही जीर्ण हो गये। उक्त श्लोक की प्रत्येक पंक्ति एक-एक मर्मोक्ति हैं।

(४) **लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति में भेद**—ऊपर की पंक्तियों में प्रज्ञा-सूत्र व्यवहार-सूत्र और मर्मोक्ति, इन तीनों के पारस्परिक अन्तर को सोदाहरण दिखाने का प्रयास किया गया है किन्तु 'बाङ्ला प्रवाद' के विद्वान् सम्पादक श्री सुशीलकुमार दे ने सभी प्रकार की उक्तियों को लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति, इन दो वर्गों में विभक्त कर दोनों के सम्बन्ध में जो अपने विचार प्रकट किये हैं, वे अत्यन्त मननीय हैं। उन्हीं के शब्दों में 'प्राज्ञोक्ति' जिसे लेटिन में (Sententia) कहते हैं, हमेशा लोकोक्ति का रूप धारण नहीं कर लेती। प्राज्ञोक्ति में ज्ञानी के ज्ञान का जो निष्कर्ष हमें मिलता है, वह सुचिंतित होता है और प्रायः उपदेशमूलक नीति-वाक्य के रूप में देखा जाता है किन्तु प्रवाद या लोकोक्ति पाण्डित्य, चिन्तन तथा उपदेशात्मकता को लेकर अग्रसर नहीं होती। लोकोक्ति तो स्वतः प्रसूत होती है और सरस तथा संक्षिप्त रूप में अभिव्यक्त होती है किन्तु प्राज्ञोक्ति ज्ञान और चिन्तन के परिपक्व फल के रूप में देखी जाती है। नीति-शिक्षा, तत्त्व ज्ञान और उच्च आदर्श लोकोक्तियों के प्रेरक हेतु नहीं हैं।[2]

लोकोक्ति और नीति-वाक्य (प्राज्ञोक्ति) में अनेक बार एक बड़ा अन्तर यह देखा जाता है कि प्राज्ञोक्ति 'नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नहीं होती[3] और लोकोक्ति 'व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का सत्य नहीं होती।'[4] विषय के स्पष्टीकरण के लिए निम्नलिखित साखी पर विचार कीजिये—

जो तोको काँटा बुवै, ताहि बोहि तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरशूल ॥'

यह कबीर की एक सूक्ति है जो नैतिक जगत् का सत्य होते हुए भी व्यावहारिक जगत् का तथ्य नहीं है अर्थात् यथार्थ जगत् में इस सूक्ति के अनुसार आचरण बहुत कम देखने में आता है। इसी प्रकार कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

१. वैराग्यशतक भर्तृहरि।
२. 'बाङ्ला प्रवाद'—(श्री सुशीलकुमार दे) द्वितीय संस्करण; पृष्ठ ४.
३. 'नैतिक जगतेर सत्य हइले ओ व्यावहारिक जगतेर तथ्य नय'—वही; पृष्ठ ४।
४. वही; पृष्ठ ४।

(१) 'पराई पीर परदेस बराबर' अर्थात् परदेश के आदमी की यदि कोई चिन्ता करे तो पराये दुःख की करे, दूसरे के कष्टों की सभी उपेक्षा करते हैं।

(२) 'दूसरै की थाली में घी घणो दीखै' अर्थात् दूसरे की थाली में घी अधिक दिखाई पड़ता है।

(३) 'सै आप-आप की रोटि्यां कै नीचै आंच लगावै' अर्थात् सब अपनी-अपनी रोटियों के नीचे आँच लगाते हैं।[1]

उक्त लोकोक्तियों में व्यावहारिक जगत् का तथ्य होते हुए भी नैतिक जगत् का सत्य नहीं मिलता।

ऊपर के तुलनात्मक उदाहरणों से स्पष्ट है कि लोकोक्ति नैतिक ज्ञान नहीं है, वह है सांसारिक ज्ञान, लोकोक्ति परोक्ष-चिन्तन नहीं है, वह है प्रत्यक्ष अनुभूति। लोकोक्ति न तो काव्य है, न तत्त्व-चिन्तन है, न नीति-प्रचार है, यह तो सांसारिक ज्ञान की प्रत्यक्ष अनुभूति की अभिव्यक्ति है।

लोकोक्तियाँ ग्राम्य होती हैं, यह कहना भी ठीक नहीं। शहरों की अपेक्षा ग्रामों में ही लोकोक्तियों का विशेष निर्माण तथा प्रचार देखा जाता है किन्तु इसी कारण लोकोक्तियों को ग्राम्य करार देना उचित नहीं। अवश्य ही लोकोक्तियों की भाषा जोरदार होती है क्योंकि जीवन की घनिष्ठता से उनका सम्बन्ध रहता है, अनेक कहावतों में सत्य को खुल्लमखुल्ला प्रकट कर दिया जाता है। यहाँ इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि लोकोक्तियों की सफलता उनके वर्ण्य-विषय पर उतनी निर्भर नहीं करती, उनकी सफलता निर्भर करती है उनकी अभिव्यक्ति की भंगिमा पर, सहज-बुद्धि के चमत्कार पर तथा संक्षिप्त एवं साभिप्राय प्रयोगों की सार्थकता पर।

किन्तु कभी-कभी प्राज्ञोक्ति और लोकोक्ति में अन्तर मालूम करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। संस्कृत महाकाव्यों में अर्थान्तरन्यास के रूप में प्रयुक्त अनेक प्राज्ञोक्तियाँ उपलब्ध हैं। हो सकता है कि उनमें से कुछ उक्तियाँ प्रचलित जनश्रुतियों के संस्कृत रूपान्तर हों और शेष कवियों द्वारा स्वयं निर्मित हों। जो उक्तियाँ कवियों द्वारा निर्मित हैं, वे लोक की उक्तियाँ नहीं हैं। इसलिए हम उनको लोकोक्तियाँ नहीं कह सकते, उन्हें प्राज्ञोक्तियों के नाम से अभिहित करना ही समीचीन होगा। डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'वस्तुतः कहावत (प्रावर्ब) केवल लोकोक्ति नहीं है, वह कई बार प्राज्ञोक्ति भी है। तुलसीदासजी की अनेक पंक्तियाँ कहावत बन गई हैं। उन्हें लोकोक्तियाँ नहीं कहा जा सकता, वे प्राज्ञोक्तियाँ हैं जो लोक में साहित्य के माध्यम से प्रचलित हुई हैं।' डाक्टर द्विवेदी ने 'कहावत' शब्द में लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति दोनों का अन्तर्भाव कर इस शब्द को और भी व्यापकता प्रदान करदी है।

स्टीवेन्सन ने लोकोक्ति और व्यवहार-सूत्र के अन्तर को स्पष्ट करते हुए बत-

1. मिलाइये—Russian. "The burden is light on the shoulders of another."

French. "One has always enough strength to bear the misfortune of one's friends."

Latin. "Men cut thongs from other men's leather."

Italian. "Every one draws the water to his own mill."

साया है कि व्यवहार-सूत्र किसी सामान्य सत्य अथवा आचार-व्यवहार की अभिव्यक्ति है या मार्विन के शब्दों में यह कहावत तो है किन्तु है झिनगे की अवस्था में। पर उगने पर ही झिनगा उड़ सकता है, इसी प्रकार व्यवहार-सूत्र लोकोक्ति का रूप तभी धारण करता है जब इसको लोक-हृदय ने स्वीकार कर लिया हो और यह सर्वसाधारण में प्रचलित हो गया हो।[1]

व्यवहार सूत्र इकट्ठे किए हुए सिक्के हैं जब कि लोकोक्तियों को प्रचलित सिक्कों के नाम से अभिहित किया जाता है। व्यवहार-सूत्र यदि प्रचलित न हों तो केवल पुस्तकों की शोभा बढ़ाते हैं जब कि लोकोक्तियाँ जनता की जिह्वा पर नृत्य करती रहती हैं।

'कच्छी कहेवतो' के संग्राहक श्री दुलेराय एल० काराणी ने यथार्थ ही कहा है कि 'सुभाषित जहाँ एक दूकान पर चलने वाली हुंडी है, वहाँ कहावत एक ऐसा राजमान्य लोक-सिक्का है जो रास्ते चलते बाजार में बेधड़क चाहे जहाँ चलाया जा सकता है।[2]

ऊपर जो बात व्यवहार-सूत्र और लोकोक्ति के अन्तर के सम्बन्ध में कही गई है, वही लोकोक्ति तथा प्रज्ञा-सूत्र अथवा मर्मोक्ति के अन्तर के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। किसी भी उक्ति को, चाहे वह प्राज्ञोक्ति हो, आचारोक्ति हो अथवा मर्मोक्ति हो, लोकोक्ति की संज्ञा तभी मिल सकेगी जब लोक-मानस उसे स्वीकार करले, अन्यथा नहीं।

1. "Maxim is the sententious expression of some general truth or rule of conduct, that it is a proverb in the caterpillar stage, as Marvin puts it and that it becomes a proverb when it gets its wings by winning popular acceptance, and flutters out into the highways and by-ways of the world."

—*Introductory Note to Stevenson's Book of Proverb, Maxims and familiar phrases.*

२. "सुभाषित एक अमुक दुकान पर थीज बटावी शकाय एवी हुंडी के चेक छे ज्यारे कहेवत रस्ते चालतां बजार मां बेधड़क बटावी शकाय एवुं राज-मान्य चलणी नाणुं छे, लोक-सिक्को छे।"

—'कच्छी कहेवतो'; पृष्ठ ५.

द्वितीय अध्याय

कहावत का उद्भव और विकास

१. कहावत का उद्भव

(क) कहावती शिशु का उद्भव

लोकोक्तियाँ जन-समुद्र के बिखरे हुए रत्न हैं। किसने ये रत्न बिखेरे, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता, किन्तु बहुत सम्भव है कि कहावतों का प्रथम उत्स मनुष्य के मन में तभी उत्सारित हुआ होगा, जब उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति अपने सरस वेग के साथ सहज भाषा में निःसृत हुई होगी। एकान्त में बैठकर कहावतों का निर्माण नहीं किया गया किन्तु जीवन की प्रत्यक्ष वास्तविकताओं ने कहावतों को जन्म दिया है। किताबों की आँखों से देखने वाले निरे बुद्धि-विलासी व्यक्ति कहावतों के निर्माता नहीं थे, कहावतों के रचयिता जीवन के द्रष्टा थे। क्या हुआ, यदि किसी कहावत के निर्माता ने कोई पुस्तक नहीं पढ़ी, जीवन की पुस्तक से उसने जो पाठ पढ़ा था, सूक्ष्म निरीक्षण, सामान्य बुद्धि और प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ज्ञान का जो साक्षात्कार उसने किया था, वही एक मनोरम लोकोक्ति के रूप में प्रकट हो गया। श्री सुशीलकुमार दे के शब्दों में "प्रयत्नपूर्वक कहावतों का प्रचार भी नहीं किया गया, कहावतें अपने आप प्रचलित हो गईं। प्रतिदिन के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर किसी के मुख से जो क्षिप्र सरस वाक्य निकल पड़ा, उसी ने क्रमशः अभ्यस्त वाक्य के रूप में परिणत होकर कहावत का रूप धारण कर लिया। जो पिता की रचना थी, वही काल-क्रम से पुत्र की सम्पत्ति बन गई।"[१] कहावत का जन्मदाता तो विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गया किन्तु उससे उद्भूत वह अमर वाक्य काल-समुद्र की लहरियों पर अमिट होकर तैरता रहा। किन्तु कोई कहावत कब जन्मी और किसने उसको जन्म दिया, इसका कुछ पता नहीं चल सकता क्योंकि कहावत रूपी शिशु का जब जन्म होता है तो किसी को पास नहीं बैठने दिया जाता।"[२]

(ख) उद्भव की प्रक्रिया

कोई कहावत किस प्रकार जन्म लेती होगी, इसके सम्बन्ध में हम कुछ कल्पना अवश्य कर सकते हैं। विषय के स्पष्टीकरण के लिए कुछ उदाहरण लीजिये :

'जो घड़ा पूरा भरा नहीं होता, वह कुछ छलकता है और छलकने से आवाज होती है। इसके विरुद्ध जो घड़ा पूरा भरा होता है, वह न छलकता है और न उसमें से कोई आवाज ही होती है। पानी का घड़ा लेकर आती हुई स्त्रियों के सम्बन्ध में यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है। किन्तु यह तो मात्र नेत्रानुभव है। न जाने

---

१. वाङ्‌ला प्रवाद : श्री सुशीलकुमार दे; पृष्ठ १।

2. 'Rarely indeed is one permitted to sit in at the birth of a proverb or to name its author.'

—*Introductory Note to Stevenson's Book of proverbs. Maxims and familiar phrases.*

कितने लोग इस दृश्य को देखते हैं किन्तु किसी प्रकार की मानसिक प्रतिक्रिया उनमें नहीं होती। किन्तु किसी दिन एक विचारशील व्यक्ति के मन में यह दृश्य उस व्यक्ति का चित्र सामने खड़ा कर देता है जो बोलता बहुत है किन्तु जिसका ज्ञान अधकचरा है, जिसकी विद्या अधूरी है। ऐसी स्थिति में नेत्रानुभव मन के अनुभव के रूप में परिणत हो जाता है और उसके मुख से सहसा निकल पड़ता है 'अधजल गगरी छलकत जाय'। यद्यपि यह वाक्य प्रसंग-विशेष पर एक व्यक्ति के मुख से निकला था तथापि समान प्रसंग आने पर अन्य लोग भी इस वाक्य की आवृत्ति करने लगते हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति की उक्ति लोक की उक्ति बन जाती है, कहावत का रूप धारण कर लेती है।

इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण लीजिये। कल्पना करिये कि किसी शिकारी ने बन्दूक के निशाने से एक पक्षी को मार डाला और उसे हस्तगत कर लिया। यह हस्तगत पक्षी हवा में उड़ते हुए अथवा झाड़ियों में छिपे हुए अनेक पक्षियों की अपेक्षा श्रेष्ठ है किन्तु कभी-कभी शिकारी दूसरे अनेक पक्षियों के लोभ में इस हस्तगत लाभ को छोड़ देते हैं। यह प्राय: सभी शिकारियों का नेत्रानुभव है किन्तु किसी शिकारी के मुख से कभी पहले-पहल जब यह वाक्य निकल पड़ा होगा 'हस्तगत एक पक्षी झाड़ी में छिपे दो पक्षियों के बराबर है'[1] तब यह समझना चाहिए कि उसके नेत्रानुभव ने मानसिक अनुभव का रूप धारण कर लिया था। नेत्रानुभव और मानसिक अनुभव की इस एकाकारिता में ही कहावत का प्रादुर्भाव होता है। यद्यपि इस कहावत की उद्भावना का श्रेय शिकारी जगत् को दिया जा सकता है किन्तु इसका प्रयोग शिकारियों तक ही सीमित नहीं है। कहावत की एक प्रमुख विशेषता यह है कि यह अभिधेयार्थ को लेकर प्रवृत्त नहीं होती, उसका प्रयोग अन्योक्ति अथवा अन्यापदेश के रूप में होता है। हम भी अपने जीवन में अनेक बार जब प्रस्तुत अथवा प्रकृत लाभ को छोड़कर अनिश्चित अप्रस्तुत लाभ की ओर उन्मुख होते हैं तो चेतावनी के रूप में उक्त कहावत का प्रयोग किया जा सकता है।[2]

(ग) उद्भव के प्रमुख आधार

कहावतों की उत्पत्ति के तीन प्रमुख आधार हैं—(क) लोक-कथाएँ, (ख) ऐतिहासिक घटनाएँ और (ग) प्राज्ञ-वचन।

(क) लोक-कथाएँ—लोकानुभव प्राय: घटनामूलक होता है। कोई घटना घटित होती है और हमारे जीवन-सम्बन्धी अनुभव में वृद्धि कर जाती है। हम देख पायें चाहे न देख पायें, मानव-जाति के प्रत्येक अनुभव के पीछे एक छोटी-मोटी कहानी छिपी रहती है जिसका वह संकेत देती है। यही कारण है कि कहावत को गढ़वाली भाषा में 'अखाणो' या 'पखाणो' कहते हैं। 'अखाणो' आख्यान से बना है और 'पखाणो' उपाख्यान से। राजस्थानी भाषा में भी कहावतों के लिए 'ओखाणा' शब्द प्रचलित है।

परन्तु घटनामूलक होने पर भी कहावत 'कहावत' है। हर घड़ी की बातचीत

---

1. A bird in hand is worth two in the bush.

२. चबराकियानुं तत्त्वदर्शन : जमशेदजी मेहता; पृष्ठ १८६-८७-८८।

में अथवा साहित्यिक रचनाओं में पद-पद पर सारी कहानी बार-बार नहीं दुहराई जा सकती। हाँ, कहावत के द्वारा उसका संकेत दे दिया जा सकता है। इसी से गढ़वाली भाषा में 'कहावत' को 'आणो' तथा संस्कृत में आभाणक कहते हैं। 'आणो' और 'आभाणक' एक ही है। 'आभाणक' ही 'आणो' हो गया है आभाणक आहाणग्र आआणग्र आणा+ओ, आणो। इसमें मूल धातु 'भण' है जिसका अर्थ है कहना।'[1] ऊपर की पंक्तियों में डाक्टर बड़थ्वाल ने यथार्थ ही कहा है कि कहावत के द्वारा कहानी का संकेत दे दिया जाता है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस प्रकार का संकेत अनेक बार कहानी के चरम वाक्य द्वारा दिया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ ऐसी कहावतें लीजिये जिनका अवसान चरम वाक्य में होता है।

(अ) **चरम वाक्य**—(१) 'तन्नै कैगो सो मन्नै भी कैगो' अर्थात् जो तुम्हें कह गया, वह मुझे भी कह गया। यह राजस्थानी भाषा की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसके पीछे निम्नलिखित कथा कही जाती है :

"एक बुढ़िया ने किसी घुड़सवार से अपनी पोटली ले चलने के लिए कहा। घुड़सवार ने यह कहकर इनकार कर दिया कि घोड़े के सवार और बुढ़िया माई का क्या साथ ? सवार ने कुछ आगे चलकर सोचा कि अच्छा होता, यदि बुढ़िया की पोटली मैं ले लेता, उसमें जो कुछ है उसे तो स्वायत्त कर लेता। वह लौट पड़ा और बुढ़िया के पास पहुँचकर कहने लगा—'ला पोटली, तुझे कष्ट होगा, मैं घोड़े की पीठ पर लेता चलूँगा।' बुढ़िया के दिल में भी यह सद्बुद्धि जागृत हो गई थी कि चलो, अच्छा हुआ जो मैंने अपनी पोटली घुड़सवार को न दी, कहीं वह लेकर चम्पत हो जाता तो फिर क्या था ! किसी अनजान का विश्वास ही क्या ? बुढ़िया ने उत्तर दिया 'जो तुम्हें कह गया, वह मुझे भी कह गया'।"

राजस्थान में यह कहावत 'घोड़ै कै सवार को अर बूडली माई को साथ' इस रूप में भी प्रसिद्ध है।

(२) 'बा चिड़कली और देख जो भरड़ दे उड़ ज्याय' अर्थात् वह चिड़िया और देखो जो भरड़ शब्द करती हुई उड़ जायगी। इस राजस्थानी कहावत के सम्बन्ध में निम्नलिखित लोक-कथा प्रसिद्ध है :

"कहा जाता है कि साँपों को नष्ट करने के लिए एक बार राजा जनमेजय ने यज्ञ किया। वासुकि सर्प अपनी रक्षा के लिए किसी शहर में चला गया और ब्राह्मण का रूप धारण करके रहने लगा। एक ब्राह्मणी से उसने विवाह भी कर लिया। ब्राह्मणी एक दिन पानी भर कर ला रही थी। जब वह अपने घर में प्रविष्ट हुई तो गरुड़ एक चिड़िया का रूप धारण करके उसके घड़े पर जा बैठा। घड़े पर बोझ पड़ने से ब्राह्मणी ने अपने पति को पुकारा और बोली—एक चिड़िया घड़े पर बैठी है जिसके भार से मैं दबी जा रही हूँ। इसको किसी तरह उड़ाइये न। इस पर गरुड़ ने उत्तर दिया—वह चिड़िया और देखो जो इस प्रकार 'भरड़' शब्द करती हुई

१. गढ़वाली भाषा के पखाणा (कहावतें) : प्रस्तावना—डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल। नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग १८, अंक १, पृष्ठ १०३-१०४।

उड़ जायगी।"

(३) एक अंग्रेजी कहावत है 'प्लाउडन साहब कहते हैं, तब तो मामला ही बदल गया।'[1] इस कहावत के पीछे निम्नलिखित लघु-कथा प्रसिद्ध है :

"प्लाउडन नामक एक न्यायाधीश थे जिनको खबर मिली कि उनके किसी ग्रासामी के पशु ने प्लाउडन साहब के पशु को चोट पहुँचाई है। न्यायाधीश ने निर्णय दिया कि ग्रासामी को हर्जाना देना होगा किन्तु थोडी देर बाद पता चला कि न्यायाधीश के पशु ने ही ग्रासामी के पशु को चोट पहुँचाई थी। प्लाउडन साहब को जब सच्ची बात का पता चला तो लगे कहने 'तब तो मामला ही बदल गया'।"

ऊपर तीन कहावती-कथाग्रों के उदाहरण दिये गये हैं। प्रत्येक कथा के ग्रन्त में जो वाक्य है, वह चरम वाक्य है। ग्राधुनिक ग्राख्यायिकाग्रों में जो स्थान चरम सीमा का है, वही इन कहावती कथाग्रों में चरम वाक्य का है। जहाँ चरम वाक्य का प्रयोग होता है, वहाँ कहानी ग्रपनी तीव्रतम स्थिति को पहुँच जाती है। उसके ठीक बाद कथा समाप्त हो जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि चरम सीमा पर पहुँचकर भी यदि कहानी चलती रहे तो उसमें नीरसता ग्रा जाती है।

कथाग्रों का यह चरम वाक्य बड़ा जोरदार होता है। इसके कारण कहानी का ग्राकर्षण सौ गुना बढ़ जाता है। इसमें मर्म को स्पर्श करने की बड़ी शक्ति पाई जाती है। कुछ वाक्यों में ऐसा तीखा व्यंग्य मिलता है जो देखते ही बनता है। ऐसे वाक्य लोगों में कहावतों की भाँति प्रचलित हो जाते हैं। इस प्रकार की कहावतें प्रायः विश्व की सभी भाषाग्रों में पाई जाती हैं।

(ग्रा) कथा से शिक्षा—प्रचलित लोक-कथाग्रों से जो शिक्षा मिलती है, उसे भी बहुत से लोगों ने सूक्ति ग्रथवा लोकोक्ति के रूप में रखने का प्रयत्न किया है[2] था द्विवेद ने, इसी प्रकार का प्रयत्न किया था। वैदिक कथाग्रों से जो शिक्षा मिलती है उसे ही लेखक ने 'नीतिमंजरी' में सूक्तियों ग्रथवा लोकोक्तियों के रूप में जड़ दिया था। होमर की ग्रनेक कथात्मक कविताग्रों के सम्बन्ध में भी यही किया गया था।[3] इस प्रकार की शिक्षा के लिए हमेशा नई सूक्ति ग्रथवा कहावत बनाने की ग्रावश्यकता नहीं जान पड़ती। ग्रनेक बार लेखक प्रचलित सूक्ति ग्रथवा लोकोक्ति का प्रयोग करता है तो ग्रनेक बार वह कोई नई सूक्ति गढ़ लेता है जो लोकोक्ति बन भी जाय ग्रौर न भी बने। पंचतन्त्र, हितोपदेश तथा जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म-सम्बन्धी गाथाग्रों से इस तरह के उदाहरण ग्रासानी से संकलित किये जा सकते हैं। पंचतन्त्र तथा जातकों से

1. The case is altered, quoth Plowden.

2. A proverb may be the condensation of a fable or parable into a single phrase. A popular maxim even in modern times 'Every cock on his own dunglill' can be traced back to Seneca who thus summed up one of Aesop's fables.

—*Article on 'proverb' in Encyclopaedia of Religion and Ethices edited by James Hastings.*

3. The moral of many of the stories of the Homeric poems was summed up in a single line which gained currency as a proverb.

कतिपय उदाहरण लीजिये—

"बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम् ।
पश्य सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः ।।" पंचतन्त्र ।

सिंह और शशक की कहानी अत्यन्त लोक-प्रचलित है । शशक ने अपने बुद्धि-बल से सिंह को कुएँ में गिरा दिया । इससे प्रतीत होता है 'बुद्धि ही बल है' । यहाँ 'बुद्धि ही बल है' यह सूक्ति इस कहानी से मिलने वाली शिक्षा के रूप में प्रयुक्त है ।

इसी प्रकार 'बक-जातक' की निम्नलिखित गाथा को लीजिये—

"नाच्चन्त निकतिप्पञ्ञो निकत्या सुखमेधति ।
आराधे निकतिप्पञ्ञो वको कक्कटकामिवा ति ।।"

अर्थात् अपने से अधिक धोखेबाज के साथ जो धोखेबाजी करता है, वह दुःख उठाता है । यह एक सूक्ति है जो इस गाथा के पूर्वार्द्ध में प्रयुक्त हुई है, उत्तरार्द्ध में बक और कर्कटक की कहानी की ओर संकेत है ।

'मिलहि न जगत सहोदर भ्राता' रामचरितमानस की एक सूक्ति है जो लोकोक्ति की भाँति व्यवहृत होती है । इसी से मिलती-जुलती उक्ति 'उच्छंग जातक' की निम्नलिखित गाथा में मिलती है ।

"उच्छंगे देव मे पुत्तो, पथे धावन्तिया पति ।
तञ्ञु देसं न पस्सामि यतो सोदरियमानये ।।"

अर्थात् हे देव ! पुत्र तो मेरी गोद में है, रास्ते चलती को पति भी मिल सकता है किन्तु वह देश मुझे दिखाई नहीं पड़ता जहाँ से सहोदर भाई मिल सके ।

(इ) **असम्भव अभिप्राय** (Motif)—राजस्थानी लोकोक्तियों में कुछ ऐसे कहावती वाक्य भी हैं जो असम्भव अर्थ को प्रकट करते हैं । एक ऐसा ही कहावती वाक्य लीजिये—

'आगाई गिया जाणे ऊँट का माथा सूं सींगड़ा गिया' अर्थात् इस प्रकार चले गये जैसे ऊँट के माथे से सींग चले गये ।

इस प्रकार के कहावती वाक्यों का आखिर अभिप्राय क्या है ? लोक-कथाओं के आधारभूत अभिप्रायों का वैज्ञानिक अध्ययन करने वाले विद्वानों ने अन्य अभिप्रायों के साथ-साथ एक असम्भव अभिप्राय को भी स्वीकार किया है जिसके स्पष्टीकरण के लिए बिहार प्रदेश की एक निम्नलिखित लोक-कथा का उल्लेख करना यहाँ असंगत न होगा—

"एक बार एक घोड़े के सम्बन्ध में झगड़ा उठ खड़ा हुआ जो प्रचलित जनश्रुति के अनुसार घाणी से पैदा हुआ था । एक शृगाल न्याय करने के लिए चुना गया । शृगाल का निर्णय सुनने के लिए बहुत से लोग एक निश्चित स्थान पर एकत्र हो गये किन्तु गीदड़ जरा देर से पहुँचा और कहने लगा—रास्ते में मैंने एक बड़ा तालाब देखा जिसमें बहुत सी मछलियाँ थीं । मैंने इस उद्देश्य से तालाब में आग लगादी कि मछलियाँ भून ली जायँ । फिर जब मछलियाँ तैयार हो गईं तो मैं उन्हें खाने के लिये ठहर गया और इस प्रकार यहाँ पहुँचने में मुझे विलम्ब हो गया । लोगों ने कहा कि पानी में आग का लगना और इस प्रकार मछलियों का भूना जाना कैसे सम्भव हो सकता है ?

शृगाल ने उत्तर दिया कि यह उसी तरह सम्भव है जिस प्रकार घाणी से घोड़े की उत्पत्ति सम्भव है।"

इसी प्रकार ऊँट के माथे पर जब सींग होते ही नहीं, तब सींगों का चला जाना कैसे सम्भव है ? मैं समझता हूँ कि असम्भव अभिप्राय को द्योतित करने वाले इस प्रकार के कहावती वाक्यों के पीछे भी ऊपर उद्धृत बिहारी लोक-कथा की भाँति ही कहानियाँ प्रचलित रही होंगी।

इससे जान पड़ता है कि कथाओं ने कहावतों के उद्भव में महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

(ई) कहावतों से कथाओं की उद्भावना—ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं वे ऐसी कहावतों के हैं जिनका प्रादुर्भाव लोककथाओं से हुआ है किन्तु कुछ कहावतें ऐसी भी होती हैं जिनसे लोक-कथाओं का प्रादुर्भाव हो जाया करता है। विषय के स्पष्टीकरण के लिए दो दृष्टान्त लीजिये—

'जहाँ ६६, वहाँ पूरे सौ' यह एक लोक-कथा है और कहावत भी है। ऐसा जान पड़ता है कि शुरू-शुरू में तो यह कहावत लोगों के सामान्य अनुभव में से ही उद्भूत हुई होगी। लेन-देन में हम कहा करते हैं 'मुझे तो पूरे सौ चाहिएँ, ६६ नहीं।' किन्तु आगे चलकर इसी कहावत के आधार पर किसी लोक-कथाकार ने निम्नलिखित कथा गढ़ ली होगी—

'एक डाकू था जो झाड़ी में छिपकर लूट-मार किया करता था। एक-एक करके उसने ६६ व्यक्तियों को अपनी तलवार के द्वारा मौत के घाट उतार दिया था किन्तु जब वह १००वीं बार हत्या करने लगा तो एक ब्राह्मण ने समझा-बुझाकर उसे सन्मार्ग पर लगा दिया। तब से वह एक नदी के किनारे भगवद्भक्ति में अपना समय व्यतीत करने लग गया। नदी की ओर जाने वाले मार्ग पर जकात लेने की सरकारी चौकी थी। वहाँ एक दिन एक बनजारा सांयकाल के समय अपने बैलों को पानी पिलाने के लिए आया। चार दिन तक रास्ते चलते बैलों को पानी की एक भी बूँद पीने को न मिली थी, इसलिए बनजारे के बहुत से बैल मर गये थे। बाकी बचे बैलों को बनजारा जितनी जल्दी हो सके, नदी तक पहुँचा देना चाहता था। जकात के अफसर ने बिना जकात का हिसाब साफ़ किये बैलों को आगे बढ़ा ले जाने की इजाज़त नहीं दी और परिणामस्वरूप बचे हुए बैल भी एक एक करके मरने लगे। उस भक्त से जो पहले डाकू था, यह दृश्य न देखा गया। उसने अफसर को बहुतेरा समझाया किन्तु वह टस से मस न हुआ। इस क्रूर दृश्य को देखकर भक्त ने सोचा कि अब तक मैंने ६६ निर्दोष व्यक्तियों की हत्या की है, अब इस अफसर का खून कर दूँ तो सैकड़ों प्राणियों की रक्षा हो जायगी। यह सोचकर उसने अपनी तलवार हाथ में ली और 'जहाँ ६६, वहाँ पूरे सौ' यह कहते हुए चौकीदार का सिर धड़ से अलग कर दिया। बैलों ने नदी-किनारे जाकर अपनी प्यास बुझाई।"

इसी प्रकार एक कहावत है 'रुपये के पास रुपया आता है'। यह भी एक सामान्य दैनिक अनुभव की बात है, सभी जानते हैं कि थोड़ी पूँजी हो तो व्यापार फलता-फूलता नहीं, रुपया खूब हो तो व्यापार में सफलता मिलती है। स्पष्ट है कि

नीचे की लोक-कथा उक्त कहावत के आधार पर कल्पित कर ली गई है—

"किसी मूर्ख ने उक्त कहावत सुनी और एक खजाने की खिड़की पर जाकर खड़ा हो गया। वह अपनी जेब से रुपया निकालकर उछाल-उछाल कर बजाने लगा और मन में सोचने लगा कि खजाने में से दूसरा रुपया उड़कर अभी मेरे पास आता है। संयोगवश वह रुपया उसके हाथ में से गिरकर खिड़की के रास्ते खजाने के रुपयों में जा मिला। अब वह चिल्ला-चिल्ला कर कहने लगा कि लोग झूठ ही कहते हैं कि रुपये के पास रुपया आता है। खजाने के सिपाही ने कहा 'मेरी समझ में तो बात बिल्कुल ठीक है, तुम्हारा रुपया रुपयों के पास चलकर आ गया न। तुम्हारा सिर्फ एक रुपया था, वह बहुत रुपयों में आ मिला। बहुतों ने एक को खींच लिया।"

(ख) ऐतिहासिक घटनाएँ

ऐतिहासिक घटनाएँ किस प्रकार कहावतों को जन्म देती हैं, इसका विवेचन राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतों के प्रकरण में विस्तार के साथ किया गया है। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि कभी-कभी किसी ऐतिहासिक व्यक्ति के मुख से जब कोई महत्त्वपूर्ण वाक्य निकल जाता है तो वह भी कहावती ख्याति प्राप्त कर लेता है। मारवाड़ विजय पर शेरशाह ने कहा था, 'एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैंने दिल्ली का राज्य खो दिया होता।'[1] तानाजी की मृत्यु पर शिवाजी के मुख से सिंहगढ़-सम्बन्धी उद्‌गार निकल पड़ा था, 'गढ़ आला पण सिंह गेला' अर्थात् गढ़ तो आ गया किन्तु सिंह चला गया! सीजर की प्रसिद्ध उक्ति 'The die is cast.' की तरह शिवाजी का यह वाक्य भी कहावत की तरह ही महाराष्ट्र में प्रचलित हो गया। लोकमान्य तिलक ने कहा था, 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर रहूँगा।' इसी प्रकार सन् १९४२ की भारतीय क्रान्ति के अवसर पर 'करो या मरो' ने कहावती लोकप्रियता प्राप्त करली थी।

(ग) प्राज्ञ-वचन

विद्वानों ने कहावतों के दो भेद किये हैं—(१) साहित्यिक कहावत (Gnome) और (२) लौकिक कहावत अथवा लोकोक्ति। साहित्यिक कहावत का रूप जितना परिष्कृत होता है, उतना लौकिक कहावत का नहीं। दूसरी बात यह है कि साहित्यिक कहावत के निर्माता का हमें पता रहता है, लौकिक कहावत का निर्माता अज्ञात रहता है।

साहित्यिक कहावतें कवियों की उक्तियाँ हुआ करती हैं। जहाँ अनेक कवियों की रचनाओं में लोक-प्रचलित उक्तियों का प्रयोग देखने में आता है, वहाँ बहुत से कवियों की पंक्तियाँ भी कहावतों का रूप धारण कर लेती हैं। कालिदास, तुलसी-

---

१. जोधपुर के राजा मालदेव का इतना प्रताप बढ़ा कि वे पश्चिम के बादशाह कहलाने लगे। अस्सी हजार सवार उनकी सेना में थे। दिल्ली के बादशाह हुमायूँ को भी एक बार उन्होंने शरण दी थी। जब शेरशाह सूर ने इन पर चढ़ाई की तो राव मालदेव के राठोड़ी योद्धाओं ने तलवार से तलवार बजा दी और वे इतनी वीरता से लड़े कि शेरशाह के छक्के छूट गये। इस युद्ध में यद्यपि विजय तो शेरशाह की ही हुई तथापि वह हारते-हारते बचा। इसीलिए युद्ध के अन्त में उसके मुख से उक्त वाक्य निकल पड़ा था। मारवाड़ की पैदा ही क्या है? मुट्ठी भर बाजरा। उसके लिए जान को जोखिम में डालना कौनसी बुद्धिमानी का काम था? स्वल्प-से लाभ के लिए अत्यधिक हानि की ओर उन्मुख होने वाले शेरशाह ने अपनी विचार-मूढ़ता को स्वयं स्वीकार किया था।

दास, शेक्सपियर तथा पोप आदि कवियों की अनेक पंक्तियाँ कहावतों के उदाहरण-स्वरूप रखी जा सकती हैं। अनेक बार इस तथ्य का पता लगाना मुश्किल हो जाता है कि कवि द्वारा प्रयुक्त होने पर किसी कहावत ने काव्यात्मक रूप धारण कर लिया है अथवा कोई काव्यमयी उक्ति ही कहावत बन गई है।[1] लोकोक्ति और प्राज्ञोक्ति के सम्बन्ध में पहले जरा विस्तार से विचार किया जा चुका है। इसलिए यहाँ पिष्ट-पेषण के भय से मैं केवल इस बात पर बल देना चाहूँगा कि अन्य आधारों के साथ-साथ प्राज्ञोक्तियां भी कहावतों के उद्भव का एक महत्त्वपूर्ण आधार उपस्थित करती हैं।

(घ) उद्भव की प्राचीनता

कहावतों का उद्भव कैसे हुआ, इसके साथ-साथ इस प्रश्न पर भी विचार करना आवश्यक है कि कहावतों का उद्भव कौनसे युग में हुआ ? कोई समय ऐसा था जब सभ्यता और संस्कृति की दृष्टि से आदिम मानव बहुत ही नीचे स्तर पर रहा होगा। उस समय न पुस्तकें थीं, न प्रेस थे, न कोई लिपि ही थी, न कोई साक्षर व्यक्ति ही था। उस प्राचीन काल में जीवन के उपयोगी संकेतों के लिए कहावतों पर ही लोग आश्रित रहे होंगे, क्योंकि ज्ञान-विज्ञान पुस्तकों में कहीं संचित न था। जब किसी व्यक्ति के मुख से कोई कहावत निकलती तो तत्कालीन जन-समुदाय उस कहावत के प्रति संशयालु नहीं था, बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ वह उसे स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाता था। और सच तो यह है कि संशयालुता की अवस्था भी तब उत्पन्न होती है, जब ज्ञान का कुछ विकसित रूप दिखाई पड़ने लगता है।

उस प्राचीन काल में ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें न थीं, किन्तु कहावतों में स्वास्थ्य-विज्ञान के निर्देश मिल जाते थे। उस समय अर्थशास्त्र के सिद्धान्तों की कोई शास्त्रीय व्याख्या उपलब्ध न थी, किन्तु आर्थिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले व्यावहारिक संकेत कहावतों के रूप में अवश्य सुलभ थे। दर्शनशास्त्र और धर्म-ग्रन्थ उस समय न थे, किन्तु कहावतों के रूप में जो लोक-विश्वास प्रचलित हुए होंगे, वे ही उनके लिए दर्शनशास्त्र और धर्म-ग्रन्थों का काम देते होंगे। धर्मशास्त्र और दर्शन-ग्रन्थों के प्रति जिस प्रकार आदर-भावना देखी जाती है, उसी प्रकार कहावतों के प्रति भी सामान्य जनता में बड़ा आदर पाया जाता है। वैसे तो सभी देशों की सामान्य जनता कहावतों के प्रति श्रद्धालु देखी जाती है, किन्तु पौरस्त्य देशों की जनता में यह श्रद्धालुता विशेष रूप से देखने को मिलती है।

भाषा की उत्पत्ति की भाँति ही कहावत की उत्पत्ति भी अत्यन्त प्राचीन है।

1. Proverbs and other common sayings are often caught up by the composer of a poem and woven into his verses while on the other hand, a well-turned poetical expression sometimes gives it a permanent Currency, as is the case with so many of the lines of Pope. Whether the proverb has been made poetical by its setting, or the poetical expression has become proverbial by constant quotation, it may be sometimes difficult to determine.

—*Proverbs and Common Sayings from the Chinese by Arthur H. Smith shanghai, 1902.*

किसी भी भूभाग में जब कोई जन-समूह कुछ दिन के लिए स्थायी रूप से निवास करने लगता है तो उस भूभाग के उपयुक्त व्यवहारोपयोगी भाषा में थोड़ी-बहुत स्थिरता आती है और उस भाषा में साहित्य की सृष्टि होने लगती है। प्राथमिक अवस्था में तो यह साहित्य श्रुति-परम्परा द्वारा प्रचलित होता है क्योंकि सभ्यता के विकास में लेखन-कला बाद में आती है, पहले नहीं। यही कारण है कि प्राथमिक वाङ्मय अलिखित रूप में मौखिक परम्परा द्वारा समाज के एक दल से दूसरे दल में अथवा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लोगों में प्रसार ग्रहण करता हैं। इस प्राथमिक अवस्था में ही इस प्रकार के वाङ्मय के दो विभाग हो जाते है। एक भाग है गद्य वाङ्मय जिसका प्रारम्भिक रूप बड़ा अस्थिर होता है जिससे उसकी शब्द-योजना तथा उसका क्रम स्मृति में स्थायित्व नहीं प्राप्त कर पाता। आज भाषा के रूप में इतनी स्थिरता आ जाने तथा उसके व्याकरण के नियमों द्वारा बद्ध होने पर भी गद्य के अनेक वाक्यों का ज्यों का त्यों याद रखना बड़ा कठिन व्यापार है किन्तु पद्य के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्ध में सम्भवतः दो मत न होंगे कि गद्य की अपेक्षा पद्य ही अपेक्षाकृत सुविधा से स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेता है। यही कारण है कि किसी भी समाज में गद्य-साहित्य की अपेक्षा पद्य-साहित्य पहले तैयार होता है। ऋग्वेद के रूप में सबसे प्राचीन जो लिखित साहित्य आज उपलब्ध है, वह पद्य-साहित्य ही है।

इस प्रकार के प्राथमिक वाङ्मय में कहीं तो ईश्वरीय शक्ति के उत्कर्ष का चित्रण होता है, कहीं प्रकृति के चमत्कारों का वर्णन होता है अथवा कहीं सामान्य व्यवहारोपयोगी नीतिपरक तथ्यों का उल्लेख होता है। प्रारम्भ में यह स्फुट पद्यों के रूप में होता है और किसी विशेष प्रसंग का वर्णन इसमें होने पर यह आख्यान का रूप धारण कर लेता है।

इस प्रकार के पद्यों में कुछ पद्य ऐसे होते हैं जो विशेष मर्मस्पर्शी होते हैं, श्रोताओं पर जो अपनी विशेष छाप छोड़ जाते हैं। यह स्वाभाविक है कि सामाजिक गोष्ठियों में प्रसंग आने पर इस प्रकार के पद्यों का विशेष प्रयोग हो जिसके परिणाम-स्वरूप कोई पद्य अथवा कोई पद्य-खंड रूढ़ हो जाय, सारा समाज उसको अपनाले और वह लोकोक्ति के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन हो जाय।

इस प्रकार जो लोकोक्तियाँ प्रचलित होती हैं, उनमें बहुत सी तो ऐसी होती हैं जो हमें मौखिक परम्परा द्वारा प्राप्त होती हैं, बहुत सी ऐसी हैं जो प्रसिद्ध लेखकों की कृतियों में से हमें मिल जाती हैं। भारतवर्ष में इस बीसवीं शताब्दी में भी आज ऐसी लोकोक्तियाँ मिल जाती हैं जो वैदिक काल से लेकर अब तक हमारे इस देश में प्रचलित रही हैं। इसी प्रकार पाश्चात्य राष्ट्रों की भाषाओं में भी वर्तमान काल में प्रचलित अनेक कहावतें ऐसी हैं जो युग-युगान्तर से चली आ रही हैं। जो कहावत हमें आधुनिक-सी मालूम पड़ती है, उसी के मूल रूप की यदि शोध की जाय तो कोई आश्चर्य नहीं, वह सैंकड़ों वर्ष पुरानी निकल आये। हर एक कहावत अपनी कथा कहती है किन्तु उसकी कथा को सुनने-समझने वाले लोग कम ही होते हैं। किसी कहावत के मूल का पता लगाना वस्तुतः एक बहुत ही दुःसाध्य कार्य है।

राजस्थानी भाषा की एक कहावत है 'गोदी का नै गेर कर पेट का की आस

करै' अर्थात् गोद के बच्चे को गिराकर गर्भस्थ शिशु की आशा करती है। इस कहावत में ध्रुव को छोड़कर अध्रुव की ओर दौड़ने वाले व्यक्ति पर व्यंग्य है। बहुत सम्भव यह है कि इस कहावत का मूल कथासरित्सागर की निम्नलिखित कथा है—

"इयं चाकर्ण्य मन्वा स्त्री पुत्रान्तरकांक्षिणी
एकपुत्रां स्त्रियं कांचिदन्यपुत्राभिकांक्षया
पृच्छन्तीमब्रवीत्काचित्पाखण्डा क्षुद्रतापसी
योऽयं पुत्रोऽस्ति ते बालस्तं हत्वा देवताबलिः
क्रियते चेत्ततो न्यस्ते निश्चितं जायते सुतः
एवं तयोक्ता यावत्सा तत्तथा कर्तुमिच्छति
तावद् बुद्ध्वा हितान्या स्त्री वृद्धा तम्मवदद्रह :
हंसि पापे सुत जातमजातं प्राप्तुमिच्छसि
यदि सोऽपि न जातस्ते ततस्त्वं किं करिष्यसि
इत्यवार्यत सा पापादार्यया वृद्धया तया ॥"[1]

एक दिन एक स्त्री जिसके एक ही पुत्र था दूसरे पुत्र की इच्छा से किसी पाखण्डा क्षुद्र तापसी के पास गई। तापसी ने कहा—यह जो तुम्हारा पुत्र है, उसे तू यदि देवता की बलि चढ़ा दे तो निश्चय ही दूसरा पुत्र उत्पन्न होगा। जब वह ऐसा करने को उद्यत हुई तो एक भली वृद्धा स्त्री ने उसे एकान्त में ले जाकर कहा—अरी पापिनी, उत्पन्न हुए पुत्र को तू मार रही है, जो उत्पन्न नहीं हुआ, उसकी इच्छा कर रही है। मान लो, यदि दूसरा पुत्र उत्पन्न न हुआ तो तू क्या करेगी? इस प्रकार वृद्धा ने उसे उस पाप-कर्म के करने से रोक दिया।

यही कथा ४९वां अवदान भी है।

इसी प्रकार एक दूसरी कहावत है 'तिरिया चरित न जाने कोय, खसम मार के सत्ती होय।'

इस कहावत का मूल भी कथासरित्सागर की निम्नलिखित कहानी में मिल जाता है।

"बलवर्मन नामक एक व्यापारी था जिसकी स्त्री का नाम था चन्द्रश्री। चन्द्रश्री ने अपनी खिड़की से शीलहर नामक एक व्यापारी के सुन्दर युवक को देखा। दूती भेजकर उसने युवक को बुलाया। वह प्रतिदिन युवक से एकान्त में मिलने लगी। पति के अतिरिक्त उसके सभी मित्रों और सम्बन्धियों को पता चल गया कि चन्द्रश्री पर-पुरुष में आसक्त है। प्रेमान्ध होने पर बहुत से मनुष्यों को अपनी स्त्रियों के असतीत्व का पता नहीं चल पाता।

"एक दिन बलवर्मन को बड़े जोर का बुखार आया और उसकी हालत बड़ी खराब हो गई। पति की इस हालत में भी पत्नी प्रतिदिन अपने प्रेमी से मिलने जाया करती थी। एक दिन जब वह अपने प्रेमी के यहाँ थी, पति की मृत्यु हो गई। पति की मृत्यु की खबर सुन वह दौड़ी-दौड़ी अपने घर आई और पति की चिता के साथ

१. कथासरित्सागर तरंग ६१; पृष्ठ ३२३; निर्णय सागर प्रेस संस्करण।

ही जल कर सती हो गई।"[1]

राजस्थान की प्रचलित लोक-कथा में स्त्री ने अपने हाथों पति को मार डाला तथा फिर वह उसके साथ सती हो गई।

इसी प्रकार न जाने कितनी कहावतों के मूल हमें अपने प्राचीन साहित्य में मिल जाते हैं।

बहुत से मनुष्य अपने दैनिक वार्तालाप में कहावतों का प्रयोग करते हैं किन्तु उन्हें इस बात का पता नहीं रहता कि जिस लोकोक्ति का प्रयोग वे कर रहे हैं, वह कितनी पुरानी है और न कभी उनका इस ओर ध्यान ही जाता है। अनेक बार तो संस्कृत के पण्डित भी इस प्रकार के प्राचीन कहावती पद्यों का प्रयोग करते देखे गये हैं जिनके निर्माताओं के नाम का उन्हें पता नहीं, और ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि प्राज्ञोक्तियाँ भी जब लोकोक्तियाँ बनने लगती हैं तब व्यक्तिगत निर्माताओं का नाम भुला दिया जाता है, व्यक्ति की उक्ति होते हुए भी जो लोक की उक्ति बन जाती है, उसमें व्यक्ति का नाम प्रायः विगलित हो जाता है।

लोकोक्ति, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पहले बोलचाल की भाषा में बनती है, रूढ़ होती है, फिर वही अनेक बार अपनी लोकप्रियता के कारण साहित्य की भाषा में भी अपना आसन जमा लेती है। किन्तु साहित्य में आते-आते लोकोक्ति को बहुत-सा समय लग जाता है। इसलिए किसी साहित्यिक कृति में लोकोक्ति के प्रयोग को देखकर यह नहीं समझ लेना चाहिए कि जितना प्राचीन वह साहित्य है, उतनी ही प्राचीन वह लोकोक्ति भी है क्योंकि कौन जाने, उस साहित्यिक कृति में प्रवेश पाते-पाते उस लोकोक्ति ने कितने वर्ष लिये होंगे।

कहावत का उद्भव कैसे और कब हुआ, इसका अनुमान ही लगाना पड़ता है, निश्चित रूप से इस सम्बन्ध में कुछ कह सकना कठिन है। लोक-प्रचलित कहावतों के निर्माता कौन थे, इसका पता लगाना एक असम्भव व्यापार है। हाँ, घाघ और भड्डरी जैसे उन कहावतों के कुछ निर्माताओं की बात अलग है जिन्होंने कहावतों के साथ-साथ अपना नाम भी जोड़ दिया है। इसी प्रकार साहित्य में प्रयुक्त उन सूक्तियों के निर्माताओं का भी हमें ज्ञान है जिनकी सूक्तियों ने कालान्तर में लोकोक्तियों का रूप धारण कर लिया।

कहावत के निर्माता का चाहे हम पता न लगा सकें और चाहे अनेक कहावतों के पीछे जो कथाएँ हैं, उनकी भी जानकारी हमें न हो सके किन्तु यह निश्चित है कि लोकोक्ति में घटना की प्रधानता रहती है, यह घटना ही कहावत को जन्म देती है। कहावती जगत् यथार्थ का लोक है, आदर्श का नन्दन-कानन नहीं। जैसा पहले कहा जा चुका है, आँखों से जो देखा, उसी को एक विदग्ध जन ने मन की तूलिका से अंकित कर दिया; लोक के मानसपट पर एक ऐसी रेखा खींच दी जिसे काल का अदम्य प्रवाह भी धो नहीं पाता।

२. कहावत का विकास

मौखिक आदान-प्रदान और श्रुति-परम्परा से कहावतों का सम्बन्ध होने के कारण

---

1. The amazing sati. —*The Ocean of Story Vol. V. No. 79, P. 19.*

उनमें विकास का होना स्वाभाविक है। भाषा के विकास की भाँति कहावतें भी विकसित होती रहती हैं। उनका विकास सामान्यतः निम्नलिखित रूपों में दिखलाई पड़ता है।

(क) मूल भाषा की कहावतें और उनके रूपान्तर।
(ख) कहावतों में अर्थ और नामगत परिवर्तन।
(ग) कहावतों में पाठान्तर।
(घ) कहावतों के रूपों में परिष्कार।
(ङ) कहावतों का लोप और निर्माण।

(क) मूल भाषा की कहावतें और उनके रूपान्तर

मूल भाषा की कहावत के विभिन्न भाषाओं में उसके रूपान्तर किस प्रकार प्रचलित हो जाते हैं, इसे स्पष्ट करने के लिए हम सबसे पहले नामसिद्ध जातक की निम्नलिखित गाथा यहाँ उद्धृत कर रहे हैं—

"जीवकं च मतं दिस्वा, धनपालिं च दुग्गतं।
पन्थकं च वने मूल्हं, पापको पुनरागतो।"

अर्थात् जीवक को मरा देख, धनपाली को दरिद्र देख, पंथक को जंगल में भटकता देख, 'पापक' फिर लौट आया।

कहा जाता है कि एक तरुण का नाम ही था पापक। उसने आचार्य के पास जाकर कहा, आचार्य! मेरा नाम अमांगलिक है, मुझे दूसरा नाम दें। आचार्य ने कहा—तात! जा, देश में घूमकर जो तुझे अच्छा लगे, ऐसा एक मांगलिक नाम ढूँढ़ कर ला। आने पर तेरा नाम बदल दूँगा। वह चलते-चलते एक नगर में पहुँचा जहाँ जीवक नाम का एक आदमी मर गया था। आगे चलने पर उसने देखा कि एक दासी को उसके मालिक काम करके मजदूरी न ला देने के कारण दरवाज़े पर बिठाकर रस्सी से पीट रहे थे। उस दासी का नाम था 'धनपाली'। और आगे बढ़ने पर उसने देखा कि एक आदमी रास्ता भटक गया है। पूछने पर पता चला कि उसका नाम है 'पन्थक'। अब उसे समझ आई कि जब जीवक भी मरते हैं, धनपाली भी दरिद्र होती है और पन्थक भी रास्ता भूलते हैं, तब फिर नाम में क्या रखा है? नाम बुलाने भर को होता है। नाम से नहीं, कर्म से ही सिद्धि होती है। मुझे दूसरे नाम की जरूरत नहीं है। मेरा जो नाम है, वही रहे।[1]

राजस्थानी भाषा में उक्त गाथा के निम्नलिखित रूप सुनाई पड़ते हैं—

अमरो तो मैं मरतो देख्यो, भाजत देख्यो सूरो।
चोदर तो मैं खुसती देखी, लाछ बुहारै कूड़ो।
आगै हूँ पाछो भलो, नाम भलो लंटूरो।।[2]

---

१. जातक (प्रथम खंड)—भदन्त आनन्द कौसल्यायन; पृष्ठ ५२६–२८

२. मिलाइये:

अमरा तो म्हे मरता देख्या, भाजत देख्या सूरा।
गौरां तो गोबर चुगै, खसम भला लहटूरा।।
अमर नाम तो मरता देख्या, भाजत देख्या सूरा।

एक जाट की स्त्री थी जिसके पति का लघुताव्यंजक नाम था लैटूरा। वह भोला-भाला और गरीब था। फटे वस्त्र पहने रहता था। जाटनी को उसकी सहेलियाँ कहा करतीं—दुनिया में आकर तुमने क्या सुख देखा? इस संसार में अमरा (अमरसिंह), सूरा (शूरसिंह) तथा चौधरी और बहुत से लक्ष्मीधारी हैं, उनकी स्त्री बनती तो कितना सुख पाती? एक दिन जाट की स्त्री अपना घर छोड़कर निकल गई। एक गाँव में किसी शव को देखने पर उसे मालूम हुआ कि 'अमरा' मर गया। आगे चली तो एक आदमी दौड़ता हुआ दिखाई पड़ा। उसके पीछे दो लाठीधारी युवक लगे थे। मालूम हुआ कि दौड़ने वाले का नाम 'सूरो' (शूरवीर) है। और आगे चलने पर एक दुखी मनुष्य दिखलाई पड़ा। पता चला कि उसके भाइयों ने उससे 'चौधर' (चौधरी का अधिकार) छीन लिया है। कुछ दूर और आगे बढ़ी तो देखा कि एक षोडशवर्षीया युवती कूड़ा बुहार रही थी जिसका नाम था लाछां (लक्ष्मी)। वह उसी समय घर लौट चली। सहेलियों द्वारा कारण पूछने पर उसने ऊपर के पद्य कहे थे जिनका भावार्थ यह है कि अमरा (अमरसिंह) को तो मैंने मरते देखा, सूरा (शूरसिंह) को भगते देखा, चौधरी के अधिकार को छिनते हुए देखा और लाछां (लक्ष्मी) को कूड़ा बुहारते हुए देखा। नाम में क्या रखा है? 'लैटूरा' नाम ही सबसे अच्छा है।

आर. ए. मैनवारिंग (R. A. Manwaring) ने Marathi Proverbs में इसी प्रसंग का निम्नलिखित रूप उद्धृत किया है—

अमरसिंग तो मर गये, भीक माँगें धनपाल।
लक्ष्मी तो गोंबर्‌या बँधी, भले बिचारे ठणठणपाल॥

कहा जाता है कि किसी मनुष्य ने अपने पुत्र का नाम रखा ठणठणपाल। जब पुत्र बड़ा हुआ तो उसे यह नाम बहुत अखरने लगा। एक दिन जब वह घूमने के लिए बाहर निकला तो पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि अमरसिंह नाम के किसी पुरुष की मृत्यु हो गई है। इसके कुछ समय बाद ही उसके दरवाजे पर एक भिखारी आया। दूसरों के नाम जानने की उसके मन में बड़ी उत्सुकता रहा करती थी। इसलिए उसने भिखारी से उसका नाम पूछा। भिखारी ने अपना नाम बतलाया धनपाल। दूसरे दिन भ्रमणार्थ निकलने पर उसे पता चला कि लक्ष्मी नामक कोई महिला कण्डे एकत्रित कर रही है। उसको अब विश्वास हो गया कि केवल बड़े-बड़े नाम रखने से ही किसी की स्थिति में परिवर्तन नहीं हो सकता। ठणठणपाल नाम ही क्या बुरा है?

उक्त कथा का निम्नलिखित बुंदेलखण्डी रूप भी उपलब्ध है—

'एक जनां लकरियन को बोज लएं जा रओ तो। वा को नाम हतो लाखन। दूसरउ चारो खोद रओ तो। वा को नाम हतो धनधन रा। एक जनो मर गओ तो और वाकी अरथी जाय रइती। वाको नाम हतो अमर। लुगाई नें सब देख सुन कै मन में सोची कै नाम सें कुछ आउत जात नइयां, और जा कई:

कान्ह गुवाल्यो टाट चराबै, लिछमी भारै कूका।
आगै सैं पाछा भला, नाम भला लैटूरा॥

हिन्दी-रूप

चिर अमर हैं मर गये, धनपति मांगे भीख।
दयासिन्धु पशु-वध करें, तुम दुर्मति ही ठीक॥

लकरी बेंचत लाखन देखे, घास खोदत धनधन रा।
अमर हुते ते मरतन देखे, तुमइं भले मेरे ठनठन रा ॥[1]

अन्य प्रदेशों में भी उक्त पालि-गाथा के विभिन्न रूप मिलते हैं। जहाँ भोजपुरी लोक-कथा के नायक का नाम ठट्टपाल है, वहाँ छत्तीसगढ़ी लोक-कथा के नायक का नाम ठुनठुनिया है। गाथाएँ इस प्रकार हैं—

विनिया करत तब मिनिया देख ली, हर जोतत धनपाल।
खटिया बढ़ल हम अम्मर देख ली, सबसे निमन ठट्टपाल ॥ (भोजपुरी)

अम्मर ल मयँ मरत देखें व लछमन जतिल काँवर बोहत देखेंव त ठुनठुनिया उतरगे पार ॥ (छत्तीसगढ़ी)

अर्थात् अमरनाथ को मैंने मरते देखा। धनपति को मैंने अनाज से पयाल उड़ाते देखा और लक्ष्मण यति को मैंने वहंगी ढोते देखा। तब ठुनठुनिया को नाम का रहस्य ज्ञात हो गया।[2]

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि लगभग २५०० वर्षों से उक्त गाथा हमारे देश में प्रचलित रही है। यद्यपि 'धनपाली' को छोड़कर अन्य सभी नाम भुला दिये गये और भिन्न-भिन्न प्रदेशों में अलग-अलग नामों की कल्पना कर ली गई तथापि गाथा की मूल भावना आज भी सुरक्षित है।

इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण लीजिये। 'वाणियै वाली माखी' राजस्थानी भाषा का एक कहावती पदांश है जिसे संस्कृत में प्रचलित लौकिक न्यायों के अनुकरण पर 'वणिक्—मक्षिका' न्याय के नाम से अभिहित किया जा सकता है। राजस्थान में प्रचलित निम्नलिखित कथा द्वारा इसका स्पष्टीकरण हो सकेगा—

बीकानेर में श्री लक्ष्मीनाथ जी के मन्दिर के पास भाण्डासर का जैन-मन्दिर है। मन्दिर बनते समय कारीगरों ने सेठ से कहा कि इसकी नींव में यदि पर्याप्त घी डाला जाय तभी मन्दिर मजबूत बन सकेगा। सेठ ने कहा—जितना घी चाहिए, मँगवालो। सेठ के देखते-देखते घी के कुप्पे आने लगे। कुप्पों में से कुछ को खोलकर सेठ ने घी की परीक्षा करनी चाही। संयोग से घी में एक मक्खी गिर पड़ी जो घी में लिपटकर तुरन्त मर गई। सेठ ने चटपट मक्खी को घी से बाहर निकाला और उससे अपने जूतों को चुपड़ लिया। कारीगरों ने सोचा कि जब सेठ मक्खी के लगा हुआ घी ही नहीं छोड़ता, तब वह नींव में इतना घी क्योंकर डालने लगा? सेठ मजदूरों का भाव ताड़ गया और कहने लगा कि इतना घी पर्याप्त होगा अथवा और मँगवाया जाय? रही मक्खी से जूता चुपड़ने की बात, मैंने सोचा कि जरा-सा भी घी व्यर्थ क्यों जाय? इसलिए उसका उसी समय उपयोग कर लिया गया। वैसे नींव में कितना भी घी लगे, मेरे यहाँ घी की कोई कमी नहीं है। कहते हैं तभी से 'वाणियै वाली माखी' ने एक कहावती पदांश का रूप धारण कर लिया।

इसी से मिलती-जुलती एक कथा 'जीवक चरित' में भी आती है जो यहाँ अविकल उद्धृत की जा रही है:

१. 'लोकवार्त्ता', अप्रेल १९४६, पृष्ठ १४०।
२. छत्तीसगढ़ की लोक-कथा (श्री चन्द्रकुमार अग्रवाल) भूमिका (ख)।

'साकेत में नगरसेठ की भार्या को सात वर्ष से शिर-दर्द था। बहुत से बड़े-बड़े दिगंत-विख्यात वैद्य भी उसको अरोग नहीं कर सके, और बहुत हिरण्य (अशर्फी) सुवर्ण लेकर चले गये। तब जीवक ने साकेत में प्रवेश कर आदमियों से पूछा—

'भणे ! कोई रोगी है, जिसकी मैं चिकित्सा करूँ ?'

'आचार्य ! इस श्रेष्ठि-भार्या को सात वर्ष का शिर दर्द है। आचार्य ! जाओ, श्रेष्ठि-भार्या की चिकित्सा करो।'

तब जीवक ने जहाँ श्रेष्ठि गृहपति का मकान था, वहाँ जाकर दौवारिक को हुक्म दिया :

'भणे ! दौवारिक ! श्रेष्ठि-भार्या को कह—आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।'

'अच्छा आर्य।' कह दौवारिक जाकर श्रेष्ठि-भार्या को बोला :

'आर्ये ! वैद्य आया है, वह तुम्हें देखना चाहता है।'

'भणे दौवारिक ! कैसा वैद्य है ?'

'आर्ये ! तरुण (दहरक) है।'

'बस भणे दौवारिक। तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा ? बहुत से बड़े-बड़े दिगन्त-विख्यात वैद्य······।'

तब वह दौवारिक, जहाँ जीवक कौमार भृत्य था, वहाँ गया। जाकर बोला—

'आचार्य !' श्रेष्ठि-भार्या सेठानी ऐसे कहती है 'बस भणे दौवारिक···।'

'जा भणे दौवारिक ! (सेठानी) को कह—आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है—अय्या ! पहले कुछ मत दो, जब अरोग हो जाना, तो जो चाहना सो देना।'

'अच्छा आचार्य।'

दौवारिक ने श्रेष्ठि-भार्या को कहा, 'आर्ये ! वैद्य ऐसे कहता है···।'

'तो भणे ! दौवारिक ! वैद्य आवे।'

'अच्छा अय्या !' जीवक को कहा, 'आचार्य ! सेठानी तुम्हें बुलाती है।'

जीवक सेठानी के पास जाकर···रोग को पहिचान, सेठानी को बोला :

'अय्ये ! मुझे पसर भर घी चाहिए।'

सेठानी ने जीवक को पसर भर घी दिलवाया। जीवक ने उस पसर भर घी को नाना दवाइयों से पकाकर, सेठानी को चारपाई पर उतान लेटवा कर नथनों में दे दिया। नाक से दिया वह घी मुख से निकल पड़ा। सेठानी ने पीकदान में थूककर, दासी को हुक्म दिया—

'हन्दजे ! इस घी को बर्तन में रख ले।'

तब जीवक कौमार भृत्य को हुआ आश्चर्य ! यह घरनी कितनी कृपण है, जो कि इस फेंकने लायक घी को बर्तन में रखवाती है। मेरे बहुत से महार्घ औषध इसमें पड़े हैं, इसके लिए वह क्या देगी ? तब सेठानी ने जीवक के भाव को ताड़कर जीवक को कहा—

'आचार्य ! तू किस लिए उदास है ?'

'मुझे ऐसा हुआ आश्चर्य···।'

'आचार्य ! हम गृहस्थिनें आगारिका है, इस संयम को जानती हैं। यह घी

दासों, कमकरों के पैर में मलने और दीपक में डालने को अच्छा है। आचार्य! तुम उदास मत होओ। तुम्हें जो देना है, उसमें कमी नहीं होगी।'

तब जीवक ने सेठानी के सात वर्ष के शिर-दर्द को एक ही नास से निकाल दिया। सेठानी ने अरोग कर दिया, सोच जीवक को चार हज़ार दिया। पुत्र ने मेरी माता को नीरोग कर दिया, सोच चार हज़ार दिया। बहू ने मेरी सास को नीरोग कर दिया, सोच चार हज़ार दिया। श्रेष्ठि-गृहपति ने मेरी भार्या को नीरोग कर दिया, सोच चार हज़ार, एक दास, एक दासी और एक घोड़े का रथ दिया।[1]

बुद्धचर्या से उद्धृत उक्त कहानी तथा सेठ कारीगरों की राजस्थानी कथा में अद्भुत साम्य है। घटना की रूपरेखा बदल जाने पर भी दोनों कथाओं की भावना एक ही है, केवल कलेवर भिन्न है, आत्मा दोनों की एक है। बुद्धचर्या की कहानी ने ही परिवर्तित होते-होते सेठ और कारीगरों की कथा का रूप धारण कर लिया है अथवा जैसे इतिहास की पुनरावृत्ति होती है, उसी प्रकार उक्त घटना-सम्बन्धी आवृत्ति राजस्थान में भी हुई है, नहीं कहा जा सकता।

बहुत सम्भव यही है कि हजारों वर्षों से यात्रा करता हुआ 'जीवक चरित' ही 'वाणिये वाली माखी' के रूप में बदल गया है। इस प्रकार का परिवर्तन प्रायः विश्व की सभी भाषाओं में देखा जाता है।

ख. कहावतों में अर्थ और नामगत परिवर्तन

ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें बाह्य रूपरेखा भले ही बदल गई हो किन्तु कहावतों की अन्तर्हित भावना में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है किन्तु जिस प्रकार अर्थ में परिवर्तन हो जाया करता है, उसी प्रकार विकास के क्रम में कहावतों के अर्थ में भी कभी-कभी परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष की अधिकांश भाषाओं में प्रचलित 'कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगा तेली' इस सुप्रसिद्ध लोकोक्ति को लीजिये। यह लोकोक्ति वैषम्यमूलक अर्थ में प्रयुक्त होती है किन्तु काश्मीर में आते-आते इसी कहावत ने 'Yetih Raja Bhoj, tatih Ganga Tili.'[2] अर्थात् 'जहाँ राजा भोज, वहाँ गंगा तेली' का रूप धारण कर लिया। विषमतामूलक अर्थ को छोड़कर उक्त कहावत समता-द्योतक अर्थ में प्रवृत्त होने लगी। काश्मीरी कहावत-संग्रह में बतलाया गया है कि गंगा तेली बड़ा समृद्धिशाली था तथा उसने एक बार भोज के पूर्वज विक्रमादित्य का कुछ उपकार भी किया था।

यह तो कहावत-विषयक अर्थ-परिवर्तन की चर्चा हुई किन्तु कहावत के नामों में भी लोग किस प्रकार यतेच्छ परिवर्तन कर लेते हैं, यह भी इसी कहावत के विविध रूपान्तरों से प्रकट है। उक्त कहावत का गंगा तेली बुन्देलखंड में 'हूँठा तेली' के वेश में विचरण करता दृष्टिगोचर होता है "कहाँ राजा भोज, कहाँ हूँठा तेली" और फिर भोजपुर में जाकर 'भोजवा तेली' का रूप धारण कर लेता है। इसी भोजपुर में यह भोजवा कहीं-कहीं 'लखुवा' भी बन जाता है। परन्तु बाँदा प्रान्त के निवासियों ने

---

१. बुद्धचर्या, श्री राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ २९९-३००।

2. A Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings by the Rev. J. Hinton Knowles, p. 250.

गंगू को 'कनवा' बना डाला है—'कहाँ राजा भोज, कहाँ कनवा तेली।'[1]

किन्तु नाम-परिवर्तन के सम्बन्ध में भी एक बात अवश्य कही जायगी। विभिन्न भाषाओं में गंगू तेली के भले ही अनेक नामान्तर मिलते हों किन्तु भारतीय संस्कृति के अमर प्रतीक भोज सर्वत्र एक रहे हैं।

ग. कहावतों में पाठान्तर

कहावतों के प्रचलन का मुख्य आधार श्रुति-परम्परा है। एक व्यक्ति किसी कहावत को जिस रूप में सुनता है, ठीक उसी रूप में उसे वह हमेशा स्मरण नहीं रहती। इसलिए कहावतों में श्रुत्यन्तरों अथवा पाठान्तरों का हो जाना स्वाभाविक है। राजस्थानी भाषा से कुछ ऐसी कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं जिनके पाठान्तर उपलब्ध हैं—

(१) उल्टी गत गोपाल की, गई सिटल्लू मांय।
काबल में मेवा कर्‌या, टींट बिरज कैं मांय॥

पाठान्तर

कहूँ-कहूँ गोपाल की, गई सिटल्ली चूक।
काबुल में मेवा पके, ब्रज में टेंटी चूक॥

(२) सावरा छाछ न घालती, भर बैसाखाँ दूब।
गरज दिवानी गूजरी, घर में मांदो पूत॥

पाठान्तर

गरज दिवानी गूजरी, नूत जिमावै खीर।
गरज मिटी गुजरी नटी, छाछ नहीं रै बीर॥
आरत मीठी आपकी, घर में मांदो पूत।
सांवरा छाछ न घालती, जेठ में काचो दूब॥
गरज दिवानी गूजरी, अब आई घर कूब।
सावरा छाछ न घालती, भर बैसाखाँ दूब॥

(३) राड़ आछी बाड़ चोखी।

पाठान्तर

राड़ सूँ बाड़ भली।

(४) निकली होठाँ, चढ़ी कोठाँ।

पाठान्तर

निकली होठाँ बंधगी पोटाँ।

(५) रावलं रो तेल पले में ही चोखो।

पाठान्तर

रावलो तेल ने खोला में ई भेल।

घ. कहावतों के रूपों में परिष्कार

बहुत सी कहावतें ऐसी होती हैं जो अपने संतुलित और सुन्दर पद-विन्यास

---

१. लोकवार्त्ता, सितम्बर १९४४ में श्री कृष्णानन्द गुप्त का लेख 'कहावतें—एक तुलनात्मक अध्ययन', पृष्ठ २०२, २०३।

के कारण लोकप्रियता प्राप्त कर लेती हैं। ऐसी कहावतों के पीछे ऐतिहासिक विकास की एक परम्परा पाई जाती है । स्टर्न (Sterne) की एक प्रसिद्ध कहावत है 'God tempers the wind to the shorn lamb.' । स्टर्न को यह उक्ति जार्ज हर्बर्ट (सन् १६४०) के लेखों में निम्नलिखित रूप में प्राप्त हुई थी—

'To a close shorn sheep God gives wind by measure.'

कहते हैं कि हर्बर्ट ने यह उक्ति फ्रेंच भाषा से ली थी और फ्रेंच भाषा ने इसे लेटिन से ग्रहण किया था।[1]

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि अनेक कहावतों के रूपों में परिष्कार होता रहता है। अपने वर्तमान रूप में आते-आते उनको न जाने कितना समय लग जाता है।

कहावतों के विकास के अध्ययनार्थ आक्सफार्ड डिक्शनरी आव् इंगलिश प्रावर्ब्स (Oxford Dictionary of English Proverbs) का बड़ा महत्त्व है। इसमें प्रत्येक अँग्रेजी कहावत का कालक्रमागत इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

ङ कहावतों का लोप और निर्माण—

विशेष परिस्थितियों में जिन कहावतों का प्रादुर्भाव होता है, उन परिस्थितियों के समाप्त होने पर धीरे-धीरे वे कहावतें भी लुप्त होने लगती हैं। 'कमावै धोती हाला, खा ज्याय टोपी हाला' एक राजस्थानी कहावत है जिसका अभिप्राय यह है कि हिन्दुस्तानी कमाते हैं और अंग्रेज खा जाते हैं। इस कहावत का निर्माण और प्रचलन अंग्रेजों के शासन-काल में हुआ था किन्तु अब देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद इस प्रकार की कहावतें धीरे-धीरे लुप्त हो जायँगी अथवा अंग्रेजी शासन-काल के स्मारक के रूप में राजस्थानी कहावतों के संकलनों की शोभा बढ़ाती रहेंगी।

इसी प्रकार जिन कहावतों में राजस्थान के जागीरदारों से त्रस्त प्रजा की मनोवृत्ति का चित्रण हुआ है, वे भी अब काल के प्रवाह में बह जायँगी क्योंकि जब जागीरदारी प्रथा ही समाप्त हो गई है तो ऐसी कहावतों का व्यवहार भी अब नहीं के बराबर रह जायगा। जो सिक्के व्यवहार में नहीं आते, वे अजायबघरों की शोभा बढ़ाया करते हैं।

कुछ अश्लील कहावतें भी होती हैं जो समाज के अशिक्षित-वर्ग में प्रचलित रहती हैं किन्तु किसी प्रदेश में ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार बढ़ता है, उस प्रदेश के निवासियों का जीवन-स्तर भी ऊँचा उठने लगता है जिसके परिणामस्वरूप ऐसी कहावतों को लोग हेय समझने लगते हैं।

बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु विवाह, दहेज आदि से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें भी तभी तक टिक पाती हैं जब कोई समाज रूढ़ियों से ग्रस्त रहता है।

राजस्थान की एक कहावत में कहा गया है कि 'बैन हाँती री धणियाणी है, पांती री कोय नी' किन्तु यदि कभी पिता की सम्पत्ति में भाई के साथ बहिन को भी हिस्सा मिलने लगा तो इस प्रकार की कहावतों का रूप ही बदल जायगा।

इसी प्रकार यदि कृत्रिम वर्षा के प्रयोग कभी सफल हो गये अथवा सिंचाई

१. देखिये—Oxford Dictionary of English Proverbs compiled by W. G. Smith. p. 122.

की नूतन योजनाओं के परिणामस्वरूप देश में जल का अभाव दूर हो गया तो 'खेती बादल में है' जैसी कहावतों का भी इतना महत्त्व नहीं रह जायगा।

जिस प्रकार पुरानी कहावतें, अप्रचलित अथवा लुप्त होती हैं, उसी प्रकार परिस्थितियों की विशेषता के कारण नूतन कहावतों का भी निर्माण होता है। चीनी के कंट्रोल के दिनों में एक कहावत मैंने सुनी थी :

'मुरै की सांड और कंट्रोल की खांड कदेई न्हाल कोनी करै।'

अर्थात् बिना नकेल की ऊँटनी तथा कंट्रोल की खांड से हैरान ही होना पड़ता है।

किन्तु इस प्रकार की कहावतें चिरस्थायी नहीं हुआ करतीं। देश की आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ ऐसी कहावतें उद्भूत होती हैं और जब वे किसी आवश्यकता की पूर्ति नहीं करतीं तो विलीन हो जाती हैं।

इस प्रकार बहुत सी पुरानी कहावतों का अप्रचलन और उनका लोप तथा समय-समय पर नई कहावतों का निर्माण लोकोक्ति-संसार का नियम है किन्तु जिन कहावतों में सार्वजनिक सत्यों की अभिव्यक्ति होती है, वे निरन्तर चमकने वाले रत्नों की भाँति जगमगाती रहती हैं, उनकी आभा कभी मन्द नहीं पड़ती।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी कहावतों का वर्गीकरण

वर्गीकरण के सिद्धान्त

कहावतों का वर्गीकरण किस आधार अथवा किन आधारों पर किया जाय, वास्तव में यह एक बड़ा जटिल प्रश्न है। एक ही कहावत को भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखते हैं। उदाहरण के लिए एक राजस्थानी कहावत को लीजिये 'काणती भेड़ को र्‌याड़ो ही न्यारो' अर्थात् कानी भेड़ का रहन-सहन ही अलग है। इसी आशय को व्यक्त करने वाली अन्य भाषाओं की भी कुछ लोकोक्तियाँ निम्नलिखित हैं :

(१) अलगी बिलरिया के अलगें डेरा—भोजपुरी

(२) मुरारेस्तृतीयः पन्थाः—संस्कृत

(३) कानी गैया के अलगे बठान—बिहारी

उक्त राजस्थानी कहावत तथा कहावत नं० १ और ३ को पशुओं सम्बन्धी कहावतों के अन्तर्गत रखा जा सकता है, इनका सम्बन्ध सांसारिक ज्ञान से जोड़ा जा सकता है, इन्हें सामाजिक कहावतें भी कहा जा सकता है, अथवा ये कहावतें नैतिक अथवा चारित्रिक दुर्बलता को भी प्रकट कर सकती हैं। इसलिए कठिनाई यह है कि इन कहावतों को कौनसे वर्ग में रखा जाय ?

दूसरी बात यह है कि कहावतों का एक सामान्य वर्ग निर्धारित कर देना भी बड़ा दुष्कर व्यापार है क्योंकि कहावतों के विषय इतने विविध होते हैं कि उनकी इयत्ता निर्धारित नहीं की जा सकती। किसी सामान्य वर्ग में कई उपविभाग बनाये जायँ तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

फिर भी वर्गीकरण के सम्बन्ध में विद्वानों ने कई सिद्धान्त स्थिर किये हैं।[१] संभवतः सबसे सरल और सीधा ढंग तो वह है जिसका अनुसरण फैलन ने अपने कहावतों के कोश में किया है। उन्होंने कहावतों के पहले शब्द को लेकर अकारादि-क्रम से उनका विन्यास कर दिया है। लेकिन इस पद्धति की त्रुटि यह है कि एक कहावत को सभी लोग उसी ढंग से शुरू नहीं करते। तब या तो यह हो सकता है कि कहावतों के पदार्थों को लेकर उनका वर्गीकरण किया जाय अथवा वर्ण्य-विषय को लेकर उनके वर्ग स्थिर किये जायँ। पहली पद्धति के अनुसार पक्षी, पेड़-पौधे आदि वर्गों के अन्तर्गत कहावतें रखी जायँगी, दूसरी पद्धति के अनुसार नीति-धर्म, अन्ध-विश्वास आदि वर्ग निर्धारित किये जायँगे। लेकिन कहने में उक्त दोनों पद्धतियाँ जितनी सरल दिखाई पड़ती हैं, व्यावहारिक दृष्टि से उनका निर्वाह उतना ही कठिन है। संभवतः वर्ण्य-

१. द्रष्टव्य बिहार प्रावर्ब्स (Behar Proverbs) के सम्पादक जान क्रिश्चियन (John Christian) के नाम लिखा हुआ जी० ए० ग्रियर्सन का पत्र (भूमिका में उद्धृत)।

विषय को लेकर कहावतों का वर्गीकरण करना अधिक उपादेय है और सबसे अन्त में एक ऐसी सूची दी जा सकती है जिसमें कहावतों के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द का समावेश कर दिया जाय। यह सूची नितान्त आवश्यक है क्योंकि यदि इस प्रकार की सूची न दी जाय तो कहावतें आसानी से ढूंढ़ी नहीं जा सकतीं और यदि वे ढूंढ़ी न जा सकें तो फिर उनकी कोई उपयोगिता नहीं रह जाती। कहावतों के संग्रह तो एक प्रकार से संदर्भ-ग्रन्थ होते हैं और संदर्भ-ग्रन्थों की सब से बड़ी उपयोगिता यह है कि उन्हें आसानी से प्रयोग में लाया जा सके।

Behar Proverbs के सम्पादक ने कहावतों को निम्नलिखित छः वर्गों में विभक्त किया है—

(१) मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियों तथा अवगुणों से संबद्ध।
(२) सांसारिक ज्ञान-विषयक।
(३) सामाजिक और नैतिक।
(४) जातियों की विशेषताओं से सम्बद्ध।
(५) कृषि और ऋतुओं-सम्बन्धी।
(६) पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से सम्बन्धित।

इसी प्रकार मैनवारिंग (Manwaring) ने अपनी मराठी प्रावर्ब्स (Marathi Proverbs) नामक पुस्तक में कहावतों के १४ वर्ग निर्धारित किये हैं—कृषि, जीव-जन्तु, अंग और प्रत्यंग, भोजन, नीति, स्वास्थ्य और रुग्णता, गृह, धन, नाम, प्रकृति, सम्बन्ध, धर्म, व्यापार और व्यवसाय तथा प्रकीर्ण।

कहावतों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में जो चर्चा ऊपर की गई है, उससे मेरा अभिप्राय यह दिखलाने का रहा है कि वर्गीकरण की पद्धति के सम्बन्ध में कहीं ऐकमत्य दिखलाई नहीं पड़ता और जहाँ तक मैं समझता हूँ, इस विषय में मतभेद बराबर बना रहेगा।

अपने द्वारा किये हुए राजस्थानी कहावतों के वर्गीकरण के विषय में दो शब्द कहना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। रूप और वर्ण्य-विषय दोनों को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का अध्ययन किया है। रूपात्मक अध्ययन करते समय मैंने तुक, छन्द, अलंकार, लौकिक न्याय, अध्याहार, संवाद, संख्या, व्यक्ति आदि उन सभी तत्त्वों पर विचार किया है जिन्होंने राजस्थानी कहावतों के रूप को किसी न किसी अंश में प्रभावित किया है। वर्ण्य-विषय को लेकर मैंने राजस्थानी कहावतों का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है :

(१) ऐतिहासिक कहावतें।
(२) स्थान-सम्बन्धी कहावतें।
(३) राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र।
  (क) जाति-सम्बन्धी कहावतें।
  (ख) नारी सम्बन्धी कहावत।
(४) शिक्षा, ज्ञान और साहित्य।
  (क) शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें।
  (ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें।

(ग) राजस्थानी साहित्य में कहावतें।

(५) धर्म और जीवन-दर्शन।

(क) धर्म और ईश्वर-विषयक कहावतें।

(ख) शकुन-सम्बन्धी कहावतें

(ग) लोक-विश्वास-सम्बन्धी कहावतें।

(घ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी कहावतें।

(६) कृषि-सम्बन्धी कहावतें।

(७) वर्षा-सम्बन्धी कहावतें।

(८) प्रकीर्ण कहावतें।

वर्गीकरण के सम्बन्ध में यद्यपि मैंने अनेक ग्रन्थों से लाभ उठाया है तथापि किसी भी वर्गीकरण को मैंने ज्यों का त्यों नहीं अपनाया है। अपने द्वारा किये हुए वर्गीकरण को यथासाध्य वैज्ञानिक रूप देने का प्रयत्न किया गया है।

(क) रूपात्मक वर्गीकरण

१. राजस्थानी कहावतों में तुक के विविध रूप

तुक का महत्त्व—कहावतों के निर्माण में तुक का बड़ा हाथ रहता है। तुकान्त रचना आसानी से याद हो जाती है और स्मृति में चिरस्थायित्व प्राप्त कर लेती है। भूल जाने पर भी अपेक्षाकृत सरलता से उसका पुनः स्मरण किया जा सकता है तथा सामान्यतः शुष्क गद्यात्मक वाक्य की अपेक्षा तुकान्त-रचना में अधिक आकर्षण भी पाया जाता है। यही कारण है कि तुकान्त-लोकोक्तियाँ अधिक लोकप्रिय हो जाती हैं।

तुक के विविध रूप राजस्थानी कहावतों में उपलब्ध होते हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं :—

(१) **द्विधा विभक्त**—तुकान्त कहावतों में से अधिकांश दो भागों में विभक्त रहती हैं और इन भागों के अन्तिम शब्दों की परस्पर तुक मिलती है। जैसे,

(क) कीड़ी नैं कण, हाथी नैं मण।

अर्थात् ईश्वर चींटी को उदर-पूर्ति के लिए जहाँ कण भर देता है, वहाँ हाथी को मन भर दे देता है।

(ख) कात्या जी का सूत, जाया जी का पूत।

अर्थात् सूत तो उसी का है जो कातता है और पुत्र उसी का है जो उसे पैदा करता है।

(ग) गोद को छोरो, राखणो दोरो।

अर्थात् गोद के पुत्र का रखना कठिन होता है।

कुछ कहावतें ऐसी भी होती हैं जो दो भागों में विभक्त तो रहती हैं किन्तु जिनके केवल अन्तिम शब्दों की ही परस्पर तुक नहीं मिलती, प्रथम और अन्तिम शब्दों की भी तुक मिलती हैं। जैसे,

(घ) करन्ता सो भोगन्ता, खोदन्ता सो पड़न्ता।

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अपनी करनी का फल भोगना पड़ता है। जो दूसरों के लिए खड्डा खोदता है, वह स्वयं उसमें गिरता है।

(२) त्रिधा विभक्त—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जो तीन भागों में विभक्त रहती हैं और प्रत्येक भाग के अन्तिम शब्द की शेष भागों के अन्तिम शब्दों से तुक मिलती हैं। उदाहरणार्थ :

(क) एक बार योगी, दो बार भोगी, तीन बार रोगी।

अर्थात् योगी एक बार शौच जाता है, भोगी दो बार और रोगी तीन बार।

(ख) एक दिन पावणूं, दूजे दिन अनखावणू, तीजे दिन बाप को मुंघावणू।[1]

अर्थात् मेहमान तो एक दिन का ही होता है, दूसरे दिन वह अन्न खाने वाला (धन बरबाद करने वाला) समझा जाता है, अनादरणीय हो जाता है और तीसरे दिन तो वह गाली के योग्य हो जाता है अर्थात् सर्वथा उपेक्षणीय बन जाता है।

तीन भागों में विभक्त कहावतें अपेक्षाकृत संख्या में कम हैं।

(३) चतुर्धा विभक्त—अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जो आकार-प्रकार में छन्द के चार चरण जैसी जान पड़ती हैं। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें लीजिये :

(क) चालणी को चाम, घोड़ै की लगाम।
संजोगी को जाम, कदे न आवै काम॥

अर्थात् चलनी का चमड़ा, घोड़े की लगाम और जोगी का लड़का, ये तीनों किसी के नहीं होते।

(ख) कातिक की छांट बुरी, बाणियाँ की नाट बुरी,
भायां की आंट बुरी, राजा की डांट बुरी।

अर्थात् कार्तिक की वर्षा बुरी, बनिये को 'नहीं' बुरी, भाइयों की लड़ाई बुरी और राजा की डांट बुरी।

उक्त दोनों कहावतों में से प्रत्येक में चार-चार चरण हैं और प्रत्येक चरण के अन्तिम शब्दों की तुक मिलती है।

(४) तुकों की झड़ी—कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें चरणों की कोई सीमा नहीं रहती, जिनमें तुकों की झड़ी-सी लग जाती है और जो प्रवाह और लय के साथ-साथ आगे बढ़ती चली जाती हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसी कहावत पर विचार कीजिये—

'ओछो बोरो
गोद को छोरो
मुरै की सांड
नातै की रांड
ओछै की प्रीत
बालू की भीत.........कदेई न्हाल कोनी करै।'

अर्थात् निकृष्ट ऋणदाता, गोद का लड़का, बिना नकेल की ऊँटनी, नाते की स्त्री (वैदिक मन्त्रों द्वारा जिसका विवाह-संस्कार न हुआ हो), ओछे मनुष्य की प्रीति तथा बालू की दीवार, ये कभी निहाल नहीं करते।

---

१. मिलाइये : 'एक दिन पहुना, दोसर दिन ठेहुना, तीसर दिन केहुना।'
(भोजपुरी लोकोक्ति)

इस प्रकार की कहावतों में वक्ताओं के मुख से एक साथ कहीं कम और कहीं अधिक तुकें सुनाई पड़ती हैं। ये कहावतें आकार में इसी प्रकार की होती हैं।

(५) **खण्ड-हीन**—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनके पहले और अन्तिम शब्द में तुक तो दिखाई पड़ती है किन्तु जिनके कोई विभाग नहीं किये जा सकते, जो एक ही साँस में बोल दी जाती हैं। उदाहरणार्थ :

(क) जाणै सो ताणै।

अर्थात् बात को वही खींचता है (आगे बढ़ाता है) जो जानता है।

(ख) साठी बुध नाठी।

अर्थात् साठ वर्ष की आयु होने पर मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है।

(ग) हजारी बजारी।

अर्थात् जो सहस्राधीश है, वह बाज़ार से चाहे जो चीज़ खरीद सकता है।

(घ) पेट करावे वेठ।

अर्थात् पेट के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

(ङ) शकती लारे भगती।

अर्थात् शरीर की शक्ति के अनुसार ही भक्ति की जाता है।

(च) तंगी में कुण संगी।

अर्थात् धनाभाव या गरीबी की अवस्था में कोई साथ नहीं देता।

(६) **आंतरिक**—असंख्य कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें आंतरिक तुक का निर्वाह देखा जाता है। आंतरिक तुक नाद-सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक होता है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस में भी अनेक स्थानों पर आन्तरिक तुक का प्रयोग हुआ है।[1]

आन्तरिक तुक से सम्बन्ध रखने वाली कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(क) **गाडी** सैं र **लाडी** सैं बच कर रैणं।

अर्थात् गाड़ी से और पहली स्त्री की मृत्यु के बाद लाई हुई नवविवाहिता स्त्री से बचकर रहना चाहिए।

(ख) भूठ को **बोलणियो** र धरती पर **सोवणियो** संकड़ेलो क्यूं भुगतै ?

अर्थात् भूठ बोलने वाला और धरती पर सोने वाला तंगी क्यों सहे ?

(ग) मरै जको तो **बोली** सैं ही मर ज्यावै नई **गोली** सैं ही कोनी मरै।

अर्थात् प्रतिष्ठित मनुष्य के लिए तो अनादर ही मृत्यु के समान है।

(घ) **ओसर** चूक्या नै **मोसर** कोनी मिलै।

अर्थात् गया हुआ अवसर दुबारा हाथ नहीं आता।

(ङ) **ठाकर** नै **चाकर** घणा।

अर्थात् ठाकुर को सेवकों की क्या कमी है ?

(च) **चोरी** को धन **मोरी** में जाय।

अर्थात् चोरी का धन लाभप्रद नहीं होता, योंही बरबाद हो जाता है।

---

१. कब लगि रहिय सहिय मन मारे।
नाथ साथ धनु **हाथ** हमारे ॥ (रामचरितमानस)

(छ) **रूमां धूमां अर मूंवां**, जाड़ो कोनी लागै ।

अर्थात् जिन पशुओं की पीठ पर बाल होते हैं, उनको जाड़ा नहीं सताता, अग्नि के पास जाड़ा नहीं लगता तथा मृतक को जाड़े से कोई भय नहीं रहता ।

(ज) **कम खाणो, र गम खाणो** फायदो ही करै ।

अर्थात् कम खाने तथा धैर्य धारण करने से लाभ ही होता है ।

ऊपर की कहावतों में जहाँ आन्तरिक तुक है, वहाँ शब्दों को मोटे टाइप में छापा गया है । आन्तरिक तुक के राशि-राशि उदाहरण राजस्थानी कहावतों में सहज ही मिल जायँगे ।

(७) **तुक और संख्या**—कहावतों में जहाँ संख्या का प्रयोग होता है, वहाँ तुक का महत्त्वपूर्ण योग रहता है ।

(क) 'छोड़ो ईस, बैठो बीस' राजस्थानी की एक कहावत है जिसका आशय यह है कि चारपाई की पाटी छोड़ दी जाय तो उस पर चाहे बीस आदमी बैठ जायँ, वह नहीं टूटेगी । यहाँ अनिश्चित संख्या के द्योतनार्थ निश्चित संख्या बीस का जो प्रयोग हुआ है, उसका मुख्य कारण 'ईस' के साथ तुक का निर्वाह करना है । 'बीस' के प्रयोग से "बैठो और बीस" में अनुप्रास की भी रक्षा हो गई है ।

इसी प्रकार (ख) "आँख है जो लाख है" में भी निश्चित संख्या "लाख" का प्रयोग आँख के साथ तुक मिलाने के लिए ही किया गया है ।

(८) **तुक और व्यक्ति**—कभी-कभी तुक के लिए भी कहावतों में तदनुरूप व्यक्तिवाचक नाम की कल्पना कर ली जाती है । जैसे,

(क) "अर्जन जैसा ही फर्जन, अर्थात् जैसे अर्जुन हैं, वैसे ही हैं उनके फर्जन्द (लड़के) । जैसा पिता, वैसा ही पुत्र । यहाँ "फर्जन" से तुक मिलाने के लिए "अर्जुन' नाम की कल्पना कर ली गई है ।

(ख) भाई भूरा, लेखा पूरा ।

निमन्त्रण में भोज्य-द्रव्य जब ठीक पर्याप्त ही रहा हो और भोजन कर लेने के बाद बचा भी कुछ न हो तथा निमंत्रितों को असली स्थिति का पता भी न चले तो उक्त लोकोक्ति का सामान्यतः प्रयोग किया जाता है । यहाँ "पूरा" से तुक मिलाने के लिए "भूरा" नाम का प्रयोग हुआ है ।

(६) **तुक और तथ्य**—अनेक लोकोक्तियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें तुक की ओर पहले ध्यान दिया गया है, तथ्य की ओर बाद में । इस प्रकार की लोकोक्तियों में तुक का चमत्कार जितना मिलता है, उतना तथ्य का नहीं । उनमें तथ्य को लक्ष्य में रखकर तुक पर नहीं पहुँचा जाता, तुक को लक्ष्य में रखकर तथ्य पर पहुँचा जाता है । उदाहरण के लिए एक राजस्थानी कहावत लीजिए—

आंख फड़कै बांई । कै बीर मिलै कै सांई ।

अर्थात् यदि स्त्री की बाँई आँख फड़के तो या तो भाई मिले या पति मिले । साधारणतः लोक-विश्वास के अनुसार स्त्री की बाँई आँख का फड़कना शुभ और दाहिनी आँख का फड़कना अशुभ समझा जाता है किन्तु उक्त लोकोक्ति में शुभ परिणाम का जो स्वरूप निश्चित किया गया है, वह सब तुकदेव की कृपा है ।

ऊपर दी हुई कहावत में तुक की प्रमुखता अवश्य है किन्तु वस्तुतः तथ्य का

कोई हनन नहीं है, तुक का आश्रय लेने के कारण तथ्य को अपनी अभिव्यक्ति के लिए केवल एक नूतन प्रकार मिल गया है। तुक के लिए यदि तथ्य का बलिदान होता रहे तो केवल तुक के भरोसे लोकोक्तियाँ चिरस्थायित्व प्राप्त नहीं कर सकतीं। जिन कहावतों में तुक और तथ्य समान रूप से अपना जौहर दिखाते हैं, वे लोक-प्रियता के साथ-साथ मानस-पट पर भी चिर काल तक अंकित रहती हैं। 'भूख कै लगावण कोनी, नींद कै बिछावण कोनी' एक ऐसी ही कहावत है जो उदाहरण के तौर पर यहाँ रखी जा सकती है।

राजस्थानी कहावतों में, जैसा ऊपर दिखाया गया है, तुक के विविध रूप प्राप्त होते हैं किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि इस भाषा में अतुकान्त कहावतों की संख्या कुछ कम है। राजस्थानी में अतुकान्त कहावतें भी बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं।

२. राजस्थानी कहावतों में छन्द के विविध रूप

(१) **लय का महत्त्व**—"छन्दः-स्पन्दन समग्र सृष्टि में व्याप्त है। कलाएँ ही नहीं, जीवन की प्रत्येक शिरा में यह स्पन्दन एक नियम से चल रहा है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह-मण्डल और विश्व की प्रगति मात्र में एक लय है जो समय के ताल पर यति लेती हुई अपना काम कर रही है। टेलेस्कोप, माइक्रोस्कोप, मनुष्य के निरावृत्त नेत्र तथा मनुष्य के मस्तिष्क के भीतर से विज्ञान ज्यों-ज्यों सृष्टि को देखता है, त्यों-त्यों उसे प्रत्यक्ष होता जाता है कि यह महान् सृष्टि एक अद्भुत सुर-सामंजस्य के बीच बँधी हुई है, इस क्रम में छन्दोभंग नहीं होता, यतियाँ खिचकर आगे नहीं जातीं, तथा समय अपनी ताल देना नहीं भूलता। केवल स्वर वाली कलाएँ ही नहीं, प्रत्युत चित्रण मूर्ति और स्थापत्य की कलाएँ भी काट-छाँट, रूप और रंग के संतुलित प्रयोग से, इसी सामंजस्य का अनुसरण करती हैं।'[1]

ऊपर की पंक्तियों में जिस स्वर-सामंजस्य की चर्चा की गई है, उसके दर्शन हमें कहावतों में भी होते हैं। लय, स्वर-सामंजस्य का ही एक रूप है। "एक विशिष्ट प्रकार की अविच्छिन्न प्रवहमान नियमित स्वर-लहरी या ध्वनि-समूह को 'लय' की संज्ञा दी गई है।"[2] तुक से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है लय, क्योंकि लय से ही किसी छन्द को गति मिलती है। तुकान्त रचनाएँ तो लय का आधार लेकर चलती ही हैं, अतुकान्त रचनाएँ भी लय का आश्रय नहीं छोड़तीं यहाँ तक कि "मुक्त छन्द" भी लय से मुक्त होना नहीं चाहता। लयप्रधान कहावतों में तुक और लय के प्रयोग की जो विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है, उसका मुख्य कारण यह है कि कहावतें प्रायः अलिखित होती हैं और अलिखित रचनाएँ तुक और लय की सहायता से न केवल स्मृति-पट पर चिरकाल तक अंकित रहती हैं बल्कि उनको यथेच्छ स्मृति-पथ में ले जाना भी अपेक्षाकृत सुगम होता है।

(२) **तुक और लय**—राजस्थानी कहावतों में तुक के विविध रूपों पर पहले

१. हिन्दी कविता और छन्द—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' पारिजात, फर्वरी १९४६।
२. मुक्त छन्दों का विश्लेषण (श्री पुत्तूलाल शुक्ल एम. ए.,) हिन्दी अनुशीलन, वर्ष ४, अंक ३।

विचार किया जा चुका है। पद्यात्मक कहावतों में जितना महत्त्व तुक का है, उतना ही महत्त्व है लय का। जिन कहावतों में तुक का प्रयोग किया जाता है, उनमें तो तुक के साथ-साथ लय भी मिलती है। तुक के प्रकरण में ऐसी कहावतों के अनेक उदाहरण पहले दिए जा चुके हैं। किन्तु ऐसी भी बहुत सी राजस्थानी कहावतें हैं जिनमें तुक भले न हो, लय का प्रयोग प्रायः देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) घर का पूत कुँवारा डोलै, पाड़ोसी को नौ नौ फेरा।

अर्थात् घर के लड़के कुँवारे भटकते हैं जब कि पड़ौसी के यहाँ नौ-नौ भाँवर होते हैं।

(२) बुरी बुरी बामण कै सिर।

अर्थात् बुराई के लिए ब्राह्मण उत्तरदायी है।

इस प्रकार की कहावतों में 'पूर्ण लय' का संगीत नहीं मिलता पर उसका एक लयांश रहता है, जिसे अंग्रेजी में 'रिदम' कहते हैं, इस लय को तुक और सुविधामय बना देती है।[1]

नीचे की राजस्थानी कहावतों में तुक के प्रयोग के कारण 'लयांश' खिल उठा है।

(१) 'भाई बड़ो न भय्यो, सब से बड़ो रुपय्यो।'

अर्थात् न भाई बड़ा है, न भैया, सबसे बड़ा रुपया है।

(२) 'माया अंट की, विद्या कंठ की।'

अर्थात् धन पास हो और विद्या कंठस्थ हो, तभी काम आते हैं।

(३) 'स्यालो तो भोगी को, र ऊंद्यालो जोगी को।'

अर्थात् भोगी तो जाड़े की ऋतु में आनन्द मनाता है और योगी गर्मी में सुख पाता है।

(३) **कहावतें और आंशिक छन्द रचना**—जब कोई कवि दोहे तथा अन्य छन्दों की सृष्टि करता है तो छन्दशास्त्र के नियमानुसार वह सभी चरण बनाता है। किसी ने दोहे छन्द के केवल दो चरण ही बनाये तो दोहा अधूरा ही रह जायगा, चारों चरण बन जाने पर ही छन्द पूरा समझा जाता है किन्तु कहावत के सम्बन्ध में ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। किसी छन्द का केवल एक चरण ही कहावत के रूप में प्रयुक्त हो सकता है, कभी-कभी कहावत के लिए दो चरणों की आवश्यकता पड़ सकती है और कभी-कभी चारों चरण ही कहावत के रूप में प्रयुक्त हो सकते हैं। क्रमशः एक-एक उदाहरण लीजिये—

(क) एक चरण वाली कहावतें—'घिरत ढुल्यो मूंगां कै मांय'; 'वाण्यो लिखै पढ़ै करतार।'

इन दोनों कहावतों को 'चौपई छन्द' के एक-एक चरण के रूप में अथवा वीर छन्द के एक चरण के उत्तरार्द्ध के रूप में ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार की अनेक कहावतें राजस्थानी भाषा में हैं जिनको लेकर पूरे छन्द बनाये जा सकते हैं।

(ख) दो चरणों वाली कहावतें—'फागण में सी चौगणो, जे चालैगी बाल।'

यह एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि यदि हवा चले तो फाल्गुन में चौगुना जाड़ा पड़ने लगेगा। इस कहावत में दोहे छन्द के दो चरण हैं जिनमें क्रमशः

---

१. ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन—डा० सत्येन्द्र, पृष्ठ; ५३२।

१३ और ११ मात्राएँ हैं। यह कहावत दोहे के अवशिष्ट चरणों की अपेक्षा नहीं रखती। दो चरणों में ही कहावत समाप्त हो गई है। इस प्रकार की कहावतें राजस्थान में बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) चूनड़ ओढ़ै गाँठ की, नांव पीर को होय।

अर्थात् चुनरी तो अपने पास से पैसे खच करके ओढ़ती है और नाम पीहर का होता है। जिसके पीहर वाले गरीब हों, उसके सम्बन्ध में उक्ति है।

(२) जैंकी चाबै घूघरी, बैंका गावै गीत।

अर्थात् जो जिसका खाता है, वह उसी के गीत गाता है।

(३) पाँच सात की लाकड़ी, एक जणैं को भार।

अर्थात् यदि पाँच-सात आदमी मिलकर बोझ को आपस में बाँट लें तो उनके हिस्से में एक-एक लकड़ी आती है; यदि न बाँटें तो एक के लिए वह भार-रूप हो हो जाता है। विवाह आदि में मदद के लिए इस कहावत का प्रयोग होता है।

(४) बाप न मारी ऊंदरी, बेटो तीरंदाज।

अर्थात् पिता ने तो चुहिया भी नहीं मारी और पुत्र तीरन्दाज कहलाता है।

(५) सीर सगाई चाकरी, राजीपैरो काम।

अर्थात् साझा, सम्बन्ध और नौकरी दोनों ओर से राजी रहने पर ही निभ सकते हैं।

(६) मनां विहूणा पावणा, घी घालूँ अक तेल।

अर्थात् हे बिना मन के पाहुने! तुम्हें घी खिलाऊँ या तेल?

(७) बाहर बाबू सूरमा, घर में गीदड़दास।

अर्थात् बाहर तो बाबू साहब सूरमा कहलाते हैं और घर में गीदड़दास बने बैठे हैं!

उक्त कहावतों में दोहे के दो-दो चरणों का प्रयोग हुआ है। किन्तु दोहे के अतिरिक्त अन्य छन्दों के दो चरण भी राजस्थानी कहावतों में प्रयुक्त होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे की कहावतों में 'चौपई' छन्द के दो-दो चरणों का प्रयोग देखिये—

(१) खेती करै न बिणजी जाय।
विद्या कै बल बैठ्यो खाय॥

अर्थात् ब्राह्मण न खेती करता है, न वाणिज्य के लिए जाता है, वह अपनी विद्या के बल पर बैठा खाता है।

(२) बड्डी भू का बड्डा भाग।
छोटो बनड़ो घणा सुहाग॥

अर्थात् वर यदि छोटा हो और बहू बड़ी हो तो बहू के वृद्ध होने पर भी वह युवा ही रहेगा, इसलिए वर की ओर से स्त्री को अपनी मृत्यु तक सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। यह उक्ति राजस्थान के बाल-विवाह के प्रेमियों पर घटित होती है।

(ग) चारों चरण वाली कहावतें—

गैलो भलो न कोस को, बेटी भली न एक।
लहणो भलो न बाप को, साहब राखै टेक॥

कोस का भी रास्ता चलना अच्छा नहीं, बेटी एक भी अच्छी नहीं, ऋण तो

पिता का भी अच्छा नहीं—भगवान ही टेक रखे।

इस दोहे के चारों चरण मिलाकर कहावत के रूप में प्रयुक्त हैं, प्रथम तीन चरण अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से भी तीन कहावतों के रूप में लिये जा सकते हैं।

(४) अधूरा पूरा—राजस्थानी भाषा में दोहों तथा अन्य छन्दों में कुछ इस तरह के प्रयास भी किये गये जिन्हें 'अधूरा पूरा' कहते हैं। एक प्रचलित कहावत को लेकर उसे छन्दबद्ध कर दिया गया, अन्तिम चरण या चरणों में कहावत दे दी गई तथा शेष चरणों में व्याख्या द्वारा उस कहावत की एक प्रकार से पूर्ति कर दी गई। उदाहरण के लिए तीन 'अधूरे पूरे' यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१) लाखां लोहां चम्मड़ां, पहली किसा बखाण।
बहू बछेरा डीकरां, नीमटियां परवाण॥

अर्थात् लाख, लोहा, चमड़ा, बहू, घोड़े का बच्चा तथा पुत्र, इनकी पहले कैसी प्रशंसा ? प्रौढ़ होने पर ही इनका पता चलता है।

(२) अकल सरीरां ऊपजै, दिवी न आवै सीख।
अणमांग्या मोती मिलै, माँगी मिलै न भीख॥

अर्थात् बुद्धि शरीर के साथ पैदा होती है, समझ-बूझ किसी के द्वारा प्रदान नहीं की जा सकती। बिना माँगे मोती तक मिल जाते हैं, माँगने पर भीख भी नहीं मिलती।

(३) हेठि ह थाली ऊपरि थाली, जिणमें घाली सात सुहाली।
गीत गावें नो नो जणी, हाँती थोड़ी हलर घणी॥[१]

अर्थात् नीचे थाली है, ऊपर थाली है किन्तु उसके अन्दर केवल सात सुहालियाँ रखी हैं, गीत गाने के लिए नौ-नौ स्त्रियाँ है—"हांते" थोड़ी है, हलचल अधिक है।

प्रथम तथा द्वितीय 'अधूरे-पूरों' के उत्तरार्द्ध कहावतें हैं तथा तृतीय अधूरे पूरे का अन्तिम चरण एक कहावत है। ऐसा भी अनेक बार देखा जाता है कि किसी कवि द्वारा सम्पूर्ण छन्द की रचना की जाती है किन्तु कहावती लोकप्रियता छन्द के किसी अंश को ही मिल पाती है।

बहुत से कहावती अंश तो ऐसे होते हैं जिनमें मात्राएँ बराबर-बराबर रहती हैं किन्तु अनेक कहावती टुकड़े ऐसे भी मिलते हैं जिनमें आरोह-अवरोह अथवा उच्चारण-सौकर्य के अनुसार मात्राओं में भी कमी-बेशी कर ली जाती है। यहाँ दोनों प्रकार के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं—

(५) **सममात्रिक** (१) घड़ै कुम्हार ८ मात्राएँ
भरै संसार ८ मात्राएँ
(२) राज सल्ला को ६ मात्राएँ
काज पल्ला को ६ मात्राएँ
(३) घणा हेत टूटण नै १२ मात्राएँ
बड़ा नैण फूटण नै १२ मात्राएँ

(६) **असम मात्रिक**—(१) भागां का बलिया, १० मात्राएँ
रांधी खीर, होगा दलिया १५ मात्राएँ

---

१. अजायुद्धं मुनिश्राद्धं प्रभाते मेघडंबरम् दम्पत्योः कलहश्चैव बहारम्भो लघुक्रिया।

(२) भीज्या कान ७ मात्राएँ
हुया असनान ८ मात्राएँ
(३) मानै तो देव ६ मात्राएँ
नहिं भींत को लेव १० मात्राएँ

(७) क्षति-पूर्ति—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें दो खण्डों के बीच 'और' के लघु रूप 'र' का प्रयोग कर मात्राओं की कमी पूरी करली जाती है। 'घी बाट रो र तेल हाट रो' इस कहावत के प्रथम खण्ड' 'घी बाट रो' में ७ मात्राएँ हैं जब कि 'तेल हाट रो' में ८ मात्राएँ हैं किन्तु दोनों के बीच में समुच्चयबोधक 'र' के प्रयोग से दोनों खंडों में मात्राएँ बराबर-बराबर हो गई हैं।

(८) लय-विहीन कहावतें—बातचीत में ऐसी भी अनेक लोकोक्तियों का प्रयोग किया जाता है जिनसे किसी विशिष्ट कहावती रूप का परिचय नहीं मिलता। यहाँ दो ऐसी कहावतें उद्धृत की जा रही हैं जिनमें न तुक है, न लय।

(१) सरीर कै रोगी की दवा है, मन कै रोगी की कोनी।

(२) मारणिये सें जिवाणियूँ ठाडो[1] है।

(९) उपसंहार—यहाँ मात्राओं को लेकर राजस्थानी कहावतों के छन्दों की जो विवेचना की गई है, उसका यह अर्थ कदापि न समझा जाय कि कहावत बोलने वाले छन्दशास्त्र के नियमों का पूरा अनुसरण करते हैं। अनेक बार वे मात्राओं को घटा-बढ़ा कर बोलते हैं। मेरे विवेचन का मुख्य अभिप्राय केवल यह दिखलाना है कि कहावत के निर्माताओं अथवा कहावत के प्रयोक्ताओं को छन्दशास्त्र का चाहे ज्ञान न हो, फिर भी कहावतों में छन्द का स्पन्दन मिलता है और उसके असंख्य रूप दृष्टिगोचर होते हैं। सच्ची बात तो यह है कि छन्दों का प्रयोग तो पहले होता है, नियम बाद में बनते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे लक्ष्य-ग्रन्थों के बाद लक्षण-ग्रन्थों का निर्माण होता है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने यथार्थ ही कहा है कि 'ग्रामीण लोग मानव-छन्द से भले परिचित न हों, 'लय' और 'ध्वनि' का परिचय उन्हें खूब होता है। मानव-छन्द अभी कल का बच्चा है, इसके मुख में दूध के दाँत दिखाई देते हैं। ध्वनि उतनी ही पुरानी है जितनी पानी की लहर। 'लय' उस समय भी थी, जब प्रभात की प्रकाश-रेखा भी न थी।'[2]

३. राजस्थानी कहावतें और अलंकार

कुछ आलंकारिक लोकोक्ति नामक एक स्वतन्त्र अलंकार को मानकर चले हैं। लोक-प्रसिद्ध कहावत का किसी प्रसंग में जहाँ उल्लेख किया जाता है, वहाँ लोकोक्ति अलंकार होता है।[3] बाँकीदास ग्रन्थावली में से निम्नलिखित दोहे को लीजिये—

गोलां सूँ न सरै गरज, गोला जात जबून।
ऊखाणो सायद भरै, सो गोलाँ घर सून॥

अर्थात् गोलों (दासी-पुत्रों) से काम नहीं निकलता है, दासी-पुत्र की जाति ही बुरी है। यह कहावत साक्ष्य भर रही है कि सौ दासी-पुत्रों के रहते हुए भी घर सूना रहता है।[4]

---

१. बलवान।
२. 'वर्तमान'; १५ अप्रैल, १९५४।
३. लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति कथ्यते (कुवलयानन्द)।
४. बाँकीदास ग्रन्थावली, दूसरा भाग, पष्ठ ८८।

उक्त दोहे के चौथे चरण में लोक-प्रसिद्ध कहावत का उल्लेख होने के कारण 'लोकोक्ति' अलंकार का प्रयोग समझना चाहिए।

इस प्रकार यद्यपि लोकोक्ति को स्वतः एक अलंकार माना जा सकता है किन्तु लोकोक्तियों के रूप-निर्माण में अनेक प्रकार के शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों का योग रहता है जिनका अध्ययन बड़ा मनोरंजक एवं कुतूहलवर्द्धक है। राजस्थानी कहावतों के रूपात्मक अध्ययन में यहाँ शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों ही दृष्टियों से विचार किया जा रहा है।

अ. शब्दालंकार—शब्दालंकरों में अनुप्रास का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। विश्व की प्रायः सभी भाषाओं की कहावतों में तुक की भाँति अनुप्रास का प्रयोग भी विशेष रूप से देखा जाता है। राजस्थानी भाषा भी इसका कोई अपवाद नहीं है। राजस्थानी में यद्यपि सभी प्रकार के अनुप्रासों के उदाहरण मिलते हैं तथापि वृत्यनुप्रास और छेका-नुप्रास के प्रयोग प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं। इन दोनों अनुप्रासों के कुछ उदाहरण लीजिये :

(१) **वृत्यनुप्रास**—पूत का **पग पालणैं** ही दीख्यावैं।

अर्थात् बालक के लक्षणों को देखकर बाल्यावस्था में ही उसके भविष्य की कल्पना करली जाती है।

(२) **जमी जोरू जोर** की, **जोर** हट्याँ ओर की।

अर्थात् ज़मीन और स्त्री पर से जब ज़ोर हट जाता है तो वे दूसरे की हो जाती हैं।

वर्णमाला के अक्षरों को लेकर जो कहावतें राजस्थानी भाषा में मिलती हैं, उनमें भी विशेषतः वृत्यनुप्रास की ही छटा दर्शनीय है। इस प्रकार की कुछ कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं।

(क) **दाँत दराँती दायमो, दारी और दरबान।**
ये पाँच दद्दा बुरा, पत राखै भगवान॥

इस कहावत में 'द' से प्रारम्भ होने वाली पाँच वस्तुओं, दाँत, दराँती, दायमा, दारी (पुंश्चली स्त्री) और दरबान को बुरा ठहराया गया है।

(ख) **मोत मानगी मामलो, मंदी माँगण हार।**
पाँचू मम्मा एकसा, पत राखै करतार॥

अर्थात् मृत्यु, माँदगी (बीमारी), मामला (मुकद्दमा), मंदी और माँगनेवाला (ऋणदाता) 'म' से प्रारम्भ होने वाली ये पाँच वस्तुएँ बुरी हैं, भगवान ही इनसे बचाये।

(ग) **साँसी साह सरावगी, सिरीमाल सूनार।**
ये सस्सा पाँचू बुरा, पहले करो विचार॥

अर्थात् साँसी, साह, सरावगी, श्रीमाल और सुनार, 'स' से प्रारम्भ होने वाले ये पाँचों बुरे होते हैं। पहले भली भाँति सोच-समझकर ही इनसे व्यवहार करना चाहिए।

एक ही अक्षर से प्रारम्भ होने वाली कई वस्तुओं को कहावतों में एक साथ

देने से उनको याद रखना अपेक्षाकृत सरल होता है। सम्भवतः इसी कारण इस प्रकार की कहावतों का प्रादुर्भाव हुआ होगा। वर्णमाला के अक्षरों को लेकर सोचने की यह पद्धति भी काफ़ी प्राचीन है। वाममार्गियों के पंच 'मकार' मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन भी इसी प्रवृत्ति के परिचायक जान पड़ते हैं। ऊपर उद्धृत की हुई राजस्थानी कहावतों में भी संख्या सर्वत्र पाँच ही है।

कुछ कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें यद्यपि स्पष्टतः यह नहीं कहा गया है कि ये 'ककार' अथवा 'मकार' निकृष्ट हैं किन्तु फिर भी जो वर्णमाला के एक ही अक्षर-विशेष से प्रारम्भ होती हैं और गिनती को लेकर चलती हैं। उदाहरण के लिए एक ऐसी कहावत लीजिये।

कागा कुता कुमाणसा, तीन्यां एक निकास।
ज्यां-ज्यां सेर्यां नीसरैं, त्यां-त्यां करैं विनास॥

अर्थात् कौवे, कुत्ते और दुर्जन, तीनों इकसार होते हैं, ये जिस मार्ग से निकलते हैं, वहाँ ही विनाश करते हैं अर्थात् नुकसान पहुँचाते हैं।

अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जो गिनती को लेकर नहीं चलतीं किन्तु वर्णमाला के एक ही अक्षर का कई बार प्रयोग होने से वृत्यनुप्रास की प्रवृत्ति जिनमें स्पष्टतः देखी जा सकती है। उदाहरणार्थ—

(क) बीछू बानर ब्याल विष, गर्दभ गंडक गोल।
ये अलगा ही राखणा, यो उपदेश अमोल॥[1]

अर्थात् बिच्छू, बन्दर, सर्प, विष, गधे, कुत्ते और दरोगे को दूर ही रखना उचित है।

(ख) काग कुहाड़ो कुटिल नर, काटैं ही काटैं।
सुई सुहागो सापुरस, सांठैं ही सांठैं॥

अर्थात् कौआ, कुल्हाड़ा और कुटिल मनुष्य, ये काटते ही काटते हैं और सुई, सुहागा और सत्पुरुष, ये जोड़ते ही जोड़ते हैं।

(ग) कांसी कुत्ती कुभारजा, कर लागां कूकंत।
सीसो सोनो सापुरस, मधुर बाण बोलंत॥

अर्थात् काँसी, कुतिया और कुभार्या जरा-सा हाथ लगने से कूकने लगते हैं किन्तु सीसा, सोना और सत्पुरुष हाथ लगने से और भी मधुर वाणी से बोलने लगते हैं।[2]

छेकानुप्रास—छेकानुप्रास में अनेक व्यंजनों की स्वरूप और क्रम से एक बार आवृत्ति होती है। राजस्थानी कहावतों में छेकानुप्रास के भी अनेक उदाहरण सहज ही उपलब्ध हो जायेंगे। उदाहरण—

(१) पीसो पास को, हथियार हाथ को।

अर्थात् पैसे की उपयोगिता तभी है जब वह अपने पास हो, इसी प्रकार

---

१. मेवाड़ की कहावतें, भाग १—(श्री लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ६७.

२. मिलाइये, जैसे-जैसे मुझको छेड़ें, बोलूं अधिक मधुर मोहन।—श्री सुमित्रानन्दन पंत

हथियार भी हस्तगत होने पर ही काम देता है ।

(२) नेम निमाणा, धर्म ठिकाणा ।

अर्थात् नियम और धर्म नियमी और धर्मी के पास ही रहते हैं ।

प्रथम कहावत के पूर्वार्द्ध में 'पस' उत्तरार्द्ध में 'हथ' तथा द्वितीय कहावत के पूर्वार्द्ध में 'नम' की एक बार स्वरूप और क्रम से आवृत्ति होने के कारण छेकानुप्रास अलंकार है ।

अन्य अनुप्रास—"भाई कै मन भाई भायो, बिना बुलाये आपै आयो" में श्रुत्यनुप्रास माना जा सकता है क्योंकि इस लोकोक्ति में एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले 'ब' और 'भ' का अनेक बार प्रयोग हुआ है । सामान्यतः इस अनुप्रास को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता ।

अन्त्यानुप्रास तो तुक का ही एक प्रकार है जिसका विवेचन पहले किया जा चुका है । लाटानुप्रास शब्द और अर्थ की पुनरुक्ति होने पर भी तात्पर्य में भेद रहता है । जैसे,

"पूत सपूता क्यूँ धन संचै, पूत कपूता क्यूँ धन संचै ?"[१]

उक्त कहावत में 'क्यूँ धन संचै' की यद्यपि शब्दतः और अर्थतः आवृत्ति हुई है किन्तु तात्पर्य की दृष्टि से भेद अवश्य है । आशय यह है कि यदि पुत्र सपूत होगा तो स्वयं कमा लेगा, कपूत होगा तो जोड़ा हुआ धन भी उड़ा देगा । इसलिए दोनों अवस्थाओं में धन-संचय करना व्यर्थ है । यह लोकोक्ति हिन्दी और राजस्थानी, दोनों भाषाओं में समान रूप से प्रसिद्ध है ।

बैण सगाई—डिंगल भाषा में एक विशेष प्रकार का अनुप्रास होता है जिसे 'बैण सगाई' कहते हैं । यह एक प्रकार का शब्दालंकार है जिसके अनुसार सामान्यतः किसी चरण के प्रथम शब्द का प्रथम अक्षर उस चरण के अन्तिम शब्द के प्रथम अक्षर से मिलता है । बैण सगाई का एक लोकोक्तिगत प्रयोग लीजिए—

लोह तणी तलवार न लागै, जीभ तणी तलवार जिसी ।

अर्थात् लोहे की तलवार उतनी नहीं लगती जितनी जीभ की तलवार लगती है । तलवार का घाव भर जाता है किन्तु बोली का घाव नहीं भरता । उक्त कहावती पद्य में 'लोहे' और 'लागै' तथा 'जीभ' और 'जिसी' में बैण सगाई का निर्वाह हुआ है ।

कहावती रूप सामान्यतः बदलता नहीं, किन्तु डिंगल का कवि जब किसी कहावत का प्रयोग करता है तो वह कहावत को बैण सगाई के अनुरूप बदल देता है । उसकी दृष्टि में कहावती रूप के निर्वाह की अपेक्षा बैण सगाई का निर्वाह अधिक महत्त्वपूर्ण है ।

राजस्थानी की एक कहावत है "खाणो मन भातो, पैरणो जग भातो" अर्थात् जो मन को अच्छा लगे वह खाना चाहिए, जो संसार को अच्छा लगे, वह पहनना चाहिए ।

१. राजस्थानी कहावतां (भाग दूसरो) : सम्पादक स्वामी नरोत्तमदास तथा पं० मुरलीधर व्यास; पृष्ठ २२ ।

डिंगल कवि के हाथों पड़कर यही कहावत निम्नलिखित रूप में परिवर्तित हो गई—

"पहरीजें पर प्रीत, खाईजें अपनी खुसी।"[1]

यहाँ 'प्रीत' और 'खुशी' का प्रयोग क्रमशः 'पहरीजें' और 'खाईजें' के साथ वैण सगाई के निर्वाहार्थ किया गया है।

तुक की भाँति लोकोक्तियों में प्रयुक्त नामों और संख्याओं के निर्धारण में भी अनुप्रास का विशेष हाथ रहता है जैसा कि निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट है—

१. खेता खेती मत करें, उद्दम कर कंइ और।
मोंठ मूसा खा गया, चारो लेग्या चोर॥

अर्थात् हे खेता! खेती मत कर; कोई और उद्यम कर। चूहे मोठ खा गये और चोर चारा ले गये। क्या रखा है ऐसी खेती में?

इस कहावत में 'खेती' के साथ अनुप्रास का निर्वाह करने के लिए 'खेता' नाम का जान-बूझकर प्रयोग किया गया है। मूसा, मोठ तथा चारो और चोर का सानुप्रास-प्रयोग भी यहाँ द्रष्टव्य है।

२. बारा कोसां बोली पलटै, वनफल पलटे पाकां।
सौ कोसां तो साजन पलटै, लखण नी पलटे लाखां॥

अर्थात् बारह कोस पर बोली बदल जाती है, पकने पर वनफल बदल जाते हैं, सौ कोस पर साजन बदल जाते हैं किन्तु लक्षण लाखों कोसों पर भी नहीं बदलते।

इस कहावती पद्य में बारह, सौ तथा लाख, इन तीनों संख्याओं का प्रयोग हुआ है। पढ़ते ही यह स्पष्ट हो जाता है कि बोली के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'बारह', साजन के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'सौ' तथा लक्षण के साथ अनुप्रास मिलाने के लिए 'लाख' का प्रयोग हुआ है।

३. फूलां फूलगी, गैल का दिन भूलगी।

अर्थात् फूलां (स्त्री-विशेष) अब घमंड में आ गई, अपने सामने किसी को गिनती ही नहीं। पिछले दिन उसे अब याद नहीं रहे। धन हो जाने पर लोग गरीबी को भूल जाते हैं। यहाँ ऐसा लगता है कि 'फूलगी' क्रिया के साथ अनुप्रास की रक्षा करने के लिए 'फूलां' का प्रयोग हुआ है।

४. कर ये महती मालपुआ, बोहरो लेसी हुया हुया।

अर्थात् हे महती! मालपूआ बनाओ, बोहरे को तो जैसे-जैसे अपने पास रुपये होते जायँगे, देते रहेंगे। बिना अपने पास कुछ हुए, वह लेगा भी कहाँ से?

यहाँ 'मालपुआ' के साथ अनुप्रास के निर्वाहार्थ 'महती' नाम की कल्पना की गई है।

अनेक बार ऐसा भी देखा जाता है कि किसी कहावत के प्रथम और अन्तिम शब्दों में यदि तुक नहीं मिलती है तो उसकी कमी-पूर्ति सानुप्रास शब्दों द्वारा कर ली जाती है। 'जुग देख जीवणू' अर्थात् युग देखकर जीना चाहिए, इस कहावत में 'जुग'

१. सम्बोध अष्टोत्तरी सं० १८५८—हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।

और 'जीवणू' में अनुप्रास द्वारा काम चला लिया गया है।

जहाँ पर एक कहावत में दो अथवा दो से अधिक वस्तुओं के सम्बन्ध में मिलती-जुलती बात कही जाती है, वहाँ अनुप्रासमयी शब्दावलि का प्रयोग प्राय: देखा जाता है। जैसे,

"पानी पाला पावसा उत्तर सूं आवै।"

अर्थात् वर्षा, पाला और बादशाह उत्तर दिशा से ही आया करते हैं।

अनेक बार कहावतों के महत्त्वपूर्ण शब्द सानुप्रास होते हैं। जैसे,

(क) **कथनी सूं करणी दोरी।**

अर्थात् कहने से करना मुश्किल है।

(ख) **करम में लिख्या कंकर तो के करै सिवसंकर।**

अर्थात् कर्म में कंकड़ लिखे हों तो शिवशंकर क्या करें?

(ग) **टाबरां की टोली बुरी।**

अर्थात् बहुत से बच्चों का होना अच्छा नहीं।

(घ) **नाई की परख नूंवां में।**

अर्थात् नाखून काटने में ही नाई की चतुराई देखी जाती है।

(ङ) **क्या बिगाड़ै दो जणां के मूंजी के मेह।**

अर्थात् विवाह या तो कंजूस से बिगड़ता है या वर्षा से।

ऊपर के उदाहरणों में जो रेखांकित शब्द हैं वे ही अनुप्रासयुक्त और महत्त्वपूर्ण हैं।

अनुप्रासमयी पदावलि श्रुतिमधुर होती है, इसलिए लोक-रुचि स्वभावत: ही इस ओर दौड़ पड़ती है। संस्कृत के उन कवियों ने भी जो शब्दालंकार को विशेष महत्व देते थे, अनुप्रास का प्रचुर प्रयोग किया है। हिन्दी साहित्य के पद्माकर आदि रीतिकालीन कवियों की अनुप्रासमयी भाषा अत्यन्त प्रसिद्ध है। अंग्रेजी कवि टेनीसन की रचनाओं में अनुप्रास का प्रयोग बराबर मिलता है। वामनादि मराठी भाषा के कवियों ने भी स्थान-स्थान पर अनुप्रास का आश्रय लिया है। इसलिए राजस्थानी कहावतों में भी यदि अनुप्रास का प्रचुर प्रयोग हुआ हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

यमक—वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास के बाद राजस्थानी कहावतों में यमक का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस अलंकार के कुछ उदाहरण लीजिये—

(क) **घड़ै सुनार, पहरै नार** अर्थात् गहने गढ़ता तो सुनार है और पहनती है नारी।

(ख) **मजूरी में के हजूरी?** अर्थात् जो परिश्रम करके पैदा करता है, वह किसी की हाजिरी क्यों दे?

(ग) **के सहरां, के डहरां** अर्थात् मनुष्य या तो शहर का आश्रय लेकर ही पल सकता है या उपजाऊ खेत पर निर्भर रहकर ही जीवन बसर कर सकता है।

समोच्चार-विनोद और श्लेष—अंग्रेजी में जिसे Pun[1] अथवा समोच्चार-विनोद कहते हैं, उसके भी अनेक उदाहरण राजस्थानी कहावतों में मिल जाते हैं। Pun के लिए समान उच्चारण वाले शब्दों को ले लिया जाता है और उच्चार-साम्य के आधार पर शब्द-क्रीड़ा चलती है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित कहावती पद्य को लीजिए—

बांस चढ़ी नटणी कहै, हुयां न नटियो कोय।
मैं नट के नटणी हुई, नटै सो नटणी होय।।

अर्थात् बांस पर चढ़ी हुई नटनी कह रही है कि किसी के पास देने की थोड़ी बहुत भी सामर्थ्य होने पर वह इन्कार न करे। दान न देने से, 'न' कहने से, नटने से मैं नटनी हुई। जो नटता है, दान नहीं देता है, उसे आगे के जन्म में नटनी का नाच नाचना पड़ता है। इस पद में नटणी (नाट्य करने वाली, इन्कार करने वाली,) नट के (नाट्य करके, इन्कार करके) तथा नटै (नाट्य करती है, इन्कार करती है) इन तीनों शब्दों के साथ खिलवाड़ किया गया है।

इसी प्रकार एक कहावती 'प्रश्नोत्तरी' को लीजिये—

"रास कोड ? कह—पहाड़ कै मान। दिवालो कोड ? कह—अम्बर कै मान। तो कह फाटै अम्बर कै थेगली कोनी लागै।"[2]

अर्थात् किसी ने पूछा—अन्न-राशि कितनी ? उत्तर—पहाड़ के बराबर। फिर पूछा—दिवाला कितना ? उत्तर—अम्बर जितना।

यह उत्तर सुनकर पूछनेवाले ने कहा कि यदि ऐसी बात तो फटे अम्बर के जोड़ नहीं लग सकते।

यहाँ 'अम्बर' शब्द में समोच्चार-विनोद है। कहने का तात्पर्य यह है कि अम्बर (वस्त्र) यदि फट जाय तो जोड़ लगकर सिलाई हो सकती है किन्तु अम्बर (आकाश) फटने पर उसके पैबंद नहीं लग सकता।

कभी-कभी समान उच्चारण वाले किसी पद्यांश तथा पद में भी शब्द-विनोद देखने को मिलता है। 'बेगम' की जात कै गम कोनी' अर्थात् स्त्री जाति अधीर होती है। इस कहावत में 'बेगम' के गम और दूसरे गम को लेकर शब्द-चातुर्य प्रदर्शित किया गया है। ऐसा जान पड़ता है मानों 'बेगम' शब्द को द्विधा विभक्त (बे+गम) कर

१. Pun शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। कुछ लोग उसे इटली भाषा के 'Puntiglio' शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं जिसका अर्थ है शब्द-श्लेष।
—चबकारियानुं तत्त्वदर्शन (फिरोजशाह रुस्तमजी मेहता); पृ० १६७

२. मिलाइये—
अरे चन्द तुम गलह, इहां नाहीं अधिकारिय,
ए घर जानी खेल, नहीं डिमरू खिल्लारिय।
इहै अग्गि नहिं दीप, अहै आगै होए दिष्षै,
जब फुट्टै आकाश, कोन थिगरी सूं रष्षै ॥
इम दुरे नहीं जीवन मरन, नह लगै गल्हां बुरी।
मा मस्ति इहै अप उब्बरौ, करौ मन्ति गो ब्रह्म छुरी ॥—पृथ्वीराज रासो; छंद ७०२

यह विनोद चला है। 'बेगम' है ही बे+ग़म अर्थात् बिना ग़म वाली, तब उसमें (ग़म) धैर्य कहाँ से हो ? किन्तु यदि 'बेगम' से यह अभिप्राय यहाँ न लिया जाय और बेगम के 'गम' को निरर्थक पदांश तथा दूसरे को सार्थक मानकर चला जाय तो यह यमक अलंकार का उदाहरण हो जायगा।

अनेक बार एक शब्द के प्रयोग से एक समान उच्चारण वाला दूसरा शब्द सामने आ जाता है जिससे भिन्न अर्थ की प्रतीति होने लगती है। जैसे,

बापो मत कह बखतसी, कांपत है केकाण।
एक बार बापो कह्यां, पवंग तजैलो प्राण॥

अर्थात् हे बखतसिंह ! अश्व को 'बाप बाप' मत कहो, यह सुनकर घोड़ा कॉप रहा है। एक बार फिर 'बाप बाप' कह दोगे तो घोड़ा प्राण त्याग देगा क्योंकि तुम 'बाप-मार' जो ठहरे !

इस दोहे में 'बाप' शब्द के आधार पर व्यंग्य कसा गया है। घोड़े को उत्साहित करने के लिए 'बाप बाप' का प्रयोग किया जाता है। प्रवाद प्रचलित है कि अपने पिता के घातक जोधपुरनरेश बखतसिंह जी अपने अश्व को एक बार 'बाप बाप' कहकर 'बिड़दा' रहे थे। इस पर एक चारण ने उक्त दोहे द्वारा ताना मारा था।

कभी-कभी श्लेष का आश्रय लेकर जो वक्रोक्ति प्रचलित हो जाती है, उसमें भी यह समोच्चार-विनोद देखने को मिलता है। नैणसी पर जब एक लाख रुपये का जुर्माना कर दिया गया तब उसने कहा लाख ! लाख, मेरे पास कहाँ ? लाख, जो बड़ पीपल से पैदा होती है, लखारों के यहाँ मिलेगी। मैं तो ताँबे का एक पैसा भी देने से रहा ![1]

व्यक्ति के नाम को लेकर जो समोच्चार-विनोद किया जाता है, वह भी कम आकर्षण और कुतूहल का कारण नहीं। निम्नलिखित कहावती दोहे में 'जड्डा' शब्द इस दृष्टि से ध्यान देने योग्य है।

धर जड्डी अम्बर जडा, जड्डा चारण जोय।
जड्डा नाम अलाह दा, और न जड्डा कोय॥

प्रवाद प्रचलित है कि नवाब खानखाना ने जड्डा नाम के एक चारण को तीन लाख रुपये इनाम में दिये थे और उसकी प्रशंसा में उक्त दोहा कहा था जिसका अभिप्राय यह है कि पृथ्वी और आसमान असीम हैं, इस चारण की कवित्व-शक्ति भी असीम है। इनके अतिरिक्त असीम नाम तो केवल परमात्मा का है, और कोई असीम नहीं।

इस प्रकार समोच्चार-विनोद के तथा श्लेष के अनेक रूप राजस्थानी कहावतों में उपलब्ध होते हैं।

जहाँ तक शब्दालंकारों का प्रश्न है, राजस्थानी भाषा की सामान्य लोकोक्तियों में वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास तथा यमक का प्रयोग विशेषतः देखने को मिलता है तथा श्लेष व समोच्चार-विनोद मुख्यतः साहित्यिक कहावतों में उपलब्ध होते हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भी है।

---

१. लाख लखरां नीपजै, बड़ पीपल री साख।
नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक॥

आ. अर्थालंकार

(१) **लोकोक्ति और अलंकार**—आचार्य भामह ने जहाँ प्रत्येक अलंकार को वक्रोक्तिमूलक[1] माना है, वहाँ आचार्य दण्डी के मतानुसार समस्त अलंकारों का एक मात्र आश्रय अतिशयोक्ति है।[2] किन्तु वस्तुतः देखा जाय तो भामह की वक्रोक्ति और दण्डी की अतिशयोक्ति में कोई तात्विक अन्तर नहीं है, अर्थ-वैचित्र्य अथवा वक्रोक्ति मूलतः अतिशय उक्ति ही है। किसी भी उक्ति में अतिशयता अथवा वक्रता तभी आती है जब कि उसे लोकोत्तर रूप में प्रस्तुत किया जाय। यही अभिव्यक्ति का वैचित्र्य है जिसके कारण किसी उक्ति को 'अलंकार' की संज्ञा मिलती है। अलंकार वास्तव में अभिव्यक्ति की एक वैचित्र्यमयी प्रणाली का ही नाम है।

लोकोक्ति और अलंकार का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। संक्षिप्तता और अर्थ-गर्भितता के साथ-साथ चटपटापन (Salt) भी लोकोक्ति का एक प्रमुख गुण माना गया है, और लोकोक्ति में चटपटापन तभी आता है जब कि उसकी अभिव्यक्ति में कोई चमत्कार हो, कोई वैचित्र्य हो। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि अलंकार के कारण ही लोकोक्ति में चटपटापन आता है। इस दृष्टि से विचार किये जाने पर अलंकार किसी भी श्रेष्ठ लोकोक्ति का एक आवश्यक गुण माना जाना चाहिए। मेरे कहने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि प्रत्येक लोकोक्ति अलंकारमयी होती है किन्तु इसमें संदेह नहीं, प्रत्येक भाषा की लोकोक्तियों में अनेक ऐसी श्रेष्ठ उक्तियाँ होती हैं जिनका चटपटापन हमें आकृष्ट करता है, जिनकी वैचित्र्यमयी अभिव्यक्ति से हम प्रभावित होते हैं।

(२) **अलंकारों का वर्गीकरण**—राजस्थानी कहावतों में भी ऐसी अनेक वक्रोक्तियाँ हैं जिन्हें सहज ही अलंकार के नाम से अभिहित किया जा सकता है। अलंकारों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में यद्यपि आचार्यों में तीव्र मतभेद चला आता है तथापि हम सब अलंकारों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं।

(१) विरोधमूलक; (२) साम्यमूलक; (३) साहचर्यमूलक और (४) बौद्धिक शृंखलामूलक।[3]

राजस्थानी कहावतों से उक्त सभी वर्गों से सम्बन्ध रखने वाले अलंकारों के कतिपय उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

(क) विरोधमूलक

(**अ**) **अधिक**—विरोधमूलक अलंकारों के बड़े मर्मस्पर्शी उदाहरण हमें राजस्थानी कहावतों में मिल जाते हैं। 'लुगाई कै पेट में टाबर खटा ज्याय, बात कोनी

---

१. सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते,
यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना।
—भामह काव्यालंकार २।८५.

२. अलंकारान्तराणामप्येकमाहुः परायणम्,
वागीशमहितामुक्तिमिमामतिशयाह्वयाम्॥—काव्यादर्श २।२२७.

३. विस्तृत विवेचन के लिए देखिये 'आलोचना के पथ पर' में प्रकाशित लेखक का 'अलंकार और मनोविज्ञान' शीर्षक लेख।

खटावै' राजस्थानी भाषा की एक कहावत हैं जिसका तात्पर्य यह है कि स्त्री के पेट में बच्चा समाया रहता है, बात नहीं समाती ! स्त्रियाँ कोई गुप्त भेद नहीं रख पातीं, इस सामान्य-सी बात को जिस विरोध-पद्धति द्वारा यहाँ प्रकट किया गया है, वह बड़ी ज़ोरदार है। बच्चे और बात में आकार को लेकर वैषम्य प्रकट करना बड़ा कौतूहल-जनक है। भला बात का भी क्या कोई आकार होता है ? किसी बात को याद रखना, कहना, सुनना ये सब मनुष्य की चेतना से सम्बन्ध रखते हैं किन्तु गर्भस्थ-बच्चे से बात की तुलना कर इस तरह की एक लोकोक्ति कह दी गई है जो अपनी अभिव्यक्ति की भंगिमा के कारण बड़ी प्रभावोत्पादक हो गई है।

अलंकारशास्त्र की दृष्टि से उक्त कहावत को 'अधिक' अलंकार का उदाहरण माना जा सकता है क्योंकि आधार और आधेय में से किसी एक के आधिक्य-वर्णन को 'अधिक' अलंकार कहते हैं।[1] यहाँ आधार पेट की अपेक्षा आधेय बात का आधिक्य प्रदर्शित किया गया है।

(आ) विषम—विषम अलंकार की परिभाषा देते हुए काव्यप्रकाशकार ने कहा है कि—

क्वचिद् यदतिवैधर्म्यान्न श्लेषो घटनामियात् ।
कर्तुः क्रियाफलावाप्तिर्नैवानर्थश्च यद् भवेत् ॥

अर्थात् अत्यन्त असमानता के कारण जहाँ दो वस्तुओं में मेल घटित न हो अथवा जहाँ इष्टफल की प्राप्ति तो निश्चय ही न हो किन्तु साथ ही में कोई अनर्थ और हो जाय, वहाँ विषम अलंकार होता है।

'कठे राम राम, कठे ट्यां-ट्यां' तथा 'कठे राजा भोज, कठे गांगलो तेली' जैसी लोकोक्तियों में अनुरूपता के अभाव के कारण विषम अलंकार समझना चाहिए। 'कागलो हंस हाली सीखै हो, आप हाली भी भूलगो' अर्थात् कौवा हंस की चाल सीख रहा था, अपनी भी भूल गया। यह कहावत भी विषम अलंकार का उदाहरण है क्योंकि यहाँ न केवल इष्ट की अप्राप्ति ही है बल्कि एक अनर्थ और घटित हो गया है। इसी प्रकार 'धणी की कांच दाबण गई, आ पड़ी आपकी' अर्थात् पति की काँच दबाने गई किन्तु आ पड़ी अपनी। तथा 'गई बेटै तांई, खोयाई कसम नैं' अर्थात् गई थी पुत्र के लिए किन्तु पति भी गँवा आई[2] आदि कहावतों में विषम अलंकार के अनेक उदाहरण सहज ही मिल सकते हैं।

(इ) विरोधाभास—"भाई बरोबर बैरी नहीं, र भाई बरोबर प्यारो नहीं" में विरोधाभास अलंकार है क्योंकि इसमें एक ही साँस में दो विरोधी बातें कह दी गई हैं। यह विरोध केवल प्रातिभासिक है, तात्विक अथवा पारमार्थिक नहीं।

(ई) आक्षेप—आक्षेप अलंकार के दो लोकोक्तिगत उदाहरण लीजिए—

१. "राजा कै बेटै केरडी मार दी, म्हे क्यूं कहाँ" अर्थात् राजा के लड़के ने

१. आश्रयाश्रयिणोरेकस्याधिक्येऽधिकमुच्यते—साहित्यदर्पण।

२. मिलाइये—
"पुत्रं भजन्त्याः प्रियोऽपि नष्टः।"

बछिया मार दी, मैं क्यों कहूँ ?

२. 'गूगो बड़ो क राम ? कह—बडो तो है सो ही है पण सापां का देवता नै साची बात कहकर कुण रुसावै' अर्थात् गूगा बड़ा या राम ? उत्तर—बड़ा तो जो है सो ही है अर्थात् राम ही बड़ा है किन्तु सच्ची बात कहकर सांपों के देवता गूगा को कौन रुष्ट करे ?

उक्त दोनों लोकोक्तियों में कही हुई बात का बड़े सुन्दर ध्वन्यात्मक ढंग से निषेध कर दिया गया है। बात कह भी दी गई है और प्रतिषेध भी कर दिया गया है।

(ख) साम्यमूलक

(अ) उपमा—साम्यमूलक अलंकारों में उपमा, रूपक आदि अलंकार प्रमुख हैं। "आबा की सी बीजली, होली की सी झल" राजस्थानी भाषा की एक प्रसिद्ध कहावती उपमा है जिसमें किसी नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह दीप्ति में आकाश में चमकती हुई बिजली तथा होली की ज्वाला के समान है। पूर्वार्द्ध की उपमा में नायिका का चापल्य, आकर्षण, लुका-छिपी, चकाचौंध करने की शक्ति आदि सब एक साथ ही व्यंजित हो रहे हैं। संयोग की बात है कि स्व० प्रसाद जी ने भी कामायनी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कुछ इसी तरह की बात कही थी "खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।"

कहावतों में उपमा का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। अरबी भाषा में तो कहावत के लिए जो Mathal शब्द प्रयुक्त होता है, उसका शाब्दिक अर्थ ही है उपमा अथवा सादृश्य। अरबवासियों के काव्य में भी उपमाओं का औचित्य और उनका प्राचुर्य स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है।[1] राजस्थानी भाषा की कहावतों में भी उपमाओं के उदाहरण बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं।

(आ) रूपक—रूपक अलंकार वहीं फबता है जहाँ आरोप औचित्य लिए हुए होता है। उदाहरण के लिए राजस्थानी कहावतों में से रूपक के दो उदाहरण लीजिए—

१. चालणी को पींदो, पूतमुई की छाती।

अर्थात् उस स्त्री का हृदय जिसका पुत्र काल-कवलित हो गया हो, चलनी का पेंदा ही समझिए। जैसे चलनी के पेंदे में सैंकड़ों छिद्र होते हैं, उसी प्रकार पुत्र-शोक-विह्वला माता के हृदय में भी असंख्य छेद हो जाते हैं। वह कभी पुत्र की किसी वस्तु को देखती है, स्मरण करती है अथवा दूसरों से सुनती है तो उसका हृदय शतधा विदीर्ण होकर चलनी हो जाता है।

२. "सांप चालती मौत है"

इस राजस्थानी कहावत में भी सांप पर चलती-फिरती मौत का आरोप बहुत ही औचित्यपूर्ण हुआ है।

(इ) सम—अनुरूप वस्तुओं के वर्णन में सम अलंकार होता है। इस अलंकार के भी बहुत से उदाहरण राजस्थानी कहावतों में मिल जाते हैं। यथा,

(१) बडां की बडी ई बात अर्थात् बड़ों की बातें भी बड़ी ही होती हैं।

---

1. Introduction to the Proverbs of Arabia by H. A. R. Gibb.

(२) बडी रातां का बडा ई तड़का अर्थात् बड़ी रातों के प्रातःकाल भी बड़े ही होते हैं।

(३) इसी खाट का इस्या ही पाया अर्थात् ऐसी खाट के पाये भी ऐसे ही होते हैं।

(४) इसै परथावां का इसा ही गीत अर्थात् ऐसे विवाहों के गीत भी ऐसे ही होते हैं।

(५) जसा साजन, उसा भोजन अर्थात् जैसे साजन हैं, वैसे ही भोजन मिलते हैं।

(६) जसा देव उसा ही पुजारा अर्थात् जैसे देव हैं, वैसे ही पुजारी हैं।

(७) खुदा जैंड़ा ही फरेस्ता अर्थात् जैसा खुदा है, वैसे ही हैं फरिश्ते।

(ई) अर्थान्तरन्यास—अर्थान्तरन्यास और लोकोक्ति का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अर्थान्तरन्यास के रूप में प्रयुक्त अनेक उक्तियाँ कहावतें बन गई हैं, इसे कौन नहीं जानता ? 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' जैसी पंक्तियाँ सम्भवतः इसी श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं।[1]

राजस्थानी लोकोक्तियों में से एक उदाहरण लीजिये—

आयाँ मुँह बोली नहीं, पिउ चाल्यो करि रोस।
आप कमाया काँमड़ा, दई न दीजे दोस॥

अर्थात् प्रियतम के आने पर जब नायिका मुँह से नहीं बोली तो प्रिय रुष्ट होकर चला गया। अपने किये हुए कामों के लिए दैव पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए।

इस दोहे के उत्तरार्द्ध में अर्थान्तरन्यास अलंकार है जहाँ विशेष द्वारा सामान्य का समर्थन किया गया है।

(ग) साहचर्यमूलक

(अ) अप्रस्तुतप्रशंसा—अप्रस्तुतप्रशंसा आदि अलंकारों को 'साहचर्यमूलक' वर्ग में रखा जा सकता है। जहाँ तक अप्रस्तुतप्रशंसा का सम्बन्ध है, प्रत्येक कहावत ही इस अलंकार का उदाहरण प्रस्तुत करती है क्योंकि कहावती वाक्य एक प्रकार से अप्रस्तुत-कथन ही होता है जिसका प्रयोग प्रस्तुत पर घटित करने के लिए हुआ करता है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिए—

'एक म्यान में दो तलवार कोनी खटावै।'

एक स्थान में दो समान शक्ति वाले व्यक्तियों का निर्बाह नहीं हो सकता, इस प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराने के लिए ही अप्रस्तुत-कथन के रूप में उक्त कहावत का प्रयोग हुआ है।

१. अथांगराजादवतार्य चक्षुर्याहीति जन्यामवदत्कुमारी।
नासौ न काम्यो न च वेद सम्यक् द्रष्टुं न सा भिन्न रुचिर्हि लोकः।
—कालिदास

(आ) मिथ्याध्यवसिति—मिथ्याध्यवसिति नामक एक अलंकार होता है जिसमें कोई एक असम्भव या मिथ्या बात निश्चित करके तब कोई दूसरी बात कही जाती है, और इस प्रकार वह दूसरी बात भी मिथ्या ही होती है। राजस्थानी लोकोक्तियों में कुछ ऐसे कहावती वाक्य हैं जो असंभव अर्थ को प्रकट करते हैं और मिथ्याध्यवसिति अलंकार के निदर्शनार्थ रखे जा सकते हैं।

'ससै सींग की धनुषड़ी रमै बाँझ को पूत' एक ऐसी ही कहावत है जिसका आशय यह है कि यदि खरगोश के सींग का धनुष बनाया जा सके तभी वन्ध्या का पुत्र उससे खेल सकता है।

मिथ्याध्यवसिति अलंकार को भी साहचर्यमूलक ही मानना चाहिए, क्योंकि इसमें एक असम्भव बात के साहचर्य से हम दूसरी असम्भव बात पर पहुँचते हैं।[1]

(घ) बौद्धिक श्रृंखलामूलक

बौद्धिक श्रृंखलामूलक अलंकारों में से यथासंख्य आदि के उदाहरण राजस्थानी कहावतों में से दिये जा रहे हैं।

(अ) यथासंख्य—यथासंख्य अलंकार के उदाहरणार्थ निम्नलिखित कहावती पद्य को लीजिये—

काल कुसम्मै ना मरै वामण बकरी ऊँट।
बो माँगै, वा फिर चरै, बो सूखा चाबै ठूंट॥'

अर्थात् अकाल अथवा कुसमय में ब्राह्मण, बकरी और ऊँट नहीं मरते। ब्राह्मण माँगकर काम निकाल लेता है, बकरी इधर-उधर चरकर पेट भर लेती है तथा ऊँट सूखे डंठल चबाकर ही जीवित रह जाता है। यहाँ पर दोहे के पूर्वार्द्ध में कही हुई वस्तुओं के कार्य का वर्णन उत्तरार्द्ध में उसी क्रम से किया गया है। इसलिए इस दोहे में यथासंख्य अथवा क्रमालंकार है।

(आ) देहली दीपक—देहली दीपक अलंकार वहाँ होता है जहाँ एक ही पद का दो वाक्यों में अन्वय होता हो। उदाहरण के लिए निम्नलिखित राजस्थानी कहावत लीजिये—

बिना बाप को छोरो बिगड़ै, बिना माय की छोरी।

इसमें 'बिगड़ै' क्रिया 'बिना बाप को छोरो बिगड़ै' तथा 'बिना माय की छोरी बिगड़ै' इन दोनों वाक्यों के साथ लगती है।

राजस्थानी कहावतों में और राजस्थानी कहावतों में ही क्यों, अन्य बहुत सी भाषाओं की कहावतों में भी देहली दीपक के बहुत से उदाहरण मिल जाते हैं क्योंकि यह अलंकार वाक्य-लाघव में सहायक होता है।

(इ) उत्तर—उत्तर अलंकार के अनेक भेदों में से एक भेद वह भी है जहां अनेक प्रश्नों का एक ही उत्तर दे दिया जाता है। इस अलंकार से सम्बन्ध रखने वाले

1. There is a saying both in greek and Latin 'where mice nibble iron' apparently referring to the land of nowhere.

—*Quoted in "The Ocean of Story", Vol. V. p. 66.*

बहुत से दोहे राजस्थानी भाषा में मिलते हैं। यथा,

गाड़ी पड़ी उजाड़ में, कांटो लागे पांव ।
गोरी सूखे सेज में, कह चेला, किण दाय ।
गुरुजी जोड़ी नाहीं ।

अर्थात् गाड़ी उजाड़ में पड़ी है, पैर में काँटा लगता है और गोरी सेज में सूखती है। हे शिष्य ! यह क्योंकर हुआ ? शिष्य ने उत्तर दिया—'जोड़ी नहीं।'

इस दोहे में 'जोड़ी' श्लिष्ट प्रयोग है। गाड़ी के पक्ष में बैलों की जोड़ी, पैर के पक्ष में जूतों की जोड़ी और गोरी के पक्ष में पति से तात्पर्य है। इस प्रकार तीन प्रश्नों का एक ही उत्तर यहाँ दे दिया गया है।

(ई) **यूरोपीय अलंकार**—यूरोपीय अलंकारों में से भी मानवीकरण आदि के उदाहरण राजस्थानी कहावतों में मिल जाते हैं। यथा,

(१) **रिपिया ! तेरी रात दूजो नर जलम्यो नहीं।**
जे जलम्या दो च्यार तो जुग में जीया नहीं ॥

अर्थात् हे रुपये ! जिस रात तुम पैदा हुए, उस रात कोई भी पैदा नहीं हुआ क्योंकि तुम जैसा इस संसार में कहीं कोई दिखलाई ही नहीं पड़ता। यदि कदाचित् दो-चार पैदा हुए हों तो वे जीवित नहीं रहे क्योंकि यदि वे जीवित रहते तो देखने में तो आते।

(२) **आ रै मेरा सम्पटपाट, मैं तनै चाटूं तू मनै चाट।**

अर्थात् हे मेरे सर्वनाश ! आओ, मैं तुम्हें चाटूं और तू मुझे चाट।

उक्त उदाहरणों में 'रुपया' और 'सम्पटपाट' का मानवीकरण हुआ है।

(३) **निष्कर्ष**—ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि राजस्थानी कहावतों में अलंकारों के प्रयोग के कारण चटपटापन आ गया है। दूसरी बात यह है कि कहावतों में अलंकारों का प्रयोग अबोधपूर्व और अनायास होता है जिसके कारण अभिव्यक्ति सहज स्वाभाविक बनी रहती है, उसमें कृत्रिमता नहीं आ पाती। कहावतों के अधिकांश उद्‌भावक ऐसे होते हैं जिनको अलंकारशास्त्र का ज्ञान नहीं हुआ करता किन्तु फिर भी जिनकी कहावतों में स्थान-स्थान पर अलंकारों के सुन्दर उदाहरण मिल जाते हैं। अलंकारों के ऐसे ही स्वाभाविक प्रयोगों के कारण भावोत्कर्ष में सहायता मिलती है।

राजस्थानी कहावतों से अलंकारों के जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे केवल दिग्दर्शन के रूप में हैं। वैचित्र्यमयी अभिव्यक्ति के सभी प्रकारों पर यहाँ विचार नहीं किया गया है, यहाँ केवल उन्हीं अलंकारों को विचारार्थ लिया गया है जिनसे उनके वैज्ञानिक वर्गीकरण में किसी प्रकार की सहायता मिली है। अभिव्यक्ति के सभी प्रकारों को गिनकर रख देना वस्तुतः संभव नहीं होता। यही कारण है कि आलंकारिकों में अलंकारों की संख्या के संबंध में सदा से मतभेद चलता आया है और कदाचित् हमेशा चलता रहेगा। वैसे कहावतों में ही अभिव्यक्ति के ऐसे प्रकार मिल सकते हैं जिनका आलंकारिकों द्वारा अभी तक कोई नामकरण ही नहीं किया गया हो।

४. राजस्थानी कहावतों के अध्याहार

स्वल्पाक्षरता श्रेष्ठ कहावत का गुण है। इसलिए जिन कहावतों में न्यूनतम शब्दों के प्रयोग के द्वारा अधिकतम अर्थ की अभिव्यक्ति होती है, वे कहावतें श्रेष्ठ समझी जाती हैं। अनेक कहावतें ऐसी होती हैं जिनमें अर्थ का अध्याहार करना पड़ता है। यह अर्थ का अध्याहार राजस्थानी लोकोक्तियों में अनेक रूपों में उपलब्ध होता है।

(१) **अध्याहार के विविध रूप** – (क) **उद्देश्य** (Subject) **का अध्याहार।**

(अ) 'ढल्यो घाटी, हुयो मांटी।'

अर्थात् जब भोजन कंठ की घाटी को पार कर गया तो मिट्टी हो गया क्योंकि स्वाद तो जिह्वा में ही है।

(आ) 'निकली होठां, चढ़ी कोठां।'

अर्थात् बात मुँह से निकलते ही सब जगह फैल जाती है।

(इ) 'धायो मीर, भूखो फकीर, मर्यां पाछै पीर।'

अर्थात् मुसलमान यदि तृप्त हो तो अमीर कहलाता है, भूखा हो तो फकीर कहा जाता है और मरने पर पीर कहलाता है।

उक्त दोनों कहावतों में क्रमशः भोजन, बात और मुसलमान का अध्याहार किया गया है। ये तीनों शब्द यहाँ कर्त्ता कारक में हैं।

(ख) **विधेय** (Predicate) **का अध्याहार।**

(अ) 'राजा को दान, प्रजा को स्नान।'

अर्थात् राजा दान करके और प्रजा स्नान करके ही पुण्य-लाभ करती है क्योंकि दान देने की शक्ति सामान्य प्रजा-जन में नहीं होती। कहने का तात्पर्य यह है कि राजा दान द्वारा जितना पुण्यार्जन करता है, प्रजा उतना ही पुण्यार्जन स्नान द्वारा कर लेती है।

(आ) 'फलको जेट को, टाबर पेट को।'

अर्थात् फुलकों के समूह के बीच का जो फुलका होता है, वह मुलायम होता है तथा पेट का बालक ही काम देता है, गोद का नहीं।

(इ) 'लुगाई को न्हाणूं, मरद को खाणूं।'

अर्थात् स्त्री का स्नान और पुरुष का भोजन जल्दी होना चाहिए। जो स्त्री स्नान-श्रृंगार में अपना बहुत सा समय लगा देती है, वह कहावती दुनियाँ में अच्छी नहीं समझी जाती। राजस्थान में एक दूसरी कहावत में कहा गया है 'एडी रगड़ी अर बहू बगड़ी'[1] अर्थात् गाँवों में अधिक साफ-सुथरे रहने से भी स्त्री की निन्दा होने लगती है। पुरुष भी भोजन करने में यदि अधिक समय देने लगे तो उसे परिवार के पालन-पोषण के लिए धनार्जन आदि में अधिक समय नहीं मिलेगा।

जैसा ऊपर की व्याख्या से स्पष्ट है, तीनों कहावतों में विधेय का अध्याहार किया गया है।

१. मेवाड़ की कहावतें, भाग १; (पण्डित लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ११।

(२) **अध्याहार का कारण**—ऊपर जितनी कहावतें उद्‌धृत की गई हैं, उन सब में न्यूनपदत्त्व के कारण अध्याहार करना पड़ता है और सम्भव है, इस न्यूनपदत्व का कारण लोकोक्तिकारों की तुकप्रियता हो किन्तु ऐसी भी अनेक कहावतें मिलती हैं जिनमें तुक का अभाव होते हुए भी अध्याहार करना पड़ता है। उदाहरणार्थ—

(अ) 'दूबली अर दो साढ़।'

अर्थात् गाय-भैंस यदि निर्बल हो और किसी वर्ष अधिक मास के कारण दो आषाढ़ आ जायें तो उनके लिए वर्षा के अभाव में और भी मुश्किल पड़ती है।

(आ) 'देस चोरी, परदेस भीख।'

अर्थात् देश में चोरी और परदेश में भीख प्रकट नहीं होती।

अनेक बार छन्द के अनुरोध से भी कहावतों में अध्याहार कर लिया जाता है। 'लीप्यो-पोत्यो आँगण्ँ पहरी-ओढ़ी नार' राजस्थानी भाषा की एक कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि लिपा-पुता आँगन और पहनी-ओढ़ी स्त्री सुन्दर लगती है। इस कहावत में क्रिया के प्रयोग के बिना ही दोहे-छन्द के दो चरण पूरे हो गये जिन्होंने लोकोक्ति का रूप धारण कर लिया।

ऊपर के विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अनेक बार चाहे तुक अथवा छन्द अध्याहार के कारण भले ही रहें हों किन्तु अध्याहार का मुख्य कारण है वह सामासिकता जो श्रेष्ठ कहावत का एक गुण ठहराया गया है।

(३) **न्यूनपदत्व और अध्याहार**—लोकोक्तियाँ सामान्यतः सहजबोध्य होती हैं। इसलिए अंग्रेजी में एक कहावत प्रचलित है कि किसी मूर्ख के सामने जब कोई कहावत कही जाती है तो उसका अर्थ उसे समझाना पड़ता है।[1] आशय यह है कि जिसमें तनिक भी बुद्धि होगी, वह लोकोक्ति का अर्थ समझ जायगा किन्तु इस उक्ति को सर्वांश में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि कभी-कभी न्यूनपदत्व के कारण लोकोक्तियों में भी दुर्बोधता आ जाती है। अध्याहार के बल पर ही हम इस प्रकार की कहावतों का अर्थ समझ पाते हैं।

५. राजस्थानी भाषा की कथात्मक कहावतों के विविध रूप

अनेक कहावतें ऐसी होती हैं जिनके आकार-प्रकार और रंग-ढंग को देखकर ही पता चल जाता है कि उनमें से प्रत्येक के पीछे कोई-न-कोई कथा अवश्य है। राजस्थानी भाषा में इस प्रकार की कथात्मक कहावतें विविध रूपों में उपलब्ध होती हैं जिनमें से उदाहरण के लिए कुछ रूप यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१) **समस्त घटनात्मक**—बहुत सी कहावतों में घटनाओं द्वारा ही कथा समझ ली जाती है। जैसे,

(अ) नो पेठा तेरा लगवाल।
घोड़लं ने लेगो कोतवाल।।

एक व्यापारी के पास ९ कुष्माण्ड थे। वह उन्हें बेचने के लिए एक नगर में

---

1. "when a fool is told a proverb, the meaning of it has to be explained to him."

प्रविष्ट हुआ तो वहाँ के अधिकारियों ने कर के रूप में उससे वे नवों कुष्माण्ड छीन लिये और फिर भी कर वसूल करने वाले चार और बाकी बच गए ! कोतवाल ने उसका गधा ही छीन लिया !!

(आ) फूड़ के घर हुई कुंवाड़ी, कुत्ता मिल चाल्या रेवाड़ी ।
काणं कुत्तं लीन्या सूण,[1] करा तो ली पण ढकसी कूण !

अर्थात् फूहड़ के घर किवाड़ लग गये । इसलिए कुत्तों ने मिलकर रिवाड़ी जाने का निश्चय कर लिया क्योंकि घर के किवाड़ बन्द हो जाने पर वे अब अन्दर नहीं जा सकेंगे । इतने में काने कुत्ते ने शकुन देखकर कहा—हमें रिवाड़ी जाने का कष्ट नहीं उठाना चाहिए । फूहड़ के घर में किवाड़ तो अवश्य हो गये हैं किन्तु वह उनको बन्द करने का कष्ट कभी न उठायेगी । इसलिए हम पहले की तरह बिना किसी आशंका के अन्दर प्रवेश करते रहेंगे ।

(इ) आधो घाल्यो ऊँखली, आधो घाल्यो छाज ।
सांगर साटै धण गई, मधरो मधरो गाज ।।

एक बार अनावृष्टि के कारण जब अकाल पड़ा तो किसी किसान को विवश होकर सांगर के बदले ही अर्थात् बहुत कम मूल्य में अपनी स्त्री को बेच देना पड़ा । आधा अन्न तो ऊँखली में रख लिया, आधा छाज में । इतना ही अन्न उसे मिला । अब जब बादल गरजता है तो किसान उससे धीरे-धीरे गरजने के लिए कह रहा है ताकि वह व्यथित न हो । अब चाहे वर्षा होती रहे, उसकी स्त्री तो गई ।

उक्त तीनों कहावतों में सम्बन्धित सभी घटनाओं का उल्लेख हुआ है ।

(२) **प्रमुख घटनात्मक**—

(अ) तिरिया चरित न जाणे कोई । खसम मार के सत्ती होई ।

अर्थात् स्त्री के चरित्र को कोई नहीं जान सकता, वह अपने पति को मारकर सती हो गई !

(आ) दगो कर्‌यो बणिए की जोय । पूत खसम नै लीनी रोय ।

अर्थात् बनिये की स्त्री ने दगा दिया जिससे पुत्र और पति के लिए उसे रोना पड़ा ।

उक्त दोनों कहावतों में कथा की सब घटनाओं का उल्लेख नहीं हुआ है, उद्धृत प्रत्येक कहावत में केवल प्रमुख घटना दे दी गई है किन्तु मात्र प्रमुख घटना के उल्लेख से सारी कहावत का मर्म नहीं खुलता । कहावत को भली भाँति समझने के लिए पूरी कथा का समझना आवश्यक होता है ।

(३) **शीर्षकात्मक**—कुछ कहावतें ऐसी हैं जो कथाओं के शीर्षक जैसी जान पड़ती हैं । उदाहरणार्थ नीचे लिखी कहावतें लीजिए—

(अ) तुरत दान महा पुन ।[2]

---

१. पाठान्तर :
"बांडै कुत्तै बींद्‌या सूण" ।

२. इस कहावत पर पूरी कहानी के लिए देखिए जैन जगत, वर्ष ७, अंक १—में प्रकाशित श्री अभयचन्द्र शर्मा का लेख ।

अर्थात् तुरत दान देने से बड़ा पुण्य होता है।

(आ) साच कह्यां मार्यो जाय।

अर्थात् सत्य कहने वालों की मौत है।

इस प्रकार की कहावतों में सारी कथा का सार शीर्षक में ही समाया रहता है।

(४) **शिक्षात्मक**—कुछ कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें कथा के माध्यम से कोई शिक्षा दी जाती है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिये—

चिड़ी चोंच मारती, कागलियाजी सुणै।
सांची कही है सायरां, जो बावै सो लुणै॥[1]

यहाँ 'जो बावै सो लुणै' शिक्षा (Moral) के रूप में प्रयुक्त है।

इस शिक्षात्मक कहावत के पहले 'साची कही है सायरां' अर्थात् कवियों ने सत्य कहा है, इस पदावलि का प्रयोग हुआ है। राजस्थान की लोक-कथाओं के बीच-बीच में बहुत सी कहावतें बिखरी पड़ी हैं। बात कहने वाला जब यथास्थान लोक-प्रचलित कहावतों का प्रयोग करता है तो वह अनेक बार 'सायरां साची कही है' और 'सायरां रा वचन झूठा को हुवै नी' द्वारा लोकोक्ति की अवतारणा करता है। मलय भाषा में भी 'विज्ञजन ऐसा कहते हैं' द्वारा किसी कहावत का उपक्रम किया जाता है।[2]

(५) **चरम वाक्यात्मक**—अनेक कहावतें ऐसी हैं जो किसी कथा के चरम वाक्य के रूप में प्रयुक्त हैं। उदाहरण के लिए एक निम्नलिखित कहावत लीजिये—

'बाबाजी, आपरै ही चरणां रो परसाद है' राजस्थान में प्रचलित एक लोकोक्ति है जिसका मर्म समझने के लिए हमें निम्नलिखित घटना को लक्ष्य में रखना होगा—

'एक बाबाजी एक दूकानदार के पास गये। बाबा बड़े प्रतिष्ठित थे, दूकानदार के लिए उनका स्वागत करना आवश्यक हो गया। किन्तु दूकानदार था बड़ा कंजूस। जूठे हाथों कुत्ते को भी नहीं हटाता था। बाबाजी ने अपने जूते दूकान की सीढ़ियों पर रख दिये थे। दूकानदार ने मन ही मन सोचा—क्या ही अच्छा हो, यदि 'मियांजी की ही मोगरी और मियांजी का ही सिर' वाली नीति का प्रयोग किया जाय। दूकानदार ने तुरन्त अपने नौकर से इशारा किया कि वह बाबाजी के जूते बेच दे। किसी यजमान से हाल ही में नये जूतों की जोड़ी बाबाजी को मिली थी। जूते बेच दिये गये और बिक्री से जो कुछ वसूल हो सका, उससे बाबाजी के लिए बड़ी अच्छी मिठाइयाँ मँगवाई गईं। जब बाबाजी पेट भर मिठाई खा चुके तो बड़े आत्मसन्तोष और प्रशंसा के स्वर में कहने लगे—"क्या ही स्वादिष्ट मिठाई आज प्राप्त हुई है। श्रद्धा और भक्ति-भाव से खिलाई हुई वस्तु में स्वभावतः ही मिठास बढ़ जाया करता है।"

१. द्रष्टव्य 'मरु भारती' वर्ष २, अंक २ में प्रकाशित श्री मनोहर शर्मा का 'राजस्थान की लोक-गाथाएँ' शीर्षक लेख।

2. Proverbs are frequently introduced in writing by the expression "Saperti Kala arif" as say the wise.

(—Racial Proverbs (S. G. Champion), Introduction, P. XVI.

दूकानदार ने उत्तर दिया, "बाबाजी, यह आपके ही चरणों का प्रसाद है !"

यह उक्त कथा का चरम वाक्य है जो कहावत के रूप में प्रयुक्त होने लगा है। यह वाक्य नाटकीय व्यंग्य (Dramatic irony) का भी अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है।

कथात्मक कहावतों के कुछ प्रकारों का निर्देश ऊपर किया गया है किन्तु सब प्रकारों का उल्लेख करना न तो यहाँ सम्भव ही है और न वांछनीय ही।

६. राजस्थानी कहावतों के संवाद

क्या महाकाव्य, क्या नाटक, क्या उपन्यास और क्या आख्यायिका, सभी में संवादों की योजना दृष्टिगोचर होती है। संवाद, मुख्यतः एक नाटकीय उपकरण है जिसके समावेश से रोचकता बढ़ती है और उक्तियाँ भी प्रभावोत्पादक बन जाती हैं। राजस्थानी कहावतों के रूप-निर्माण में संवाद-शैली के विविध रूप दिखलाई पड़ते हैं। संवाद-पद्धति के न जाने कितने प्रकार होते हैं और इस शैली का आश्रय लेने से किस प्रकार आकर्षण में वृद्धि हो जाती है, यह दिखलाने के लिए राजस्थानी कहावतों से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं। राजस्थानी कहावतों के संवादों को हम दो भागों में बाँट सकते हैं (१) वे संवाद जिनमें मानवी सृष्टि का योग है और (२) वे संवाद जिनमें मानवेतर सृष्टि अपना हाथ बँटाती है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) मानवी सृष्टि और कथोपकथन के प्रकार—

(क) वाद-विवाद के रूप में संवाद

किसी ने कहा—

"मरद तो मूच्छयाल् बंको, नैण बंकी गोरिया।
सुरहल् तो सींगाल् बंकी, पोड बंकी घोड़िया ॥"

अर्थात् मर्द तो वही श्रेष्ठ है जो मूँछों वाला हो, कामिनी तो वही है जिसके नेत्र बाँके हों, गाय तो वही है जिसके सींग अच्छे हों और घोड़ी तो वही है जिसके सुम सुन्दर हों।

इस उक्ति को सुनकर राजस्थानी संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधित्व करने वाले किसी व्यक्ति ने तुरन्त इसका संशोधन के रूप में प्रतिवाद उपस्थित करते हुए कहा—

"मरद तो जब्बान बंको, कूख बंकी गोरिया।
सुरहल् तो दूधार बंकी, तेज बंकी घोड़िया ॥"

अर्थात् मर्द तो वही है जो जबान का धनी हो, रानी तो वही है जो वीर-प्रसविनी हो, गाय तो वही है जो दूध देने वाली हो (कोरे सींगों को लेकर कोई क्या करे ?) घोड़ी तो वही है जो तेज चलने वाली हो।

(ख) प्रश्नोत्तर के रूप में संवाद

प्रश्नोत्तर के रूप में प्रचलित संवादों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) एक व्यक्ति द्वारा प्रश्न और दूसरे व्यक्ति द्वारा उत्तर और (२) स्वतः ही प्रश्न और स्वतः ही उत्तर।

(अ) परस्पर प्रश्नोत्तर—(१) परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में प्रचलित निम्न-

लिखित कहावती पद्यों को लीजिये--

खड़्यो न दीसै पारधी, लग्यो न दीसै बाण ।
मैं तोय बूजूँ हो पिया, श्रां किस बिद तज्या पिराण ।
जल थोड़ा नेहा घणा, लग्यो प्रीत को बाण ।
'तूं पी तूं पी, करत ग्रां, मिरगां तज्या पिराण ॥

एक बार एक दम्पति किसी वन-खण्ड में जा रहे थे । उन्होंने मृगों का एक जोड़ा मरा हुआ देखा किन्तु न तो वहां कोई शिकारी ही दिखाई पड़ता था और न मृगों के कहीं कोई घाव ही था। पत्नी ने अपने प्रिय से जब मृग-दम्पति की मृत्यु का कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि यहां पानी थोड़ा था, प्रेम की अधिकता थी; 'तू पी', 'तू पी' करते हुए ही दोनों ने अपने प्राण दे दिये। किसी शिकारी के बाण से नहीं, प्रेम-बाण से विद्ध होकर ही मृगों के इस जोड़े ने अपना प्राणोत्सर्ग कर दिया ।

इस प्रकार के संवाद में एक लघु कथा का-सा आनन्द मिलता है ।

(२) **गुरु-चेला-संवाद**—गुरु-चेला-संवाद के कहावती दोहे राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार के दोहों में गुरु शिष्य से एक साथ तीन-चार प्रश्न पूछता है और शिष्य उन सब प्रश्नों का एक ही उत्तर देता है जो अनेकार्थवाची होने के कारण सब प्रश्नों पर एक समान घटित होता है। उदाहरणार्थ गुरु-चेला-संवाद सम्बन्धी एक पद्य लीजिए :—

पान सड़ै घोड़ो अड़ै, विद्या बीसर ज्याय,
रोटी जलै अंगार में, कह चेला, किण दाय ।
गुरूजी फेर्यो नाहीं ।

अर्थात् पान सड़ता है, घोड़ा अड़ता है, पढ़ा हुआ याद नहीं रहता, रोटी अंगारों में जलती है । हे शिष्य ! बतलाओ, यह क्योंकर हुआ ? शिष्य ने उत्तर दिया, 'फेरा नहीं ।' यहां 'फेरा नहीं' श्लिष्ट प्रयोग है । पान इसलिए सड़ा कि उलट-पलट नहीं किया गया, घोड़ा इसलिए अड़ा कि फिराया नहीं गया, विद्या का विस्मरण इसलिए हुआ कि पुनरावृत्ति नहीं की गई, रोटी अंगारों में इसलिए जली कि उल्टी नहीं गई ।

श्री अगरचन्दजी तथा भँवरलालजी नाहटा ने विक्रम की १७वीं शताब्दी के प्रारम्भ में होने वाले जैन कवि कुशललाभ के 'पिंगल सिरोमणि' ग्रन्थ के आधार पर गुरु-चेला संवाद सम्बन्धी पद्यों की संख्या ३५० मानी है ।[१]

(३) **आनन्द-करमानन्द-संवाद**—श्री खेतसिंह जी मिश्रण के मतानुसार महान् वैयाकरण हेमचन्द्र के समय में सिद्धराज सोलंकी के दरबार में कंकालण भाटड़ी को परास्त करने वाले दो चारणों की एक जोड़ी थी जिनका नाम था आनन्द और करमानन्द । इस जोड़ी की एक विशेषता यह थी कि आनन्द दोहे की पहली पंक्ति बनाता और करमानन्द दूसरी पंक्ति में उसका उत्तर देता । ज्ञान, नीति, प्रेम और व्यावहारिक बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाले आनन्द करमानन्द के बहुत से दोहे आज भी गुजरात,

१. देखिये : 'गुरु-चेला संवाद' श्री अगरचन्दजी नाहटा तथा श्री भंवरलालजी नाहटा, राजस्थान भारती, भाग २, अंक १ ।

काठियावाड़ और राजपूताने में प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिए एक दोहा लीजिये :

आणंद कहे करमाणंदा, कांटो बड़ो के शरीर।
प्राश वलूंधी सुन्दरी, सौंपी दियो शरीर॥

श्री खेतसिंहजी मिश्रण का अनुमान है कि हेमचन्द्र की प्राकृत व्याकरण में उद्धृत निम्नलिखित दोहा भी, बहुत सम्भव है, आनन्द करमानन्द का ही बनाया हुआ हुआ हो—

बिंबाहरि तणु रयणवण किउ ठिउ सिरि आणंद।
निरुवम रसु पिएँ पिअविजण सेस हो दिण्णी मुद्द॥

अर्थात् हे आनन्द! बिंब फल के समान अधर पर किया हुआ यह दंत-क्षत कैसी शोभा दे रहा है? ऐसा लगता है, मानो प्रिय ने अनुपम रस पीकर बाकी रस के ऊपर इसलिए छाप लगादी है कि उसे और कोई न पी जाय![1]

(आ) **स्वतः प्रश्न और स्वतः उत्तर**—ऐसी कहावतें भी अनेक हैं जहाँ स्वतः उठाये गये प्रश्न का स्वतः ही उत्तर दे दिया गया है। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिये—

'कुत्ती क्यूं घुसै है? कह—टुकड़ै खातर।'

अर्थात् कुत्ती क्यों भौंकती है? उत्तर—टुकड़े के लिए।

इस प्रकार की कहावतों में ऐसा नहीं होता कि एक व्यक्ति प्रश्न करता है और दूसरा उसका उत्तर देता है। अभिव्यक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए इस प्रकार की प्रश्नोत्तर-पद्धति एक चातुर्यपूर्ण कौशल का काम देती है।

(२) **मानवेतर सृष्टि और संवाद**—अनेक कहावतें ऐसी हैं जिनमें सृष्टि के प्राणियों ने कहावत को जोरदार बनाने में योग दिया है जैसे

(अ) मकोड़ो कह—मा! मैं गुड़ की भेली उठा ल्याऊँ। कह—कड़तू कानी देख!

अर्थात् मकोड़ा (कीट-विशेष) कहता है कि हे माँ! मैं गुड़ की भेली उठा लाऊँ! उसे उत्तर मिला—अपने कटि-प्रदेश की ओर तो देख! तात्पर्य यह है कि अपने सामर्थ्य के अनुसार ही काम किया जा सकता है।

(आ) धोली! धाड़ आई। बाँधैगो, वो ही नीरैगो।

किसी ने कहा—हे धवल गाय! डाकू आ रहे हैं। गाय ने उत्तर दिया—इससे मुझे क्या? मुझे तो जो बाँधेगा, वही मेरे लिए दाने-पानी की भी व्यवस्था करेगा।

(इ) टाँडो क्यूँ हो, कै साँड हाँ। गोबर क्यूँ करो? कै—गऊ का जाया हाँ।

अर्थात् गरजते क्यों हो? साँड हैं। गोबर क्यों करते हो? गाय से पैदा हुए हैं।

अवसरवादियों को लक्ष्य में रखकर यह कहावत कही गई है।

इस प्रकार की कहावतों में मानवेतर सृष्टि के प्राणी प्रतीकवत् व्यवहृत होते हैं।

१. चारण साहित्य मां दुहा नुं स्थान। (श्री खेतसिंहजी नारायणजी मिश्रण) चारण वर्ष १, अंक ४, पृष्ठ ७-८।

७. राजस्थानी कहावतों में 'लौकिक न्याय' का रूप

संस्कृत में जिस प्रकार अजाकृपाणी आदि न्याय प्रचलित हैं, उसी प्रकार राजस्थानी भाषा में कुछ ऐसे दृष्टान्त हैं जो कहावतों की भाँति ही प्रचलित हैं। इस प्रकार के दृष्टान्त वस्तुतः 'लौकिक न्याय' ही हैं। निम्नलिखित उदाहरण से प्रकृत विषय का स्पष्टीकरण हो सकेगा :

'नाई हालो ठोलो, वाणिया हालो टक्को।'

एक नाई किसी बनिये के यहाँ हजामत बनाने गया। जब वह हजामत बना चुका तो उसने बनिये की टाट को एक बार अपनी अँगुलि की ग्रन्थि से बजाया। यद्यपि इससे बनिया मन ही मन रुष्ट तो बहुत हुआ तथापि उसने नाई को उसकी करतूत का फल चखाने के उद्देश्य से कृत्रिम हर्ष प्रकट किया और उसे एक टका भेंट कर दिया। वही नाई एक दिन किसी ठाकुर के यहाँ हजामत बनाने गया। बनिये से पुरस्कार मिल जाने के कारण उसे तो हजामत के बाद टाट बजाने का चस्का पड़ गया था। इसलिए पुरस्कार के लिए लालायित होकर ठाकुर के सिर पर भी उसने अँगुलि की ग्रन्थि को आजमाया। ठाकुर ने इसे अपना अपमान समझा और तुरन्त ही तलवार हाथ में ले नाई का सिर धड़ से अलग कर दिया।

इस प्रकार जब किसी को उसके कुकर्म की सजा दिलवाने के लिए कुछ प्रलोभन देकर कुमार्ग की ओर प्रवृत्त कर दिया जाता है, तब उक्त 'न्याय' का प्रयोग किया जाता है।

'गुजराती कहेवत संग्रह' में इसी घटना का निम्नलिखित रूप में उल्लेख हुआ है :

"एक पैसावालो वाणीओ अेक हजामनी पासे हजामत करावा बेठो, हजामत करी रह्या पछी हजामे वाणीआने माथे, सारी हजामत थई छे के केम ते जोवा, हाथ फेरव्यो सारी हजामत थई मालुम पड़ी अेटले हजामे वचली आंगली वालीने वाणीआना माथा मां टकोरो मार्यो। वाणीआने रीस तो चडी, पण ते दबावी राखी ने मुनीम ने हुकम कर्यों के अेक सुना मोहोर धांअेजाने आपो। धांअेजे मान्युं के टकोरो मारयो ते सारी बात छे, केम के हजामती अेक सुना मोहोर टकोराथी पाकी। धांअेजाए टकोरा माखानो रिवाज बराबर ग्रहण कर्यो ने कोई अमीरनुं वतुं करूं तो टकोरो मारूं। तेम करतां बादशाही फोजना सेनापतिनुं वतुं करवा जोग आव्यो, त्यारे हजामत करीने सेनापति ने टकोरो मार्यो तेनी साथे ज सेनापतिअे धांअेजानुं शिर उडावी दीधुं ते ऊपर थी आ दोहरो थयो छे।"[1]

राजस्थानी और गुजराती आख्यान में अन्तर इतना ही है कि राजस्थान के नाई को बनिये से एक टका मिला है जब कि गुजराती नाई को एक स्वर्ण-मोहर, राजस्थानी नाई की मृत्यु हुई है एक ठाकुर के हाथों, जब कि गुजरात का नाई बाद-

---

१. मिलाइये : टोकर साथी हजाम नी, आप्युं भलुं इनाम।
शिर छेदाव्युं हजाम नुं, जुओ वणिक नां काम॥
—गुजराती कहेवत संग्रह : (आशाराम दलीचंद शाह); द्वितीय संस्करण, पृ० ४३८।

शाही फौज के सेनापति द्वारा मारा गया है किन्तु तत्वतः दोनों भाषाओं में प्रचलित आख्यान एक ही हैं।

किन्तु काश्मीर तक आते-आते इस उपाख्यान का आकार-प्रकार बदल गया यद्यपि इसकी आत्मा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। Rev. J. Hinton Knowles ने 'काश्मीरी कहावतों और उक्तियों के अपने कोश' में एक कहावत संगृहीत की है 'नमाज की अँगुलि'[1] जिसके पीछे निम्नलिखित कथा कही जाती है :—

"एक उच्चवंशीय पठान जुम्मा मसजिद में नमाज पढ़ रहा था किन्तु पीछे से एक आदमी उसे अँगुलि से परेशान कर रहा था। पठान ने उसे एक रुपया दिया। तंग करने वाले व्यक्ति ने पठान को तो तंग करना छोड़ दिया किन्तु इस प्रकार रुपया मिल जाने से उसे शरारत करने में मजा आने लगा। उसने एक दूसरे नमाज पढ़ने वाले के साथ शरारत करना शुरू किया किन्तु यह दूसरा व्यक्ति उग्र स्वभाव का था। वह तुरन्त उठ खड़ा हुआ, म्यान से अपनी तलवार निकाली और शरारती का सिर धड़ से अलग कर दिया।"[2]

यह नहीं कहा जा सकता कि इस आख्यान का मूल स्रोत क्या है किन्तु इतना निश्चित है कि देश-काल की भिन्नता के कारण इस प्रकार के आख्यानों में वाह्य परिवर्तन होते रहते हैं। काश्मीरी आख्यान में वहाँ की परिस्थितियों के अनुरूप ही परिवर्तन हो गया है जो स्वाभाविक है।

राजस्थानी भाषा में इस प्रकार के बहुत से दृष्टान्त मिलते हैं और प्रसंग आने पर कहा जाता है 'नाई कै ठोलै हाली बात हुई।' राजस्थानी में इस प्रकार के दृष्टान्तों का यद्यपि नामकरण नहीं हुआ है किन्तु इन्हें यदि 'लौकिक न्याय' की संज्ञा दी जाय तो कुछ अनुचित न होगा। 'अजाकृपाणी' आदि न्यायों के सादृश्य पर उक्त दृष्टान्त को 'नाई-ठोलो न्याय' के नाम से अभिहित किया जा सकता है। परिशिष्ट में इस प्रकार के कुछ दृष्टान्त राजस्थान के 'लौकिक न्यायों' के नाम से ही संग्रहीत कर दिये गये हैं।

८. राजस्थानी कहावतों में व्यक्ति

१. नाम और गुण का वैषम्य—व्यक्ति का आश्रय लेकर भी कहावतों में अनेक प्रकार के भाव व्यक्त किये गये हैं। राजस्थानी कहावतों में इस प्रकार के नामों का प्राचुर्य है जिनमें व्यक्तियों का नाम उनकी स्थिति के विरोध रूप में आता है। उदाहरणार्थ—

(क) आंख्यां में गीड पड़ै नांव मिरगानैणी।

अर्थात् आँखें तो नेत्र-मल से लिप्त हैं और नाम है मृगनयनी !

---

1. Nemazi Sung unguj. (A Dictionary of Kashmiri Proverbs and sayings by J. H. knowles)

2. Because sentence against an evil work is not executed speedily, therefore the heart of the sons of men is fully set in them to do evil.

Eccl. Viii-ii.

(ख) नांव गंगाधर न्हावै कोनी ऊमर में।

अर्थात् नाम तो गंगाधर है किन्तु उम्र में कभी स्नान ही नहीं करता।

(ग) नांव लिछमीधर कन्नें कोनी छिदाम ही।

अर्थात् नाम तो है लक्ष्मीधर, पास में छदाम तक नहीं।

(घ) नांव तो हजारीलाल घाटो ग्यारा सै को !

अर्थात् नाम तो है हजारीलाल और घाटा है ग्यारह सौ का !

(ङ) नांव सीतलदास, दुर्वासा सो झाली।[1]

अर्थात् नाम तो है शीतलदास और है दुर्वासा-सा प्रचण्ड क्रोधी !

(च) कक्कै को फूट्यो आंक ई को आवै ना र नांव है विद्याधर।

अर्थात् ककहरे का फूटा अक्षर भी नहीं जानता और नाम है विद्याधर।

(छ) नांव तो बंशीधर, आवै कोनी अलगोजो बजाणू ही।

अर्थात् नाम तो है बंशीधर किन्तु अलगोजा बजाना ही नहीं जानता।

उक्त राजस्थानी कहावतों से नाम और गुण के वैषम्य पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

२. **नाम और गुण का सामंजस्य**—कतिपय कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें नाम और गुण का सामंजस्य मिलता है।

(क) "माना चाली सासरै, मनावण वालो कूण।" एक ऐसी ही कहावत है जिसका अभिप्राय यह है कि माना ससुराल चली, उसको मनाने वाला कौन ? "माना" से तात्पर्य उस हठीली स्त्री से है जो बात-बात पर रूठ जाती है। जिसका नाम ही "माना" (मानिनी) है, उसे कोई कैसे मना सकता है ?

इसी प्रकार की एक दूसरी लोकोक्ति लीजिये—

(ख) जठै भागां भागी जा, उठै भाग अगाऊ जा।

अर्थात् 'भागां' नाम की स्त्री जहाँ भी भगकर जाती है, वहीं भाग्य उसके आगे दौड़कर पहले ही पहुँच जाता है। 'भागां' का शाब्दिक अर्थ है 'भाग्यशालिनी।" 'भागां' यथा नाम तथा गुण की लोकोक्ति चरितार्थ करती है।

ऐसी भी बहुत सी कहावतें हैं जिनमें व्यक्तियों का नाम है, मगर उनका सम्बन्ध लोक-मानस की रचना-शक्ति से है। उनमें कहावत के अभिप्राय के अनुसार ही नाम की रचना हुई है और अर्थ को स्पष्ट करने की दृष्टि से ही जिसका महत्त्व है।[2] (ग) गंगा गयां गंगादास, जमना गयां जमनादास" जैसी कहावतों में नामकरण सम्बन्धी यह प्रवृति स्पष्टतः देखी जा सकती है। अवसरवादी को लक्ष्य में रखकर उक्त लोकोक्ति का प्रयोग होता है।

धनहीन और धनवानों में कितना अन्तर होता है, यह निम्नलिखित कहावतों में प्रयुक्त एक ही नाम के तीन रूपान्तरों द्वारा स्पष्ट है।

(घ) "माया तेरा तीन नाम, परस्या, परसी, परसराम।" ज्यों-ज्यों मनुष्य

---

१. मिलाइये : 'नाम कंई सीतलदासजी ने बतलाया तो भोमलदासजी।'

२. द्रष्टव्य : "मंगल प्रभात" अप्रैल १९५७ में प्रकाशित रसूल अहमद द्वारा लिखित "कहावतों मे व्यक्ति" शीर्षक लेख, पृष्ठ ९६।

के पास पैसा बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसकी कदर भी बढ़ती जाती है। किसी गरीब आदमी को लोग 'परस्या' जैसे छोटे नाम से पुकारते हैं। उसकी आर्थिक अवस्था में सुधार होने से वह 'परसी' हो जाता है और धनवान होने पर तो लोग उसे 'परस-राम' (परशुराम) कहने लगते हैं। यह सब पैसे की माया है।

(३) तुक, अनुप्रास तथा नाम—कभी-कभी तुक तथा अनुप्रास के लिए भी कहावतों में तदनुरूप नाम की कल्पना कर ली जाती है जिसका विवेचन तुक तथा अनुप्रास के प्रकरण में यथास्थान किया जा चुका है।

(४) नाम और समोच्चार-विनोद (Pun)—किसी के नाम को लेकर राजस्थानी कहावतों में व्यंग्यात्मक शब्द-विनोद भी चलता है। एक बाबाजी का नाम था 'बैंगनदास' जिसको लक्ष्य में रखकर किसी मनचले व्यक्ति ने कहा—'बाबोजी रा बाबोजी ने तरकारी री तरकारी।"[१] अर्थात् बैंगनदास भी क्या ही सुन्दर नाम है जिसमें बाबाजी के बाबाजी बने रहे और इसी में तरकारी का भी अन्तर्भाव हो गया!

(५) जड़ पदार्थ आदि का मानवीकरण—अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें जड़ पदार्थों को भी इस तरह प्रस्तुत किया गया है मानो वे व्यक्तियों के नाम हों। उदाहरण के लिए निम्नलिखित राजस्थानी कहावतें लीजिये :

(क) रूपलाल जी गुरू, बाकी सब चेला।

अर्थात् रुपया गुरु है, बाकी सब चेले हैं।

(ख) अनजी नाचै अनजी कूदै, अनजी करै गटरका।
आज अनजी घर में नहीं, कूण करैला मटरका॥[२]

तात्पर्य यह है कि अन्न के बल पर ही सब राग-रंग और नाच-कूद सूझते हैं।

(ग) धन धन माता राबड़ी ! जाड़ हालै न जाबड़ी।

अर्थात् हे राबड़ी माता ! तू धन्य है जिसके सेवन करने में न दाढ़ हिलती है, न जबड़ा।

ऊपर उद्धृत पहली कहावत में रुपया के लिए 'रूपलालजी' का प्रयोग हुआ है। इस प्रयोग के कारण कहावत में जहाँ किंचित् विनोद का पुट आ गया है, वहाँ इसके कारण उक्ति की प्रभावकता भी बढ़ गई है। यही बात दूसरी कहावत में अन्न के लिए प्रयुक्त 'अनजी' के लिए कही जा सकती है। तीसरी कहावत में किसी वृद्ध द्वारा माता राबड़ी का जयजयकार भी मधुर हास्य की सृष्टि कर देता है।

कुछ कहावतों में पशुओं को भी इस तरह रखा गया है मानों वे स्त्री-पुरुषों के नाम हों। उदाहरणार्थ :

'नव सौ ऊंदर मार मिनां बाई तीरथ चाल्या।'

उक्त कहावत में बिल्ली के लिए प्रयुक्त 'मिनां बाई' ऐसा लगता है मानो वह किसी स्त्री का नाम हो।

(६) नामों का संक्षेपीकरण—संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार देवदत्त के

---

१. मारवाड़ रा ओखाणा, पृ० ५२।
२. 'अनियूं नाचैं, अनियूं कूदैं, अनियूं तोड़ैं तान।'

तीन रूप बनते हैं, देविक, देविय और देविल। संक्षेपीकरण की इस प्रवृत्ति का मूल कारण है अनुकम्पा जो बड़े छोटों के प्रति दिखलाते हैं, वत्सलता अथवा प्यार के कारण छोटे नाम रख लिये जाते हैं।[1]

राजस्थानी कहावतों में व्यक्तिवाचक नाम अनेक बार अपने संक्षिप्त रूप में व्यवहृत हुए हैं।

(क) 'असो भगवानियूं भोलो कोनी जो भूखो गायां मैं जाय'।

अर्थात् भगवानिया ऐसा भोला नहीं है जो भूखा गाय चराने के लिए जाय।

इस कहावत में 'भगवानदत्त' अथवा 'भगवानदास' के स्थान में उसके लघु रूप 'भगवानियूं' का प्रयोग हुआ है। जिस प्रकार देवदत्त का संक्षिप्त रूप 'देविय' बनता है, उसी प्रकार 'भगवानदत्त' से 'भगवानिय' (भगवानियूं) बन सकता है किन्तु राजस्थानी भाषा में इस प्रकार का प्रयोग सामान्यतः लघुता-द्योतक है।

(ख) 'जैतलदे बिना किसो राती जुगो ?'

अर्थात् जैतलदे विषयक गीतों के बिना रात्रि-जागरण व्यर्थ है। इस कहावत का 'जैतलदे' शब्द भी जैतलदेवी का लघु रूप (जैतलदेई—जैतलदे) है।

राजस्थानी कहावतों में प्रयुक्त इन व्यक्तिवाचक नामों से भाषा-सम्बन्धी बहुत से तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

(७) **हिन्दू व मुसलिम नाम**—यद्यपि हिन्दू नामों के साथ-साथ राजस्थानी कहावतों में मुसलमानों के नाम भी मिलते हैं किन्तु उनकी संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। उदाहरण के लिए दो कहावतें लीजिये :

(क) **अमूजान की बाकरी, खा गई सगलो खेत।**
धाक पड़ी लखधीर की, खा गयो खाल समेत॥

अर्थात् अमूजान की बकरी सारा खेत खा गई। जब लखधीर की धाक पड़ी तो वह उसे खाल समेत खा गया। सेर को सवा सेर मिल जाने पर बुद्धि ठिकाने आ जाती है।

(ख) मेरो खुदाबकसियो ढाई सेर की लापसी खा ज्याय पण खा ज्याय के भड़वा की!

अर्थात् मेरा लड़का खुदाबख्श अढाई सेर लपसी खा जाय पर पैसा पास हो तब न!

मुसलमानों के इन नामों से स्पष्ट है कि इस प्रकार की कहावतें हिन्दू मुसलमानों के सम्पर्क के बाद बनी हैं। अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जो मुसलमानों के यहाँ से ही आई हैं।

कहावतों में कभी-कभी तो रचयिता का नाम भी जड़ा रहता है।[2] कभी-कभी प्रभाव-वृद्धि तथा तथ्य की प्रामाणिकता के लिए किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का नाम रख

१. अनुकम्पायाम् (V. 3. 76)—India as known to Panini by Dr. V.S. Agrawala; p. 183.

२. राम भरोसै ऊकलै आथण ईसरदास।

दिया जाता है,[1] कभी-कभी किसी को सम्बोधित की हुई कोई उक्ति कहावत बन जाती है,[2] तो कभी यह भी सम्भव है कि जिस व्यक्ति के साथ घटना घटित हुई हो, उसी का कहावत में नाम रह गया हो।[3]

६. राजस्थानी कहावतों में संख्या

राजस्थानी कहावतों में संख्या के प्रयोग को हम दो भागों में बाँट सकते हैं; समुच्चयात्मक और असमुच्चयात्मक। विचारार्थ सबसे पहले समुच्चयात्मक संख्या को लीजिये।

(१) **समुच्चयात्मक**—स्मरण-शक्ति को सहायता पहुँचाने की दृष्टि से समुच्चयात्मक संख्या का महत्त्वपूर्ण स्थान है। संख्या-पद्धति का आश्रय लेकर कई वस्तुएँ जब एक पद्य में जड़ दी जाती हैं तो उन्हें याद रखना बड़ा सुगम हो जाता है। वैसे तो आधुनिक युग में भी पंचसूत्री तथा दससूत्री आदि कार्यक्रम चलते हैं तथापि संख्याओं के रूप में सोचने की प्रवृत्ति कहावतों में विशेष रूप से देखी जाती है। उदाहरण के लिए कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिए।

(क) **तीन संख्या**—(अ) आओ, बैठो, पीओ पाणी, तीन बात तो मोल नी आणी।[4]

अर्थात् आवभगत, बैठने के लिए आसन और पीने के लिए पानी, इन तीन चीजों का मूल्य नहीं लगता।

(आ) धोबी को गधो, स्यामी की गाय, राजा को नोकर तीनूं गत्ता सैं जाय।

अर्थात् धोबी का गधा, साधु की गाय और राजा का नौकर, ये तीनों फिर दूसरे किसी काम के नहीं रह जाते।

(ख) **चार संख्या**—

(अ) **धान पुराणा, घी नवां, घर कुलवन्ती नार।**
चौथी पीठ तुरंग री, धरम तणा फल च्यार॥[5]

अर्थात् पुराना धान, नया घी, घर में कुलीन स्त्री और सवारी के लिए घोड़े की पीठ, ये चार धर्म के फल हैं।

१. जैड़ा में तैड़ो मिल्यो सुणजो राजा **भोज**।
२. हेत कपट विवहार रहे न छानो **राजिया**।
३. **दूलोजी** घोड़ा रा पारखू।
४. संस्कृत सुभाषितकार ने एक ऐसे ही प्रसंग में निम्नलिखित चार वस्तुओं का उल्लेख किया है—

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥

५. मिलाइये—

छाछ छांवली छोकरा अर छंदगाली नार।
चारों छछा तब मिले जब तूठें करतार।

अर्थात् ईश्वर की दया-दृष्टि होने पर ही छाछ, छाया, बाल-बच्चे और शृंगार-प्रिय स्त्री मिलती है। —मेवाड़ की कहावतें, भाग १, पृष्ठ ३३-३४।

(आ) लूखा भोजन मग बहण, बड़का बोली नार ।
मंदर चुवै टपूकड़ाँ, पाप तणाँ फल च्यार ॥

अर्थात् रूखा-सूखा भोजन, पैदल रास्ते चलना, बढ़-बढ़ कर बोलने वाली स्त्री और टपकने वाला घर, ये चार पाप के फल हैं ।

(इ) भैंसो मींडो बाकरो चौथी विधवा नार ।

ये च्यारूँ, माड़ा भला, मोटा करैं बिगाड़ ॥

अर्थात् भैंसा, भेड़ा, बकरा, और विधवा स्त्री, ये चारों दुबले-पतले ही अच्छे; हृष्ट-पुष्ट होने पर ये बिगाड़ करते हैं ।

(ग) पाँच संख्या—पाँच संख्या से सम्बन्ध रखने वाले अनेक पद्य वृत्युनुप्रास के प्रसंग में उद्धृत किये जा चुके हैं ।

(घ) छः संख्या—छः संख्या से सम्बन्ध रखने वाले कहावती पद्यों का प्रायः अभाव है ।

(ङ) सात संख्या—जहाँ तक सात संख्या का प्रश्न है, राजस्थानी भाषा में निम्नलिखित सात सुख अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ।

पहलो सुख नीरोगी काया । दूजो सुख हो घर में माया ॥
तीजो सुख पुत्र अधिकारी । चोथो सुख पतिवर्ता नारी ॥
पाँचवों सुख राज में पासा । छठो सुख सुस्थाने बासा ॥
सातवों सुख विद्या फलदाता । ए सातों सुख रच्या विधाता ॥

वस्तु-समुच्चय की दृष्टि से ७ वस्तुओं से अधिक संख्या के कहावती उदाहरण प्रायः नहीं मिलते क्योंकि कहावत के लिए उपयुक्त छोटे छंद में बहुत सी वस्तुओं को एक साथ नहीं रक्खा जा सकता और संख्या बढ़ाकर कई छन्द एक साथ बनाने से फिर उन वस्तुओं को याद रखना कठिन हो जाता है । एक छन्द में चार-पाँच वस्तुओं का समुच्चय अपेक्षाकृत सुगमता से हो जाता है, यही कारण है कि चार और पाँच संख्या को लेकर कही हुई समुच्चयात्मक कहावतें संख्या में अधिक मिलती हैं ।

(२) **असमुच्चयात्मक**—असमुच्चयात्मक संख्या का प्रयोग तुक, अनुप्रास तथा वैषम्य आदि के लिए किया जाता है । उदाहरण के लिए निम्नलिखित राजस्थानी कहावत लीजिये—

क. अनुप्रास और तुक

हाथी हजार को, महावत कोडी च्यार को ।'

यहाँ पर 'हजार' का प्रयोग हाथी के साथ अनुप्रास की रक्षार्थ किया गया है तथा महावत के साथ 'च्यार' का प्रयोग 'हजार' और 'च्यार' की तुक मिलाने के लिये हुआ है । ऐसा जान पड़ता कि कहावतों में तुक और अनुप्रास संख्या को बहुधा निर्धारित करते हैं । टर्की भाषा में 'हजार' संख्या का बहुत प्रयोग होता है जैसा कि निम्नलिखित तीन कहावतों के प्रयोग से स्पष्ट है ।

(1) One accident teaches more than a thousand good counsels.

(2) A thousand worries do not pay one single debt.

(3) Measure a thousand times before cutting once.

ऊपर से देखने पर ऐसा मालूम पड़ता है कि टर्की भाषा में हज़ार का प्रयोग उस अत्युक्ति की प्रवृत्ति के कारण है जो पौरस्त्य देशों की विशेषता है किन्तु वस्तुतः इसका मुख्य कारण यह है कि टर्की भाषा में 'एक हज़ार' के लिए जो शब्द प्रयुक्त होते हैं वे हैं 'Bin, bir'. जिनमें अनुप्रास और नाद-सौन्दर्य इतना है कि प्रयोक्ता इन शब्दों के प्रयोग का लोभ संवरण नहीं कर पाते ।[1]

विश्व की प्रायः सभी भाषाओं की कहावतों में अनुप्रास और तुक संख्याओं को प्रभावित करते हैं ।

ख. संख्या और वैषम्य आदि

'सात बार, नो त्युंहार' अर्थात् बार तो सात होते हैं किन्तु त्यौहार नौ हो जाते हैं । दिनों और त्यौहारों के वैषम्य को लेकर इस कहावत में व्यंग्य कसा गया है ।[2] अनेक बार अपनी बात पर बल देने तथा उक्ति को प्रभावशाली बनाने के लिए भी एक बड़ी संख्या का प्रयोग किया जाता है । 'एक नन्नू सो दुख हड़ै' अर्थात् एक 'नहीं' कह देने से सौ दुख दूर हो जाते हैं । इस कहावत में 'सौ' के प्रयोग से उक्ति को बल मिल गया है । संख्या के सम्बन्ध में जो अत्युक्तियाँ कहावतों में मिलती हैं, उनके कारण भी उक्तियाँ प्रभावोत्पादक बन जाती है । अनेक बार संख्या का प्रयोग शाब्दिक अर्थ को प्रकट करने के लिए नहीं होता, वह किसी तथ्य की प्रतीति कराने के लिए एक प्रमुख साधन है ।

१०. राजस्थानी कहावतों के रूप पर संस्कृत का प्रभाव

भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाएँ किसी न किसी रूप में संस्कृत वाङ्मय द्वारा प्रभावित हुई हैं । राजस्थानी भाषा भी इसका कोई अपवाद नहीं है । जहाँ तक राजस्थानी लोकोक्तियों का सम्बन्ध है, संस्कृत भाषा ने उसके रूप को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है ।

(१) **अनुवाद**—राजस्थानी में कुछ कहावतें ऐसी हैं जो संस्कृत कहावतों की अनुवाद-सी जान पड़ती हैं । जैसे,

राजस्थानी लोकोक्ति	संस्कृत लोकोक्ति
(क) हाथी रे पग में सगलां रा पग अर्थात् हाथी के पैर में सबके पैर समा जाते हैं ।	(क) सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः ।
(ख) मूंड मूंड री मत न्यारी । अर्थात् जितने मस्तिष्क हैं, उतनी ही बुद्धियाँ हैं ।	(ख) मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना ।

1. Introduction to the proverbs of Turkey by S. Topalian. P. C. IV.

२. इस कहावत को यदि व्यंग्यात्मक न माना जाय तो यह समृद्धिसूचक भी मानी जा सकती है ।

(ग) टावर कुटाबर हो जावै, मायत कुमायत को हुवै नी। अर्थात् पुत्र कुपुत्र हो जाता है, माता कुमाता नहीं होती।

(ग) कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।

(घ) खावै जिसो अन्न, तिसो हुवै मन्न। अर्थात् जो जैसा अन्न खाता है, उसका वैसा ही मन हो जाता है।

(घ) यादृशं भक्षयेदन्नं बुद्धिर्भवति तादृशी।

(ङ) मिनखां में नाई, पखेरुवां में काग। अर्थात् मनुष्यों में नाई तथा पक्षियों में कौवा चालाक होता है।

(ङ) नराणां नापितो धूर्तः, पक्षिणां चैव वायसः।

(च) ऊत गांव में अरंड ही रूंख। अर्थात् छोटे गाँव में एरण्ड ही पेड़ समझा जाता है।

(च) निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।

(२) **वेश-परिवर्तन**—कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी हैं जो संस्कृत से राजस्थानी में आई हैं किन्तु तत्सम रूप में ग्रहण करने के प्रयास में जिनके वेश में यत्किंचित् परिवर्तन हो गया है। 'आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्' यह संस्कृत की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है जो राजस्थानी में आते-आते 'आहारे व्योहारे लज्जा न कारे' के रूप में बदल गई है। 'व्योहारे' के साथ तुक मिलाने के लिए राजस्थानी लोकोक्ति में 'कारे' रह गया है। जैसा पहले कहा जा चुका है, कहावतों के रूप-निर्माण में इस तुक का बड़ा हाथ है। संस्कृत की इसी लोकोक्ति ने मराठी भाषा में 'आहारीं व्यवहारीं कदापि लज्जा न धरी' का रूप धारण कर लिया है। यहाँ भी 'व्यवहारीं' और 'धरी' का तुक द्रष्टव्य है।

संस्कृत का कोई कहावती वाक्य जब राजस्थानी में आया है तो तुक अथवा उच्चारण की सुविधा के लिए उसके रूप में लोक-मानस ने यथेच्छ परिवर्तन कर लिया है। 'व्यापारे वर्धते लक्ष्मीः' अथवा 'व्यापारे वसते लक्ष्मीः' के स्थान में 'व्योपारे वधते लक्ष्मी' राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित हो गया।

इसी प्रकार 'अग्रे अग्रे विप्राणां नदी नालः विवर्जितः' के स्थान में 'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नार विवर्जिता' अथवा 'अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नाला वरजन्ते' बोलचाल में प्रयुक्त होने लगे। इसी प्रकार निरक्षरों से सम्बद्ध राजस्थानी भाषा की निम्नलिखित कहावत में 'ॐ नमः सिद्धम्' के स्थान में 'ओनामासी धम' रह गया :

'ओनामासी धम, न बाप पढ़े न हम।'

(३) **संस्कृतीकरण**—राजस्थानी में कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें संस्कृत रूप देने का प्रयास किया गया है। उदाहरणार्थ दो लोकोक्तियाँ लीजिये :

(क) खंड खडेतूं पंडेतू। (खंडे खंडे तु पंडितः।)

अर्थात् ज्ञान क्रमशः ही प्राप्त किया जा सकता है।

(ख) पापोपाप समोसमा।

(४) सादृश्य—कभी-कभी ऐसी लोकोक्ति भी सुन पड़ती है जो संस्कृत की किसी प्रसिद्ध पंक्ति के अनुकरण पर बना ली गई है। 'भज कलदारं, भज कलदारं कलदारं भज मूढ़मते' एक ऐसी ही लोकोक्ति है जो श्री शंकराचार्य के 'भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज मूढ़मते' के सादृश्य पर बनी है। कविराजा ऊमरदान ने 'भज गोविन्दं' के गीत की तरह 'भज कलदारं' का गीत बनाया है जो उनके कविता-संग्रह ऊमर काव्य में छपा है। इस प्रकार की रचनाओं में विडम्बन-काव्य (Parody) का आनन्द मिलता है।

११. राजस्थानी कहावतों का एक विशिष्ट रूप

चन्द्रायण (चांद्रायण)[१] छन्द में कुछ इस प्रकार के कहावती पद्य राजस्थान की सामान्य जनता में प्रचलित हैं जिनके अन्तिम चरण में कहा जाता है—

(अ) एता दे करतार फेर नह बोलणा।

अथवा

(आ) एता दे करतार फेर क्या चावणा।

अथवा

(इ) एता दे करतार फेर क्या बोलणा।

इस प्रकार के दो छन्द यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

उणी गाँव में पीर उणी में सासरो।
आथमणी दिस खेत चुवै नह आसरो॥
नाडी खेत नजीक जठे हल खोलणा।
एता दे करतार फेर नह बोलणा॥

जाट की बेटी परमात्मा से प्रार्थना करती है कि हे करतार! एक ही गाँव में मेरे नैहर और ससुराल दोनों हों, पश्चिम दिशा में खेत हो, मेरी झोंपड़ी चुवा न करे। खेत के पास ही तलैया हो जहाँ हल खोल सकूँ। यदि मुझे इतना-सा दे दे तो मैं कुछ नहीं बोलूँगी।

ठाकुर ह्वै वो जाँण समज्झै अक्खरां।
सीरोई तरवार बहै सिर बक्करां॥
पातां सांमी पांत क पैल परूसणा।
एता दे करतार फेर क्या चावणा॥

एक चारण परमात्मा से प्रार्थना करता है कि हे परमपिता! ठाकुर जो मिले, वह बहुत सी बातों का जानकार हो, गुणी हो जो कविता को समझ सके। सिरोही की तलवार बकरों पर चलती रहे। जब थाल परोसने का समय आवे तब

---

१. चांद्रायण एक मात्रिक छन्द होता है जिसके प्रत्येक चरण में ११ और १० के विराम से २१ मात्राएँ होती हैं। पहले विराम पर जगण और दूसरे पर रगण होना चाहिए।

—हिन्दी शब्द सागर, (दूसरा भाग); पृष्ठ ९६७

सबसे पहले मुझे ही थाल मिले। यदि इतना-सा तू प्रदान करे तो फिर मुझे और कुछ माँगना नहीं है।

श्री रामदेवजी चोखानी ने संवत् १९९२ में 'राजस्थानियों की अभिलाषाएँ' शीर्षक एक लेख राजस्थान वर्ष १, संख्या ४, में प्रकाशित करवाया था जिसमें इस प्रकार के करीब २० छन्दों का हिन्दी अनुवाद सहित संग्रह किया गया था। इसके बाद डा० सत्यप्रकाश ने इन छन्दों के संग्रह-कार्य को और आगे बढ़ाया और उन्होंने इस विषय पर कुछ लेख भी लिखे।

इस प्रकार के इच्छा-विषयक कहावती पद्य केवल राजस्थान में ही नहीं, अन्य प्रदेशों में भी मिलते हैं। डा० सत्येन्द्र के शब्दों में कुछ लोकोक्तियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें लोकोक्तिकार सुखदायक वस्तुओं की संयोजना कर देता है। इनमें वह यह बताना चाहता है कि किस प्रकार की स्थितियाँ मनुष्य को आनन्द दे सकती हैं। ऐसी लोकोक्तियाँ 'ओलना' कहलाती हैं।

रिमझिम बरसै मेह कि ऊँची रावटी।
कामिन करै सिंगार कि पहरैं पामटी॥
बारह बरस की नारि गरे में ढोलना।
इतनौ दे करतार फेरि ना बोलना॥

एक अन्य लोकोक्तिकार सुख की यह कल्पना करता है।

बर पीपर की छाँह कि संगत घनों की।
भाँग तमाखू मिर्च कि मुट्ठी चनों की॥
भूरी भैंस को दूध बतासे घोलना।
इतनौ दे करतार फेरि ना बोलना॥[1]

डा० सत्येन्द्र द्वारा उद्धृत दोनों कहावती पद्य चांद्रायण छन्द में ही हैं और आकार-प्रकार तथा भावना की दृष्टि से भी राजस्थानी छन्दों से पूरे-पूरे मिल जाते हैं।

१. ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, (डा० सत्येन्द्र); पृष्ठ ५४१

(ख) विषयानुसार वर्गीकरण

१. राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें

(१) **ऐतिहासिक कहावतों की भारतीय परम्परा**—राजस्थान की पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतें एक प्रकार से राजस्थान की ऐतिहासिक गाथाएँ ही हैं। भारतवर्ष में गाथाओं की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग एक प्रकार के विशिष्ट साहित्य के अर्थ में ऋग्वेद[१] में ही किया गया है जहाँ इसे रैभी और नाराशंसी से अलग निर्दिष्ट किया गया है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में गाथाओं का विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होता है। ऐतरेय ब्राह्मण[२] में ऋक् और गाथा में पार्थक्य दिखलाया गया है। ऋक् दवी होती थी और गाथा मानुषी अर्थात् गाथाओं की उत्पत्ति में मनुष्य का उद्योग ही प्रधान कारण होता था। ब्राह्मण-ग्रन्थों के अनुशीलन से यही प्रतीत होता है कि गाथाएँ ऋक्, यजुः और साम से पृथक् होती थीं, अर्थात् गाथाओं का व्यवहार मंत्र के रूप में नहीं किया जाता था। अतः प्राचीन काल में किसी विशिष्ट राजा के किसी अवदान (सत्कृत्य) को लक्षित कर जो गीत समाज में प्रचलित रूप से गाये जाते थे, वे ही 'गाथा' नाम से साहित्य का एक पृथक् अंग माने जाते थे। निरुक्त[३] में दुर्गाचार्य ने स्पष्ट रूप से दिखलाया है कि वैदिक सूक्तों में कहीं-कहीं जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कहीं ऋचाओं के द्वारा, और कहीं गाथाओं के द्वारा निबद्ध हुआ है। ऋचाओं के समान गाथाएँ भी छन्दोबद्ध हुआ करती थीं।

वैदिक गाथाओं के नमूने शतपथ ब्राह्मण[४] तथा ऐतरेय ब्राह्मण[५] में उपलब्ध होते हैं जिनमें अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के उदात्त चरित्र का संक्षेप में वर्णन किया गया है। दुष्यन्त-पुत्र भरत-विषयक एक गाथा लीजिए—

महाकर्म भारतस्य न पूर्वे नापरे जनाः।
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदापुः पंचमानवाः ।।

अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य अपने हाथों से आकाश को नहीं छू सकता है, वैसे ही पंच मानवों में से भूत और भविष्यत् के कोई भी मनुष्य भरत-पुत्र के अद्भुत कार्य की समता नहीं कर सकते।

इन ऐतिहासिक गाथाओं की परम्परा महाभारत-काल में भी अक्षुण्ण दीख पड़ती है। महाभारत में इसी दुष्यन्त-पुत्र भरत के सम्बन्ध में अनेक अन्य गाथाएँ दी गई हैं जो नितान्त प्राचीन प्रतीत होती हैं।[६] ऐतरेय वाली गाथाएँ ठीक उसी रूप में श्रीमद्भागवत के सप्तम स्कन्ध में भी उपलब्ध होती हैं।[७]

---

१. ऋग्वेद, १०।८५।६।
२. ऐतरेय ब्राह्मण, ७।१८।
३. स पुनरितिहास ऋग्बद्धो गाथाबद्धश्च (निरुक्त ४।६)।
४. शतपथ ब्राह्मण, १३।५।४।
५. ऐतरेय ब्राह्मण, ८।४।
६. आदिपर्व, ७४ अ०, ११०-११३।
७. श्री बलदेव उपाध्याय द्वारा लिखित भोजपुरी ग्राम-गीत की भूमिका, पृष्ठ ६-७।

आगे चलकर पालि, प्राकृत और अपभ्रंश में भी गाथाओं का निर्माण बराबर होता रहा। अपभ्रंश-काल के बाद राजस्थानी भाषा में तो इस प्रकार की गाथाओं का जाल-सा बिछ गया। राजस्थान की बातों, ख्यातों तथा कथा-काव्यों के बीच-बीच में असंख्य गाथाएँ बिखरी पड़ी हैं जिन्हें हम ऐतिहासिक कहावतों, उपाख्यानों अथवा प्रवादों का नाम दे सकते हैं। डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के शब्दों में "राजस्थान की जनता में जो स्वाभाविक इतिहास-बोध विद्यमान है, उसका अच्छा परिचय इन *ऐतिहासिक प्रवादों से मिल जाता है।" किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि राजस्थान* में जितनी ऐतिहासिक गाथाएँ अथवा कहावतें मिलती हैं, उनमें से सब इतिहास की कसौटी पर भी खरी उतरती हैं।

(२) **इतिहास और अनुश्रुतियाँ**—किसी प्रदेश की ऐतिहासिक किंवदन्तियों का बाहुल्य उसके विशिष्ट इतिहास-बोध का परिचायक अवश्य होता है किन्तु सभी देशों में इतिहास के साथ परम्परागत अनुश्रुतियाँ इस तरह मिली रहती हैं कि उनका पृथक्करण यदि असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य हो जाता है। अनुश्रुतियाँ पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप में चली आती हैं और मौखिक आदान-प्रदान के कारण उनमें बहुत से क्षेपकों का भी समावेश हो जाता है। इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं, यदि वैज्ञानिक पद्धति द्वारा इतिहास प्रस्तुत करने वाले इतिहासकार अनुश्रुतियों को सन्देह की दृष्टि से देखें। मारवाड़ 'नवकोटि मारवाड़' के नाम से प्रख्यात है जिसकी 'साख' का निम्नलिखित कहावती छप्पय अत्यन्त प्रसिद्ध है[1]—

मंडोवर सामन्त हुवो, अजमेर सिद्धसुव।
गढ़ पूंगल गजमल्ल हुवो, लोद्रवै भांणभुव।
आलपाल अरबद्द, भोजराजा जालन्धर।
जोगराज धरधाट हुवो, हांसू पारक्कर।
नवकोटि किराडू सजुगत, थिर पंवारहर थप्पिया।
धरणीवराह धर भाइयां, कोट बांट जू जू किया॥

अर्थात् मारवाड़ में धरणीवराह नाम का एक बड़ा प्रतापी राजा हुआ था। उसने अपने राज्य को नौ जिलों में बाँटकर जब अपने भाइयों को अलग-अलग प्रदेश सौंपे तो मंडोर सामन्त को, अजमेर सिन्धु को, पूंगल गजमल को, लोद्रवा भान को, आबू आलपाल को, जालन्धर अर्थात् जालोर भोजराज को, धाट (ऊमरकोट) जोगराज को और पारकर हंसराज को मिला। कोट किराडू (बाड़मेर) धरणीवराह के पास रहा। प्रवाद प्रचलित है कि मारवाड़ राज्य के नौ कोट (क़िले) होने से, मारवाड़ "नौकोटी' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। धरणीवराह के समय का कोई शिलालेख व ताम्र-पत्र नहीं मिलता, तथापि वक्ष्यमाण प्रमाण से उसका समय सं० १०४० के लगभग होना चाहिए। हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट धवल के संवत् १०५३ के बीजापुर के शिलालेख से जाना जाता है कि धरणीवराह अणहिलवाड़ा पाटण के स्वामी सोलंकी मूलराज प्रथम और राष्ट्रकूट धवल का समकालीन था। उक्त शिलालेख में लिखा है कि मूलराज ने धरणीवराह को उखेड़ दिया। तब वह भगा हुआ राठौड़ धवल राजा की शरण में

१. राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान, पृष्ठ ८६-८७।

आया और शरणागतवत्सल धवल ने मूलराज की परवाह न करके उसे अपने यहाँ रख लिया।[1]

किन्तु इस छप्पय की ऐतिहासिक तथ्यता अत्यन्त संदेहास्पद है। श्री ओझाजी ने इस छप्पय के सम्बन्ध में लिखा है—

'अनुमान होता है कि यह छप्पय किसी ने पीछे से बनाया हो और उसके बनाने वाले को परमारों के प्राचीन इतिहास का ठीक-ठीक ज्ञान न हो।'[2]

ओझा जी की भाँति श्री विश्वेश्वरनाथ रेउ भी उक्त छप्पय की प्रामाणिकता स्वीकार नहीं करते।[3]

बहुत सम्भव है कि नवकोटि नाम शाकम्भर सपादलक्ष आदि की तरह प्रचलित हुआ हो। उस हालत में 'कोटि' का अर्थ दुर्ग नहीं, करोड़ होना चाहिए।

कुछ भी हो, राजस्थानी इतिहास के प्रमाणभूत आचार्य श्री ओझा जी के उपर्युक्त स्पष्ट साक्ष्य के होते हुए धरणीवराह-विषयक छप्पय में निर्दिष्ट नवकोटि मारवाड़ सम्बन्धी इस प्रवाद को मात्र किंवदन्ती ही मानकर चलना चाहिए, उसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप में गृहीत नहीं किया जा सकता।

राजस्थान में अनुश्रुति अथवा किंवदन्ती के रूप में प्रचलित एक दूसरे छप्पय पर भी विचार कीजिये—

**"आदि मूल उतपत्ति, ब्रह्मण क्षत्री जांणां।
आणदपुर सिणगार, नयर आहोर बखांणां॥
दल समूद राव रांण, मिले मंडलीक महा भड़।
मिले सबै भूपती, गुरू गहलोत नरेसर॥
एकलल मल्ल धू ज्यूं अचल, कहे राज बापै कियौ।
एकलिंग देव आ टूठतां, राजपाट इण पर दियौ॥"**

अर्थात् उसकी मौलिक उत्पत्ति तो ब्राह्मण से है किन्तु हम इसे क्षत्रिय के रूप में ही जानते आये हैं। वह आनन्दपुर का शृंगार है और 'आहोर' उसकी राजधानी है। सैन्य-समूह, राव, राणा, महाभट, मांडलिक शासक, सब राजा और कुलगुरु गहलोत नरेश्वर से आ मिले। कहा जाता है कि इस अद्वितीय मल्ल बापा ने ध्रुव की तरह अटल राज्य किया और एकलिंग देव ने उस पर प्रसन्न होकर राजपाट उसे ही सौंप दिया। इस छप्पय से जान पड़ता है कि गहलोत पहले ब्राह्मण थे, बाद में वे क्षत्रिय हो गये। श्री डी० आर० भंडारकर ने 'गुहलोत' शीर्षक[4] अपने लेख में उक्त छप्पय को

---

१. यं मूलादुदमूलयद्गुरुबलः श्रीमूलराजो नृपो
दर्पान्धो धरणीवराहनृपतिः यद्वद्द्विपः पादपम्
आयातं भुवि कांदिशीकमभिको यस्तं शरण्यो दधौ
दंष्ट्रायामिन रूढमूढमहिमा कोलो महीमण्डलम्॥
—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास : (पंडित रामकर्ण आसोपा); पृष्ठ ११-१२।

२. सिरोही का इतिहास : (श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा); पृष्ठ १४७।
द्रष्टव्य हिन्दी टाड राजस्थान के प्रकरण ७वें पर श्री ओझा जी की टिप्पणी नं ७४, पृष्ठ ३७६।

3. "It is also said that owing to these nine chiefships Marwar has come to be known as 'नवकोटि मारवाड़' but there is very little truth in the above 'छप्पय'। —*The Glories of Marwar*.

4. Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, June 1909.

उद्धृत किया है और अनेक प्रमाणों द्वारा इस छप्पय के ऐतिहासिक तथ्य को स्वीकार करते हुए वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गहलोत पहले ब्राह्मण थे, बाद में वे क्षत्रिय हो गये। इस प्रकार जो ब्राह्मण से क्षत्रिय हुए, वे 'ब्रह्मखत्री' कहलाने लगे।[1]

ऊपर जो दो छप्पय उद्धृत किये गये हैं, उनसे जान पड़ता है कि एक छप्पय तो ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रामक है तथा दूसरा छप्पय अनुश्रुति के रूप में प्रचलित होने पर भी इतिहास की कसौटी पर खरा उतरता है। इससे स्पष्ट है कि अनुश्रुतियों में ऐतिहासिक तथ्य मिलता है और नहीं भी मिलता। अनुश्रुतियों के ऐतिहासिक तथ्यातथ्य के सिद्धान्त को किसी ने निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

'बिना कल्पना के अथवा बिना नमक-मिर्च मिलाये मज़ा नहीं आता किन्तु अत्यधिक कल्पना का प्रयोग भी दुःख का कारण बन जाता है। जिस प्रकार स्वाद की वृद्धि के लिए आटे में नमक डाला जाता है, उसी प्रकार रसास्वाद के लिए उतनी ही मात्रा में कल्पना का प्रयोग किया जाना चाहिए। बढ़ी हुई तोंद से जैसे यह अनुमान लगा लिया जाता है कि तोंदधारी को आराम मिला है, नदियों से जिस प्रकार नालों की सत्ता प्रकट हो जाती है, वर्षा से ही जैसे पता चलता है कि गर्मी पड़ चुकी है, उसी प्रकार गीतों से इस बात का आभास मिलता है कि उनमें वर्णित घटनाएँ घटित हो चुकी हैं।[2]

किन्तु उक्त सिद्धान्त को, बिना पर्यालोचन के, यों ही स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसे भी गीतों की सृष्टि हुई है जिनमें निर्दिष्ट घटनाएँ कभी घटित हुई ही नहीं। उदाहरण के लिए एक गीत लीजिये :

"अजे सूर झलहलै, अजे प्राजलै हुतासण।
अजे गंग खलहलै, अजे साबत इंद्रासण॥
अजे धरणि ब्रह्मण्ड, अजे फल फूल धरत्ती।
अजे नाथ गोरक्ख, अजे अहमात सकत्ती॥
आजू हीलोहल घू अटल, वेद धरम बाणारसी।
पतसाह हूंत चीतोड़पत, राण मिलै किम राजसी॥"[3]

अर्थात् अभी तक सूर्य तेजमय है, अभी तक अग्नि में दाहक शक्ति है, अभी तक गंगा बह रही है, इन्द्र का आसन अभी तक ज्यों का त्यों है, पृथ्वी और ब्रह्माण्ड अभी तक अपनी-अपनी सीमा पर स्थित हैं, फल-फूल अभी तक पूर्ववत् पृथ्वी पर वर्तमान हैं, अभी तक गोरखनाथ विद्यमान हैं, और योगमाया ने अभी तक अपनी-अपनी शक्ति धारण

---

१. द्रष्टव्य मारवाड़ सेंसस रिपोर्ट (सन् १८९१); पृष्ठ ४८२-८३।

2. Without fiction there will be a want of flavour,
But too much fiction is the cause of sorrow.
Fiction should be used in that degree.
That salt is used to flavour flour.
As a large belly shows comfort to exist,
As a rivers show that brooks exist,
As rain shows that heat has existed,
So songs show that events have happened.
—रासमाला Forbes; पृष्ठ २६६

३. महाराणा यश प्रकाश, ठाकुर भूरसिंह शेखावत द्वारा संगृहीत, पृष्ठ १६७-१६६।

कर रखी है, समुद्र अभी तक अपनी मर्यादा पर अटल बना हुआ है और काशी भी यथावत् स्थित है, फिर चित्तौड़ का महाराणा राजसिंह बादशाह से क्योंकर मिलेगा ?

वंशभास्कर के रचयिता महाकवि सूर्यमल्ल लिखते हैं कि उक्त छप्पय जिलिया चारणवास के कम्मा नामक नाई ने महाराणा राजसिंह जी को बादशाह से मिलने के लिए दिल्ली जाते समय मार्ग में सुनाया था, जिसे सुनते ही वे वापिस उदयपुर लौट आये थे। इस छप्पय को पढ़कर पाठक के मन में भी कुछ इसी प्रकार की धारणा बँधती है किन्तु ऐतिहासिक तथ्य इसके विपरीत है। इतिहास के विज्ञ पाठक जानते हैं कि महाराणा राजसिंह जी ने बादशाह से मिलने का कभी इरादा किया ही नहीं। तो फिर इस छप्पय की सार्थकता क्या ? वस्तुस्थिति यह है कि जैसे महाराणा राजसिंह की प्रशंसा में अन्य लोग काव्य-रचना करते थे, वैसे ही इस नाई ने भी यह छप्पय उक्त महाराणा के लिए बनाकर उनको सुनाया था।

ऐसी स्थिति में अनुश्रुतियों के मूल्यांकन में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। उनके सम्बन्ध में प्रायः यह देखा जाता है कि उनका कलेवर अनेक प्रकार की कपोल-कल्पनाओं से आवेष्टित हो जाता है। किन्तु अन्य प्रमाणों के अभाव में इतिहासकार को भी अनुश्रुतियों की शरण लेनी पड़ती है, और फिर भारतवर्ष में तो और भी अधिक कठिनाई रही है। यहाँ के निवासियों ने महापुरुषों के जीवन की वास्तविक घटनाओं को महत्त्व न देकर उनके द्वारा दिये गये उपदेशों में सन्निहित उनके सांस्कृतिक जीवन को ही सर्वाधिक गौरव प्रदान किया है। यही कारण है कि मुसलमानों के इस देश में आने से पहले राजतरंगिणी जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर भारतवर्ष का कालक्रमागत इतिहास नहीं मिलता। अलबरूनी ने लिखा है कि हिन्दू लोग वस्तुओं के ऐतिहासिक अनुक्रम की ओर विशेष ध्यान नहीं देते, घटनाओं के कालक्रमागत वर्णन की ओर वे सचेष्ट नहीं हैं और ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी के लिए जब उनसे आग्रहपूर्वक पूछा जाता है तो वे निश्चय ही गप हाँकने लगते हैं।[1]

जैसा ऊपर कहा गया है, अनुश्रुतियों में सत्य और कल्पना का बड़ा जटिल सम्मिश्रण मिलता है। तथ्यान्वेषण करनेवाला इतिहासकार अनेक प्रकार के साधक-बाधक प्रमाणों का आश्रय ले, कपोल-कल्पना में से सत्य को पृथक् करने का प्रयत्न करता है। यह निःसन्देह इतिहासकार का क्षेत्र है जिसमें प्रवेश करने का ध्येय लेखक का नहीं है। राजस्थान की जिन ऐतिहासिक कहावतों का विवेचन नीचे किया जा रहा है, उनके स्वरूप तथा प्रकारादि-निर्धारण तक ही लेखक ने मुख्यतः अपने आपको सीमित रखा है। यद्यपि विषय के स्पष्टीकरण के लिए स्थान-स्थान पर इतिहास-सम्बन्धी टिप्पणियाँ दी गई हैं तथापि इतिहासकार से जिस शोध-दृष्टि की आशा और अपेक्षा की जाती है, उसका अनुसन्धान यहाँ नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इन पृष्ठों में राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतों का अध्ययन किया जा रहा है, राजस्थान के इतिहास का नहीं। राजस्थान के इतिहास का आश्रय उसी अंश तक लिया गया है

1. "The Hindus do not pay much attention to the historical order of things; they are careless in relating the chronological succession of things, and when they are pressed for information, they invariably take to tale-telling." —*Albruni's India*

जिस अंश तक ऐतिहासिक कहावतों के समझाने और उनके विश्लेषण में सहायता मिलती है। किसी प्रकार की भ्रांत धारणा न हो, इसलिए प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर देना आवश्यक एवं वांछनीय है कि ऐतिहासिक कहावतें इतिहास के लिए अमूल्य सामग्री तो अवश्य प्रस्तुत करती हैं किन्तु जिस रूप में वे हमें मिलती हैं, उस रूप को सर्वांश में ऐतिहासिक तथ्य मानने की भूल नहीं करनी चाहिए।

राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें गाथा (पद्य) तथा गद्य दोनों रूपों में मिलती हैं। यहाँ अध्ययन के लिए दोनों ही प्रकार की कहावतों का उपयोग किया गया है।

(३) **ऐतिहासिक कहावतों का वर्गीकरण**—प्राय: प्रत्येक देश की भाषा में ऐतिहासिक कहावतें मिलती हैं किन्तु राजस्थान एक ऐसा प्रदेश है जहाँ इस प्रकार की कहावतों का प्राचुर्य है। जहाँ छोटे से छोटे गाँव में थर्मापली और लियोनीदास के दृश्य उपस्थित हो चुके हों, उस प्रदेश की अनेक घटनाएँ यदि ऐतिहासिक कहावतों के रूप में प्रचलित हो गई हों तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। राजस्थान में आज भी ऐसे व्यक्ति मिल जाते हैं जो अपने कंठाग्र कहावती दोहों की सहायता से राजस्थान के इतिहास की अनेक घटनाएँ सुनाते चले जाते हैं। इस प्रकार की ऐतिहासिक कहावतें अनेक रूपों में उपलब्ध होती हैं। सबसे पहले हम घटनाओं से संबद्ध कहावतों पर ही विचार कर रहे हैं।

(क) **घटनाओं से संबद्ध**—'घटनाओं के साथ जुड़ी हुई उन कहावतों को, जिनका अर्थ उन घटनाओं को जाने बिना नहीं खुलता, 'वातालार्थ' कहते हैं। वे मनोरंजक और शिक्षाप्रद तो होती ही हैं, उनसे अनेक ऐतिहासिक बातों का बोध भी होता है। इस प्रकार के अनेक वातालार्थ ख्यातों में 'साखी या साख' नाम से त्रिविध छन्दों के रूप में मिलते हैं। चारणों, भाटों एवं पुराने लोगों की बातचीत में भी बहुत से सुनने में आते हैं।'[1] उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये :

(अ) "बीलाड़ी पर पड़ो सिलाड़ी।
म्हे तो लेसां बांजरगढ़॥"

अर्थात् बीलाड़ी पर शिला पड़े, हम तो बांजरगढ़ लेंगे। प्रसिद्ध है कि जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम (सं० १६९५-१७३५) ने प्रसन्न होकर किसी ब्रह्मभट्ट कवि को बीलाड़ा गाँव उदक (पुण्यार्थ) लिखने की आज्ञा दी। गाँव बड़ा और तीस हजार की वार्षिक आय का था, इसलिए राजकर्मचारी ने इतना बड़ा गाँव देना ठीक न समझा। उसने युक्ति से चारण को पूछा कि बीलाड़ी लोगे या बांजरगढ़? भट्ट जी बांजरगढ़ का नाम सुन कर फूल उठे और उसका पट्टा लिखा लाये। जब वहाँ पहुँचे तो गढ़ के स्थान पर एक छोटा-सा बांजड़ा गाँव देखा तो महाराज के पास जाकर रोये। महाराज ने दीवान से पूछा तो उसने अर्ज की :

"कलम दिवानी बह गया,
क्या बंदे का सारा ?"

अर्थात् दीवानी कलम आप ही चल गई, मेरा कुछ वश नहीं। तब महाराज ने चारण से कहा कि जो भाग्य में था सो मिल गया, उसी पर सन्तोष करो।

१. राजस्थानी भाग ३, अंक १ में प्रकाशित श्री जगदीशसिंह गहलोत का 'राजपूताने के वातालार्थ' शीर्षक लेख; पृष्ठ ३०।

बीलाड़ा मिल जाता तो उसके पास रहता भी या नहीं, मगर बांजड़ा जो एक छोटा-सा गाँव चार सौ रुपये की आय का है, अब तक उसकी सन्तान के पास है। इसी से मिलता-जुलता एक दूसरा 'वातालार्थ' है :

(आ) "भाग नहीं भँरोदे जोगा।
टैला जोगी टाट ॥"

जोधपुर के एक महाराजा ने किसी चारण को भँरोदे का शासन-पत्र लिख देने का हुक्म फरमाया। भँरोदा मेड़ते परगने का एक बड़ा गाँव है। दीवान बख्शी लोगों ने चाल करके चारण से कहा—बारठ जी, भँरोदा लेकर क्या करोगे, टीलागढ़ ले लो। बारठ जी गढ़ के नाम से राजी होकर टीलागढ़ का पट्टा लिखा लाये। टीलागढ़ ढूँढते-ढूँढते वहाँ पहुँचे तो उसकी जगह टैला नाम का छोटा सा गाँव पाया। 'नाम बड़े, दर्शन थोड़े' वाली मसल हुई।

टैला लाखावत चारणों के पास माफ़ी का गाँव है। उसकी मनद तलाश करके देखी गयी तो मालूम हुआ कि यह गाँव संवत् १७०७ की श्रावण सुदी ५ तारीख २३ जुलाई, सन् १६५० ई०) मंगलवार को महाराजा रामसिंह राठौड़ ने बारठ अजबदान के पोते और रामदान के बेटे तेजदान को दिया था। उसकी सन्तान में रूपदान, सुभकरण, हिंगलाजदान आदि उसे अभी तक भोगते हैं। इस कहावत को वे भी कहते हैं पर इसका असली हाल नहीं जानते। यह कथा यदि सत्य है तो इसका सम्बन्ध तेजदान से होना चाहिए।[1]

(इ) "भाग लल्ला ! प्रथीराज आयो।
सिंह के सांथरै स्याल ब्यायो॥"

अर्थात् हे लल्ला ! पृथ्वीराज आ गया। अब यदि अपनी खैर चाहता है तो भग चल। सिंह की गुफा में गीदड़ ने बच्चा दिया है, कैसे निर्वाह होगा !

इतिहास में प्रसिद्ध है कि लल्ला नामक पठान ने सोलंकियों से टोडा छीन लिया था। महाराणा श्री रायमल्ल जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री पृथ्वीराज जी अत्यन्त यशस्वी और प्रतापी हुए। वे इस समाचार से कुपित होकर अकस्मात् टोडे जा पहुँचे थे, और टोडा विजय करके इन्होंने सोलंकियों को दे दिया था। इस आकस्मिकता के कारण लोग इस बात का अनुमान भी न लगा सके कि क्योंकर महाराज इतना शीघ्र टोडा पहुँच सके। कहते हैं, उसी दिन से यह 'उडणा पृथ्वीराज' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। उनकी वीरता का तो इतना आतंक छा गया कि उक्त पद्य ही कहावत के रूप में प्रचलित हो गया।

(ई) अलाउद्दीन महिमशाह (मुहम्मदशाह) से, जो नव मुस्लिमों का नेता था, रुष्ट हो गया था। मुहम्मदशाह ने अलाउद्दीन के सेनापति उलूगखां और नसरतखां के अशिष्ट व्यवहार के कारण जालोर के पास बग़ावत की और जालोर आदि होता हुआ यह रणथम्भोर पहुँचा। यह वास्तव में महान् वीर और योद्धा था। रणथम्भोर के शासक राव हमीर चौहान ने उसे निर्भीकतापूर्वक शरण दे दी। बादशाह ने हमीर को लिखा कि वह पठान को अपने पास न रखे किन्तु हमीर ने जो उत्तर भिजवाया, वह

१. 'राजपूताने के वातालार्थ (श्री जगदीशसिंह गहलोत); राजस्थानी भाग ३, अंक १।

केवल राजस्थान में ही नहीं, बल्कि उत्तर भारत में भी कहावत की भाँति समय-समय पर प्रयुक्त होता है :

"सिंह संग सत्पुरुष बच, केल फलै इक बार ।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार ।।"

अलाउद्दीन ने किले पर घेरा डाल दिया । वर्षों के युद्ध के बाद वीरता से लड़ते हुए हमीर ने अपने प्राण दे दिये । वह पठान भी जिसको हमीर ने शरण दी थी, अलाउद्दीन के विरुद्ध लड़ता हुआ काम आया ।

घटनाओं से सम्बद्ध जो कहावतें ऊपर दी गई हैं, वे सब प्रसंगोद्भूत हैं किन्तु अनेक बार परम्पराप्राप्त प्रचलित पद्यों का भी प्रसंगानुरूप उपयोग कर लिया जाता है जैसा कि नीचे दिए हुए उदाहरण से प्रकट होगा—

(उ) जोधपुर के राजा मालदेव की रानी उमादे रूठी रानी के नाम से विख्यात है । उमादे के साथ जैसलमेर से दहेज में आई हुई भारमली दासी पर राव मालदेव के आसक्त होने के कारण जब वह अपने पति से रुष्ट हो सदा के लिए जैसलमेर जा बैठी, तब मालदेव ने उमादे को समझाकर वापिस जोधपुर लिवा लाने के लिए कवि आशानन्द को जैसलमेर भेजा । आशानन्द जब जैसलमेर पहुँचे तब उमादे ने अपने पति की अपनी ओर सच्ची प्रीति और हार्दिक आकर्षण जानने के लिए प्रश्न किया कि मेरे पति ने भारमली को अब तक रख छोड़ा है या निकाल दिया है ? इस पर आशानन्द ने रानी को मानवती देख कहा—

"मान रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण ।
दोय-दोय गयन्द न बंधही, हेकै खम्भू ठाण ।।"

अर्थात् यदि तू अपना मान रखना चाहती है तो पति का परित्याग करदे और पति को रखना चाहती है तो मान को तज दे क्योंकि एक ही 'खुम्हालै' (हाथी बाँधने के खंभे) पर दो हाथी नहीं बँधा करते ।

आशानन्द का यह दोहा सुन मानवती उमादे ने सदा के लिए मालदेव का परित्याग कर दिया और अपनी सारी आयु पिता के घर में ही बिता दी ।

ऐसा लगता है कि यह दोहा आशानन्द के मुख से उसी समय निकल पड़ा हो और रूठी रानी के इस प्रसंग में यह अत्यन्त समीचीन भी लगता है । इसका उत्तरार्द्ध तो आकार-प्रकार में भी निश्चय ही एक कहावत जान पड़ता है । किन्तु निम्नलिखित प्राकृत गाथा को पढ़कर स्पष्ट हो जाता है कि उमादे को समझाते समय आशानन्द ने गाथा के लोक-प्रचलित राजस्थानी रूपान्तर का ही प्रयोग किया था—

"जइ माणो कीस पिओ अहव पिओ कीस करिए माणे ।
माणिणि दोवि गइन्दा, एक्कर कम्भे न बज्झन्ति ।।"[1]

आशानन्द द्वारा प्रयुक्त दोहा 'कबीर ग्रन्थावली' में भी निम्नलिखित रूप में उपलब्ध है—

१. जयवल्लभां नाम वज्जालग्गं, माण वज्जा; पृष्ठ ७३ ।
संस्कृत छाया—

यदि मानः किं प्रियो ऽथवा प्रियः किं क्रियते मानः ।
मानिनि द्वावपि गजेन्द्रावेकस्तम्भे न बध्येते ।।

'खंभा एक गइन्द दोइ, क्यूं करि बंधिसि बारि ।
मानि करै तौ पीव नहि, पीव तो मानि निवारि ।।' ४२ ।।
(चितावणी कौ अंग; पृष्ठ २५)

इतिहास में घटना और व्यक्ति का पार्थक्य एक असम्भव व्यापार है क्योंकि व्यक्ति द्वारा ही घटना घटित होती है और घटना स्वतः व्यक्ति के चरित्र को प्रभावित करती है। इस प्रकार घटना और व्यक्ति के सम्बन्ध में पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया का सिद्धान्त लागू होता है। यहाँ पर मात्र विश्लेषण की सुविधा के लिए ही प्रधानता के आधार पर ऐतिहासिक कहावतों के घटना-प्रधान और व्यक्ति-प्रधान जैसे वर्ग निर्धारित कर लिए गये हैं।

राजस्थान में व्यक्ति-प्रधान कहावतें अपरिमित संख्या में प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं।

(ख) व्यक्ति-प्रधान—

(अ) 'नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक' राजस्थान में कहावत की भाँति प्रयुक्त है। नैणसी का जन्म सं० १६६० में हुआ था। सं० १७१४ में जोधपुर महाराज जसवन्तसिंह प्रथम ने इसे अपना दीवान बना लिया था। एक बार किसी कारण से महाराज, नैणसी और उसके भाई सुन्दरदास पर नाराज हो गये और दोनों को कैद कर लिया। फिर संवत् १७२५ में उन पर एक लाख रुपये का जुर्माना कर उन्हें छोड़ दिया गया। परन्तु नैणसी ने एक पैसा तक देना मंजूर नहीं किया जिस पर सं० १७२६ में दोनों भाइयों को फिर कैद कर लिया गया। राजस्थान में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावती दोहे अत्यन्त प्रसिद्ध हैं—

"लाख लखारां नीपजै, बड़ पीपल री साख।
नटियो मूतो नैणसी, तांबो देण तलाक ।।
लेसो पीपल लाख, लाख लखांरां लाभसी।
तांबो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी ।।"[1]

अर्थात् एक लाख रुपये जुर्माने की बात सुनकर नैणसी ने कहा था कि लाख तो लखारों के यहाँ मिलेगी जो बड़-पीपल से पैदा होती है। मैं तो ताँबे का एक पैसा भी न दूँगा। यही बात कहकर नैणसी के भाई सुन्दरदास ने भी जुर्माना देने से साफ़ इन्कार कर दिया था।

जेल में जब इन दोनों भाइयों को कष्ट दिये जाने लगे तो कटारी खाकर संवत् १७२७ में उन्होंने आत्म-हत्या करली। 'मूता नैणसी की ख्यात' के रचयिता के रूप में नैणसी का नाम राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

(आ) उन व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी जिनके विषय में इतिहास ने मौन धारण कर रखा है, राजस्थान में असंख्य कहावती पद्य सुनाई पड़ते हैं। उदाहरण के लिए एक प्रचलित पद्य लीजिये—

"तरवर ज्याहीं मोरिया, सरवर ज्याहीं हंस।
बाघो ज्याहीं भारमली, दारू ज्याहीं मंस ।।"

---

१. राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान; पृष्ठ ७३।

अर्थात् जहाँ तरुवर हैं, वहीं मोर हैं; जहाँ सरोवर हैं वहीं हंस हैं; जहाँ बाघा है, वहीं भारमली है; जहाँ मदिरा है, वहीं मांस है।[1]

(इ) गोगा को लेकर राजस्थान में अनेक कहावतें प्रचलित हैं। उदाहरण के लिए एक कहावत लीजिए—

"गाँव-गाँव गोगो नै गाँव-गाँव खेजड़ी" अर्थात् गाँव-गाँव में गोगा है और गाँव-गाँव में खेजड़ी का वृक्ष है।

गोगा चौहान राजस्थान में देवता की भाँति पूजा जाता है। जिसे साँप काटता है, उसके गोगा के नाम का डोरा बाँधते हैं जिसको तांती कहते हैं। गोगा का 'थान' जिसमें साँप की मूर्ति, पत्थर में खुदी होती है बहुधा गाँवों में होता है। इसीलिए उक्त राजस्थानी कहावत प्रचलित हुई है।

गोगा के थान प्रायः खेजड़ी के नीचे होते हैं और गाँव में जिसके घर साँप निकलता है, वह गोगाजी को याद करके दूध के छींटे देता है। मेह बरसने पर जिस दिन हल चलाना शुरू करते हैं, गोगाजी के नाम की राखी जिसको 'गोगा राखड़ी' कहते हैं, नौ गाँठें देकर हल और हाली के बाँधते हैं तथा बार-बार यह पढ़ते हैं "हली बालदी गोगो रखवालो।"[2]

(ई) रामदेवजी मारवाड़ के एक सत्यवादी वीर हो चुके हैं। कहते हैं कि भैरव नामक एक दुष्ट को मारने से रामदेव जी की ख्याति चारों ओर फैल गई थी। मुसलमान हिन्दू सभी इन्हें पूजने लगे और ये रामशाह पीर के नाम से पुकारे जाने लगे। संवत् १५१५ में इन्होंने मारवाड़ के रूणेचा गाँव में जीवित समाधि ले ली। राजस्थान के अनेक स्थानों में रामदेवजी के उपलक्ष में मेले भरते हैं और देवता की भाँति इनकी पूजा होती है। जहाँ मेले भरते है, वहाँ बहुत से यात्री जाते हैं किन्तु यात्रियों में ज्यादा निम्न श्रेणी के लोग होते हैं जिससे यह कहावत राजस्थान में प्रसिद्ध हो गई—

"रामदेवजी नै मिल्या जिका ढेढ ही ढेढ (कामड़िया ही कामड़िया)" अर्थात् रामदेवजी को सबके सब चमार ही मिले। रामदेवजी के पुजारी भी चमार-साधु होते हैं जो 'कामड़िया' कहलाते हैं।

(उ) इसी प्रकार की एक कहावत पाबूजी के सम्बन्ध में कही जाती है **"पाबूजी नै मिलिया जिका सै थोरी ही थोरी"** अर्थात् पाबूजी को जितने भी मिले, सब थोरी ही मिले। यद्यपि थोरियों ने पाबूजी के प्रति बड़ी स्वामि-भक्ति का परिचय दिया था किन्तु आजकल इस लोकोक्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जब किसी को एक के बाद एक इस तरह के व्यक्ति मिलते हैं जिनके कारण इष्ट-सिद्धि में सहायता नहीं मिलती। थोरियों के सामाजिक निम्न स्तर के कारण सम्भवतः यह कहावत इस अर्थ में रूढ़ हो गई।

ऊपर व्यक्ति-सम्बन्धी जो कहावतें दी गई हैं, वे राजस्थान के अनेक पुरुषों के नामों के सम्बद्ध हैं। कुछ कहावतें ऐसी भी हैं जो स्त्रियों के नामों को लेकर प्रवृत्त

१. बाघा और भारमली के प्रेमाख्यान के सम्बन्ध में देखिए 'राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद'; पृष्ठ १६-२३।

२. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, बाबत सन् १८६१ ईसवी; भाग ३, पृष्ठ १४।

हुई हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो कहावतें लीजिये—

(ऊ) **"राज पोपा बाई रो, लेखो राई राई रो।"** एक ऐसी ही कहावत है। पोलखाता और अन्धेरगर्दी के प्रतीक के रूप में पोपाबाई का नाम राजस्थान में विख्यात है, किन्तु न केवल राजस्थान में बल्कि मध्यभारत, गुजरात, मालवा आदि अनेक राज्यों में पोपाबाई इसी रूप में विख्यात है तथा पोपाबाई के सम्बन्ध में इन सभी प्रदेशों में कहानियाँ प्रचलित हैं।[1] कवि राजा बांकीदास ने भी एक स्थान पर कहा है—

"पोपां बाई प्रगट हुवै, नवी चलावे नीत।"

बांकीदास ग्रन्थावली[2] की टिप्पणियों में कहा गया है कि पोपाबाई एक कुम्हारिन थी जो खंडेले के राज्य इलाके जयपुर में हुई थी। उसका पोल का राज्य मशहूर है। अन्त में वह अपनी ही मूर्खता से शूली पर टँगी थी। उसके राज्य में सब धान बाईस पंसेरी बिकता था। श्रीयुत गणपतलाल जी जोशी[3] के मतानुसार पोपाबाई गुजरात के राजकर्ताओं के वंश में उत्पन्न हुई थी। गुजरात के शासक अपनी उदारता और विशालहृदयता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। इस देवी का हृदय विशेष उदार था। उसका लाभ नौकरों ने उठाया जिससे उसके राज्य की कीर्ति मन्द पड़ गई। मध्य-भारतीय पोपाबाई को भी कुम्हारिन ही कहा गया है किन्तु राजस्थान और मध्य-भारत की पोपाबाई-सम्बन्धी कहानियों में अन्तर है।

(ए) **'अरे, ये तो बाँका पग बाई पद्मा रा'** अर्थात् ये तो बाई पद्मा के बाँके पैर हैं।

जिस पद्मा को लेकर यह कहावत प्रचलित हुई है, वह एक साहसिक महिला थी। उसकी सगाई प्रसिद्ध कवि बारहठ शंकर से हुई थी। एक बार बारहठजी अपने नौकर-चाकरों के साथ कहीं जाते हुए पद्मा के गाँव पहुँचे। पद्मा के पिता उस दिन वहाँ नहीं थे। ऊँट-घोड़ों पर सवार प्रतिष्ठित अतिथियों को जब पद्मा ने घर पर आया देखा तो उनके आतिथ्य-सत्कार के लिए वह स्वयं मर्दाने कपड़े पहनकर बाहर आ गई और अतिथियों का यथोचित सत्कार किया। तत्पश्चात् विदा होकर जब अतिथि गाँव से बाहर निकलकर जा रहे थे तो एक व्यक्ति ने उनके हुक्के की मनुहार की। प्रसंगवश बारहठजी ने कहा कि जिनसे हम मिलने आये थे, वे तो मिले नहीं परन्तु उनके कुँवर बहुत समझदार हैं जिन्होंने हम सब की बड़ी आवभगत की। यह सुन कर उस व्यक्ति ने कहा कि हमारे ठाकुरों के तो एक बाईजी ही हैं, कुँवर तो कोई भी नहीं। इस पर मतभेद होने पर उस व्यक्ति ने कहा कि उन कुँवरजी का पद-चिन्ह मुझे दिखला दो तो मैं पहचान जाऊँगा कि पद—चिन्ह किसका है? यही किया गया और पद-चिन्ह देखते ही वह बोल उठा **'अरे, ये तो बाँका पग बाई पद्मा रा'**। पद्मा के पैर कुछ टेढ़े पड़ते थे। बारहठजी को जब निश्चय हो गया कि पुरुष-वेश में वह

१. पोपाबाई-सम्बन्धी कहानियों के लिए देखिये 'लोकवार्ता' वर्ष १, अंक ४, मार्च १९४५।
२. बांकीदास ग्रन्थावली (दूसरा भाग); पृष्ठ २०।
३. शारदा, जुलाई १९४४।

पद्मा ही थी तो उन्होंने रुष्ट होकर सगाई छोड़ दी। पद्मा को हार्दिक दुःख हुआ किन्तु एक बार जिसके साथ उसका सम्बन्ध स्थिर हो चुका था, उसको छोड़कर स्वप्न में भी वह दूसरे की कल्पना नहीं कर सकती थी। इसलिये उसने आजन्म कौमार्य-व्रत का संकल्प कर लिया। पद्मा की प्रतिभा की खबर सर्वत्र फैल गई। जब बीकानेर यह खबर पहुँची तो वीर अमरसिंह ने उसे बुला लिया और तभी से वह उनके अन्तःपुर में रहने लग गई थी।

पद्मा का समय सन् १५६७ के लगभग माना जाता है। वह चारण मालाजी सांदू की पुत्री थी। बीकानेर के अमरसिंह उन दिनों अकबर के विरुद्ध क्रान्तिकारी स्वर उठाकर उसके कोष इत्यादि को लूटने में प्रवृत्त रहते थे, पर अकबर के विशाल वैभव के सामने इस छोटे से आत्माभिमानी सरदार की भला क्या चलती? मुग़ल सेना ने उनके सैनिकों को कुचलते हुए उनका गढ़ घेर लिया। अमरसिंह उस समय निद्रावस्था में थे। सोते हुए सिंह को छेड़ने का साहस किसी में नहीं था क्योंकि अमरसिंह क्रोध में अपना विवेक खो बैठते थे। ऐसी स्थिति में पद्मा ने ही 'जाग रे जाग कलियाण जाया' गीत द्वारा उनकी निद्रा भंग की थी। आक्रमणकारियों को परास्त करते हुए अमरसिंह वीर गति को प्राप्त हुए। पद्मा ने अपने कर्त्तव्य का पालन किया।[1]

राजपूताने में किसी संदेहास्पद बात का निश्चय होने पर या कोई नई बात मालूम होने पर '**अरे, ये तो बांका पग बाई पद्मा रा**' ये शब्द कहावत की तरह प्रचलित हो गये।

(ऐ) राजस्थान में प्रचलित ऐतिहासिक कहावतों में से कुछ ऐसी भी हैं जिनका राजस्थान के इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं है। '**कठे राजा भोज, कठे गांगलो तेली**' यह तो एक ऐसी कहावत है जो उत्तरी भारत की प्रायः सभी भाषाओं में समान रूप से प्रचलित है। 'महाराष्ट्र वाक् सम्प्रदाय कोश' में इस कहावत की व्याख्या में कहा गया है—

'कहाँ भोज राजा, कहाँ गंगु (गंगा तेली); कोठें भोज राजा व कोठें गंगा तेली; गंगराज तैलप येथें मुंराजालाच चुकीनें भोज संबोधून ह्मण रचिली आहे। मुंजाचें राज्य तैलपानें घेतलें तेव्हांची त्यांची तुलना केली आहे, भोज राजा उदार तर गंगराज तैलप त्या मानान कांहींच नाहीं, तु० गते मुंजे यशः पुंजे निरालंबा सरस्वती।'[2]

उक्त व्याख्या के अनुसार कहावत का भोज मुंज राजा है और गंगा तेली है गंगराज तैलप। यद्यपि यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि गंगराज तैलप (९७३-९९७) ने परमार वंश के मुंज का वध कर डाला था किन्तु जब तक कोई पुष्ट प्रमाण न मिले, केवल इसी के आधार पर गंगा तेली को गंगराज तैलप और भोज को मुंज नहीं ठहराया जा सकता।

श्री पी० के० गोडे ने गंगा तेली की एक संस्कृत में लिखी हुई लोक-कथा का पता लगाया है जिसका सारांश निम्नलिखित है—

१. राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (प्रथम शतक); पृष्ठ ८५-८८।

२. महाराष्ट्र वाक् संप्रदाय कोश, विभाग पहला, संपादक यशवंत रामकृष्ण दाते और चिन्तामण गणेश कर्वे; पृष्ठ २४९-२५०।

एक छात्र दक्षिण देश के प्रतिष्ठानपुर में गया। उसने अपने आचार्य से तीस वर्ष तक विद्याध्ययन किया। उसे अपनी विद्वत्ता का बड़ा गर्व था। वह पण्डितों को पराजित करने के लिए गुजरात, मारवाड़ आदि प्रदेशों की ओर बढ़ा। उसने अपने सिर पर अंकुश रख लिया, अपने पेट को एक कपड़े से ढक लिया ताकि उसकी विद्या फूटकर न निकल जाय। उसका अनुचर एक निःश्रेणी (सीढ़ी) इस उद्देश्य से साथ रखता था कि यदि वाद-विवाद में पराजित प्रतिपक्षी आसमान में भी जाना चाहे तो वह इस सीढ़ी पर चढ़कर उसे नीचे गिरा देगा। यदि प्रतियोगी पाताल में चला जाय तो वह कुदालों की सहायता से, जो वह हाथ में लिये रहता था, उसे पाताल खोदकर बाहर निकाल लेगा। अनुचर अपने हाथ में तृणपुलक इसलिए लिये रहता था कि प्रतिपक्षी के पराजित होते ही पराजय के चिन्हस्वरूप उसे दाँतों-तले तृण दबाने को विवश कर दिया जाय। गुजरात मारवाड़ के पण्डितों को जीतकर इस छात्र ने सरस्वती कंठाभरण आदि की उपाधियाँ प्राप्त करलीं। तब यह सुनकर कि भोज राजा के यहाँ पचास प्रसिद्ध पण्डित हैं, वह उज्जयिनी गया और पचासों पण्डितों को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया जिनमें कालिदास, क्रीडाचन्द्र और भवभूति आदि प्रमुख थे। भोजराजा खिन्नमन होकर विनोद के लिए वन में गया। लौटते समय उसकी दृष्टि गाँगा नामक तेली पर पड़ी जो घाणी से तेल निकाल रहा था और एक घड़े में डाल रहा था। तेली यद्यपि काना था लेकिन राजा भोज को वह बुद्धिमान् जान पड़ा। उसने तेली से पूछा कि एक भट्टाचार्य से क्या तुम वाद-विवाद कर सकोगे। तेली ऐसा करने को राज़ी हो गया। बड़े सम्मान से वह सभा में लाया गया और सिंहासन पर बिठलाया गया। उसने सुन्दर वस्त्र पहन रखे थे और स्वर्णाभूषणों से वह सुसज्जित था। अपने तुन्दिल शरीर से वह मदमत्त गजराज की भाँति शोभित हो रहा था। उसके सभा में प्रवेश करते ही राजा खड़े हुए और साथ ही सभी सभासद। तब उसे एक सिंहासन पर बिठलाया गया। शास्त्रार्थ शुरू हुआ। दक्षिणीय भट्टाचार्य ने अपनी एक अँगुलि दिखाई, तेली भट्टाचार्य ने रुष्ट होकर दो अँगुलियाँ दिखलाई।[1] इस पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने पाँच अँगुलियों वाला अपना हाथ आगे कर दिया। तब भोजराज के भट्टाचार्य ने अपनी बद्ध मुष्टि दिखला दी। इस पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने अपने सिर पर से अंकुश उतार लिया, विद्यापट्ट पेट से अलग कर दिया, सीढ़ी तोड़ डाली, कुदालों को अलग डाल दिया और तृणपुलक को आग लगा दी। भोज भट्ट के चरणों में गिर पड़ा और अपनी हार स्वीकार कर ली। भोजराज के पूछने पर दक्षिणीय भट्टाचार्य ने कहा कि वाद-विवाद के प्रारम्भ में मैंने एक अँगुली दिखलाई जिसका आशय यह था कि शिव एक है। आपके भट्टाचार्य ने यह संकेत करते हुए दो अँगुलियाँ दिखलाईं कि यद्यपि शिव एक है, वह शक्ति से युक्त है। फिर पाँच इन्द्रियों के सूचनार्थ मैंने पाँच अँगुलियाँ दिखलाईं तो आपके भट्टाचार्य ने बद्धमुष्टि दिखलाकर यह जताया कि इन्द्रियों का निग्रह संभव है। राजा भोज ने गांगा तेली से भी वाद-विवाद के बाबत प्रश्न किया तो उसने दूसरा ही उत्तर दिया। वह कहने लगा—भट्ट ने मुझे एकाक्षी प्रकट करने के लिए जब एक अँगुली उठाई तो मैंने उसे दो अँगुलियाँ दिखलाईं कि तुम्हारी दोनों आँखें

१. ऐसी ही एक कथा कालिदास और विद्योत्तमा के सम्बन्ध में भी सुनी जाती है।

फोड़ डालूँगा। तब दक्षिणीय भट्ट ने पाँच अँगुलियों वाला अपना हाथ इस आशय से दिखलाया कि मैं तुम्हें चाँटे लगाऊँगा। यह सुनकर राजा सहित सारी सभा खिल-खिला कर हँस पड़ी। गांगा तेली के दिन फिरे, राजा ने उसका बड़ा सम्मान किया। राजा ने सभासदों से कहा—आप सभी को सफलता मिली, इसलिए आपके शब्द मेरे लिए सत्य सिद्ध होंगे।

श्री गोडे के अनुसार उक्त लोक कथा ही **"कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगा तेली"** की लोक मूल । यह कथा सन् १६५० से पुरानी ही प्रतीत होती है क्योंकि जिस कागज़ पर यह लिखी हुई मिलती है, वह २५० वर्ष से अधिक पुराना है। १६वीं शती के भोज प्रबन्ध से यह पूर्ववर्ती है या परवर्ती, यह नहीं कहा जा सकता किन्तु पिछले ३५० वर्षों से यह कथा देश में प्रचलित रही है जिसने राजा भोज और गंगा तेली की लोकोक्ति को जन्म दिया है।[1]

सुविख्यात पुरातत्वविद् स्व० डा० हीरालाल जी ने कलचुरिनरेश गांगेय देव और तैलप चालुक्य के साथ गंगू और तेली शब्दों का सम्बन्ध स्थापित किया था। उनकी सम्मति में गंगू और तेली क्रमशः गांगेय और तैलप के विकृत रूप हैं। नहीं कहा जा सकता कि यह कल्पना कहाँ तक ठीक है।

मौलाना नियाज़ फतेहपुरी ने गंगुवा तेली के सम्बन्ध में एक दूसरा ही मत प्रकट किया है। उन्हीं के शब्दों में "कहावतों की एक किस्म और है जिन्हें तलमीही कहते हैं, याने उनका तअल्लुक किसी-न-किसी तारीखी रिवायत से होता है। एक मसल मशहूर है **"कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगुवा तेली।"** इस कहावत में इशारा है उस रिवायत की तरफ कि मालवा व गुजरात के राजा भोज ने अपनी लड़की गंगुवा तेली के लड़के से विवाह दी थी, सिर्फ़ इसलिए कि उसने एक बार दीपक राग गाकर महल के चिराग़ रोशन कर दिये थे।[2]

"राजा भोज और गंगू तेली" विषयक जो भिन्न-भिन्न मत-मतान्तर मिलते हैं, उनके सम्बन्ध में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। यह इतिहास के आचार्यों की गवेषणा का विषय है।[3]

(ओ) राजा भोज की गुणग्राहकता, दानशीलता और प्रसिद्धि के कारण किसी-किसी लोकोक्ति में राजा भोज का नाम जोड़ दिया गया है जिससे कहावत पर प्रामाणिकता की छाप लग जाय।

उदाहरण के लिए प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रचलित इस लौकिकी गाथा को लीजिए—

"केडी चालै डोकरी, कैंका काढै खोज।
कांई थारो खो गयो, पूछै राजा भोज ॥

---

1. Vide "The Story of King Bhoja and Ganga Teli in Sanskrit and its relation to a proverb current in the Marathi Language."
—*The poona Orientalist Vol. x., 3 & 4. July 1945-Oct. 1945*

२. रेडियो संग्रह, (त्रैमासिक) वर्ष १, अंक २ में 'कहावतें' शीर्षक मौलाना नियाज़ फतेहपुरी की वार्ता, पृष्ठ ३५।

३. विशेष विवरण के लिए देखिये मरु-भारती वर्ष ४, अंक ३ में प्रकाशित 'एक कहावती लोक-कथा' पृ० ११४-१५-१६।

म्हारं सं थारं गई, जंका काढ़ूं खोज ।
थारं सं बी जायगी, मत गरबावं भोज ॥"

अर्थात् हे बुड्ढी स्त्री, तुम झुक-झुक कर चल रही हो, किसके खोज निकालती हो, तुम्हारा क्या खो गया है ? बुढ़िया राजा भोज के इस प्रश्न का उत्तर देती है—मेरी युवावस्था जाती रही, वह आज तुम्हारे पास है, मैं उसी को खोज रही हूँ, किन्तु याद रखना, वह तुम्हारे पास भी सदा के लिए न रहेगी। इसलिए हे भोज ! गर्व न कर ।

उक्त राजस्थानी कहावत को पढ़ते ही संस्कृत सुभाषितकार का निम्नलिखित श्लोक अनायास स्मरण हो आता है—

"अधः पश्यसि किं बाले तव किं पतितं भुवि ।
रे रे मूढ न जानासि गतं तारुण्य मौक्तिकम् ॥"

अर्थात् हे बाले ! नीचे क्या देख रही हो ? भूमि पर तुम्हारा क्या गिर पड़ा है ? स्त्री ने उत्तर दिया—मूढ़ ! तुम्हें मालूम नहीं, मेरा यौवन रूपी मोती चला गया !

प्रकारान्तर से मलिक मुहम्मद जायसी भी यही कह गये हैं—

"मुहम्मद विरिध जो नइ चलै, काह चलै भुंइ टोइ ।
जोबन रतन हिरान है, मकु धरती में होइ ॥"

युधिष्ठिर द्वारा किये गये यक्ष के प्रश्नोत्तरों पर जैसे हम पूर्ण विश्वास-सा करने लगते हैं, उसी प्रकार उक्त राजस्थानी प्रश्नोत्तर भी हमें इसके सम्पूर्ण सत्य को स्वीकार करने के लिए विवश कर देता है । इस सत्य की लोकप्रियता तो इसी से स्पष्ट है कि किस प्रकार यह भिन्न-भिन्न भाषाओं में भिन्न-भिन्न रूप में अवतरित हुआ है । इसको पढ़कर हम सोचते ही रह जाते हैं कि "**जो आके न जाय ऐसा बुढ़ापा देखा, जो जाके न आय ऐसी जवानी देखी ।**" राजस्थानी कहावत में भुक्तभोगी की उक्ति होने से बुढ़िया की कही हुई बात बड़ी मार्मिक हो गई है ।

(औ) राजस्थान में ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमें पौराणिक पुरुषों का निर्देश हुआ है । जैसे,

१. **"बैरोचन कै कंस अर हिरणाकुश कै प्रहलाद ।"**

जब योग्य व्यक्ति के अयोग्य अथवा अयोग्य के घर योग्य का जन्म होता है तब उक्त कहावत का प्रयोग किया जाता है ।

२. **"सोनू गयो करण कै साथ ।"**

अर्थात् सोना तो कर्ण के साथ चला गया । कर्ण जैसे दानी अब इस संसार में नहीं रहे । विशेष गुणी की मृत्यु होने पर उस गुणविशेष के स्मरणार्थ यह कहावत प्रयुक्त होती है ।

३. **"नन्द रा फन्द तो कृष्ण जाणै पण कृष्ण रा छन्द कोई नी जाणै ।"**

अर्थात् नन्द का फन्द तो कृष्ण जानते हैं किन्तु कृष्ण की कूटनीति को समझने वाला कोई नहीं । भागवत की वह कथा प्रसिद्ध है जिसमें कृष्ण ने वरुण-पाश से नन्द को मुक्ति दिलाई थी । जो स्वयं सबके छल-कपट को समझता हो किन्तु जिसका छल-कपट अन्य सभी की पहुँच के बाहर हो, ऐसे व्यक्ति के सम्बन्ध में उक्त कहावत व्यवहृत होती है ।

इस प्रकार की पौराणिक प्रसंग-गर्भित कहावतें न केवल राजस्थान में, बल्कि भारत के सभी प्रदेशों में प्रचलित हैं।

संवाद-पद्धति हमारे देश की अत्यन्त प्राचीन पद्धति है। वेदों में भी यम-यमी जैसे संवादों के हमें दर्शन होते हैं। रामचरितमानस की तो समस्त कथा ही संवादों द्वारा कहलवाई गई है। इतिवृत्त भी यदि वार्तालाप के माध्यम द्वारा प्रस्तुत किया जाय तो उसका विशेष प्रभाव पड़ता है। संवाद के रूप में जो ऐतिहासिक कहावतें राजस्थान में मिलती हैं, उनका सम्बन्ध ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ होने से वे हमारे लिये असाधारण आकर्षण की वस्तु बन गई हैं। यह स्वाभाविक भी है कि महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की बातचीत में हमारी अभिरुचि हो। इस अभिरुचि के कारण ऐतिहासिक महापुरुषों के संवादों को हम बार-बार स्मृति-पथ पर लाया करते हैं जिसके कारण वे कहावती रूप धारण कर लेते हैं। वार्तालाप के रूप में प्रचलित इस प्रकार के कहावती प्रसंग राजस्थान में असंख्य हैं। नमूने के रूप में कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

(ग) वार्तालाप-सम्बन्धी—

(अ) 'नरां नाहरां डिगमरां पाक्यां ही रस होय' अर्थात् मर्दों, सिंहों और दिगम्बरों (योगियों) में रस-परिपाक अवस्था पकने पर ही होता है। यह सूक्ति कहावत की भाँति राजस्थान में प्रचलित है। किन्तु निम्नलिखित वार्तालाप को समझ लेने पर ही इस उक्ति का मर्म समझ में आता है—

बीकानेर के महाराज रायसिंह जी के छोटे भाई पृथ्वीराज सुप्रसिद्ध 'पीथल' कवि थे जिनकी 'बेलि क्रिसन रुकमणी री' डिंगल का सर्वोत्तम काव्य समझा जाता है। इनकी रानी चांपादे को भी कवि-हृदय मिला था। मुंशी देवीप्रसाद ने इनका रचना-काल वि० सं० १६५० माना है।[1] कहते हैं कि एक बार महाराज अपनी दाढ़ी सँवार रहे थे। दाढ़ी में उनको एक सफ़ेद बाल दिखाई पड़ा तो उन्होंने उसे उखाड़कर फेंक दिया। पीछे से रानी चांपांदे ने महाराज को ऐसा करते देख लिया। महाराज मुस्कराकर कविता में ही अपनी प्रिया से कहने लगे—

"पीथल धौला आविया, बहुली लागी खोड़।
पूरे जोवन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड़॥
पीथल पलीट भुक्कियां, बहुली लागी खोड़।
मरवण मत्त गयन्द ज्यूं, ऊभी मुक्ख मरोड़॥"

पीथल कहता है कि सफेद बाल उग आए, यह तो बड़ी खोड़ (खोट, खराबी, त्रुटि) लग गई। बड़ा बुरा हुआ कि पूर्ण यौवन को प्राप्त पद्मिनी-सी मोहिनी प्रिया खड़ी हुई मेरी ओर देखकर मुख मरोड़ रही है। पीथल कहता है कि दाढ़ी के बाल पकने लगे, बड़ा बुरा हुआ, जिसके कारण मदोन्मत्त हाथी के समान प्रिया मरवण खड़ी-खड़ी मुख मरोड़ रही है। यह सुनकर चांपांदे महाराज का भाव ताड़ गई और उनकी आत्म-ग्लानि के भाव को दूर करती हुई अपने पति के संतोषार्थ कहने लगी—

१. मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ : (डा० सावित्री सिन्हा); पृष्ठ ३६।

"प्यारी कह पीथल सुणो, धौलां दिस मत जोय।
नरां नाहरां डिगमरां, पाक्यां ही रस होय॥"

प्यारी कहती है कि हे पीथल ! सुनो, सफ़ेद बालों की ओर न देखो **"नरां नाहरां डिगमरां, पाक्यां ही रस होय।"**

(आ) इसी प्रकार **"धर रहसी, रहसी धरन, खप जासी खुरसाण"** एक कहावती दोहे का अंश है। कहते हैं कि महाराणा प्रताप के पुत्र महाराणा अमरसिंह के लिए मुग़लों से युद्ध करते-करते जब ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि या तो उनको देश छोड़ना पड़ता या उनको क़ैद होना पड़ता तो उन्होंने अपने मित्र अब्दुर्रहीम मिर्ज़ाखां खानखाना को, जो हिन्दी, फारसी, अरबी, संस्कृत आदि के विद्वान् होने के साथ-साथ अच्छे कवि भी थे, निम्नलिखित दोहे लिखकर भेजे—

"गोड़ कछाहा राठवड़, गोखां जोख करन्त।
कहजो खानखान ने, बनचर हुया फिरन्त॥
तंवरां सूं दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज।
अमर पयंपै खान ने, वो दिन दीसै अज्ज॥"

अर्थात् गौड़, कछवाहा और राठौड़ महलों में झरोखों में, मौज उड़ा रहे हैं। खानाखान से कहना कि हम जंगलों में भटक रहे हैं। तंवर राजपूतों से दिल्ली गई, राठोड़ों से कन्नौज गया। अमरसिंह के लिए भी वह दिन आज दिखाई दे रहा है। इस सन्देश के उत्तर में खानखाना ने नीचे लिखा हुआ दोहा लिख भेजा—

"धर रहसी, रहसी धरम, खप जासी खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरां, राखो नहचो राण॥"

अर्थात् धरती और धर्म रह जायँगे, खुरासान वाले मुग़ल खप जायेंगे। हे राणा अमरसिंह, तुम विश्वम्भर भगवान पर भरोसा रखो। राज्य तो आते-जाते रहते हैं, धरती और धर्म ही हमेशा बने रहेंगे। खानखाना के उत्तर की ये मार्मिक पंक्तियाँ आज भी अवसर पड़ने पर राजस्थान में लोकोक्ति की भाँति व्यवहृत होती हैं। इस उत्तर से महाराणा का उत्साह बढ़ गया और वे निरन्तर लड़ाइयाँ लड़ते रहे।

(इ) मनुष्य के जीवन में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो विवादास्पद हैं, जिनके विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु जो पैदा हुआ है, उसकी मृत्यु निश्चित है, इसमें किसी को सन्देह नहीं। अँग्रेजी साहित्य में तो निश्चयात्मकता के लिए मृत्यु एक कहावती उपमान के रूप में प्रयुक्त होता है और वह मृत्यु भी कब आ जाय, इसका कोई ठिकाना नहीं। प्रबन्ध चिन्तामणि में अपभ्रंश का एक दोहा मिलता है—

"ऊग्या ताविउ जहिं न किउ, लक्खउ भणइ निघट्ट।
गणिया लब्भइ दीहड़ा, के दहक अहवा अट्ठ॥"[1]

अर्थात् कुशल लाखा का कथन है कि शत्रु का उदय होते ही यदि उसे नष्ट न किया जाय तो फिर न जाने भविष्य में क्या हो ! गिने-गिनाये आठ-दस दिन ही तो

---

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग २, सं० १९७८ में प्रकाशित 'पुरानी हिन्दी' : (पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी); पृष्ठ ३४।

जीने के लिए मिलते हैं। सम्भवतः प्रबन्ध चिन्तामणि के उक्त पद्य के आधार पर ही राजस्थान में लाखा फूलाणी आदि का निम्नोक्त मार्मिक प्रवाद प्रचलित हुआ हो—

"मरदो माया माणलो, लाखो कहै सुपट्ठ।
घणा दिहाड़ा जावसी, के सत्ता के अट्ठ॥"

अर्थात् हे मनुष्यो ! अधिक से अधिक सात या आठ दिन के लिए ही तो यह माया मिली है, क्यों नहीं इसका उपभोग कर लेते ? यह लाखा की स्पष्ट उक्ति है। इस पर लाखा की पत्नी कहती हैं—

"फूलाणी ! फेरो घणो, सत्ता सूं अठ दूर।
रोते देख्या मुलकता, वे नहिं उगते सूर॥"

स्वामिन् ! सात और आठ में तो बहुत अन्तर है। जिन्हें हमने रात्रि में हँसते हुए देखा था, वे प्रातःकाल होते ही उस लोक को चल दिये जहाँ से लौटकर कोई नहीं आता। फूलाणी की पुत्री ने इसका प्रतिवाद करते हुए कहा—

"लाखो भूल्यो लखपति, मा भी भूली जोय।
आंखां तणे फरूकड़े, क्या जाणूं क्या होय॥"[१]

अर्थात् माता-पिता दोनों ने ही अच्छी तरह विचार कर बात नहीं कही। सच तो यह है कि आँखों के फड़कने में जितना समय लगता है, उसमें ही न जाने क्या का क्या हो जाय।

दासी ने तो, जो यह सब सुन रही थी, और भी सूक्ष्म दृष्टि का परिचय देते हुए कहा—

"लाखो अंधो, धी अँधी, अँध लाखा री जोय।
साँस बटाऊ पावणों, आवे न आवण होय॥"

अर्थात् लाखा, उसकी स्त्री, उसकी लड़की सब इस प्रकार बातें करते हैं जैसे उन्होंने दुनिया को देखा ही न हो। आँखों के फड़कने में भी तो समय लगता है। साँस के जाने में समय कैसा ? अरे, श्वास तो बटाऊ (पथिक) के समान है, एक बार आकर फिर आये न आये, इसका कौन भरोसा ! श्वासोच्छ्वास के बीच का जो समय है, उसमें ही कितनी बड़ी घटना घटित हो जाय, जीव महाप्रयाण के लिए निकल पड़े।

नश्वर जीवन का तथ्य दासी की उक्ति में चरम सीमा पर पहुँच जाता है। **'आँखां तणे फरूकड़े क्या जाणूँ क्या होय'** और **'साँस बटाऊ पावणो आवै न आवण होय'** दोनों ही लोक-प्रचलित उक्तियाँ हैं जो ऊपर के कहावती वार्तालाप में से जीवन-निष्कर्ष के रूप में निकल पड़ी हैं। कविकुल गुरु की सूक्ति **'मरणं प्रकृतिः शरीरिणाम्'** से इन लोकोक्तियों अथवा बोध-वाक्यों की तुलना की जा सकती है।

(ई) प्रवाद है कि राव चूँडा ने नागौर की विजय के बाद राज्य का प्रबन्ध अपनी नई रानी को सौंप दिया। रानी ने कई मदों में कटौती कर दी। घोड़ों को जो

१. मिलाइये : "धरम विलंब न कीजियइ, खिण खिण त्रूटइ आय।
आँखि तणइ फरूकइ, घड़ी वरू थल थाय॥"
— कविवर समयसुन्दर-कृत सीताराम चौपाई

भी दिया जाता था, वह भी बन्द कर दिया। रावजी को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने कहा—

"कलह करे मत कामणी, घोड़ां घी देतांह।
आडा कदेक आवसी, वाडेली बहतांह॥"

अर्थात् हे कामिनी! घोड़ों को घी देते समय कलह मत कर। कभी तलवार चलाने का काम पड़ने पर अर्थात् युद्ध का अवसर उपस्थित होने पर ये घोड़े काम आयेंगे।

वाक्-चातुर्य प्रदर्शित करते हुए रानी ने उत्तर दिया—

"आक बटूकै पवन भख, तुरियां आगल जाय।
मैं तनै पूछूं सायबा, हिरण किसा घी खाय॥"

अर्थात् हे स्वामिन्! मैं आपसे पूछती हूँ कि हरिण कौनसा घी खाते हैं? वे तो आक चबाते हैं और पवन का भक्षण करते हैं। फिर भी दौड़ में घोड़ों से आगे निकल जाते हैं।

रानी की इस कटौती की नीति से असन्तुष्ट होकर सरदार भी एक-एक करके रावजी को छोड़कर चल दिये। रावजी ने रानी को कोसना शुरू किया किन्तु अब उपाय ही क्या रह गया था? कहा जाता है कि शत्रुओं ने परिस्थिति से लाभ उठाकर रावजी पर विजय प्राप्त की। नागौर शत्रुओं के हाथ चला गया और स्वयं रावजी भी इस युद्ध में खेत रहे।[1]

उक्त संवाद भी राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित है।

(उ) बूंदी के हाडा चौहान बुधसिंह विपत्तिग्रस्त होकर अपनी रानी चूंडावत के घर वेगूं चले आये। वेगूं के रावत देवीसिंह ने इनकी बड़ी खातिरदारी की और इन्हें बड़े सम्मान से अपने पास रखा, अपनी जागीर ही इनके सुपुर्द कर दी। इस अहसान का बुधसिंह पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने रावत देवीसिंह से कहा—

"धर पलटी, पलट्यो धरम, पलट्यो गोत निसंक।
दवो हरीचंद राखियो, अधपतियाँ सिर अंक॥"

अर्थात् जमीन गई, ईमान गया, गोत्री भाई भी निःशंक बदल गये। ऐसे समय हरिसिंह के पुत्र देवीसिंह ने राजा बुधसिंह के ऊपर बहुत बड़ा अहसान किया। उसके उत्तर में रावत देवीसिंह ने कहा।

"देवा दरियावां तणो, होड न नाडो होय।
जो नाडो पाजां छलै, तो दरियाव न होय॥"

1. राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद (प्रथम शतक); पृष्ठ 31-32.
मिलाइये—

कौंदा खायां कमधजाँ, घी खायो लोगांह।
चूरू चाली ठाकरां, बाजंते ढोलांह॥

अर्थात् ठाकुरों को प्याज खाने को मिला और लोगों ने घी के माल उड़ाये। हे ठाकुर साहब, (चूरू ठाकुर साहब से तात्पर्य है) इसी का फल है कि आपका यह किला ढोल बजते हुए हाथ से निकल रहा है।

राजस्थान रा दूहा, भाग पहलड़ो: (श्री नरोत्तमदास स्वामी); पृष्ठ 61।

अर्थात् दरियाव स्वरूप राजा बुधसिंह की बराबरी देवा-जैसा नाला कर नहीं कर सकता। नाले का पानी अपनी सीमा का अतिक्रमण करके भी बहने लग जाय तब भी वह दरियाव नहीं बन सकता।

महाराव बुधसिंह बारह वर्षों तक वेगूं में रहे और विक्रम संवत् १७९६ में वेगूं के पास बाधपुरे गाँव में इनका देहान्त हो गया।[१]

उक्त दोहे का उत्तरार्द्ध एक कहावत-सा जान पड़ता है। ऐसा लगता है कि यह पंक्ति प्रसंगोद्भूत है। कहावत के रूप में राजस्थान में चाहे इस पंक्ति का प्रचलन न हुआ हो किन्तु इसमें एक कहावत बनने की क्षमता है, इसका आकार-प्रकार भी कहावतोचित है।

(घ) स्थानीय कहावतें—

कुछ कहावतें ऐसी होती हैं जो स्थान-विशेष में ही अधिक प्रचलित होती हैं। इस प्रकार की कहावतें प्रायः दुनिया के सभी देशों में मिलती हैं। राजस्थान में भी ऐसी कहावतों का अभाव नहीं है। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें लीजिए।

(अ) 'सपनै देखै सांखली नापासर रा रूंख' अर्थात् हे सांखली ! अब नापासर के पेड़ों को स्वप्न में ही देखना।

नापासर के सुप्रसिद्ध नापा सांखला की वीर पुत्री सांखली अपनी कोमल भावनाओं के लिए प्रसिद्ध थी। अपनी सखी-सहेलियों से जितना प्यार सांखली करती थी, उतना और कोई शायद ही कर पाता हो। होली-दिवाली पर नगर भर की कुमारियाँ राज-महल में एकत्र हुआ करती थीं। राज्य की ओर से सबको एक रंग के रेशमी वस्त्र पहनने को मिलते थे। सांखली उन सब के साथ डाँडियों का सुप्रसिद्ध नाच नाचती थी। वह अपने पिता की लाड़ली बेटी थी। नापा पुत्री की बात को टालते न थे। बाप और बेटी का प्रेम प्रसिद्ध था।

सांखली सपनी मातृभूमि के कण-कण से प्रेम करती थी। उसकी माँ बचपन में मर चुकी थी। विमाता की उससे बनती न थी, पर सांखली के आगे विमाता की कुछ चलने न पाती थी। नापा अपनी बेटी के लिए सब कुछ करने को तैयार था। राज्य के छोटे-मोटे सभी अफसर सांखली के आगे हाथ जोड़े खड़े रहते थे।

बड़ी मनौती मनाने पर विमाता के पुत्र हुआ पर वह बड़ा कुरूप था, काना और कुबड़ा। नापा को वह फूटी आँख न सुहाता था, सांखली पर ही उसका सारा वात्सल्य न्यौछावर था।

सांखली बड़ी हुई। नापा उसका विवाह किसी घर-जमाई के साथ करके उसे वहीं रखना चाहता था ताकि वह राज्य-भार सँभालने में अपने अयोग्य भाई का हाथ बँटा सके। विमाता भला उसे कब सहन कर पाती ! षड्यन्त्र रचकर उसने नापा की अनुपस्थिति में धोखा देकर सांखली का विवाह दूरदेशवासी राणा से कर दिया। सारा नापासर रो रहा था। विदा होती हुई सांखली को विमाता ने शरारत की हँसी हँसते हुए कहा था—

१. चौहान कुल कल्पद्रुम, प्रकाशक न्यायरत्न देसाई लल्लूभाई सन् १९२७; पृष्ठ ७७।

"सपनै देखं सांखली, नापासर रा रूंख ।"

(आ) **'बरगज्या एक बार तो रतन'** एक बार तो रतन बन जा ।

इस कहावत का निकास इस प्रकार है—"स्वनामधन्य एवं भगवद्भक्त सेठ रामरत्न जी डागा वर्तमान सुविख्यात फर्म बंशीलाल जी अबीरचन्द के मालिकों के पुरखे थे। आप जाति के माहेश्वरी डागा थे। महादेव के आप पूर्ण भक्त थे और दानी तो ऐसे थे कि लोग उन्हें दूसरा कर्ण कहा करते थे। उनकी दानशीलता से लोग इतने प्रभावित हो गये कि वे उन्हें रत्न ही कहकर पुकारते थे। उनके द्वार से कभी कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटा। कंजूस व्यक्ति को लज्जित करने के लिए आज भी कहा जाता है कि 'एक बार तो सेठ रामरत्न बन जा।'[1]

उक्त दोनों कहावतें अधिकतर बीकानेर की ओर ही प्रचलित हैं।

(इ) **"काल पड़े तो कुम्भा धणी, मेह बरसे तो मजूरी घणी ।"**

अर्थात् मेवाड़ के राणा कुम्भा की प्रजा कहती है कि यदि अकाल पड़ा तो हमारे राजा मालिक हैं, वे हमारा पालन करेंगे और यदि वर्षा हुई तो मजदूरी बहुत। हमको किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।

(ई) **"सन्त सगाई ना करे, माथे ना बांधे मौड़ ।**
परणी लावे पार की, जाय घोसुण्डे दौड़ ।।"

अर्थात् वैरागी साधु न तो सिर पर मौड़ बाँधते हैं और न सगाई ही करते हैं। ये तो घोसूँडे के मेले में जाकर दूसरों की विवाहित स्त्री को ले आते हैं। मेवाड़ के घोसूँडे नामक गाँव में पहले बाबों का एक मेला लगता था जिसमें अपनी नापसन्दगी की पत्नियाँ कपड़े से पूरी ढँककर बैठा दी जाती थीं। जिसके जी में जो आती, वही उसे उठा लाता था और कम से कम आगामी मेले तक एक वर्ष उसे रखना ही पड़ता था।[2]

इ, और ई, कहावतों का मेवाड़ की तरफ ही अधिक प्रचार है।

(उ) **माया मांणी बाघलां कै लाखै फूलाणी ।**
रहती पैती माँणगो, हरगोविन्द नाटाणीं ।।[3]

अर्थात् ऐश्वर्य या तो बाघलों ने भोगा या लाखा फूलाणी ने, बचा-खुचा ऐश्वर्य भोगा हरगोविन्द नाटाणी ने। यह नाटाणी जयपुर का खंडेलवाल महाजन था जिसने महाराजा ईश्वरीसिंह जी को धोखा देकर केशवदास खत्री मुसाहिब को जहर पिलवाकर मरवा दिया और आप मुसाहिब हो गया, और राज्य के धन को ऐश-आराम और दातारी में उड़ाकर दातार मशहूर हो गया, और मारके का काम पड़ा तब माधोसिंह जी में मिल गया कि जिससे ईश्वरीसिंह जी को भी विष से आत्म-हत्या करनी पड़ी। यद्यपि यह बड़ा षड्यन्त्रकारी था तो भी याचकों ने इसके दान की बड़ी

---

१. राजस्थानी कहावतें, भाग दूसरो : संपादक प्रो० नरोत्तम दास स्वामी तथा पंडित मुरलीधर व्यास विशारद; पृष्ठ १२२।

२. मेवाड़ की कहावतें, भाग १ : (पं० लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ १८६-१८७।

३. बाँकीदास ग्रन्थावली (तीसरा भाग); भूमिका; पृष्ठ २८-२९।

प्रशंसा की है। उसी समय का ईश्वरीसिंह जी का कहा हुआ यह मर्मस्पर्शी वाक्य प्रसिद्ध है—

"साँचो तू ईसरा, झूठी या काया।
प्याला केशोदास ने पाया सो पाया॥"

उक्त कहावत जयपुर की तरफ अधिक प्रसिद्ध है।

(ङ) राजवंशों से सम्बद्ध—

राजवंशों को लेकर भी राजस्थान में अनेक कहावतें कही जाती हैं। उनमें से अत्यन्त प्रसिद्ध उक्तियों का आश्रय ले यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराने की चेष्टा की जा रही है।

(अ) **"जद कद दिल्ली तंवरां"** राजस्थान की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसका अर्थ है कि जब कभी दिल्ली पर किसी ने शासन किया तो तंवरों ने ही। हमारे पास कोई ऐसा ऐतिहासिक साधन नहीं है जिसके आधार पर हम दिल्ली पर तंवरों के अधिकार की तिथि निश्चित कर सकें।.....परम्परा से यह प्रसिद्ध है कि अनंगपाल ने संवत् ७९२ में दिल्ली नगर बसाया। हम इस अनंगपाल को अनंगपाल प्रथम मानें तो यह मानना असंगत न होगा कि राजा वत्सराज प्रतिहार के समय के आस-पास तंवरों ने दिल्ली नगर बसाया। पुराना इन्द्रप्रस्थ उस समय से पहले उजड़ चुका होगा। सन् १३२८ के दिल्ली म्यूजियम के शिलालेख में भी तंवरों द्वारा दिल्ली के बसाये जाने का उल्लेख है। उसके अनुसार पृथ्वी पर हरियाना नाम का स्वर्ग-तुल्य देश है। वहाँ तोमरों द्वारा निर्मित दिल्ली नाम की पुरी है। तोमरों के अनन्तर कंटकों को दूर कर प्रजा के पालन में तत्पर चाहमान राजाओं ने वहाँ राज्य किया।

तंवरों का सबसे प्राचीन उल्लेख पेहवे के एक शिलालेख में मिला है। उसके अनुसार तोमर जाउल के वंश में वज्रट नाम का एक पुरुष हुआ जिसने खूब उन्नति की।...जाउल के वंशजों का दिल्ली प्रदेश से शायद कुछ सम्बन्ध रहा हो। उसे ही तंवर अपना मूल स्थान मानते आये हैं।

तोमरवंश के कुछ अन्य व्यक्तियों का उल्लेख हमें संवत् १०३० (ई० सन् ९७३) के हर्षनाथ के शिलालेख में मिलता है। चौहान और तोमर, दोनों कन्नौज के प्रतिहार राजाओं के सामन्त थे। प्रतिहार सम्राट् महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद जब प्रतिहार साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी तो इधर-उधर के दूसरे सामन्तों की तरह इन्होंने भी सिर उठाना और परस्पर लड़ना शुरू किया।

चौहान-तंवर-संघर्ष से इतिहास के पृष्ठ भरे हैं। किन्तु अर्णोराज की मृत्यु के बाद जब विग्रहराज चतुर्थ गद्दी पर बैठा तो मुसलमानों ने फिर अपनी किस्मत आजमाई। किन्तु वे फिर हारे और चौहान फिर एक बार उत्तर की तरफ बढ़े। तत्कालीन प्रमाणों और अनुश्रुति से भी यह सिद्ध है कि चौहानों ने तंवरों को हराया तथा दिल्ली और हांसी के दुर्गों को हस्तगत कर लिया। तंवरों के स्वाधीन राज्य की इससे इतिश्री हुई। उस समय दिल्ली का राजा सम्भवतः मदनपाल तंवर था। 'श्री जिनपाल रचित खरतरगच्छ पट्टावली से हमें ज्ञात है कि संवत् १२२३ में यही

मदनपाल दिल्ली का राजा था।[1]

मुद्दत तक दिल्ली में तंवरों का राज्य रहने से उक्त कहावत प्रचलित हुई होगी किन्तु तंवरों के राज्य की इतिश्री होने पर भी अब इस कहावत की सार्थकता क्या है? डाक्टर दशरथ शर्मा के शब्दों में "तंवर अब भी आशा करते हैं कि दिल्ली में किसी-न-किसी दिन तंवरों का राज्य होगा। तंवर सरदार मूँछों पर ताव देते हुए 'जद-कद दिल्ली तंवरां' कहते हैं तो प्रतीत होता है कि स्वप्न-ससार में भी कुछ आनन्द है। आठ सौ वर्ष में तंवर दिल्ली पर अधिकार जमाने का स्वप्न लेते रहे हैं। किन्तु अधिकतर यह स्वप्न ही रहा है। तलवार के बल पर इस लम्बे अर्से में किसी तंवर ने दिल्ली को पुनः हस्तगत करने का प्रयत्न भी नहीं किया।"

वस्तुस्थिति शायद यह है कि कोई कहावत जब एक बार प्रचलित हो जाती है, तो अभिधेयार्थ घटित न होने पर भी, उसका प्रचलन रुकने नहीं पाता क्योंकि प्रस्तुत के अतिरिक्त कहावत का एक अप्रस्तुत अर्थ भी हुआ करता है जिसके बल पर चिरकाल तक वह अपना अस्तित्व बनाये रखती है। 'जद कद दिल्ली तंवरां' इस लोकोक्ति का केवल तंवर ही प्रयोग नहीं करते, आज भी जब किसी का अधिकार छीन लिया जाता है तो वह उसकी पुनः प्राप्ति के लिए गर्वोक्ति के रूप में कहता सुना जाता है, 'जद कद दिल्ली तंवरां'। दिल्ली चाहे आज तंवरों की न रही हो किन्तु कहावत का प्रयोक्ता अपने हृदय के उद्गार इसी कहावत के माध्यम द्वारा व्यक्त कर जाता है। कहावत की महिमा ही कुछ ऐसी है।

(आ) एक दूसरी कहावत है **"कीली तो ढीली थई, तंवर हुए मतहीन"।** कहते हैं कि एक तंवर राजा से ज्योतिषियों ने कहा था कि एक ऐसा शुभ क्षण आता है जिसमें कीली गाड़ने से आपका राज्य सदा के लिए अचल हो जायगा क्योंकि वह कीली शेषनाग के मस्तक में जा पड़ेगी। एक बड़ी कीली अष्टधातु की बनवाई गई। जब वह शुभ वेला आई तो पंडितों ने कीली को जमीन में गाड़ दिया और राजा से कहा कि अब आपका राज्य अचल हो गया। किन्तु राजा को इस पर यकीन नहीं आया और उसने जिद्द करके कीली उखड़वाई। कीली की नोक खून से भरी हुई देख पंडितों ने कहा—देख लीजिये, यह शेषनाग का खून है। राजा ने शर्मिन्दा होकर पंडितों से फिर कीली गाड़ने को कहा किन्तु उन्होंने उत्तर दिया 'वह पानी मुल्तान गया।' कुछ लोग कहते हैं कि यह कीली वासुकि नाग के सिर पर गाड़ी गई थी और उसके उखेड़ने से तंवर उखड़ गये। चौहानों ने उनसे दिल्ली का राज्य छीन लिया और तंवर दूसरे मुल्कों में निकल गये।[2]

उक्त कहावत में धर्म-गाथा अथवा दन्त-कथा के तत्त्व का समावेश हो गया है। आज जब इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन किया जा रहा है, इस प्रकार की

---

१. राजस्थान भारती, भाग ३, अंक ३-४ में प्रकाशित डाक्टर दशरथ शर्मा का 'दिल्ली का तोमर' (तंवर राज्य); पृष्ठ १७-२१।

२. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ईसवी; भाग ३; पृष्ठ ८।
मिलाइये—

"तंवरां सूं दिल्ली गई, राठोड़ां कनवज्ज।
अमर पयंपै खान ने, वो दिन दीसै अज्ज॥"

कहावतें विश्वसनीय नहीं रह गई हैं। इस कहावत से यही अर्थ लिया जाना चाहिए कि चौहानों ने तंवरों से दिल्ली का राज्य छीन लिया था।

(इ) पंवारों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें भी बहुत समय से चली आती हैं—

"पिरथी बडा पंमार, पिरथी परमारां तणी।
एक उजीणी धार, बीजो आबू बैसणो ॥
ज्यां पमार त्यां धार है, धारा जठै पमार।
बिन पमार धारा नहीं, धारा बिना पमार ॥"

अर्थात् पृथ्वी पर पंवार राजपूत बड़े हैं, पृथ्वी ही पंवारों की है। उनके बैठने की जगह एक तो उज्जैन और धार है और दूसरे आबू के पहाड़ हैं। जहाँ पंवार है, वहीं धारा है। जहाँ धारा है, वहीं पंवार हैं। पंवारों के बिना धारा नहीं और धारा के बिना पंवार नहीं।

जिस जाति ने वाक्पति और भोज, उदयादित्य एवं जयदेव जैसे महापुरुषों को जन्म दिया, वह वास्तव में महान् थी, उसका प्रभुत्व अत्युच्च था। अपनी प्राचीन गरिमा से परमार वंश अब भी गौरवान्वित है। ऐसे वंश के सम्बन्ध में यदि उक्त कहावतें प्रचलित हो गई हों तो यह सर्वथा स्वाभाविक है, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं।

(ई) **'राजकुलां राठौड़'** और **'रणबंका राठौड़'** जैसी अनेक कहावतें राठौड़ों के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं। हाडों के सम्बन्ध में भी कहा जाता है—**'हाडा बांका राड़ में'** अर्थात् हाडे युद्ध में बांके होते हैं किन्तु इस उक्ति की अपेक्षा **'रणबंका राठोड़'** अधिक प्रचलित है।[1] राठौड़ मैदान की लड़ाई को हमेशा पसन्द करते थे और बादशाही फौज में तो हमेशा हरावल में यही रहते थे, किले की लड़ाइयों में भी इन्होंने सब जगह प्रसिद्धि ही प्राप्त की है।

(उ) **'गाडा टलै, हाडा न टलै'** यह हाडों के सम्बन्ध में सबसे प्रसिद्ध कहावत है। हाडा चौहान राजपूतों की एक शाखा है। बूंदी का राज्य देवा जी हाडा ने स्थापित किया था। देवाजी के वंशधरों ने वीरता में बड़ा नाम पैदा किया जिसके कारण उपर्युक्त कहावत प्रचलित हो गई। अन्य राजवंशों के सम्बन्ध में भी यद्यपि कहावती पंक्तियों का अभाव नहीं है, तथापि विस्तार-भय से यहाँ उन सबका विवेचन अभीष्ट नहीं है।

निष्कर्ष—ऊपर जो कहावतें दी गई हैं, उनमें अनेक ऐतिहासिक हैं, अनेक अर्द्ध-ऐतिहासिक हैं तथा कुछ धर्म-गाथाओं से संबद्ध हैं। राजस्थान की भाँति चीन की भाषा में भी इस प्रकार की कहावतों का प्राचुर्य है। एच० स्मिथ[2] ने अपने

१. बलहट बंका देवड़ा, करतब बंका गोड़।
हाडा बांका गाढ में, रणबंका राठोड ॥
गरुड़ खगां लंकां गढां, मेरु पहाड़ां मोड।
रूंखां में चन्दन भलो, राजकुलां राठोड ॥

2. Vide proverbs and Common Sayings from the Chinese by Arthur H. Smith Chapters V-Vi. Proverbs containing Allusions to

कहावतों-सम्बन्धी ग्रन्थ में चीन की अनेक ऐतिहासिक कहावतों की प्रसंग-सहित व्याख्या की है। कहावतों के तुलनात्मक अध्येता के लिए यह ग्रन्थ बहुमूल्य सामग्री से भरा हुआ है। स्काटलैण्ड में भी इतिहास-सम्बन्धी कहावतें विशेष रूप से पाई जाती हैं।[1]

राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतों से जो उदाहरण ऊपर दिये गये हैं, वे प्रायः पद्यात्मक हैं। इन कहावती पद्यों में इतिहास-बोध और काव्य दोनों का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। राजस्थान में ऐसे अनेक लोग पाये जाते हैं जिन्होंने इतिहास के ग्रन्थों का कभी कोई अध्ययन नहीं किया किन्तु फिर भी इतिहास की बहुत-सी बातों से जिनका परिचय है। इसका मुख्य कारण यह है कि बहुत-से कहावती दोहे आज भी लोगों की जबान पर हैं। दोहों द्वारा इतिहास को सजीव बनाये रखना राजस्थान और गुजरात जैसे प्रान्तों की अपनी विशेषता रही है।

इतिहास-सम्बन्धी जो पद्य राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित हैं, उन्हें राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतों का नाम दिया गया है। किन्तु इन ऐतिहासिक कहावतों और सर्व-सामान्य लोकोक्तियों में थोड़ा अन्तर है। **'करणी भोगै आपकी, कै बेटो कै बाप'** अर्थात् चाहे पिता हो, चाहे पुत्र, सब अपने किये का फल भोगते हैं। **'गाय न बाछी, नींद आवै आछी'** अर्थात् जिसके पास न गाय है, न बछिया, वह निश्चित होकर सोता है। इस प्रकार की सामान्य लोकोक्तियाँ जितने विस्तृत जन-समुदाय में प्रचलित हैं, उतनी व्याप्ति इन पद्यात्मक ऐतिहासिक कहावतों की नहीं है। इतिहास-सम्बन्धी ये कहावतें राजवंशों, चारणों तथा राजस्थानी भाषा के विद्वानों में अधिक प्रचलित हैं।

उक्त कहावतों में ऐतिहासिक तथ्य कितना है और कल्पना के अंश का समावेश किस मात्रा में हो गया है, इस दृष्टि से किसी विद्वान् ने इनका विधिवत् वैज्ञानिक अध्ययन अभी नहीं किया है। राजस्थान का इतिहास लिखने वाले विद्वानों ने स्थान-स्थान पर अपने ग्रन्थों में इन कहावतों का उल्लेख अवश्य किया है।

राजस्थान के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली कहावतों में सामन्ती युग की झलक मिलती है, वर्तमान जनतंत्रात्मक युग में बहुत-सी कहावतों का रंग भी फीका पड़ गया है किन्तु फिर भी राजस्थान के सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व है। पुरानी परम्परा के चारणों तथा बड़े-बूढ़ों के मुख से ही इस प्रकार के उपाख्यान सुनने को मिलते हैं। ये उपाख्यान विस्मृति के गर्भ में विलीन न हो जायँ, इस दृष्टि से पहला महत्त्वपूर्ण कार्य इनको संग्रह करने का है।

कहना न होगा, राजस्थान की ऐतिहासिक कहावतें स्वतः एक अनुसंधान का विषय है।

Historical, Semi-Historical, Legendary or Mythical Persons & Events pertaining to Specific places or districts.

1. Historical Scotish Proverbs.

—Chambers's Journal, Feb., 1897.

२. राजस्थान की स्थान-सम्बन्धी कहावतें

(१) **प्रास्ताविक**—राजस्थान में शहरों आदि के सम्बन्ध में अनेक कहावती पद्य प्रचलित हैं। कोई स्थान भी जब अपनी विशेषताओं के कारण लोगों की दृष्टि में महत्त्व प्राप्त कर लेता है तो उसके सम्बन्ध में कहावतें चल पड़ती हैं।

इस प्रकार की कहावतों को स्थान-सम्बन्धी कहावतों का नाम दिया गया है जो ऐतिहासिक कहावतों के अन्तर्गत 'स्थानीय कहावतों' से भिन्न हैं। स्थानीय (Local) कहावतों से तात्पर्य उन कहावतों से है जो एक ही प्रदेश अथवा शहर में विशेष प्रचलित हैं किन्तु स्थान-सम्बन्धी कहावतों की व्याप्ति स्थानीय कहावतों से कहीं अधिक होती है। कुछ विद्वान् इस प्रकार की कहावतों को भौगोलिक कहावतों का नाम देते हैं। स्वामी नरोत्तमदास जी ने अपने 'राजस्थान रा दूहा' में इस प्रकार के कहावती पद्यों को 'भौगोलिक' वर्ग के अन्दर रखा है।

(२) **वर्गीकरण**—यहाँ स्थान-सम्बन्धी कहावतों को शहर, नदी-नाले तथा क़िले, इन तीन वर्गों में विभक्त किया गया है। सबसे पहले शहरों-सम्बन्धी कहावतों के उदाहरण दिये जा रहे हैं।

(क) शहरों-सम्बन्धी—

(१) **ऋतुओं को लक्ष्य में रखकर**—

(अ) "सीयाळे खाटू भलो, ऊनाळे अजमेर।
नागाणो नित नित भलो, सावण बीकानेर॥"

(आ) "स्याळे भलो ज माळवो, ऊनाळे गुजरात।
चोमासे सोरठ भलो, बड़वो बारहमास॥"

अर्थात् शीतकाल में खाटू, ग्रीष्म में अजमेर और श्रावण में बीकानेर अच्छा लगता है, जोधपुर का नागौर शहर तो सभी ऋतुओं में पसन्द किया जाता है। इसी प्रकार शीतकाल में मालवा, ग्रीष्म में गुजरात तथा वर्षा में सोरठ अच्छा है किन्तु बड़वा (गुजरात) तो सभी ऋतुओं में अच्छा लगता है।

प्रथम दोहे का अन्तिम चरण 'सावण बीकानेर' राजस्थान में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ है। वस्तुतः वर्षा-ऋतु में बीकानेर की शोभा देखते ही बनती है।[1]

दूसरे दोहे से यह भी स्पष्ट है कि किसी एक प्रदेश में अन्य प्रदेशों के शहरों के सम्बन्ध में भी कहावतें बन जाया करती हैं।

ऊपर के दोहों में विभिन्न ऋतुओं को लेकर स्थानों की श्रेष्ठता के सम्बन्ध में लोक-मत की अभिव्यक्ति हुई है। अनेक कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें स्त्री-पुरुषों आदि को लेकर शहरों को उत्कृष्ट ठहराया गया है। उदाहरण के लिए नीचे लिखे कहावती पद्य अथवा पद्यांशों पर विचार कीजिये—

(२) **स्त्री-पुरुषों को लक्ष्य में रखकर**—

(अ) **"मारवाड़ नर नीपजे, नारी जैसलमेर।
तुरी तो सिन्धां सांतरां, करहल बीकानेर॥"**

---

१. मिलाइये—
बोर मतीरा बाजरी, खेलर काचर खाण।
अनधन धीणां धूपटा, बरसाळे बीकाण॥

(आ) "घर घर पदमण नीपजै, अइहो धर जेसाण।"

(इ) "उर चोड़ी कड़ पातली, जीकारा री बाण।
जे सुख चावै जीव रो, तो धण माड़ेची आण॥"

अर्थात् मर्द तो मारवाड़ में ही उत्पन्न होते हैं और स्त्रियाँ जैसलमेर में। घोड़े सिन्ध में ही जन्म लेते हैं और ऊँट बीकानेर में। धन्य है जैसलमेर की धरा जहाँ घर-घर में पद्मिनियाँ जन्म लेती हैं। यदि सुख प्राप्त करना चाहो तो जैसलमेर की पद्मिनी लाओ जिसका वक्षःस्थल चौड़ा और कटि-प्रदेश पतला होता है और स्वभावतः ही बातचीत में जो सम्मान-सूचक 'जी' का प्रयोग करती है।

ऊपर के पद्यों में मारवाड़ के पुरुषों और जैसलमेर की स्त्रियों की प्रशंसा की गई है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि राजस्थान के अन्य शहरों की कामिनियों के सम्बन्ध में कहावती पद्यों का अभाव है। 'ढोला मारू रा दूहा' के मालवणी-मारवणी संवाद में मारवणी ने मारवाड़ की कामिनियों के सम्बन्ध में जो निम्नलिखित पद्य कहे हैं वे अर्थवाद के रूप में प्रयुक्त होने पर भी कहावत की भाँति प्रचलित हैं—

(ई) "मारू देश उपन्निया, तिहां का दन्त सुसेत।
कूंझ बची गोरंगिया, खंजर जेहा नेत॥
मारू देश उपन्नियां, सर ज्यउं पध्धरियाह।
कड़वा कदे न बोलही, मीठा बोलणियाह॥
देश निवाण सजल जल, मीठा बोला लोइ।
मारू कामिणि दिखणि धर हरि दीयइ तउ होइ॥"[1]

अर्थात् जो मारू देश में उत्पन्न हुई हैं, उनके दाँत बड़े उज्ज्वल होते हैं, वे क्रौंचशावकों की भाँति गौर वर्ण होती हैं, और उनके नेत्र खंजन जैसे होते हैं। मारू देश में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ तीर की भाँति सीधी होती हैं, वे भी कटु वचन नहीं बोलतीं और स्वभाव से ही मीठी बोलने वाली होती हैं। वहाँ की भूमि नीची और उपजाऊ है, पानी स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद है और लोग मीठे बोलने वाले हैं। ऐसे मारू देश की कामिनी, ईश्वर ही दे तो, दक्षिण की भूमि में मिल सकती है।

इसी प्रकार उदयपुर की कामिनियाँ जब झरोखों के बाहर अपने सुन्दर शरीर को निकालती हैं तो उन्हें देखकर देवों का भी मन डिग जाता है, मनुष्यों की तो बात ही कितनी!

(उ) "उदियापुर री कामणी, गोखां काढ़ै गात।
मन तो देवां रा डिगै, मिनखां कितीक बात॥"

राजस्थान में ऐसी भी अनेक कहावतें उपलब्ध हैं जिनके द्वारा देशगत विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। विभिन्न शहरों के सम्बन्ध में कुछ उक्तियाँ लीजिये—

(३) **देशगत विशेषताओं को लक्ष्य में रखकर।**

ढूंढाड़

(अ) "ऊँचा परबत सेर बन, कारीगर तरवार।
इतरा बधका नीपजै, रंग देस ढूंढाड़॥"

१. 'ढोला मारू रा दूहा'; प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; पृष्ठ २२३

अर्थात् जहाँ ऊँचे पर्वत हैं, वनों में शेर रहते हैं, तलवार के कारीगर जहाँ प्रसिद्ध हैं, ऐसे ढूँढाड़ देश को धन्य है।

आमेर

(आ) **"बागां बागां बाबड्यां, फुलवादां चहुँ फेर।**
कोयल करै टहकड़ा, अइहो धर आंबेर।।"[1]

अर्थात् धन्य है आमेर की धरा जहाँ बाग-बाग में वाटिकाएँ हैं, चारों ओर फुलवारियाँ हैं और कोकिल जहाँ मधुर स्वर में आलाप करती रहती है।

जयपुर

(इ) **"जे न देख्यो जैपरियो तो कल् में आकर के करियो।"**

अर्थात् यदि जयपुर नहीं देखा तो मनुष्य-जन्म लेकर क्या किया ? जयपुर की प्रशंसा में यह कहावत कही जाती है। वैसे भी जयपुर को 'भारतवर्ष का पेरिस' कहा गया है।

किन्तु इसके साथ-साथ यह भी कटु सत्य है कि यदि पास में पैसा हो तभी जयपुर का आनन्द लूटा जा सकता है, अन्यथा वहाँ कोई नहीं पूछता।

"जैपुर पैसा हो तो जैपुर नहीं तो जमपुर है।" (कनै पीसो हो तो जैपर नई तो जमपुर)।

जयपुर-विषयक एक कहावत में यह भी कहा गया है **'जैपुर शहर चितरवाँ छाजा, लोग मजूर लुगाई राजा,** अर्थात् जयपुर शहर में छज्जे रंगे हुए हैं, मर्द तो कमाते हैं और औरतें उड़ाती हैं।

बीकानेर

(ई) **"ऊँठ, मिठाई, अस्तरी, सोनो गहणो, साह।**
पाँच चीज पिरथी सिरे, वाह बीकाणा वाह।।"

अर्थात् धन्य है वह बीकानेर जहाँ ऊँट, मिठाई, स्त्री, स्वर्णाभूषण और साहूकार, ये पाँच वस्तुएँ पृथ्वी में सबसे बढ़कर हैं।[2]

मारवाड़

(उ) **"जल् ऊंडा, थल् ऊजला, नारी नवले वेस।**
पुरष पटाधर नीपजै, अइहो मुरधर देस।।"

अर्थात् वह मरुधर देश धन्य है जहाँ का जल गहरा है, स्थल उज्ज्वल है, नवयुवती स्त्रियाँ हैं तथा जहाँ तलवारधारी वीर पुरुष उत्पन्न होते हैं।

"ढोला मारू रा दूहा' की मालवणी ने मारवाड़ की निन्दा में में जो निम्नलिखित दोहे कहे थे, वे भी कहावत की भाँति प्रसिद्ध हैं—

---

१. राजस्थान रा दूहा : (स्वामी नरोत्तमदास); पृष्ठ १०२।

२. राजपूताने के वातालार्थ : (श्री जगदीशसिंह गहलोत); राजस्थानी भाग ३, अक ३, जनवरी १९४०।

पाठान्तर

दारू अमल मिठाइयाँ, सोनों गहणो साह।
पाँच थोक पृथ्वी सिरे, वाह बीकाणा वाह।।

अर्थात् शराब, अफीम, मिठाई, विशेषतः मिश्री, सोने के आभूषण और सेठ लोग, ये पाँच चीजें बीकानेर में संसार भर से अच्छी होती हैं।

"वालुउं बाबा, देसड़उ, पाँणी जिहां कुवांह ।
आधी रात कुहक्कड़ा, ज्यउँ माणसां मुवांह ॥
वालउं, बाबा, देसड़उ, पांणी संदी ताति ।
पाणी केरइ कारणइ, प्री छंडइ अधराति ॥
जिण भुइ पन्नग पीयणा, कयर कंटाला रूँख ।
आके फोगे छांहड़ी, हूंछां भांजइ भूख ॥"[1]

अर्थात् हे बाबा, ऐसा देश जला दूँ जहाँ पानी गहरे कुओं में मिलता है और जहाँ पर लोग आधी रात को ही पुकारने लगते हैं मानों मनुष्य मर गये हों। हे बाबा, उस देश को जला दूँ जहाँ पानी का भी कष्ट है और पानी निकालने के लिए प्रियतम आधी रात को ही छोड़कर चले जाते हैं। जिस भूमि में पीणे साँप हैं, जहाँ करील और ऊंटकटारा घास ही पेड़ गिने जाते हैं, जहाँ आक और फोग के नीचे ही छाया मिलती है और जहाँ भुरट नामक कँटीली घास के बीजों से ही भूख दूर होती है।

निम्नलिखित कहावती पद्य में मारवाड़ की प्रजा की साधारण रहन-सहन और खाने-पीने की व्यवस्था का वर्णन किया गया है—

"आकन का झोंपड़ा, फोगन की वाड़ ।
बाजरी का सोगरा, मोठन की दाल ।
देखी राजा मानसिंह, थारी मारवाड़ ॥"

अर्थात् मारवाड़ में रहने के लिए आक के झोंपड़े और फोग की बाड़ें हैं तथा खाने के लिए बाजरी के सोगरे और मोठ की दाल है। हे राजा मानसिंह ! तेरी मारवाड़ देख ली।[2]

मारवाड़ की रेल के सम्बन्ध में कही हुई निम्नलिखित पंक्तियों ने भी कहावत की-सी ख्याति प्राप्त कर ली है—

"नहीं तार, नहिं टेम है, नहीं बत्ती में तेल ।
आ चालै मन रे मते, मारवाड़ री रेल ॥"

हाड़ोती और मेवाड़

(ऊ) हाड़ौती अर्थात् बूंदी और कोटा राज्यों में सधवा और विधवा स्त्रियाँ एक ही रंग के कपड़े (काले और रंगीन) पहनती हैं। इसलिए किसी मारवाड़ निवासी ने (जहाँ ऐसा वेश नहीं है) कहा है—

"देख्यो, हाड़ा थारो देस, रांड सुहागण एक ही भेस ।"[3]

हाड़ौती का-सा हाल मेवाड़ में भी है। इसलिए कोई हाड़ा के स्थान में 'राणा' भी बोलते हैं। विधवा स्त्री पक्के रंग के और सुहागिन कच्चे रंग के कपड़े पहनती और ओढ़ती हैं।

आबू और सिरोही

(ए) राजस्थान के एक कहावती पद्य में पृथ्वी और आसमान के बीच आबू

---

१. 'ढोला मारू के रा दूहा'; प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा; पृष्ठ २१८-१९-२१।
२. राजपूताने के वातालार्थ (श्री जगदीशसिंह गहलोत); राजस्थानी, भाग ३, अंक ३।
३. वही।

को तीसरा लोक कहा गया है—

"जमी और आसमान बिच, आबू तीजो लोक।"

पहाड़ के शिखर-शिखर पर जहाँ केतकी फूली हुई है और झरने-झरने पर जहाँ चमेली है, उस आबू की प्राकृतिक सुषमा को देखते हुए और कोई वस्तु अच्छी नहीं लगती—

"टूँके टूँके केतकी, झरणे झरणे जाय।
अर्बुद की छबि देखतां, और न आवे दाय ॥"

कहते हैं कि सिरोही के महाराव सुरताण देवड़ा ने अपनी रानी को, जो राड़-धड़े की राजकुमारी थी, उक्त दोहा सुनाया था जिससे असहमत होकर रानी ने उत्तर दिया था—

"जब खाणों भखणो जहर, पालो चलणो पंथ।
आबू ऊपर बैसणो, भलो सरायो कंथ ॥"

अर्थात् जहाँ जौ खाने पड़ते हैं, अफीम का सेवन होता है और पैदल चलना पड़ता है, हे कंत ! उस आबू पर बैठने की आपने भली प्रशंसा की। रहने योग्य स्थान तो राड़धड़ा (मारवाड़ राज्य के मालाणी परगने का एक इलाका) ही है जहाँ का निवास देवताओं को भी दुर्लभ है। राड़धड़े की प्रशंसा में उसने निम्नलिखित दोहा कह सुनाया—

"धर ढांगी आलम धणी, परबल लूणी पास।
लिखियो जिण ने लाभसी, राड़धड़ा रो बास।"

अर्थात् जहाँ ढांगी नामक रेत के टीले की जमीन है, आलमजी नामक इष्टदेव रक्षक हैं और प्रबल लूणी नदी पास ही बहती है, ऐसे राड़धड़े का निवास तो जिसके भाग्य में लिखा है, उसी को मिलेगा।

एक दोहे में कहा गया है कि आबू में रहकर चम्पा का सुख भोगो, पहाड़ पर चढ़ो और उमदा आम खाओ। यदि आबू से दूर जा पड़े तो न जाने क्या हाल होगा ?

"चम्पा माणो, गिर चढ़ो, आंबा भखो अवल्ल।
अरबुद सूँ अलगा रहे, जिण रो कोण हवल्ल।"

आबू तथा सिरोही-विषयक कुछ गद्यात्मक कहावतें भी मिलती हैं। जैसे,

१. **"आबू री छाया ने प्रभु री माया।"**

२. **"आबू री छाया में लीला लहरे है।[1]"**

३. **शमशेर तो सिरोही की** अर्थात् तलवार तो सिरोही की ही प्रसिद्ध है।

सिरोही की तलवार क्यों प्रसिद्ध हुई ? इस विषय में कहा जाता है कि वर्तमान समय में जहाँ पर नीलकंठेश्वरजी महादेव का मन्दिर है, उस जगह एक बावड़ी थी जिसका पानी बहुत तेज था। वह पानी पिलाने से हथियार बहुत तेज हो जाते थे। दूसरी बात यह कही जाती है कि सिरोही के लोहार कच्चे लोहे को इस तरह पक्का बनाते थे कि एक खड्डे में लोहा रखकर उसमें गोबर भर ऐसी रसायन उस पर डालते थे कि उस रसायन से आकृष्ट होकर बिजली उस पर गिरती थी, जिससे गोबर

१. सिरोही की कहावतें, दीपावली विशेषांक, लोकवाणी; पृष्ठ १४।

जलकर लोहा भी पक्का हो जाता था।[1]

आबू और सिरोही ही क्यों, अन्य स्थानों के सम्बन्ध में भी कतिपय कहावतें ऐसी हैं जो दोहों के रूप में नहीं हैं। उदाहरणार्थ—

१. **"सांगर फोग थली को मेवो"** अर्थात् रेगिस्तान वालों के लिए तो सांगर और फोग जैसी वस्तुएँ ही मेवे का काम देती हैं।

२. **"सामर पड्यो सो लूण"** अर्थात् सांभर झील में जो पड़ा वही नमक हो गया। इस झील में मरे हुए ऊँट, भेड़, बकरी आदि सब गलकर नमक के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। 'सांभर जाय अलूणो खाय' तथा 'सांभर में लूण रो टोटो' जैसी कहावतें भी सांभर के सम्बन्ध में सुनी जाती हैं।

३. **"साजा बाजा केस, गोड़ बंगाला देस"** अर्थात् बंगालियों के केश सजे-सजाये रहते हैं।

तुलनात्मक—कुछ कहावतें ऐसी होती हैं जिनमें अनेक स्थानों की विशेषताएँ एक ही पद्य में दिखला दी जाती हैं। कतिपय उदाहरण लीजिये—

(अ) पख हाड़ोती मालवे, ढब देखै ढूँढाड़।
अखर परक्खै मुरधरां, आडम्बर मेवाड़॥[2]

अर्थात् हाड़ौती (बूँदी कोटा) व मालवा में पक्ष और ढूँढाड़ (जयपुर राज्य) में ढब (वसीला) देखते हैं। मारवाड़ में अक्षरों (विद्या) को परखते हैं और मेवाड़ में आडम्बर पसन्द किया जाता है।

(आ) कभी-कभी "चूरू तेरी चूरमो, बिसाऊ तेरी बाटी" जैसी सानुप्रास कहावतें भी सुनने में आती हैं।[3]

(इ) मारवाड़ मनसूबै डूबी, पूरब डूबी गाणा में।
खानदेश खुरदां में डूबी, दक्षिण डूबी दाणा में॥

उक्त पद्य में मारवाड़, पूर्व, खानदेश और दक्षिण की विशेषताओं का एक साथ उल्लेख कर दिया गया है।

(ई) उपालंभोक्ति अथवा व्यंग्योक्ति के रूप में निम्नलिखित दोहा राजस्थान में अत्यन्त लोकप्रिय है—

कहीं कहीं गोपाल को, गई सिटल्ली भूल।
काबुल में मेवा किया, ब्रज में किया बबूल॥[4]

कुछ कहावती पद्य ऐसे भी मिलते हैं जिनके चरणों में भिन्न-भिन्न वस्तुओं

---

१. चौहान कल्पद्रुम, पृष्ठ १९७।

२. राजपूताने के वार्तालार्थ (श्री जगदीशसिंह गहलोत) राजस्थानी भाग ३, अंक ३, पृष्ठ ३०।

३. पाठान्तर—

"चूरू तेरो चूरमो, बिसाऊ तेरी दाल।"

४. पाठान्तर—

कहूं कहूं गोपाल की, गई सिटल्ली चूक।
काबुल में मेवा पके, ब्रज में टेटी चूक॥

रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, सन् १८९१, तीसरा हिस्सा; पृष्ठ ६१५।

का उल्लेख होता है और अपनी विभिन्न विशेषताओं के कारण उन्हें प्रशस्य ठहराया जाता है। जैसे—

(उ) सोरठियो दूहो भलो, भलि मरवण री बात।
जोबन छाई धण भली, तारां छाई रात ॥[1]

इस दोहे के प्रथम चरण में सोरठ के दोहे, द्वितीय चरण में मरवण की बात, तृतीय चरण में युवती स्त्री और चतुर्थ चरण में तारों छाई रात की प्रशंसा की गई है।

(ख) नदी-नालों-सम्बन्धी

नदी-नालों से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें भी राजस्थान में प्रसिद्ध हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दो कहावतें लीजिये—

(अ) "**बलं बूठी ने तलै तूठी**" यह कहावत लूणी नदी के विषय में है। इसका तात्पर्य यह है कि यह आडावला पहाड़ अजमेर में से तो बूठी अर्थात् बरसी है और पहाड़ के नीचे या तलवाड़े गाँव के पास तूठी अर्थात् तुष्ट हुई है।

लूणी नदी आडावला पहाड़ से निकलती है और फिर उसी पहाड़ के नदी-नालों से, जो जगह-जगह मिलते जाते हैं, बढ़ती हुई तलवाड़ा (मारवाड़) गाँव के पास फैल जाती है जहाँ उसके पानी से हज़ारों मन गेहूँ निपजता है। दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि कहाँ तो बरसी है और कहाँ तुष्ट हुई है अर्थात् पानी तो कहीं का और उसका फायदा कहीं ही पहुँचता है।

(आ) "रेडियो रणका करै, लूणी लहरां खाय।
बांडी बपड़ो क्या करै, गुहियां सें घर जाय ॥"

अर्थात् मारवाड़ में रेड़िया और गुहिया दो नाले हैं और लूनी तथा बाड़ी नदियाँ हैं। दोहे में चारों के गुण-अवगुण बतलाये गये हैं। रेडिया तो रण अर्थात् शोर करता हुआ चलता है, लूनी लहरें खाती हुई जाती हैं, बांडी बेचारी क्या करती है अर्थात् किसी का कुछ बिगाड़ नहीं करती, और गुहिये से तो घर चला जाता है क्योंकि वह बहुत ज़ोर से चढ़ता है।[2]

उदयपुर की पीछोला झील सम्पूर्ण राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है। पीछोला के उस पत्थर को भी निम्नलिखित दोहे में सौभाग्यशाली कहा गया है जिस पर सहारे के लिए पैर रखकर उदयपुर की सुन्दरियाँ पानी भरती हैं—

(इ) भाटा तूं सोभागियो, पीछोला री टग्ग।
गुललंजा पाणी भरै, ऊपर दे दे पग्ग ॥[3]

(ग) किलों-सम्बन्धी

नदी-नालों, झीलों और तालाबों के सम्बन्ध में राजस्थान जैसे मरुस्थल में अधिक कहावतें न मिलती हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं किन्तु जिस प्रदेश में

१. पाठान्तर—
सोरठियो दूहो भलो, घोडी भली कुमैत।
नारी बीकानेर नी, कपड़ो भलो सपेत ॥

२. 'राजपूताने के वातालार्थ' राजस्थानी, भाग ३, अंक ३, पृ० ३४।

३. उदियापुर लंजा सहर, माणस घणमोलाह।
दे झाला पाणी भरै, रंग रे पीछोलाह ॥

चित्तौड़ और रणथम्भौर जैसे किले हैं और जो भीषण युद्धों की क्रीड़ा-भूमि रहा है, उससे यह सहज ही आशा की जा सकती है कि वहाँ किलों-सम्बन्धी कहावतों का प्राचुर्य रहा होगा किन्तु सच तो यह है कि राजस्थान में किलों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र उक्तियाँ कम मिलती हैं; योद्धाओं के वीरतापूर्ण कार्यों के साथ-साथ उनका वर्णन अवश्य मिलता है जैसा कि नीचे के कुछ उदाहरणों से स्पष्ट है—

(अ) खगां जु बांकी खेतड़ी, भड़ कांको अभमाल।
गढ़पति राख्यो गोद में, नवकूंटी रो लाल॥
गड़ बांको डूंगर गुड़, भड़ बांको झूंझार।
एकज आगै असुर गण, भाग्या पांच हजार॥
खंडपुर सीकर खेतड़ो, दांतो खूड़ दुरंग।
बेलां जुध आगा बढ़ै, रायसलोतां रंग॥
गहर बिसाऊ नवलगढ, सूरज कोट सुढंग।
चेलो कीरत चौकड़ी, रायसलोतां रंग॥
दाब फतेपुर देश में, कर तुरकां नै तंग।
सीकर गढ़ घाल्यो सिवै, रायसलोतां रंग॥

आमेर के किले के सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहे प्रसिद्ध हैं—

(आ) घर ढूंढाहड़ देश दृढ़, गढां गिरवरां घेर।
चौतरफां सेती फबै, अनुपम गढ़ आमेर॥
ऊँचा गढ़ आमेर का, नीचा घणां निवास।
भुजां भरोसे थां भड़ां, दिली पलस्सै वास॥

किन्तु जैसा ऊपर कहा गया है, किलों के सम्बन्ध में स्वतन्त्र उक्तियाँ विरल हैं। किलों-सम्बन्धी स्वतन्त्र रचना करने वालों में कविराज बाँकीदास का नाम अग्रगण्य है। अपने भुरजालभूषण में उन्होंने चित्तौड़ को लक्ष्य में रखकर सत्तर दोहे कहे हैं जिनमें से निम्नलिखित पद्यांश प्रसिद्ध हैं—

(इ) **'ओ सातूं अकलीम में, चावो गढ़ चीतोड़।'** अर्थात् चित्तौड़ का यह किला सातों विलायतों में प्रसिद्ध है।

'चंगो गढ़ चीतौड़' अर्थात् चित्तौड़ का किला उत्कृष्ट है। इस किले के न सीढ़ी लग सकती है, न सुरंग। यह सब गढ़ों का सिरताज है।[1]

चित्तोड़ को सर करने के सम्बन्ध में आसफखाँ और अकबर का निम्नलिखित वार्तालाप अत्यन्त प्रसिद्ध है जिससे इस दुर्ग की दुर्गमता का दृश्य आँखों के सामने प्रत्यक्ष हो उठता है।

सिर मांडल गुजरात सिर, दसभ कीधी दौड़।
उण सौंगा रो बैसणो, चंगो गढ़ चीतोड़॥
नीसरणी लागै नहीं, लागै नहीं सुरंग।
लड़ नहिं लीधो जाय ओ, दीधो जाय दुरंग॥
—बांकीदास ग्रन्थावली दूसरा भाग, पृष्ठ ९४

अकबर सूं ऊभो करै, आसिफखांन अरज्ज।
हजरत गढ़ कीजे हलो, करो जेज किण अज्ज॥

अर्थात् आसफखां खड़ा हुआ बादशाह से अर्ज कर रहा है कि हजरत ! गढ़ पर आक्रमण कर दीजिये, देर किस कारण हो रही है ?

आसिफखां अकबर कहै, भींतां भुरजां जोय।
बांको गढ़ भड़ बांकड़ा, हलो कियां की होय॥
भीतरलां फूटां भड़ां, कै खूटां सामान।
इण गढ़ में होसी अमल, खम तूं आसिफ़खान॥[1]

अर्थात् चित्तौड़ के क़िले की दीवारों को देखकर अकबर कहता है कि हे आसफखां ! पहले तो यह गढ़ ही बड़ा बाँका है, फिर इसकी रक्षार्थ बाँके राजपूत योद्धा उद्यत हैं, इसलिए केवल आक्रमण करने से ही क्या हो सकता है ? यह किला तो तभी सर हो सकता है जब इसके अन्दर के योद्धाओं में फूट पड़ जाय और वे हमसे आ मिलें अथवा इसके अन्दर की रसद खतम हो जाय, इसलिए हे आसफखां ! तू धैर्य रख।

दुर्गरक्षक जयमल ने इस प्रकार चित्तौड़ की रक्षा की जिससे बादशाह के दाँत खट्टे हो गये। कई महीने बीत जाने पर भी वह किले पर अपना अधिकार न कर सका। कूटनीतिज्ञ बादशाह ने चालाकी से काम लेना चाहा। उसने जयमल से कहलवाया कि यदि एक बार चित्तौड़ हमें सौंप दिया जाय तो हम तुम्हें ही चित्तौड़ का सूबेदार बना देंगे। जयमल ने जो उत्तर लिखकर भेजा उसे राजस्थान के कवि ने इस प्रकार पद्यबद्ध किया है।

जैमल लिखै जवाब जब, सुणजै अकबर साह।
आण फिरै गढ़ ऊपरां, तूटां सिर पतसाह॥
है गढ़ म्हारो हूं धणी, असुर फिरै किम आण।
कूंची गढ़ चित्तौड़ री, दीधी मुझ्झ दिवाण॥

अर्थात् जयमल उत्तर देते हैं कि हे अकबर शाह ! सुनिये, मेरे सिर के टुकड़े-टुकड़े होने पर ही चित्तौड़गढ़ पर आपकी दुहाई फिर सकती है। और आप यह खूब कहते हैं कि चित्तौड़ तुम्हें सौंप दूंगा और यहाँ का सूबेदार बना दूंगा। चित्तौड़ तो मेरा ही है और मैं ही यहाँ का स्वामी हूँ। एकलिंग के दीवाण महाराणा ने इस किले की कुंजी मुझे सौंप दी है, इसलिए मेरे जीते-जी यहाँ मुगलों की दुहाई कैसे फिर सकती है ?

राजस्थान का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जयमल ने अपने प्राणों की आहुति देकर भी अपने वचन को पूरा किया।

कहते हैं कि मौर्य वंश के राजा चित्रांगद ने इस किले को बनवाया था। इसी से इसको चित्रकूट (चित्तौड़) कहते हैं। बापा रावल ने मौर्य वंश के अन्तिम राजा मानमोरी से यह किला छीनकर अपने अधिकार में कर लिया था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दोहे कहे जाते हैं—

१. बांकीदास ग्रन्थावली, दूसरा भाग पृष्ठ १००।

चित्रकोट चित्रांगदे, मोरी कुल महिपाल।
गढ़ मंड्या अवलोकि गिर, देवनसीढा ढाल ।।
संगहि लिए सीसोदिए, दुर्गराह रिषिदान ।
बापा रावल वीरवर, वसुमति जासु बखान ।।
पाट अचल मेवाड़पति, रघुवंशी राजान ।
बापा रावल वड बहत, थिरि चीतोड़ सुथान ।।

चित्तौड़ के सम्बन्ध में कही गई उक्ति 'गढ़ों में चित्तौड़गढ़ और सब गढ़ैया है' राजस्थान की उक्ति नहीं रह गई, सम्पूर्ण उत्तरी भारत में लोकोक्ति की भाँति प्रचलित है।

३) **निष्कर्ष**—ऊपर जो स्थान-सम्बन्धी कहावतें दी गई हैं, उन सबकी व्याप्ति भी एक समान नहीं है। कुछ कम प्रचलित है और कुछ अधिक। कुछ शिक्षित वर्ग में प्रचलित हैं और कुछ शिक्षित-अशिक्षित सभी वर्गों की सामान्य सम्पत्ति हैं।

परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ-साथ अनेक कहावतों की व्याप्ति तथा उनके तथ्य में भी अन्तर पड़ता है। जोधपुर के महाराजा मानसिंह के जमाने में मारवाड़ के सम्बन्ध में एक कहावत प्रसिद्ध हुई थी—

आकन की झोंपड़ी, फोगन की बाड़।
देखो राजा मानसिंह, थारी मारवाड़ ।।

किन्तु मानसिंह के समय से लेकर अब तक मारवाड़ की स्थिति में परिवर्तन हो जाने से यह कहावत न तो अब उतनी प्रचलित कही जा सकती है और न इसमें व्यक्त तथ्य ही सर्वांश में स्वीकृत किया जा सकता है।

स्थानों से सम्बन्ध रखनेवाली कहावतें अथवा कहावती पद्य केवल राजस्थान में ही नहीं, प्रायः भारत के सभी प्रान्तों में प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ भोजपुरी भाषा की एक कहावत लीजिये जो भोजपुरियों के अक्खड़मन के विषय में समूचे बिहार में खूब मशहूर है।[1]

भागलपुर का भगेलुआ भैया, कहल गांव का ठग्ग।
जो पावे भोजपुरिया, तोड़े दोनों का रग्ग ।।

३. राजस्थानी कहावतों में समाज का चित्र

एक दृष्टि से देखा जाय तो सभी कहावतें सामाजिक होती हैं क्योंकि समाज जिस तथ्य को स्वीकार करता है, वही कहावत के रूप में प्रचलित हो पाता है। इसलिए किसी भी प्रदेश के सामाजिक जीवन से परिचय प्राप्त करने के लिए उस प्रदेश की कहावतों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। जिस प्रदेश की सामाजिक स्थिति का अध्ययन हमें अभीष्ट है, उस प्रान्त के लोगों की नारी के सम्बन्ध में क्या धारणा है, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, विधवा-विवाह आदि के सम्बन्ध में उस समाज के क्या विचार हैं, सामाजिक संस्थाएँ वहाँ किस रूप में विकसित हैं, मनुष्यों के जीवनादर्श किन सिद्धान्तों पर अवलम्बित हैं, कौनसे व्यवसायों को वह समाज आदर की दृष्टि से

१. भोजपुरी ग्रामगीत (प्रकाशक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) की भूमिका, पृष्ठ १३

देखता है और किन्हें वह हेय समझता है, इन सबकी जानकारी जितनी कहावतों के द्वारा हमें प्राप्त हो सकती है, उतनी अन्य किसी साधन द्वारा नहीं।

जिस प्रकार वंशानुक्रम, शिक्षा-दीक्षा तथा वातावरण आदि के कारण वैयक्तिक संस्कारों का निर्माण होता रहता है, उसी प्रकार एक विशिष्ट जीवन-पद्धति का अवलम्बन करते रहने के कारण जातियों के भी संस्कार बन जाते हैं और वे जातिगत संस्कार ज्ञात या अज्ञात रूप में उस जाति के व्यक्तियों को भी प्रभावित करते रहते हैं। इसी प्रकार किसी भी समाज में नारी का जो स्थान है, उससे उस समाज-विशेष के उच्च अथवा निम्न सांस्कृतिक स्तर का पता चल जाता है। यही कारण है कि आगे के पृष्ठों में राजस्थान की सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए जाति तथा नारी-सम्बन्धी कहावतों को लेकर अपेक्षाकृत विस्तार से विचार किया गया है। दूसरी बात यह भी है कि सामाजिक कहावतों में जाति तथा नारी के सम्बन्ध में ही सर्वाधिक कहावतें उपलब्ध होती हैं।

राजस्थान के आर्थिक और राजनैतिक जीवन से सम्बद्ध कहावतों को भी मैंने सामाजिक वर्ग के अन्तर्गत ही रखा है। समाज की व्यापक परिधि में अर्थ और राजनीति का भी अन्तर्भाव हो जाता है।

(क) राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतें

(१) **कहावतों के दो वर्ग**—सर हर्बर्ट रिजले ने कहावतों के दो वर्ग निर्धारित किये हैं (क) सामान्य और (ख) विशेष। सामान्य वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें वे हैं जिनमें किसी सार्वकालिक अथवा सार्वदेशिक सत्य की अभिव्यक्ति होती है। ऐसी कहावतों पर सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक व राजनीतिक क्रान्तियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उदाहरण के लिए इस प्रकार की कुछ कहावतें लीजिये—

(१) काज सर्‌या दुख वीसर्‌या, वैरी होगा वैद। (राजस्थानी)[1]

(२) गरज सरी के वैद वेरी। (गुजराती)

(३) अर्थ रो सर्यो ने वैद रो वेरी। (कच्छी)

(४) गरज सरो, वैद्य मरो। (मराठी)

(५) उपाध्यायश्च वैद्यश्च ऋतुकाले वरस्त्रियः।
सूतिका दूतिका नौका कार्यान्ते ते च शष्पवत्। (संस्कृत)

इन कहावतों में देश-भेद के कारण भाषा-भेद अथवा रूप-भेद भले ही हो गया हो किन्तु भाव की एकरूपता सर्वत्र दृष्टिगोचर होगी।

विशेष-वर्ग से संबद्ध कहावतों का क्षेत्र सीमित होता है। वे भी यद्यपि

---

१. मिलाइये—

1. The danger past, and God forgotten. (*English*)
2. When the wound is healed, the pain is forgotten. (*Danish*)
3. The river past, the saint forgotten. (*Spanish*)
4. The peril past, The saint mocked. (*Italian*)
5. When the daughter is dead, what use of a son-in-law? (*Telugu*)

अनुभव पर आश्रित होती हैं तथापि यह अनुभव देश, काल और समाज की सीमाओं से बँधा होता है।[1] कहना न होगा कि जाति-सम्बन्धी कहावतें विशेष-वर्ग की कहावतें हैं, सामान्य-वर्ग की नहीं।

(२) **जाति-सम्बन्धी कहावतें**—शताब्दियों से जाति-प्रथा भारतवर्ष के सामाजिक जीवन पर छाई हुई है। राजस्थान में तो जाति-पाँति का बन्धन अपेक्षाकृत और भी कड़ा रहा है। जिस प्रदेश के आचार-विचार, लेन-देन, साख-सम्बन्ध, मान-मर्यादा आदि का आधार जाति-प्रथा रही हो, उस प्रदेश में जाति-सम्बन्धी कहावतों की प्रचुरता कोई आश्चर्य का विषय नहीं।

प्रमुख जातियाँ

ब्राह्मण—यहाँ हम विचारार्थ सब से पहले ब्राह्मण-सम्बन्धी कहावतों को ले रहे हैं। प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में चाहे ब्राह्मण को सर्वोच्च स्थान दिया गया हो किन्तु राजस्थानी कहावतों में जिस ब्राह्मण का चित्र अंकित हुआ है, उसमें उसकी मूर्खता, भिक्षा-वृत्ति, मिष्टान्न-प्रियता तथा दक्षिणा-लिप्सा आदि ही मुखरित हुई है। कहावती ब्राह्मण की यदि झाँकी देखनी हो तो निम्नलिखित कहावतें नेत्रोन्मीलन का काम करेंगी।

"बामण नै साठ बरस तांई तो बुध आवै कोन्या अर पछै जा मर।"[2]

अर्थात् साठ वर्ष तक तो ब्राह्मण को बुद्धि नहीं आती और पीछे वह जाता है मर। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण जन्म से मृत्युपर्यन्त मूर्ख ही बना रहता है।

मूर्खता के साथ-साथ ब्राह्मण की भिक्षा-वृत्ति भी अत्यन्त प्रसिद्ध है। ब्राह्मणेतर विशेषत: वैश्य-माताएँ अपने कर्त्तव्य-पराङ्मुख किसी पुत्र को समझाते अथवा आड़े हाथों लेते समय बहुधा कहा करती हैं कि ब्राह्मण का लड़का यदि कोई कारबार न करे और निकम्मा भी रह जाय तब भी वह किसी प्रकार माँगकर गुजर कर सकता है किन्तु दूसरों के लिए तो किसी रोजगार के अतिरिक्त चारा ही नहीं।

ब्राह्मण के लिए कहा गहा गया है कि **"ब्राह्मण हाथी चढ्यो बी मांगै"** अर्थात् सम्पन्न होने पर भी ब्राह्मण अपने माँगने की आदत से बाज नहीं आता। कहते हैं कि एक बार श्री महाराजा मानसिंहजी ने प्रसन्न होकर एक श्रीमाली ब्राह्मण को किसी परगने की हाकिमी इनायत कर दी थी। जब उसकी सनद दस्तखत होकर श्रीमाली साहब को मिली तो आपने पूछा कि **"इण में अमारो पेटियो पण लिखेयूं छे"** अर्थात् इसमें हमारा पेटिया भी लिखा है न? महाराजा साहब ने यह सुनकर उसका पेटिया कोठार से चालू कर दिया और सनद वापिस लेकर फरमाया—सच है, **"राजयोग्याः नहि विप्रा भिक्षायोग्या पुनः पुनः।"**[3]

एक अन्य कहावत में कहा गया है कि भिक्षा-वृत्ति अपना लेने के कारण ब्राह्मण अकाल में भी भूखों नहीं मरता—

1. The people of India by Sir Herbert Risley, p. 125-126.
२. मिलाइये—"बामन का बेटा बावन वर्ष तक पौंगा।"
३. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़. सन् १८९१; पृष्ठ १५५।

"काल् कुसम्मै ना मरै, बामण बकरी ऊंट ।
बो मांगै बा फिर चरै, बो सूखा चावै ठूंठ ॥"

प्रसिद्ध है कि "**बामण कै हाथ में सोना को कचोलो है ।**" सोने के कचोले से तात्पर्य उसकी यजमान-वृत्ति से है । आज भी राजस्थान में ऐसे बहुत से ब्राह्मण हैं जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं, गाँजे-सुलफे में मस्त रहते हैं और यजमान-वृत्ति के आधार पर गुलछर्रे उड़ाते हैं । किन्तु यह स्थिति बहुत समय तक बनी नहीं रह सकती । सामाजिक जीवन में अब परिवर्तन हो रहा है, वैज्ञानिक युग और देश-विदेश के सम्पर्क के कारण हमारी धारणाएँ बदल रही हैं । ब्राह्मणों के प्रति अब यजमानों की भी वह पहले जैसी श्रद्धा नहीं रही । ब्राह्मण का जीवन आज उपेक्षित हो रहा है । वर्तमान समय में त्याग-तपस्या और विद्वत्ता के बल पर ही वह अपने पूर्व-गौरव को प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं । ब्राह्मण जब तक भिक्षा-वृत्ति नहीं छोड़ेगा, समाज उसे आदर की दृष्टि से नहीं देखेगा ।

कई कहावतें राजस्थान में ऐसी भी हैं जिनमें ब्राह्मण की मिष्टान्न-प्रियता का उल्लेख हुआ है । "**बामण रीझै लाडुवां**" तथा "**बामण रो जी लाडू में**" इसी प्रकार की कहावतें हैं जिनका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण लड्डुओं पर रीझता है तथा ब्राह्मण का जी लड्डुओं में रहता है । ब्राह्मण की मिष्टान्न-प्रियता जगद्विख्यात है । कालिदास आदि के संस्कृत-नाटकों में भी जहाँ ब्राह्मण को विदूषक बनाया गया है, वहाँ उसकी मोदकप्रियता को लेकर हास्य की सृष्टि की गई है ।

ब्राह्मण की दक्षिणा-लिप्सा और उसकी स्वार्थपरता के चित्र भी अनेक कहावतों में मिलते है जैसे, "**बामण तो हथलेवो जुड़ावण रो गर्जी है**" अर्थात् ब्राह्मण का स्वार्थ तो केवल पाणिग्रहण करवाने तक है, बाद में वर-वधू चाहे जीवित रहें या न रहें, उसकी दक्षिणा तो उसे मिल ही जाती है। "**बींद मरो बीनणी मरो, बामण रो टको त्यार ।**"

"**अग्रे अग्रे ब्राह्मणा नदी नाला वरजन्ते**" से भी स्पष्ट है कि ब्राह्मण अपने लिए कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहता किन्तु जहाँ प्राप्ति की कुछ आशा हो, वहाँ वह तुरन्त पीछे हो लेता है । "**बामाणियूं बतलायो, लैरां लाग्यो आयो ।**"

ऐसी कहावतों का भी अभाव नहीं है जिनसे ब्राह्मण की अकिंचनता प्रकट होती है—

बामण सें बामण मिल्यो, पूरबला जनम का संस्कार ।
देण लेण नैं कुछ नहीं, नमस्कार ही नमस्कार ॥"

अर्थात् पूर्व-जन्म के संस्कारों के कारण ब्राह्मण से ब्राह्मण की भेंट हुई किन्तु वहाँ लेन-देन के लिए कुछ नहीं, केवल नमस्कार ही नमस्कार है ।

एक कहावत में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि ब्राह्मण से कोई भलाई का काम नहीं होता ।

"काल बागड़ सूं नीपज, बुरो बामण सूं होय ।"

अर्थात् बागड़ में अकाल पड़ता है और ब्राह्मण से बुरा होता है ।

ब्राह्मण में भी इस दृष्टि से **"दायमा ब्राह्मण"** को और भी निकृष्ट ठहराया गया है।

खटमल कुत्तो दायमो, जय्यो[1] मांछर जूं।
अकल गई करतार की, इता बणाया क्यूं॥

दायमा कभी किसी का मित्र नहीं होता। यदि संयोगवश किसी का मित्र बन भी जाय तो बाद में धोखा देता है। दायमा की जाति ही बुरी होती है। खाने के बाद वह खिलानेवाले को ही हानि पहुँचाता है। जिस प्रकार धान में कायमा (एक तरह का काला कूड़ा) होता है, उसी प्रकार ब्राह्मणों में दायमा होता है। कहा जाता है कि एक बार एक गुर्जरगौड़ तथा दायमा दोनों विदेश गये और वहाँ खूब धनोपार्जन किया किन्तु संयोगवश दायमा बीमार पड़ गया। उसने सोचा कि मैं तो मर जाऊँगा और यह गुर्जरगौड़ अपने घर जाकर आनन्द करेगा। इस कारण उसने गुर्जरगौड़ से कहा कि जब मेरे प्राण निकल जाएँ तो मेरे मस्तक में कील ठोक देना। इससे मेरे प्राण ब्रह्मरन्ध्र से निकलेंगे और मुझे मुक्ति मिलेगी। गुर्जरगौड़ ने ऐसा ही किया। परिणाम-स्वरूप वह हत्या के अपराध में फाँसी पर चढ़ाया गया। तभी से कहावत चल पड़ी कि मरा हुआ दायमा जीवित गुर्जरगौड़ को खा गया।[2]

ब्राह्मणों में दायमा सबसे अधिक चतुर समझा जाता है। एक कहावत में कहा गया है **"बिना पढ्योड़ो दायमो, पढ्यो पढ़ायो गौड़"** अर्थात् दायमा यदि पढ़ा हुआ न भी हो तो भी वह शिक्षित गौड़ से कम नहीं समझा जाता। किन्तु दायमों में पहले पढ़े-लिखे लोग ज्यादा होते थे, इसीलिये **"भणियां पूछ भावे दायमा पूछ"** यह कहावत प्रसिद्ध हो गई।

पुरा काल में ब्राह्मणों की वचन-सिद्धता प्रसिद्ध थी। सम्भवतः निम्नलिखित कहावत में उसी की ओर संकेत किया गया है—

"बामण कह छटै, बलद बह छटै।"

अर्थात् बैल जैसे जमीन जोत डालता है, वैसे ही ब्राह्मण वचन कह डालता है।

ब्राह्मण बुरा भी हो तो भी उस पर प्रहार नहीं किया जाता। इसीलिए एक कहावत में कहा गया है।

"गायां बायां बामणां भाग्यां ही भला।"

अर्थात् गायों, स्त्रियों और ब्राह्मणों के आगे भागना ही अच्छा। इन पर प्रहार करके अथवा इनका वध करके विजय भी प्राप्त कर ली जाय तो भी वह कलंक का कारण होती है।

ब्राह्मणों से सम्बन्ध रखने वाली जो लोकोक्तियाँ ऊपर दी गई हैं उनमें से

१. एक कीट-विशेष जिसके काटने से बड़ी खाज (खुजली) चलती है।

२. दधीचपुत्रं कदी न मित्रं, जे मित्रं तो दगं दगा।
दायमा की दारी जात, खायां पछे मारे लात।
धान में कायमो अर बामणां में दायमो।
मर्यो दायमो जीवता गूजर गोड़ ने खाग्यो॥
—मेवाड़ की कहावतें; भाग १—(पंडित लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ १८१

अधिकांश में ब्राह्मण-जाति के कृष्ण पक्ष का ही चित्रण हुआ है। इससे स्पष्ट है कि ये लोकोक्तियाँ उस समय की बनी हुई हैं जबकि ब्राह्मणों का अधःपतन हो चुका था, अन्यथा मनुस्मृति में जिसके लिए कहा गया है—

"ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते ।
इह क्लेशाय तपसे प्रेत्यानन्तसुखाय च ॥"

उस ब्राह्मण का चित्र कहावती ब्राह्मण के चित्र से तनिक भी नहीं मिलता किन्तु लोकोक्तियाँ किसी के साथ पक्षपात नहीं करतीं, जैसा देखती हैं, वैसा ही वे कह देती हैं। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं रहती कि वे किसके सम्बन्ध में क्या कह रही हैं।

राजपूत—जिस धरती पर मनुष्य रहता है और जो उसके अधिकार में है तथा जिसके साथ उसके पूर्वजों की स्मृतियाँ लिपटी हुई हैं, उस धरती के साथ मनुष्य-मात्र का स्वाभाविक, नैसर्गिक मोह होता है। किन्तु यह धरती-प्रेम राजपूतों में सर्वाधिक दिखलाई पड़ता है। उस धरती को जब उनसे कोई छीनना चाहता है तो वे उसके सामने अपने प्राणों का मूल्य भी कुछ नहीं समझते। कहा भी है।

"धर जातां ध्रम पलटतां, त्रिया पड़न्तां ताव ।
तीन दिवस ये मरण रा, कूण रंक कुण राव ॥"

अर्थात् जब अपनी भूमि पर कोई दूसरा अधिकार कर रहा हो, धर्म-परिवर्तन की जबरदस्ती चेष्टा की जा रही हो और स्त्रियों की मान-मर्यादा पर जब आँच आ रही हो तो कौन ऐसा है जो इन तीन अवसरों पर भी अपने प्राणों की बाजी न लगा दे?

एक प्रसिद्ध कहावत के अनुसार राजपूतों की तो जाति ही जमीन है,[1] जमीन न होने पर राजपूत अपने को राजपूत नहीं समझते। जमीन पास है तो नीचे दर्जे का राजपूत भी ऊँचा हो जाता है, नहीं तो ऊँचा भी नीचा है। राजपूत को रे, अरे या तू कहकर पुकारना गाली देने के बराबर है।[2]

किन्तु राजपूतों ने जब अपना कर्त्तव्य पालन करना छोड़ दिया तो इस प्रकार की कहावतें प्रचलित हो गईं—

(१) ठाकुर गया, ठग रह्या रह्या मुलक रा चोर।
(२) रजपूती धोरां में रलगी, ऊपर रलगी रेत।
(३) रजपूती रँई नहीं, पुगी समंदां पार।

अर्थात् जो सच्चे ठाकुर थे, वे तो चल बसे, अब तो केवल मुल्क के चोर रह गये हैं। राजपूती तो अब रह ही नहीं गई, वह तो टीबों में मिल गई और ऊपर मानों रेत पड़ी है। राजपूती तो अब सात समुद्र पार जा पहुँची।[3]

बनिया—राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतों में बनिये के विषय में सबसे

---

१. राजपूत री जात जमी।
२. नाहर नै रजपूत नै रैकारे री गाळ।
३. राजस्थानी की जाति सम्बन्धी कहावतें: (श्री नरोत्तमदास स्वामी)।

अधिक कहावतें मिलती हैं। निम्नलिखित कहावतों द्वारा उसकी जातिगत विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

(१) "बाणियो के तो आंट में दे के खाट में दे।"[१]

अर्थात् बनिया या तो मुश्किल का कोई अवसर आने पर अथवा बीमार होने पर डाक्टर आदि को देता है या धार्मिक कृत्यों में व्यय करता है।

(२) "बाणियो खाट में तो बामण ठाठ में।"

अर्थात् बनिया यदि बीमार होता है तो फिर ब्राह्मण के ठाठ हैं क्योंकि ऐसे मौक़े पर जप-तप आदि के लिए वह ब्राह्मण को नियुक्त करता है।

(३) "बाणियो ठाठ में तो बामण खाट में।"

अर्थात् बनिया जब अमन-चैन में रहता है तो धर्म-कर्म के प्रति वह उदासीन हो जाता है जिससे धनाभाव के कारण बेचारा ब्राह्मण रुग्णवत् अपना जीवन व्यतीत करता है।

(४) "आम नींबू बाणियो, कंठ भीच्यां जाणियो।"

अर्थात् आम, नींबू और बनिया, ये दबने पर ही रस देते हैं।

(५) "बड़ो पकोड़ो बाणियो तातो लीजे तोड़।"[२]

अर्थात् बनिये, पकोड़े और बड़े को गरमागरम ही तोड़ लेना चाहिए।

(६) "रुठ्योड़ो भूपाल अर तूठ्योड़ो बाणियो बराबर।"

अर्थात् रूठा हुआ राजा और सन्तुष्ट बणिया, दोनों बराबर होते हैं क्योंकि राजा रुष्ट होकर भी जितना दे देता है, बनिया तुष्ट होकर भी उससे अधिक नहीं देता। कहा भी है—

"राजा प्रसन्नो गजभूमिदानम्।
बणिक् प्रसन्नो दमड़ीछदामम्॥"

(७) "बिणज करैला बाणियां और करैला रीस।"

अर्थात् व्यापार तो बनिये ही करेंगे, और सब तो केवल झगड़ा ही मोल लेंगे। गीता में यथार्थ ही कहा गया है "कृषिगौरक्षवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।"

किन्तु यदि बनिये से गांव बसाने के लिए कहा जाय तो यह उसके वश का रोग नहीं क्योंकि गाव बसाने का काम वंश-परम्परा से क्षत्रिय लोग ही करते आये है, बनियों का पैतृक व्यवसाय व्यापार करना रहा है। इसलिये बनिये से यह आशा नहीं की जा सकती कि वह गांव बसाने के काम में सफलता प्राप्त कर सकेगा।

(८) "गांव बसायो बाणियो, पार पड़े जद जाणियो।"

१. 'आंटै आयो बाणियो गरम ही ढल जाय तो ढलजाय।'

२. मिलाइये—

बड़ो बड़कलो बाणियो कांसी और कसार।
ताता ही नै तोड़िये, ठंडा करै विकार॥
अथवा
इतना तो ताता भला, ठंडा करै ॥

राजस्थान में एक कहावती दोहा प्रसिद्ध है जिसमें कहा गया है कि यदि बनिया स्वर्ग में भी चला जाय तो भी वह व्यापार करने की अपनी आदत नहीं छोड़ेगा; वह स्वर्ग के स्वामी से ही सौदा करने लगेगा और बीच में कुछ टक्का-पैसा खा जायगा।

"वाणयो वाण न छोड़सी, जे सुरगापुर जाय।
साहब सों सौदो करै, कोई टक्को-पीसो खाय ।।"

राजस्थान में अधिकतर बनिये लोग सट्टा करके मालामाल हो जाते हैं किन्तु सट्टा करनेवालों के लिए यह भी असम्भव नहीं कि कभी वे कौड़ी-कौड़ी के मोहताज हो जायँ।

"कर रै बेटा फाटको, घर को रह्यो न घाट को।
कर रै बेटा फाटको, खड्यो पी दूध को बाटको ।।"[1]

(९) **"विणजी लाग्यो वाणियो, चूंटी लागी गाय।**
बावड़ै तो बावड़ै, नहिं दूर नीकल् ज्याय ।।"

अर्थात् व्यापार में फँसा हुआ बनिया तथा दूसरों के खेत में हरा-हरा घास चरने वाली गाय वापिस आये तो आये, नहीं तो ये दोनों अपने काम में लगे ही रहते हैं। उस बनिये को जो समय पर व्यापार नहीं करता, निम्नलिखित लोकोक्ति में गँवार ठहराया गया है—

"बखत पड़ै विणजै नहीं सो वाणियो गँवार।"

(१०) बनिया जिस घसीट लिपि में लिखता है उसे भगवान् ही पढ़ सकता है—

"बणियो लिखै पढ़ै करतार।"

इसलिए उसकी धन-सम्पत्ति और उसके व्यापारिक रहस्य को समझ लेना टेढ़ी खीर है।

(११) बनिया यदि दिवालिया भी हो जाय तो भी वह पुराने बहीखातों को देख कर किसी के नाम कोई रकम निकाल ही देता है—

"टूट्यो वाण्यो जूना खत जोवै।"

(१२) एक कहावत में कहा गया है कि **"बैठतो वाणियों र उठती मालण ठगावै"** अर्थात् शुरू-शुरू में दूकान खोलनेवाला बनिया और शाम को बेचकर घर जाने की उतावली करनेवाली मालिन, ये दोनों ठगाते हैं अर्थात् सस्ता सौदा बेचते हैं। कम मूल्य पर वस्तुएँ बेचने से बनिए की पैठ जम जाती है जिसके कारण भविष्य में वह खूब कमाता है क्योंकि **"नामूं'व वाण्यो कमा खाय, नामूं'व चोर मार्‌यो जाय।"**

(१३) बनिये का मुख्य लक्ष्य पैसा पैदा करना होता है, उसके अन्य सब कार्य-व्यापार इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए साधन रूप होते हैं। पैदा अधिक होते रहने पर वह भूख-प्यास की भी परवाह नहीं करता। इसीलिए एक कहावत में कहा गया है **"भूखो वाण्यो हँसे।"**

१. मिलाइये—"कद सूंसा कद सेठ।"

बनिया अपना काम बना लेना भली प्रकार जानता है जैसा कि नीचे के कहावती पद्य से स्पष्ट है—

(१४) "और मंत्री सब कीजिये, एक कीजे बाणिया।
उरो बुलावे मीठो बोले, करे मन का जाणिया ।।"[1]

अर्थात् मंत्रियों में एक पद वैश्य को अवश्य देना चाहिए, क्योंकि वह मीठा बोलकर जिसे चाहे अपने पास बुला देता है, तदनन्तर इच्छानुसार कार्य करता है।

बनिये के लिए यह प्रसिद्ध है कि वह पदाधिकारियों की खुशामद करके किसी न किसी प्रकार अपना काम बना ही लेता है। घूँस देकर भी वह अपनी अर्थ-सिद्धि कर लेता है क्योंकि घूँस देने में जो व्यय उसे करना पड़ता है, उससे चौगुनी प्राप्ति वह रिश्वत की सहायता से कर लेता है। इसीलिए राजस्थान में एक कहावत प्रसिद्ध है कि यदि यमराज के यहाँ घुँस चलती तो बनिया कभी मरता ही नहीं।[2]

ऊपर दी हुई कहावतों में बनिये की अवसरवादिता तथा उसकी व्यापारिक एवं व्यावहारिक कुशलता का चित्रण हुआ है। अनेक कहावतें ऐसी भी हैं जिनमें उसकी स्वार्थपरता तथा कायरता उभर आई है। उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) बाणयो मीत न वेस्या सती। कागा हंस न गधा जती ।।"

इस कहावत से स्पष्ट है कि बनिया किसी का मित्र नहीं होता, वह स्वार्थी होता है तथा अपना काम निकाल लेने के बाद मुँह से बात नहीं करता।

(२) "च्यार चोर चोरासी बाणिया के करै बापड़ा एकला बाणिया ।।"

अर्थात् चार चोर हैं और चौरासी बनिये, बेचारे अकेले बनिये क्या करें? इस कहावत में बनिये की कायरता पर बड़ा जबरदस्त व्यंग्य है।

(३) "जाण मारै बाणियो, पिछाण मारै चोर।"

अर्थात् बनिया जानकार को अधिक ठगता है और भेद से चोरी होती है।

राजस्थानी कहावतों में कृषक और बनियों को लेकर एक आध ऐसी लोकोक्ति भी मिल जाती है जो आधुनिक युग की प्रगतिशील भावना के अनुरूप है। एक ऐसी ही कहावत लीजिए जिसमें कहा गया है कि किसानों को तो (जो अन्न पैदा करनेवाले हैं) घटिया अनाज खाने को मिलता है और महाजन गेहूँ खाकर मौज करते हैं।

"कुरा करसा खाय, गेहूँ जीमै बाणियाँ।"

इसी प्रकार श्रम की प्रतिष्ठा करनेवाली एक अन्य कहावत में कहा गया है—

"बावलां की भग्गर[3] को के होवै, बाजरै की को तो सोक्यूं हो।"

कहने का अभिप्राय यह है कि गरीब का लड़का मूर्ख रहने पर भी शारीरिक श्रम तो कर ही सकता है किन्तु वह अमीर का लड़का किस काम का, जो ऐश-आराम

१. मेवाड़ की कहावतें; प्रथम भाग (पंडित लक्ष्मीलाल जोशी) पृष्ठ १६६।
२. "घूंस चालती तो बाणियो धरमराज नै भी घूंस दे देतो।"
३. बहुत दिनों तक पड़े रहने के कारण जो अन्न चूर्ण सदृश हो जाता है, उसको भग्गर कहते हैं।

का जीवन व्यतीत करने के कारण शिक्षा के लाभ से तो वंचित रह ही जाता है, शारीरिक श्रम भी जिससे नहीं बन पड़ता।

जाट—जाट-विषयक कहावतें भी राजस्थानी में कम नहीं हैं। बनिये आदि की तुलना में उसे **"पिच्छम बुद्धि"** कहा गया है, जाट को बुद्धि बाद में आती है। जामाता, भानजा और रैबारी के साथ-साथ जाट के लिए भी कहा गया है कि वह कभी अपना नहीं होता जैसा कि निम्नलिखित कहावती दोहे से प्रकट है—

"जाट जंवाई भाणजो, रैबारी सूनार।
कदै न होसी आपणा, कर देखो ब्योहार।।"

इसी प्रकार किसी जाट की कृतघ्नता के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि एक बार बैलों आदि के अभाव में वह अपने खेत को नहीं जोत सका। इसलिए वह बैठा-बैठा विलाप कर रहा था कि दूसरों के खेत लहलहायेंगे और मेरा खेत खाली पड़ा रहेगा। शूकरों के स्वामी ने जाट को दुखी देखकर उससे दुःख का कारण पूछा और सारा हाल सुनकर कहा, "यदि आधा हिस्सा देने के लिए तैयार हो जाओ तो खेत हम बाह दें।" जाट ने यह शर्त स्वीकार करली। उसने खेत में चने बिखेर दिये और शूकरों ने घुटनों तक जमीन फाड़ दी। बहुत चने लगे। खेत आधा-आधा बाँट लिया गया। अच्छा हिस्सा जाट ने अपने लिए रख लिया, दूसरा शूकरों को दे दिया।

शूकर अपना खेत तो चरते ही थे, किन्तु अपनी आदत से लाचार होकर दूसरों के खेतों में भी चरने जाया करते थे। खेतवाले उन पर कुल्हाड़े का प्रहार किया करते किन्तु इसका उन पर कोई असर नहीं होता था। चन्दन के एक वृक्ष से रगड़ कर वे अपना घाव ठीक कर लिया करते थे। जाट चाहता था कि यदि शूकर किसी तरह मर जायें तो सारा खेत उसी का हो जाय। उसने एक दिन शूकरों के स्वामी से सारा भेद मालूम कर लिया। दूसरे दिन खाती को बुलवाकर उसने चन्दन का पेड़ कटवा डाला और कुल्हाड़ों से वह शूकरों को मारने लगा। परिणाम यह हुआ कि घाव ठीक न होने के कारण शूकर एक एक-कर मरने लगे। एक दिन शूकर-स्वामी वहीं बैठकर रोने लगा जहाँ जाट कभी रोया था। किसी बटोही ने वराह को दुखी देख उसके दुःख का कारण पूछा। उसने सारा हाल कह सुनाया। तब उस पथिक ने शूकर-स्वामी को सम्बोधित करते हुए कहा—

"जाट न जायो गुण करं, चणं न मानी बाह।
चन्नण बिड़ो कटाय की, अब क्यूं रोवं वराह।।"[1]

अर्थात् जाट किसी का गुण नहीं मानता, चना जोताई नहीं मानता। चन्दन का वृक्ष कटवाकर हे वराह! अब क्यों रो रहे हो।

"जाट न जायो गुण करं" राजस्थान में कहावत की भाँति प्रसिद्ध है।

जाट मारवाड़ में **"मोडी जात"** समझी जाती है और यह माना जाता है कि जब तक उसके साथ सख्ती न की जाय, तब तक वह कुछ काम नहीं देता। इस सम्बन्ध में एक प्राचीन **"दो सखुन"** तथा राजिया का एक प्रसिद्ध सोरठा लीजिये—

---

१. श्री गणपति स्वामी द्वारा संगृहीत एक लोक-गाथा के आधार पर जो बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त हुई।

"कपड़ा तो सपीठ नहिं, मूंज मेल नहिं खाय।
कह्यो न मानै चौधरी, कहो चेला किण दाय।"
गुरूजी ठोरिया नहीं।

"दे मुख में डाट, फूंदाला दोला फिरै।
जद रस आवै जाट, रागां बागां राजिया॥"

"जाट जडूलै मारिये" इस कहावत में तो यहाँ तक कह दिया गया है कि जाट को छोटी अवस्था में ही मारना चाहिए क्योंकि वयस्क होने पर वह वश में नहीं आता।

जाट की खुशामदी वृत्ति के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत प्रायः सुनी जाती है।

"जाट कहै सुण जाटणी, ई गाँव में रहणूं।
ऊंट बिलाई ले गई, हांजी हांजी कहणूं॥"

अर्थात् जाट अपनी स्त्री से कहता है कि हमें तो इसी गाँव में रहना है, इसलिए बिना खुशामद के काम चल नहीं सकता। यदि कोई यह भी कहे कि बिल्ली ऊँट को उठा ले गई तो भी हमें उसकी हाँ में हाँ मिलानी चाहिए।

जो आदमी जिस तरह का पेशा करता है, जिस तरह के वातावरण में वह रहता है, उसका ध्यान उसी की ओर जाता है। जाट ने गंगा स्नान किया तो पूछ बैठा—इसको खुदवाया किसने? "जाट गंगाजी न्हायो–कह खुदाई कुण है?" गंगा की पवित्रता की ओर उसका ध्यान नहीं गया, उसका ध्यान खुदाई की ओर ही गया।

जाट में मसखरापन भी खूब पाया जाता है। उसकी मसखरी में एक अजीब-सा भोलापन, एक अजीब-सी शरारत तथा एक अजीब-सा अक्खड़पन मिलता है जिसके कारण राजस्थान में जाट-सम्बन्धी अनेक प्रसंग कहावतों की भाँति प्रयुक्त होने लगे हैं। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(१) एक चौधरी चौपाल पर बैठा था। एक भलामानस उधर से निकला। सोचा कि चौधरी बैठे हैं, चुपचाप निकल जाना ठीक नहीं। जरा राम-रमी ही कर लें। बोला—चौधरी बैठो है? कै तूं गुड़ाय दे। अर्थात् चौधरी जी, बैठे हो! चौधरी जी ने उत्तर दिया—बैठा तो हूँ ही, तुझे अच्छा नहीं लगता तो मत बैठा रहने दे, उठाकर पटक दे। बेचारा अपना-सा मुँह लिये चलता बना।[१]

(२) एक मुसलमान मर गया था। उसकी कब्र में से लाश निकालकर एक जरख लिए जा रहा था। जाट ने इसे देख लिया और उस मुसलमान के लड़के से जाकर कहा—अरे, तेरे पिता को तो जरख ले जा रहा था। लड़का नाराज होकर कहने लगा—कैसा जरख, अरे फरिश्ता कह। चौधरी बोला—मियाँ, नाराज क्यों होता है, जिसे तू फरिश्ता कहता है उसे ही मैं जरख कहता हूँ। बात वही है, केवल कहने-कहने में अन्तर है।

१. देखिये—राजस्थानी की जाति-सम्बन्धी कहावतें (श्रीनरोत्तमदास स्वामी)।

"थारी म्हारी बोली में, इतरो ही फरक्क ।
तूं तो कहै फरेस्ता अर हूं कहूं जरख्ख ।।"[1]

(३) कहते हैं कि एक बार चारण लोग राठौड़ वीर दुर्गादास का यश बखान रहे थे। वहाँ एक जाट भी उपस्थित था। उसने कहा—अब मेरी भी सुनो और निम्नलिखित पद्य कह सुनाया जिस पर सब वाह-वाह करने लगे—

"ढम्मक ढम्मक ढोल बाजै दे दे ठोर नागरां की।
आसे घर दुरगो नहिं होतो सुन्नत होती सारां की ।।"

अर्थात् आसकरन के घर यदि दुर्गादास पैदा नहीं हुआ होता तो बादशाह सबको मुसलमान बना डालता।

(४) राजस्थान की एक कहावत है—"नट बुध आवे पर जट बुध नहीं आवे।" कहते हैं कि नट जाट के सामने तमाशा नहीं करते क्योंकि जाट से चुप नहीं रहा जाता। वह किसी न किसी तरह उनकी बात को काट देता है। प्रसिद्ध है कि एक बार किसी बाजीगर ने कंकड़ के गेहूँ बनाकर लोगों से कहा कि देखो, यह गेहूँ है, इसकी सब चीजें बन सकती हैं। वहाँ एक जाट भी बैठा था। वह तुरन्त बोल उठा—तू झूठ बोलता है। इसकी दाल तो नहीं बन सकती। यह सुनकर सब लोग हँसने लगे और बाजीगर खिसिया गया।[2]

(५) जाट गुड़ को बड़ी अमूल्य वस्तु समझते हैं। एक जाट राजा की सवारी देखकर आया था। उसने अपनी स्त्री से कहा कि राजा जी के सोने के पागड़े हैं। जाटनी ने उत्तर दिया कि राजा जी बड़े आदमी हैं, सोने के ही क्या, गुड़ के पागड़े बना सकते हैं। जाटनी से इतना सुनते ही एक और जाट बोल उठा—राजा जी की सब दीवारें ही गुड़ की होंगी। जब मन में आता होगा, उनमें से गुड़ तोड़कर खा लेते होंगे।

(६) एक जाट के लिए कहा जाता है कि वह बीस के ऊपर गिनती नहीं जानता था। अपने ऊँट को बेचने के लिए जब वह गया तो खरीदार ने ७० रुपये देने को कहे। जाट ने उत्तर दिया "सित्तर मित्तर तो मैं जानता नहीं, मुझे तो पूरे तीन बीसी (साठ रुपये) चाहिएँ।[3]

किन्तु आजकल इस प्रकार ठगे जाने वाले जाट दिखलाई नहीं पड़ते।

जंगल में जाट को छेड़ना खतरे से खाली नहीं समझा जाता। दूसरे खेती करने वालों की अपेक्षा जाट वीर और दृढांग होते हैं। खेती करने में भी वे बड़ा परिश्रम

---

१. पाठान्तर—

"बोली बोली आंतरो, बोली बोली फरक।
तू तो कहै फरेस्ता 'र मैं कहूँ जरख ।।"

२. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ई०, तीसरा हिस्सा; पृष्ठ ५१।

३. "सित्तर मित्तर हूँ समझूं कोयनी, तीन बीसी पूरी लेसूं"।
—राजस्थानी कहावतां, भाग दूसरो (स्वामी नरोत्तमदास स्वामी और पंडित मुरलीधर व्यास), पृष्ठ १५५।

करते हैं। **"आसोजां का तावड़ा जोगी होगा जाट"** से स्पष्ट है कि आश्विन की कड़ी धूप में भी वे अपने खेतों में काम करते रहते हैं। परिश्रम करने से खेती में उनको बरकत भी खूब होती है, इसीलिए **"जाट जठे ठाठ"** की कहावत प्रचलित हुई है।

एक कहावत में कहा गया है कि जाट दूध बेचने को पुत्र बेचने के बराबर समझता है।[1] किन्तु आर्थिक संघर्ष के कारण आजकल ऐसी बात नहीं रह गई, जाट भी अब दूध बेचने लगे हैं।

धनी वर्ग के मुकाबले जाट को कोई अच्छा भोजन नहीं मिलता, और न समाज में ही उसका कोई ऊँचा स्तर है। इसीलिए जाट के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें प्रचलित हुई हैं—

(१) **जाट के भांवें कुंवाड़ ही पापड़।**

अर्थात् जाट को पापड़ नसीब नहीं होते।

(२) **जाट की बेटी 'र का का जी की सूं।**

अर्थात् जाट की लड़की और काका जी की शपथ!

छोटा भी जब नज़ाकत ज्यादा दिखलाने लगता है तो इस कहावत का प्रयोग होता है।

(३) **जाटणी की छोरी 'र फलकं बिना दोरी।**

अर्थात् जाट की लड़की को फुलका कहाँ मिलता है? इसलिए यदि उसे फुलका न मिले तो उसका रूठना कैसा?

किन्तु अब राजनैतिक परिवर्तन के साथ-साथ जाटों की स्थिति में भी परिवर्तन हो रहा है। उनमें शिक्षा का प्रचार भी बढ़ रहा है। शिक्षा-प्रचार के साथ-साथ उनका आर्थिक और सामाजिक स्तर भी बढ़ेगा।

(३) पेशेवर जातियाँ

गूजर—अब कुछ पेशेवर जातियों को लीजिये। गूजर भेड़-बकरी अधिक चराते हैं और खेती कम करते हैं। खेती करने की अपेक्षा मवेशी चराने का पेशा उनको अधिक पसन्द है। इसीलिए एक कहावत प्रचलित है **"कै गूजर को दायजो, कै बकरी कै भेड़"** अर्थात् गूजर का दहेज ही क्या? या तो बकरी या भेड़। भेड़-बकरी चराने के कारण गूजर लोग गाँवों के बाहर, बस्ती के किनारे एक तरफ़ को रहते हैं जहाँ उन्हें पानी और चारे की सुविधा रहती है। **"गूजर जहाँ ऊजड़"** की लोकोक्ति का यही रहस्य जान पड़ता है।

राजपूताने के कुछ हिस्सों में गूजर चोरी और डकैती के लिए भी बदनाम हैं। गूजरों में स्वामि-भक्ति और विचारों की स्थिरता नहीं पाई जाती। इसीलिए राजस्थान की एक लोकोक्ति में कहा गया है, **"नाजर, गूजर मेर कुत्ता, सोये पीछे सात मता।"** अर्थात् हिजड़े, गूजर, मेर और कुत्ते की मति बहुत जल्दी बदल जाती

१. "दूध बेचो भांवै पूत बेचो।"

है। सोने के पहले उनका जो विचार रहता है, वह सोकर उठने पर नहीं रहता।

माली—मालियों के सम्बन्ध में उतनी कहावतें नहीं मिलतीं जितनी जाट और गूजरों के सम्बन्ध में मिलती हैं। नीचे की लोकोक्ति में मालियों को दूर-दूर बसने के लिए कहा गया है क्योंकि ये परस्पर लड़ते बहुत हैं।

"माली अर मूला छीवा ही भला।" अर्थात् माली और मूल (जैसे मूली आदि) दूर-दूर ही अच्छे।

नाई—राजस्थान की जाति-सम्बन्धी कहावतों में नाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह अपनी चतुराई के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। मनुष्यों में नाई, पक्षियों में कौवा और जलचरों में कछुआ, ये तीनों धोखेबाज होते हैं।[1] अनुभवी व्यक्ति नाइयों का बहुत विश्वास नहीं करते। कहते हैं, सिवाने का किला एक नाई की दग़ाबाजी से ही टूटा था। इसलिए अब भी किसी नाई को रात के समय उस किले में नहीं रहने देते। **"नाई बात गँवाई"** यह भी एक राजस्थानी कहावत है।

नाई अपने आपको आपस में ठाकुर कहते हैं। **"नाई री जान में से कोई ठाकर"** की कहावत इसी कारण चली है। किसी कवि ने नाई के लिए ठाकुर नाम को अमान्य ठहराते हुए लिखा है—

"आंख आवरण, घर सिलावरण, सोकड़ बहनड़ नांव।
नाई ठाकुर भाट राजा पांचों नांव कुनांव॥
जगतन को भगतरण कहैं, कहैं चोर को साह।
नाई को ठाकर कहैं, तीनों उलटी राह॥"

किन्तु नाई ठाकुर के नाम से बड़ा प्रसन्न होता है। सेन भगत के नाम से वह और भी खुश होता है क्योंकि सेन भगत एक नाई ही था जो साधुओं की संगति में अपना बहुत सा समय लगाता था। कहते हैं कि एक बार उसके यहाँ कुछ साधु आ गये और जिस राजा की हजामत बनाने वह जाया करता था, उसके पास ठीक समय पर न पहुँच सका। इसलिए भगवान स्वयं नाई का रूप धारण कर उस राजा की हजामत बनाने चले गये थे। इसीलिए भगवद्भक्तों में यह कहावत चली आती है—

"सेन भगत का सांसा मेट्या, आप भये हर नाई।"

नाई मौके पर कटाक्ष करने से भी नहीं चूकता। एक बार एक नाई किसी राजा की हजामत बना रहा था। एक चारण को अपने से नीचे बैठे हुए देखकर कटाक्ष करके बोला।

"चारण मत कर चतुर्भुज, नाई कीजे नाथ।
आधी गाबी बंठवो, माथा ऊपर हाथ॥"[2]

१. मिनखां में नाई, पखेरुवां में काग।
पाणी वालो काछवो, तीनूं दग्गैबाज॥
"नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः।"

२. मिलाइये—
खग बाहां री खाट, बैठे जाय बराबरी।
नाई किसब निराट, रच्छाणी सूं राजिया॥
—रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ई०, पृष्ठ ४५९

अर्थात् हे चतुर्भुज ! मुझे चारण न बनाना, नाई बनाना क्योंकि नाई राजा के पास आधी गद्दी पर बैठता है और राजा के मस्तक पर हाथ रखता है।

चारण ने भी जवाब में कहा—

"चारण कीजै चतुर्भुज, नाई मत कर नाथ।
बानी ऊपर बैठबो, ऐंठवाड़े में हाथ ।।"

अर्थात् हे चतुर्भुज ! मुझे चारण बनाना, नाई नहीं क्योंकि नाई राख के पास बैठता है और उच्छिष्ट वस्तुओं पर उसका हाथ पड़ता है।

हिन्दुओं में विवाह-शादी तथा मृत्यु दोनों अवसरों पर नाई की उपस्थिति अनिवार्य होती है। इस दृष्टि से समाज के लिए नाई अत्यन्त उपयोगी है किन्तु स्पृश्यास्पृश्य सभी की हजामत बनाते रहने के कारण वह सदा अपवित्र समझा जाता है। इसीलिए **'नाई दाई बैद कसाई इणको सूतक कदे न जाई'** जैसी कहावतों में नाई का भी नाम सम्मिलित कर लिया गया है। इसी प्रकार एक दूसरी कहावत है। **"आर धार और सुसकार"** जिसके अनुसार गाड़ीवान और तेली जो बैलों के आर चबूते हैं, नाई जो धार अर्थात् उस्तरे से हमेशा काम लेता रहता है और धोबी जो सुसकार करते हुए हर प्रकार का गंदा कपड़ा धोता है, इन सब को निकृष्ट ठहराया गया है।

धोबी—राजस्थानी भाषा में धोबी के सम्बन्ध में इनी-गिनी कहावतें ही उपलब्ध हैं। **"धोबी को कुत्तो घर को न घाट को"** यह तो एक ऐसी कहावत है जो प्राय: सभी प्रादेशिक भाषाओं में मिल जाती है। धोबी मोल लेकर कपड़ा कम पहनते हैं, दूसरों के यहाँ से धुलने के लिए जो कपड़े आते हैं, उन्हीं से वे अपना काम चलाते रहते हैं। इसीलिए निम्नलिखित दोनों कहावतें प्रचलित हैं—

(१) **"धोबी बेटा चान सा चोटी न पट्टा।"**

अर्थात् धोबी का लड़का दूसरों के चन्द्र-धवल वस्त्रों पर बना-ठना फिरता है।

(२) **"धोबी कै घर में बड़गा चोर, डूब्या और ई और।"**[1]

अर्थात् धोबी के घर में चोरी होने पर दूसरों को ही हानि उठानी पड़ती है।

बहुत से धोबी अपने पास गधे रखते हैं क्योंकि धोने के लिए जो कपड़े उनके पास आते हैं, उन्हें वे गधों पर लादकर तालाब पर ले जाते हैं। इसी से **"धोबी की हांते गधो खाय"** इस लोकोक्ति का विकास हुआ है।

धोबी का **'कुण्ड'** जिसमें वह कपड़े धोता है, इतना मलिन समझा जाता है कि सामान्यत: नरक-कुण्ड से उसकी तुलना की जाती है। राजस्थान में प्रतिज्ञा करने वाले से कहलवाया जाता है कि यदि मैं अपना वचन चूक जाऊँ तो धोबी के कुण्ड में पड़ूँ।

सांसी यद्यपि स्वयं नीची जाति के होते हैं किन्तु ये भी धोबी को अपने से नीचा समझते हैं और उसके घर की रोटी नहीं खाते। जब उनमें से किसी को कोई काम नहीं करना होता है तो कहते हैं कि अमुक काम करूँ तो धोबी की रोटी खाऊँ।

१. पाठान्तर—
"धोबी रे घरे लाय लागी, बूडा बस्ती रा लोग।"

दर्जी—दर्जियों का कहना है कि सिलाई का पेशा तो बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है किन्तु उस पुराने जमाने के दर्जी अब नहीं रहे। हम लोग तो राजपूतों से दर्जी हुए हैं। परशुरामजी ने जब क्षत्रियों का वध किया तो हमारे पूर्वजों ने सुई लेकर अपनी प्राण रक्षा की थी। इस 'साख' का निम्नलिखित कहावती पद्य प्रसिद्ध है—

"छत्री मार निछत्री कीधो, सूई ले ओलो ले लीधो।"

दर्जी को चिढ़ाने के लिए (**"पूण माटी"** कहा जाता है जिसका अर्थ यह है कि वह पूरा मर्द नहीं है। **'माटी'** शब्द राजस्थान में पति के अर्थ में प्रयुक्त है।

दर्जियों की कायरता के सम्बन्ध में जोधपुर की तरफ़ एक कहावत **"दरजियाँ वाली पाल है"** जो बहुत समय से चली आ रही है। इस कहावत के पीछे निम्नलिखित कथा सुनने में आती है—

"पाल एक गाँव है जो जोधपुर से करीब तीन कोस की दूरी पर स्थित है। एक बार कुछ दर्जिनें कण्डे बीनने के लिए जंगल में गई थीं। पाल के किसी आदमी ने उनके कण्डे छीन लिये। इस पर दर्जी बहुत उत्तेजित हो गये और गज कतरनी ले-लेकर पाल मारने को चले। पाल पहुँचते-पहुँचते उनको रात हो गई। उन्होंने निश्चय किया कि प्रातःकाल उठकर पाल वालों से लड़ेंगे। वे अजीब ढंग से एक लम्बी कतार बनाकर इस प्रकार सो गये कि एक का सिर दूसरे की टाँगों के नीचे था। किन्तु जो दर्जी सबसे आगे था वह यह सोचकर कि लड़ाई में कहीं सबसे पहले मैं ही न मारा जाऊँ, अपनी जगह से उठकर सबसे पीछे आ सोया। यह देखकर दूसरा भी चुपके से उठा और जाकर उसके पीछे सो गया। फिर तीसरे-चौथे ने भी ऐसा ही किया। तात्पर्य यह है कि यों करते-करते वे सबके सब जोधपुर के सिवानची दरवाज़े तक हटते चले आये। इतने में प्रातःकाल हो गया। अपने को दरवाज़े के पास देखकर सब आश्चर्य में भरकर कहने लगे कि यहाँ कैसे आ गये। फिर बोले, खैर, अब तो घर चलो, पाल वालों पर फिर कभी आक्रमण करेंगे। इस प्रकार सब दर्जी अपने-अपने घरों को वापिस आ गये। तभी से दर्जियों के पाल मारने के सम्बन्ध में उक्त कहावत प्रचलित हुई है। जब कोई अपने बूते से बाहर काम करना चाहता है और उसमें उसे सफलता नहीं मिलती तब इस कहावत का प्रयोग किया जाता है।"[1]

ढोली—ढोली नाम ढोल बजाने से पड़ा है। ढोली गाने-बजाने और माँगने का काम करते हैं। ये ढोल, सारंगी, ढोलक और नगारे बजाकर यजमानों के यहाँ गाते हैं। जोधपुर की तरफ के ढोली नौबत खूब बजाते हैं और इस बात का दावा करते हैं कि शहनाई बजाने में कई राग और बोल ये साफ़ निकाल लेते हैं। प्रसिद्ध है कि जब चित्तौड़ के किले में राव रिड़मलजी को सीसोदियों ने धोखे से मारा था तो एक ढोली ने शहनाई में निम्नलिखित गीत गाकर जोधाजी को, जो नीचे थे, भगने का अवसर दिया था—

१. देखिये—रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ईसवी, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ ४८०।

"जोधा थारो रिड़मल मारणो, भाग सके तो भाग ।"

डोम ढोलियों को जाड़ा बहुत लगता है । इस विषय में निम्नलिखित पद्य अत्यन्त प्रसिद्ध है—

"सींगाला सी ऊतरे, आधे जातां माह ।
तुरियां फागण ऊतरे, नर बांदर बेसाख ।।
डूमां कदे न ऊतरे, थितिया बारे मास ।।"

अर्थात् भेड़-बकरी तथा भैंस का जाड़ा आधे माह उतर जाता है, घोड़ों का फाल्गुन में तथा मनुष्यों और बन्दरों का बैशाख में उतर जाता है किन्तु डोमों पर जाड़े का भूत बारहों महीने सवार रहता है ।

डोम झूठे भी बहुत होते हैं । झूठ कहती है कि मैं और कहीं चाहे न मिलूँ, डोमों के यहाँ अवश्य मिलूँगी ।

कारीगरां कमनीगरां और बजाजां हट्ट ।
जो एता मैं ना मिलूँ, डूमां में अलवत्त ।।

ढाढी—ढाढी भी ढोलियों से मिलती-जुलती जाति है, अन्तर यह है कि ढोली जहाँ ढोल बजाते हैं, वहाँ ढाढी सारंगी या रबाब बजाने का काम करते हैं । ढाढियों का कहना है कि रामचन्द्रजी के जन्म के समय भी हम उपस्थित थे और हमें बड़ी बधाई मिली थी जिसकी "साख" का निम्नलिखित गीत प्रसिद्ध है—

"दसरथ के घर राम जनमिया, हंस ढाढण मुख बोली ।
अटारा किरोड़ ले चौक मेलिया, काम करन को छोरी ।।"

अब भी जब किसी के पुत्र उत्पन्न होता है और ये बधाई गाने के लिए जाते हैं तो सबसे पहले यही गीत गाते हैं ।

नट—नट तमाशा दिखाकर जीविकोपार्जन करते हैं और जब सन्तान उत्पन्न होती है तो स्त्री को तेल ज्यादा खिलाते हैं । लड़के-लड़कियों को भी जब ये कसरत कराते हैं तो तेल ही पिलाते हैं क्योंकि तेल से हड्डियाँ मुलायम बनी रहती हैं, इसलिए **"तेल जितणं खेल"** यह कहावत नटों में अत्यन्त प्रचलित है ।

हीजड़े—हीजड़े जनाने वेश में रहते, गाते-बजाते और नाचते हैं । जनाने वेश में रहने के कारण ये जल्दी-जल्दी अपनी दाढ़ी-मूँछ मुँडाया करते हैं । इसीलिए एक राजस्थानी लोकोक्ति के अनुसार ये जो कुछ कमाते हैं, उसका मूँछ मुड़ाने में ही सफाया हो जाता है ।[1] हीजड़ों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे किसी युद्ध में विजय प्राप्त कर लेंगे । अतः एक दूसरी राजस्थानी कहावत में कहा गया है कि हीजड़ों ने भी क्या कभी कतार लूटी है ?[2]

नाजर—हीजड़े और नाजर में अन्तर यह है कि नाजर के दाढ़ी-मूँछ नहीं होती । इसलिए कई रजवाड़ों में बादशाही जमाने से ही जनानी ड्योढ़ियों पर नाजरों को रखने का रिवाज चलता आया है । कई नाजर ऐसे हुए हैं जिन्होंने रियासतों में

१. हीजड़े की कमाई मूँछ मुँडाई में गई ।
२. हीजड़ा भी कदे कतार लूटी है ?

दीवान रहकर बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। ख्वाजा फरासत दीवान और नाजिर हरकरण के लिए प्रसिद्ध है कि वे जोधपुर के महाराजा श्री जसवन्तसिंह जी और तखतसिंह जी के बड़े कृपापात्र थे। किसी समय नाजिर हरकरण के तो जरा सी ज़बान हिला देने से समस्त रियासत का काम-काज चलता था। इसीलिए **"बारे नाचे बादरियो, मायँ नाचे नाजरियो"** की कहावत चल पड़ी।

नाजर-सम्बन्धी किसी-किसी कहावत में मधुर विनोद के भी दर्शन होते हैं। किसी ने नाजर को आशीर्वाद दिया— नाजरजी, आपकी वंश-वृद्धि हो। उत्तर मिला कि बस मुझ पर ही इतिश्री है।[1]

गोला—गोला कहीं दरोगा, कहीं खवास, कहीं चाकर, कहीं चेला और कहीं वज़ीर के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार इनकी स्त्रियाँ भी डावड़ी, माणस, वडारण और दरोगण आदि अनेक नामों से पुकारी जाती हैं।

राजपूतों में गोला-गोली रखने का विशेष रिवाज़ है। गोलों के सम्बन्ध में जो कहावतें राजस्थान में प्रचलित हैं, उनसे उनकी कृतघ्नता का ही पता चलता है। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें लीजिये—

सौ गोलां ही घर सूनो।

अर्थात् सौ गोलों के रहते हुए भी घर सूना है।

"गोला किणसूँ गुण करै, ओगणगारा आप।
माता जिण री खावली, सोला जिण रा बाप॥"

अर्थात् गोलों से किसी का भला नहीं होता। जिनकी माता पुंश्चली और सोलह जिनके पिता हैं, ऐसे गोले अवगुणों की खान होते हैं।

गोलों के सम्बन्ध में राजिया को सम्बोधित कर कहा हुआ निम्नलिखित दोहा भी अत्यन्त प्रसिद्ध है—

"गोला घणा नजीक, रजपूतां आदर नहीं।
उण ठाकर री ठीक, रण में पड़सी राजिया॥"

अर्थात् जो ठाकुर बहुत से गोलों को आश्रय देता है और राजपूतों का सम्मान नहीं करता, उसे युद्ध का प्रसंग उपस्थित होने पर सब पता चल जायेगा।

"गोलै कै सिर ठोलो" और **"गोलै को गुर जूतो"** जैसी कहावतों में बतलाया गया है कि गोले पिटने से ही ठीक होते हैं।

गोला-गोली रखने की प्रथा दास-प्रथा का ही अवशेष है। राजस्थान में भी अब इस प्रथा के विरुद्ध प्रतिक्रिया होने लगी है।

खटीक—पुराने समय से ही खटीकों का काम पशुओं के काटने का रहा है। इसीलिए **"छाली रोवै जीव नै खटीक रोवै मांस नै"** तथा **"छाली खटीक नै ही धोवै है"** जैसी लोकोक्तियाँ प्रचलित हुई हैं किन्तु जब से कसाई मांस बेचने लगे तब से खटीकों का पेशा केवल खाल रंगने का रह गया।

---

१. नाजरजी, बेल बधो! कै बस म्हा तांणी ही है।

ढेढ—ढेढों के सम्बन्ध में अनेक कहावतें सुनी जाती हैं। ढेढ के लिए स्वर्ग में भी बेगार तैयार है।[१] उसका मन हमेशा तुच्छ घृणित पदार्थों में रहता है।[२] ढेढ के शाप से गाय-बैल आदि नहीं मरते,[३] ढेढ का स्पर्श करो या गले लगाकर मिलो, एक ही बात है।[४] उसके साथ छककर भोजन करो अथवा अँगुलि भरकर चक्खो, दोनों में क्या अन्तर है ?[५] ढेढणी यदि रनवास में जा आये तो फिर अपने बराबर किसी को नहीं समझती।[६]

सुनार—सुनार के लिए प्रसिद्ध है कि जब वह गहने गढ़ता है तो सोने की चोरी किये बिना नहीं रहता यहाँ तक कि अपनी माता का भी सोना खा जाता है। सम्भवतः यही कारण है कि शकुनशास्त्रियों की दृष्टि में सुनार का दाएँ-बाएँ किसी ओर भी मिल जाना एक प्रकार का अपशकुन समझा जाता है।

"आटो कांटो घी घड़ो, खुल्लै कैसां नार।
बावों भलो न दाहिणो, ल्याली जरख सुनार ॥"

अर्थात् आटा, काष्ठ, घी का घड़ा, विधवा स्त्री, भेड़िया, जरख और सुनार, ये न बाएँ अच्छे न दाएँ, यात्रा में सर्वथा निषिद्ध हैं।

खाती—खाती समाज के लिए एक अत्यन्त उपयोगी जाति है। खेती के लिए हल, चक्की के लिए गाला, दरवाज़ों के लिए किवाड़ तथा सोने के लिए चारपाई आदि बनाने में सर्वत्र उसी का हाथ दिखलाई पड़ता है किन्तु उसे यह पसन्द नहीं कि रास्ते चलते सभी उसे बिना मतलब तंग करते रहें। एक कहावत में वह अपना दुखड़ा इस प्रकार रो रहा है—

"बैंवतेरी लाठी ही लांबी हु ज्याय।"

अर्थात् जो उधर कर गुजरता है, उसी की लाठी लम्बी हो जाती है। खाती को बैठे देख लिया कि चट उससे अपनी लाठी कटवाने के लिए दौड़ पड़े मानो उसे और कोई काम ही नहीं है।

किन्तु खाती जहाँ बैठकर काम करता है, वहाँ खटाखट बहुत होती है, इसलिए एक अन्य कहावत में कहा गया है—

"खोटा काम ठेठ सूं कीन्या, घर खाती ने मांग्या दीन्या।"

अर्थात् प्रारम्भ से ही बुरे काम किये, माँगने पर खाती को घर दे दिया। खाती के पास खटाखट के अतिरिक्त आने-जाने वालों का ताँता बँधा रहता है और लकड़ी के बुरादे आदि से कूड़ा भी बढ़ता रहता है।

तेली—तेली चालाक समझा जाता है। एक तेली से रुपया भंजाने के लिए कहा

१. ढेढ नैं सुरग में भी बेगार।
२. ढेढ रो मन ल्यावड़ै में।
३. ढेढां री दुरसीस सूं दाव थोड़ा ही मरैं।
४. ढेढ रो पल्लो लगावो भावैं बाथे पड़ो।
५. ढेढ रैं साथे धाप र जीमो भांवैं आंगली भर कर चाखो।
६. ढेढणी भर रावलै जा आई !

गया तो उसने उत्तर दिया "मैं हूँ तेली, छूंगो रिपिये की थेली !" तेलियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें अत्यन्त प्रसिद्ध है—

(१) तेली सूं खल ऊतरी, हुई बलीते जोग।

अर्थात् घाणी से जब खली उतर गई तो वह ईंधन के योग्य हो गई।

(२) घरे घाणी तेली लूखो क्यूं खावै।

अर्थात् घर पर घानी होते हुए तेली रूखा-रूखा क्यों खावे ?

(३) तेली रो बलद सौ कोस जाय परो तो ही घरे रो घरे।

अर्थात् तेली का बैल यदि सौ कोस भी चल ले तो भी घर का घर पर ही रहेगा।

भील—भील एक प्रसिद्ध जंगली जाति है जो राजपूताना, सिन्ध और मध्य भारत के जंगलों और पहाड़ों में पाई जाती है। इस जाति के लोग बहुत वीर और तीर चलाने में सिद्धहस्त होते हैं। क्रूर और भीषण होने पर भी ये सीधे, सच्चे और स्वामिभक्त होते हैं। कुछ लोगों का विश्वास है कि ये भारत के आदिम निवासी हैं। पुराणों में इन्हें ब्राह्मणी कन्या और धीवर पुरुष से उत्पन्न संकर माना गया है।[1]

राजस्थान में भीलों का निवास प्राचीन काल से है। महाराजा प्रताप के सहायक के रूप में ये विख्यात हैं। इधर देशी रियासतों के कारण इनका काफी शोषण हुआ है और समय की दौड़ में ये पिछड़ गये हैं। साक्षरता का इनमें प्रायः अभाव है किन्तु व्यावहारिक ज्ञान की कमी इनमें नहीं है। लोक-वार्ताओं, कहावतों और लोकगीतों के रूप में भीलों का व्यापक साहित्य प्राप्त होता है जिसके आधार पर उनकी ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में कहावतें सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होंगी। श्री गिरधारीलाल शर्मा द्वारा सम्पादित और राजस्थान विश्व विद्यापीठ उदयपुर द्वारा प्रकाशित "राजस्थानी भीलों की कहावतें" शीर्षक पुस्तक की पाण्डुलिपि से कुछ कहावतें यहाँ साभार उद्धृत की जा रही हैं—

(१) ऊठो बैठो ने धरती माते सूरज तये जेम तपो।

स्वस्थ रहो और धरती पर सूर्य तपता है, उसी प्रकार तपो।

(२) राजा राम चौवदे वर अन वगर् बेड़े मांए रेग्या जैम रहें।

राजा राम चौदह वर्ष बिना अन्न के रह गये, हम भी उसी प्रकार रहेंगे।

(३) काम मोटो है, नाम मोटो नी।

काम बड़ा है, नाम नहीं।

(४) करै चाकराई सो करै ठाकराई।

अर्थात् जो सेवा करता है, वही ठकुराई कर सकता है।

ऊपर की कहावतों से स्पष्ट है कि भील काम करने में विश्वास रखते हैं तथा कष्ट-सहिष्णु होते हैं।

---

१. हिन्दी शब्द सागर (नागरी प्रचारिणी सभा) तीसरा भाग; पृष्ठ २५७३।

भीलों की अनेक कहावतों में एकता, आत्म-सम्मान आदि जीवन के अनेक उच्च आदर्शों का प्रकटीकरण हुआ है। जैसे,

(१) आटा मांये लूण मल्ं जैम मली नै रवा हूँ फायदो है।

अर्थात् आटे में नमक की तरह मिलकर रहने में लाभ है।

(२) ईजत नूं मनख, वगर ईजत नूं ढांढूं।

अर्थात् इज्जत के बिना मनुष्य पशु-तुल्य है।

(३) कणानी हांची भूठी ने करवी, कणांक नु गैर नेंकली जासें।

अर्थात् इधर-उधर सत्य का भूठ और भूठ का सत्य नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से किसी का घर बरबाद हो जाता है।

(४) अन्दर हरको गैरो, धरती हरको भारी वेई ने रंवो।

अर्थात् इन्द्र के समान गम्भीर और धरती के समान भारी (उदार) होकर रहना चाहिए।

कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनका भीलों के शोषण से सम्बन्ध है। जैसे,

(१) करसो हात कमावे वाण्या ना बेटा हारू।

अर्थात् किसान अपने हाथ से कमाता है किन्तु बनिये के पुत्र के लिए।

(२) अणभणिया भील मन जाणिया पलाणे।

अर्थात् अशिक्षित भीलों को कष्ट पहुँचाकर भी उनसे स्वेच्छापूर्वक काम लिया जाता है।

भीलों में गरीबी के कारण अनेक बार ऐसे अवसर आ जाते हैं जब घर वाले ऋण ले लेते हैं और चुकाना पड़ता है लड़कों को।

"करबा वाला तो कीदूं, चोरां ना गाबड़ा अमलाना।"

अर्थात् करने वालों ने तो कर्ज कर लिया किन्तु बाद में आपत्तियाँ उठानी पड़ीं लड़कों को।

भील ईश्वर में विश्वास करते हैं। ईश्वर पर लोगों की घटती हुई आस्था को देखकर उनका जी दुखी हो उठता है।

"आज रामें कूंण ओलके आपे राम हैं।" अर्थात् आज राम को कौन पहचानता है, सब राम बने बैठे हैं।

सामाजिक जीवन से सम्न्बध रखने वाली निम्नलिखित कहावतें भी यहाँ उल्लेखनीय हैं

(१) अवाला फेरा है, आज ते हाहूनो काले बऊनो।

अर्थात् यह तो उल्टा चक्र है, आज सास का समय है तो कल बहू का होगा।

(२) आदमी ना हो कायदा, लुगाई नो एक कायदो।

इस कहावत का संकेत बहुपत्नी-प्रथा की ओर है।

भीलों में नीति-सम्बन्धी कहावतों का भी अभाव नहीं है। इस प्रकार की कुछ कहावतें लीजिये—

(१) आखाने भरोसे आधो चूकी जाहो ।

अर्थात् पूरे को प्राप्त करने की दुराशा में आधा भी खो दोगे ।

(२) आज वार है ते काले कवार भी है ।

अच्छे दिन सदा नहीं रहते ।

यहाँ हम उन कहावतों की ओर भी दुर्लक्ष्य नहीं कर सकते जो भीलों के सम्बन्ध में प्रचलित हैं । उदाहरण के लिए ऐसी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) भील के कंई ढील ?

अर्थात् भील के काम करने में क्या देर होती है ? वह सदैव कार्य करने को तत्पर रहता है ।

(२) भील, भंगी, भगतण, भोपा, देतां लेतां वाजे बोफा ।

अर्थात् भील, भंगी, वेश्या और भोपे से लेन-देन करनेवालों को लोग गँवार समझते हैं ।

(३) भीलों का गाना कुछ अजीब तरह का होता है । उस सम्बन्ध में निम्न-लिखित कहावती पद्य उल्लेखनीय है—

कांई चारण री चाकरी, कांई आरण री राख ।
कांई भील रो गाश्णों, कांई साटिये री साख ।।

गाडिया लुहार—गाडिया लुहार घर बाँधकर नहीं रहते । ये गाडे (शकट) में ही अपने घर का सारा सामान लिये फिरते रहते हैं । स्थायी रूप से ये किसी एक गाँव में नहीं रहते । इसीलिए "**गाडिये लुहार को कुणसो गांव ?**" एक राजस्थानी कहावत ही बन गई है ।

प्रसिद्ध है कि जब महाराणा प्रताप को मुगलों के आक्रमण के कारण चित्तौड़ छोड़ देना पड़ा तो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक चित्तौड़ वापिस नहीं ले लूंगा, तब तक चारपाई पर नहीं सोऊँगा, सोने-चाँदी के बर्तनों में भोजन नहीं करूंगा और जमकर कभी भी एक स्थान पर नहीं रहूँगा। कहा जाता है कि वर्तमान गाडिया लुहारों के पूर्वजों ने भी उस समय शपथ ली थी कि जब तक बादशाह से बैर का बदला नहीं ले लेंगे, घर बाँधकर नहीं बैठेंगे और गाडों में ही बैठे फिरते रहेंगे। उनके द्वारा ली हुई शपथ के शब्दों "**ऊंधा खाट गालजो और फिरता ही मरजो**"[1] ने कहावती ख्याति प्राप्त कर ली है ।

गाडिया लुहार जब गाडों में चारपाइयों को लादते हैं तो उन्हें औंधी रखते हैं । निश्चित रूप से हम यह नहीं कह सकते कि वे चारपाइयों को औंधी क्यों रखते हैं किन्तु सम्भव है आराम का जीवन न बिताने की महाराणा प्रताप की प्रतिज्ञा से इसका कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध हो ।[2]

मुसलमान—मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें यद्यपि धर्म के अन्तर्गत रखी जानी चाहिएँ किन्तु सामान्य जनता उन्हें जाति मानकर ही चलती है ।

1. These Ten years by A. W. T. Webb, p. 143.
2. Ibid, p. 148-149.

यही कारण है कि राजस्थानी भाषा की जाति सम्बन्धी कहावतों के प्रसंग में मुसलमानों से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों पर भी यहाँ विचार किया जा रहा है। सर हर्बर्ट रिजले ने भी इसी आधार पर इस प्रकार की कहावतों को अपने ग्रन्थ में जाति-सम्बन्धी कहावतों के अन्तर्गत रखा है।[1]

राजस्थान में मुसलमानों के सम्बन्ध में जो कहावतें प्रचलित हैं उनमें से कुछ नीचे उद्धृत की जा रही हैं—

१. काको बेटी ना देगो तो देगो ही कुण।
२. काकै ताऊ की बेटी भू बरोबर है।
३. घर जाई नै घर घर क्यूं जाण दे।
४. घर को दायजो घर में ही राखले।
५. घर की बेटी, घर की भू।
६. अंय घर में जाई अर अं ही घर में ब्याई।
७. काकै जाई भाण अर तायै जायो भाई।
बो बं को लोग अर बा बंकी लुगाई॥
८. असल मियें की याही जांण।
भीतर बीबी आदी भांण॥
९. काकै जाई पर घर जाय।
तो तायै जायो दोजक मांय॥
१०. काको रूसै तो अपनी बेटी ना दे।
११. टाबरपण का काका ताऊ, 'रभर जोबिन का सुसरा।
१२. काको रूसै तो रूसण दो, बेटी तो काकी दे देनी।
१३. काकै कै जामसी जिकी नै तो तायै नै सुसरो कैणो पड़सी।
१४. तायै जाया लड़ा पुकारै सुण अै काका की लाली।
सागै खाया सागै खेल्या, अब तूं पर घर क्यूं चाली॥
१५. चाचै कै घर नका पडन्ता जां मरदा का जीव डरै।
मिलस घर में रोता फिरै कुंवारा बै के खोसातूड़ करै॥
१६. सुण ओ काका कवै भतीजो, तेरी जाई घर रैसी।
मिलसी रोज बंदगी करती, मरियां कांधा बा देसी॥
१७. आवै आंगण सासरो, आवै आंगण पीर।
१८. भाई कै आंगण ना देकर, अपनी बेटी पर घर दे।
सागी भतीजो फिरै कुंवारो, ऊं भड़वै को काको के॥[2]

ऊपर की कहावतों से स्पष्ट है कि मुसलमानों के यहाँ चचे की लड़की से शादी हो जाती है। बल्कि सच तो यह है कि "मुसलमान चचा और भुवा की बेटी से निकाह

1. The people of India by Sir Herbert Risley, p. 138.
२. श्री गणपति स्वामी दवारा संगृहीत और बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी, पिलानी के सौजन्य से प्राप्त।

करने को ज्यादा पसन्द करते हैं। भाई जब विवाह करके आता है तो बहन दरवाजा रोककर खड़ी हो जाती है और अपना नेग माँगती है। हिन्दुओं में तो उसको जोड़ा, कपड़ा और जेवर देकर राजी करते हैं किन्तु मुसलमानों में यह इकरार होता है कि यदि भाई के बेटी होगी तो बहन के बेटे को दी जायेगी और बहन के बेटी होगी तो भाई के बेटे के वास्ते ले ली जायगी और ऐसा ही होता भी है, लेकिन जिन ननद-भावज में मेल न हो तो उस इकरार को एक अजब चालाकी से टाल दिया जाता है और वह है दूध पिलाना। जैसे कोई भावज अपनी ननद से नाराज है और अपनी बेटी उसको नहीं दिया चाहती है और न उसकी लिया चाहती है तो उसके बेटे और बेटी को दो-चार मर्द औरतों के देखते हुए किसी बहाने से अपना दूध पिला देगी। फिर उनका निकाह कभी नहीं होगा क्योंकि धाय का दर्जा माँ के बराबर ही रखा गया है।[1]

मुसलमानों में चचा जब रुष्ट होता है तो भतीजे को डर रहता है कि चचा कहीं रुष्ट होकर अपनी लड़की न देने का निर्णय न करले। चचे की बेटी से विवाह करने के कारण ही **"आधै आँगण सासरो, आदै आँगण पीर"** जैसी कहावतें प्रचलित हुई हैं। जो चचा अपने भतीजे को लड़की नहीं देता उसे ऊपर की कहावतों में अभि-शप्त ठहराया गया है।

४. **तुलनात्मक कहावतें**—अब तक जाति-सम्बन्धी जिन कहावतों पर विचार किया गया है, उनमें से प्रायः सभी ऐसी हैं जो किसी एक जाति-विशेष से सम्बन्ध रखती हैं किन्तु ऐसी भी बहुत सी कहावतें हैं जिनमें कई जातियों का एक साथ उल्लेख हुआ है और गुण दोनों की दृष्टि से जिनकी पारस्परिक समताओं अथवा विषमताओं पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार की कुछ तुलनात्मक कहावतों को हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं—

१. "अग्गम बुद्धी बाणियो, पिच्छम बुद्धी जाट।
तुर्तबुद्धि तुरकड़ो, बामण सम्पटपाट॥
२. बातां रीझै बाणियो, रागां सूं रजपूत।
बामण रीझै लाडुवां, बाकल रीझै भूत॥
३. बणी बणावै बाणियो, बणी बिगाड़ै जाट।
४. बीजाबरगी बाणियो, दूजो गूजरगोड़।
तीजो मिलै जो दाहिमो, करै टापरो चोड़॥
५. जंगल जाट न छेड़िये, हाटां बीच किराड़।
रंघड़ कदे न छेड़िये, जद तद करै बिगाड़॥
६. राम राम चोधरी, सिलाम मियांजी।
पगे लागूं पांडिया, डंडोत बाबाजी॥

१. रिपोर्ट मरदुमशुमारी राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ई०, पृष्ठ ५९७

७. छोडा छोलण बूट उपाड़न, थपथपियो श्रो नाई ।
एता चेला न करो गुरूजी, काम न आवै कांई ।।
८. बामण नाई कूकरो, जात देख घुर्राय ।
कायथ कागो कूकड़ो, जात देख हरसाय ।।
९. अबे तबे का एक रुपय्या, अठे कठे का आना बार ।
इकड़म तिकड़म आठाहि आना, शूं शां आना च्यार ।।
१०. के कवित सोहै भाट नै, खेती सोवै जाट ने ।
११. तेलण सूं नहिं मोचण घाट, वैरी मोगरी वैरी लाट ।

अर्थात् बनिया आगे की बात पहले सोच लेता है, जाट को बुद्धि बाद में आती है, मुसलमान बात को तुरन्त ताड़ लेता है किन्तु बुद्धि के नाम ब्राह्मण सफंसफा होता है। बनिया बातों से, राजपूत राग से, ब्राह्मण लड्डुओं से तथा भूत सिझे हुए अथवा अध-सिझे हुए कोरे अन्न से प्रसन्न होता है। बनिया बनी हुई बात को बना लेता है और जाट उसे बिगाड़ देता है। बीजावर्गीय बनिया, गूजर गौड़ और दायमा, अगर ये तीनों मिल जायँ तो घर चौपट कर देते हैं। जंगल में जाट को और दूकान पर बनिये को नहीं छेड़ना चाहिए, राजपूत को कभी नहीं छेड़ना चाहिए, उससे चाहे जब बिगाड़ हो सकता है। चौधरी को राम राम किया जाता है, मियाँ से सलाम करते हैं, पंडित को 'पालागूं' (पैर पड़ता हूँ) कहते हैं, और बाबाजी से दंडवत् की जाती है। खाती, माली, कुम्हार और नाई, इन्हें हे गुरुवर्य ! अपना शिष्य नहीं बनाना चाहिए, ये किसी काम में नहीं आते। ब्राह्मण, नाई, कुक्कर अपनी जातिवालों को देखकर गुर्राते हैं; कायस्थ, कौआ और मुर्गा सजातियों से हर्षित होते हैं। 'अबे तबे' वालों की क़ीमत एक रुपया है, अठे कठे (राजस्थानी) का बारह आना, इकड़म-तिकड़म (मराठी) की क़ीमत आठा आने से ज्यादा नहीं, पर 'शूँ-शाँ' बोलने वाले गुजराती की क़ीमत चार आने ही हैं। कवित्त भाट को शोभा देते हैं और खेती जाट को शोभा देती है। तेलिन से मोचिन कम नहीं है, उसके पास मोगरी है तो उसके पास लाठ है।

तुलनात्मक कहावतों में भी बनिये से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों का प्राचुर्य है।

५. **निष्कर्ष**—अपनी त्रुटियों की ओर सामान्यतः किसी व्यक्ति का ध्यान नहीं जाता अथवा यदि जाता भी है तो वह दुर्लक्ष्य कर जाता है किन्तु दूसरे लोगों का ध्यान हमारी त्रुटियों की ओर तुरन्त चला जाता है। इस प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए टेंच ने स्पेन वालों की एक कहावत[1] का उल्लेख किया है जिसका आशय यह है कि स्पेन की तरफ से यदि मदद मिलती है तो बड़ी देर से, अन्यथा वह कतई नहीं मिलती। स्पेन वाले सहायता करने का वादा भी करते हैं तो उसको पूरा नहीं करते। यदि करते भी हैं तो उस समय करते हैं जब करना न करना बराबर होता है। इसीलिए इटली वालों के यहाँ स्पेन वालों की दीर्घसूत्रता के सम्बन्ध में एक उपहासात्मक कहावत[2] प्रचलित है जिसका अर्थ यह है कि मेरी मृत्यु जब कभी भी आवे तो वह

1. So crros de Espana, o'trade, o'nunca.
2. Mi vengalia morte da Spagna.

स्पेन की तरफ से आवे क्योंकि स्पेन वालों की आदत के अनुसार यदि मृत्यु स्पेन की तरफ से आयेगी तो या तो वह आयेगी ही नहीं और यदि आयेगी तो भी बड़ी देर से।[१]

ऊपर जो जाति अथवा पेशों से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें दी गई हैं, उनमें एक जाति-विशेष के अवगुणों को प्रकट करने वाली कहावतें बहुतकर दूसरी जाति-विशेष के व्यक्तियों द्वारा पहले-पहल उच्चरित हुई होंगी। जहाँ तक तुलनात्मक कहावतों का सम्बन्ध है, बहुत सम्भव है, वे तटस्थ व्यक्तियों की उक्तियाँ हों।

कुछ लोगों का ख़याल है कि जातियों से सम्बन्धित कहावतें अन्तर्जातीय सद्भावना को प्रोत्साहन नहीं देतीं और समाज में जाति-प्रथा की जड़ों को और भी दृढ़ बनाती हैं। जो भी हो, इतना निश्चित है कि किसी भी प्रदेश की सभ्यता और संस्कृति के अध्ययन के लिए इस प्रकार की कहावतें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, और फिर दूसरी बात यह है कि जाति-सम्बन्धी कहावतें भारतवर्ष के प्रायः सभी प्रदेशों में मिलती हैं। जाति-प्रथा के राष्ट्रव्यापी प्रभाव के कारण विभिन्न प्रदेशों की जाति-सम्बन्धी कहावतों में भी बहुत कुछ समानता मिलती है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों की जाति-सम्बन्धी कहावतों के तुलनात्मक अध्ययन से भी मनोरंजक परिणाम निकलेंगे। भीलों-जैसी आदिवासी जातियों का अध्ययन आज कुछ नृतत्ववेत्ता कर रहे हैं। इस प्रकार के अध्यनन में भी जाति-सम्बन्धी ये कहावतें उपयोगी सिद्ध होंगी।

(ख) राजस्थानी कहावतों में नारी

(१) **कन्या-जन्म**—उन सभी वस्तुओं में से जिससे नारी की सामाजिक स्थिति का पता चलता है, कन्या-जन्म के प्रति उस समाज की प्रतिक्रिया सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। ऋग्वेद की ऋचाओं में इसके सम्बन्ध में कुछ आभास नहीं मिलता यद्यपि पुत्र-जन्म के लिए देवताओं से प्रार्थनाएँ अवश्य की गई हैं किन्तु ऐसा भी उल्लेख नहीं है जहाँ लड़की के जन्म पर दुःख प्रकट किया गया हो, अथवा उसे गर्हित दृष्टि से देखा गया हो। ऋग्वेद के ज़माने में लड़के और लड़की की समान स्थिति थी, यह भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु अथर्ववेद तक आते-आते लड़की के जन्म को हेय समझा जाने लगा और इस प्रकार की प्रार्थनाएँ की जाने लगीं—"**वह लड़की को अन्यत्र रखे, यहाँ वह पुत्र दे।**"[२]—अथर्व ६-२-३

ब्राह्मण-ग्रन्थों में यज्ञों के महत्त्व के कारण पुत्र को "**मुक्ति का जहाज**" कहा जाने लगा।[3] नारद ने कहा—पत्नी सहयोगिनी है, पुत्री एक प्रकार का कष्ट है और पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का आलोक है।[४] यज्ञों के कारण इस युग में पुत्र को असाधारण महत्त्व

१. केहवते विषे निबन्ध केहवत माला, पेहलो भाग (जमशेदजी नशरवानजी पीतीत): पृष्ठ ५८।

2. Women in Vedic Age by Shakuntala Rao Shastri, p. 41.

३. मिलाइये—
राजस्थानी कहावत "बेटो घर री जाझ है" अर्थात् पुत्र घर का जहाज है। राजस्थानी कहावतां, भाग दूसरो (स्वामी नरोत्तमदास और पं० मुरलीधर व्यास)।

4. Women in Vedic Age by Shakuntala Rao Shastri, p. 41.

दिया जाने लगा जिससे नारी-जीवन का क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित हो गया।

पुत्र के कारण वंश-परम्परा चलती है और श्रद्धालु भारतीयों की दृष्टि में वह अपने मृत पूर्वजों की सुख-शान्ति में भी सहायक होता है। यही कारण है कि पुरा काल से ही भारतीय समाज में पुत्री की अपेक्षा पुत्र को अधिक महत्त्व दिया जाता रहा है। **"एक मात्रा लाघव से वैयाकरणों को उतना ही आनन्द मिलता है जितना पुत्र-जन्म से"** यह कहावती उक्ति भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है।

राजस्थान में भी कन्या-जन्म के सम्बन्ध में जो कहावतें प्रचलित हैं, उनसे भी इसी धारणा की पुष्टि होती है। उदाहरण के लिए कुछ कहावतें लीजिये—

(१) बेटी जायी रे जगनाथ ! ज्यां रो हेठै आयो हाथ।

अर्थात् हे जगन्नाथ ! जिसने बेटी को जन्म दिया, उसका हाथ नीचे आ गया। कहने का तात्पर्य यह है कि बेटी के बाप को वर-पक्ष वालों से सदा दबकर ही चलना पड़ता है।

(२) बेटी जाम जमारो हार्‌यो।

अर्थात् पुत्री को जन्म देकर जीवन व्यर्थ ही खो दिया।

(३) **"बेटी भली न एक"** यह कहावती अंश तो केवल राजस्थान में ही नहीं, प्रायः उत्तरी भारतवर्ष में भी सर्वत्र प्रचलित है।

राजस्थान में **"बेटी का बाप"** तो एक ऐसा कहावती पदांश ही बन गया है जिसका प्रयोग किसी व्यक्ति के हीन भाव को प्रकट करने के लिए होता है। संस्कृत सुभाषितकार के शब्दों में **"कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्"** अर्थात् कन्या का पिता होना एक अत्यन्त कष्टदायक वस्तु है। राजस्थान की एक कहावत में कहा गया है **"कै जागै जंके घर में सांप, कै जागै बेटी को बाप"** अर्थात् या तो वह जगता है जिसके घर में साँप रहता है या वह जगता है जो लड़की का पिता है। लड़की के पिता को सर्वदा चिन्तित रहना पड़ता है।

घर में जब पुत्र का जन्म होता है तो थाल बजाकर उसका स्वागत किया जाता है किन्तु लड़की के जन्म पर घर में उदासी का वातावरण छा जाता है। लड़के-लड़की के साथ व्यवहार करने में भी माता-पिता का प्रायः पक्षपात देखा जाता है जिसका अवश्यम्भावी परिणाम यह होता है कि लड़की भी तुच्छ भावना से आक्रान्त होकर अपने को नगण्य समझने लगती है।

इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि राजपूतों के यहाँ जब लड़की पैदा होती थी तो उनमें से बहुत से निर्धन राजपूत पैदा होते ही उस लड़की को एक हँडिया में रखकर उसके मुँह को भली प्रकार बन्द कर देते थे जिसमें दम घुट जाने के कारण लड़की की मृत्यु हो जाती थी। उस हँडिया को वे जंगल में ले जाकर गाड़ दिया करते थे। इस प्रथा की ओर संकेत करने वाली निम्नलिखित राजस्थानी लोकोक्ति बड़ा गहरा प्रहार करती है—

"बाई जी पेट में सैं तो नीकल्या पण हांडी में सैं कोनी नीकल्या।"

अर्थात् माता के गर्भ से तो लड़की बाहर निकल आई किन्तु जब उसे हँडिया

में डाल दिया गया तो वह बाहर नहीं निकल सकी।

श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने ब्राह्मण-ग्रन्थों से पता चलाया है कि कन्या को उत्पन्न होते ही उसे छोड़ देने की प्रथा का प्रारम्भ उस काल में हो गया था।

"तस्मात् स्त्रियं जातां परास्यन्ति न पुमांसम् ॥" मै० सं० ४-६-४

उन्हीं के शब्दों में इस प्रथा का अवशेष राजपूताने में अभी तक मिलता है। कई राजपूत कन्या को उत्पन्न होते ही गला घोटकर मार देते हैं।[1]

परिवार में भी उस नारी का विशेष आदर होता है, जो पुत्र-प्रसविनी होती है, अथवा जिसकी संतति से वंश चलने की सम्भावना रहती है। धर्मशास्त्र में पौत्र और दौहित्र में कुछ विशेष भेद नहीं माना गया है। पौत्र के समान दौहित्र भी पिण्ड-दान आदि द्वारा उद्धार करता है किन्तु फिर भी पौत्र की वधू दौहित्र की वधू से अच्छी लगती है। एक कहावत में कहा गया है कि पौत्र-वधू की 'राबड़ी'[2] भी मीठी और दौहित्र-वधू की खीर भी खट्टी लगती है।

"पोता भू की राबड़ी, दोयता भू की खीर।
मीठी लागै राबड़ी, खाटी लागै खीर ॥"

पौत्र-वधू के प्रियतर होने का कारण यह है कि उससे अपना वंश चलता है, दौहित्र के लड़के से अपना वंश नहीं चलता।

(२) **पराधीनता**—भारतीय इतिहास में कोई युग ऐसा था, जब नारी को अपना पति स्वयं वरण करने की स्वतन्त्रता थी, जब पुरुषों के समान ही उसे उपनयन, वेदाध्ययन आदि का अधिकार था; इतना ही नहीं, ऋग्वेद में तो ऐसी बहुत-सी ऋचाएँ हैं जो स्त्रियों द्वारा निर्मित हैं। उपनिषद्-युग की गार्गी और मैत्रेयी जैसी स्त्रियाँ आध्यात्मिक वाद-विवाद में सक्रिय भाग लिया करती थीं और समाज में वे बड़े आदर और सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थीं किन्तु धीरे-धीरे समय ने पलटा खाया, नारी की स्थिति में परिवर्तन होने लगा, क्रमशः वह पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ दी गई। स्मृतियों के युग में रजोदर्शन से पूर्व ही विवाह कर देने के सम्बन्ध में कड़े नियम बना दिये गये, धीरे-धीरे स्वयंवर की प्रथा भी उठ चली, बाल-विवाह के कारण अध्ययन भी अत्यन्त सीमित हो गया, वेद-पाठ स्त्री के लिए निषिद्ध ठहरा दिया गया। घर ही अब उसका प्रमुख क्षेत्र रह गया, बाह्य संसार से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न होने लगा। पुरुष का सामाजिक स्तर ऊँचा हो गया, स्त्री की स्वतन्त्रता जाती रही, जन्म से मरण पर्यन्त उसे 'रक्षणीया' ठहरा दिया गया—

**पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति ॥**

अर्थात् कुमारावस्था में पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र स्त्री की रक्षा करता है; स्त्री स्वतंत्र रहने के योग्य नहीं।

१. "सम्मेलन पत्रिका" भाग ३६ संख्या ४ में प्रकाशित "भारतीय संस्कृति में नारी" शीर्षक लेख; पृष्ठ ५१।

२. मोठ बाजरे के चून में छाछ डालकर जो एक पेय पदार्थ राजस्थान में तैयार किया जाता है, उसे "राबड़ी" कहते हैं।

किन्तु इतना होते हुए भी मनुस्मृति में **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"** जैसी उक्तियाँ हैं जिनसे पता चलता है कि उस युग में नारी के प्रति सम्मान की भावना का अभाव नहीं था।

जहाँ तक राजस्थानी कहावतों का सम्बन्ध है, उनमें राजस्थानी नारी की पराधीनता के चित्र ही विशेष अंकित हुए हैं। इस प्रकार की कुछ कहावतें उदाहरण के लिए लीजिये—

(१) **बेटी अर बलद जूड़ो कोनी गेर्यो।**

अर्थात् बेटी और बैल हमेशा बन्धन में रहते हैं।

(२) **दुनिया में दो गरीब हैं, कै बेटी, कै बैल।**

अर्थात् दुनिया में दो ही गरीब हैं, या तो बेटी या बैल जो हमेशा परतंत्र रहते हैं।

(३) **गाय अर कन्या नै जिन्नै हांक दे उन्नै ही चाल पड़ं।**

अर्थात् गाय और कन्या को जिधर हाँक दिया जाय, उधर ही चल पड़ते हैं। गाय को उसका मालिक जिधर हाँक देता है, उधर ही उसको चलना पड़ता है। इसी प्रकार माता-पिता लड़की के सम्बन्ध में जो निर्णय कर देते हैं, वही अन्तिम होता है। इस कहावत से तो ऐसा जान पड़ता है कि लड़की का दर्जा पशु से कुछ ऊपर नहीं समझा गया। विवाह जैसे महत्त्वपूर्ण मामले में भी लड़की से कोई बात नहीं पूछी जाती। जिसके साथ लड़की को जीवन भर बिताना पड़ता है, उसके सम्बन्ध में लड़की की पहले कोई जानकारी आवश्यक नहीं समझी जाती।

नारी की स्वतन्त्रता को कहावती दुनिया में प्रशस्य नहीं ठहराया गया है। **"जिमि स्वतन्त्र होइ बिगरइ नारी"** की भावना ही निम्नलिखित राजस्थानी कहावतों में व्यक्त हुई है—

(१) **मेरो मीयूँ घर नहीं, मनै किसी को डर नहीं।**

अर्थात् मेरा पति घर नहीं, मुझे किसी का डर नहीं।

(२) **मेरो साजन घर कोनी, मनै कोई को डर कोनी।**

अर्थात् मेरा प्रिय घर नहीं, मुझे किसी का भय नहीं।

(३) **जमी, जोरू जोर की, जोर हट्यां और की।**

अर्थात् जमीन और स्त्री बलवान के ही वश में रहती हैं, बल हटने पर वे पराई हो जाती हैं।

(४) **मूँ आगै नार, पीठ पीछै पराई।**

अर्थात् मुँह के सामने स्त्री और पीठ पीछे पराई।

उक्त कहावतों को पढ़कर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या नियंत्रण में रखे जाने पर ही नारी के शील और चारित्र्य की रक्षा सम्भव है? क्या यह सम्भव नहीं कि अत्यधिक नियंत्रण की प्रतिक्रिया स्वरूप ही नारी के मन में शृंखलाओं को तोड़ डालने की इच्छा होने लगती है?

एक राजस्थानी कहावत में तो यहाँ तक कह दिया गया है—

"बेटी रहै आप सें नई तो रहै न सागी बाप सें" अर्थात् बेटी या तो स्वतः ही मर्यादा का पालन करती है, नहीं तो वह उच्छृंखल हो जाती है, अपने पिता के भी वश में वह नहीं रहती।

'मनुसंहिता' में भी एक इसी आशय की उक्ति उपलब्ध होती है—

> **"न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम् ।**
> **एतैरुपाययोगैस्तु शक्यास्ताः परिरक्षितुम् ॥**
> **अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् ।**
> **शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वेक्षणे ॥"**
>
> —अध्याय ६, श्लोक १०-११

अर्थात् बल-प्रयोग द्वारा कोई भी स्त्री को वश में नहीं कर सकता। स्त्री सुरक्षित तभी रह सकती है जब उसे द्रव्य के संग्रह और व्यय में, प्रत्येक वस्तु को स्वच्छ बनाये रखने में, धार्मिक कृत्यों के पालन करने, भोजन बनाने और घर के बर्तनों की देख-भाल में लगा दिया जाय।

मनुस्मृति में यथार्थ ही कहा गया है कि यदि स्त्री को निरन्तर गृह-कार्य आदि में संलग्न रखा जाय तो वह वशवर्तिनी रह सकेगी क्योंकि उस हालत में वह सभी प्रकार के प्रलोभनों से बच जायगी किन्तु चाहे जिस स्त्री को निरन्तर गृह-कार्यों में लगाये रखना भी सामान्यतः सम्भव नहीं होता। वस्तुतः जिस स्त्री के संस्कार अच्छे होंगे, वही घर में भी सुव्यवस्था रख सकेगी तथा स्वयं भी सब प्रकार की मर्यादाओं का पालन कर सकेगी। इसलिए राजस्थानी कहावतों में इस बात पर जोर दिया गया है कि बहू अच्छे घराने की होनी चाहिए। निम्नलिखित राजस्थानी कहावत को लीजिये—

"भू घरियाणे की अर गाय न्याणे की" अर्थात् वधू अच्छे घराने की होनी चाहिए और गाय **'न्याणे'** वाली होनी चाहिए। दुहने के समय गाय के पिछले पैरों को जिस रस्सी से बाँधा जाता है, उस रस्सी को **'न्याणा'** कहते हैं। जिस प्रकार न्याणे के बिना गाय द्वारा लात-प्रहार का भय बना रहता है, उसी प्रकार यदि स्त्री कुलीन न हो तो उसके विपथगामिनी होने की आशंका बनी रहती है। वैसे एक कहावत में यह भी कहा गया है कि **"भू बछेरां डोकरां नीमटिया परवाण"** अर्थात् बहू, घोड़ों के बच्चों और बालकों के भले-बुरे का प्रमाण उनके वयस्क होने पर ही मिलता है किन्तु फिर भी सामान्यतः यह आशा की जा सकती है कि जो कुलीन होगा, वह अवस्था प्राप्त कर लेने पर भी जीवन में अच्छी तरह व्यवहार करेगा, और वधू के सुसंस्कार-सम्पन्न होने का तो यह और भी अच्छा परिणाम निकलेगा कि उसकी संतति के भी अच्छे संस्कार होंगे।

कभी-कभी दहेज के लोभ में निकम्मी बहू को जब घर ले आते हैं तो कहा जाता है—

"दान दायजा बहगा, छाती कूटा रहगा।"

अर्थात् विवाह होने पर जब पुत्र-वधू घर में आती है तो वही प्रशंसनीय समझी जाती है जो अपने पति के अधीन तथा सास-श्वसुर की आज्ञाकारिणी हो। घर को छोड़कर भाग जाने वाली स्त्री को **"ऊदलती का किसा दायजा"** अर्थात् उच्छृंखल का कैसा दहेज ? जैसी कहावतों में हेय ठहराया जाता गया है।

(३) **फूहड़ स्त्री**—फूहड़ स्त्री के सम्बन्ध में भी राजस्थान में अनेक कहावतें कही गई हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

(१) **फूड़ चालै, नौ घर हालै।**

अर्थात् फूहड़ जब चलती है तो नौ घरों तक उसका फूहड़पन प्रकट हो जाता है।

(२) **फूड़ को मैल फागण में उतरै।**

अर्थात् फूहड़ का मैल फाल्गुन में उतरता है, जाड़े भर वह स्नान ही नहीं करती।

(३) **आयो चैत निवायो, फूड़ाँ मैल गँवायो।**

अर्थात् गरम चैत्र मास आया तो फूहड़ ने भी स्नान करके अपना मैल धोया। फूहड़ नहाये तो समझिये, गर्मी की ऋतु आ गई।

(४) **फूड़ की फेरां तांई उछल।**

अर्थात् भाँवर फिरने के समय भी फूहड़ भाँवर फिरने के लिए इन्कार तक कर सकती है।

(५) **राबड़ी में राख रांधै चून चाटै पीसती।**
देखो रै या फ़ूड़ नार, चालै पल्ला घींसती॥

अर्थात् फूहड़ स्त्री राबड़ी के साथ-साथ राख उबाल लेती है, आटा पीसते समय चून चाटती रहती है और चलते समय पल्ला घसीटते हुए चलती है।

(६) **फूड़ करै सिणगार माँग ईंटाँ सूँ फोडै।**

अर्थात् फूहड़ जब श्रृंगार करती है तो माँग को ईंटों से फोड़ती है।

वर-पक्ष वाले विवाह के पहले जब लड़की को देखते हैं तो अन्य बातों के साथ-साथ इस बात की भी परीक्षा करते हैं कि लड़की सलीके वाली है या नहीं, व्यवहार-बर्ताव में वह कैसी है, गृह-कार्य में वह दक्ष है अथवा नहीं। और वधू जब घर में प्रवेश करती है तो अनुभवी सास तुरन्त जान लेती है कि यह चतुर है या फूहड़। **"भू आई सासू हरखी, पगां लागी अर परखी"** अर्थात् यदि बहू चतुर हुई तो वह क़ायदे से पैर पड़ती है, फूहड़ की तरह नहीं। फूहड़ समाज में सभी द्वारा निन्दनीय समझी जाती है।

(४) **विधवा**—राजस्थानी समाज में विधवा एक प्रकार का सामाजिक अभिशाप मानी गई है। यात्रा के समय **"खुल्लै केसां नार"** अर्थात् विधवा का दर्शन अपशकुन में परिगणित किया गया है। विवाहादि मांगलिक अवसरों पर हिन्दू-समाज में विधवा के लिए

कोई स्थान नहीं। वह यदि साज-शृंगार करे तो लोग उस पर अँगुलि उठाने लगते हैं, वह सन्देह की दृष्टि से देखी जाने लगती है। एक कहावत में तो स्पष्ट ही कहा गया है कि यदि विधवा अपने नेत्रों में कज्जल की रेख देने लगे तो वह निश्चय ही अपने लिए नया पति ढूँढ़ लेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।[१]

विधवा का जीवन त्याग और तपस्या का जीवन होना चाहिए, स्वादिष्ट और पुष्टिकर व्यंजनों से उसे बचना चाहिए, अन्यथा कुपथ की ओर उसके पाँव बढ़ सकते हैं। इसीलिए राजस्थान की एक कहावत में कहा गया है—

बैल, बैरागी, बोकड़ो, चौथी विधवा नार।
एता तो भूखा भला, धाया करे बगाड़॥[२]

अर्थात् बैल, बैरागी साधु, बकरा और विधवा स्त्री, ये चारों तो भूखे ही अच्छे हैं, तृप्त होने पर ये नुकसान पहुँचाते हैं।

किन्तु अब राजस्थान में भी शिक्षा की वृद्धि के साथ-साथ विधवा के प्रति लोगों की सहानुभूति बढ़ रही है।

(५) **लाडी**—विधवा का समाज में जितना निरादर होता है, उतना ही आदर होता है उस स्त्री (लाडी) का जो दूज वर की पत्नी बनती है, जो पहली स्त्री की मृत्यु होने पर गृहिणी के पद को सुशोभित करती है। तत्सम्बन्धी कुछ कहावतें लीजिये—

(१) **दूजवर की गोरड़ी, हाथां परली मोरड़ी।**
दग्गड़ दग्गड़ खाऊँगी, बोलैगो तो मर ज्याऊँगी॥

अर्थात् दूजवर की स्त्री हाथ पर की मोरनी के समान है। उसकी इच्छा-पूर्ति में यदि बाधा डाली जाय तो वह आत्म-हत्या तक की धमकी देने लगती है।

(२) **दूजवर की गोरड़ी र मोत्यां बचली मोरड़ी।**

अर्थात् अधिक अवस्था वाले पुरुष के दूसरा विवाह करने पर वह उस स्त्री का विशेष आदर करता है।

नारी-सम्बन्धी कुछ कहावतों में वृद्ध-विवाह पर यत्र-तत्र व्यंग्योक्तियाँ मिलती हैं। वृद्ध पुरुष जब किसी बाला से विवाह करता है और जब वृद्ध के बच्चे उस बाला को 'मां' कहकर सम्बोधित करते हैं तो इस सम्बोधन से वह बाला भी संकोच में पड़ जाती है और कहने-सुनने वालों को भी वह सम्बोधन अखरता है। इसीलिए व्यंग्योक्ति के रूप में एक कहावत प्रसिद्ध है—

"माजी ई माजी पण है तो पूणी ई तेरा बरस की।"

अर्थात् नाम को तो माता जी ही माता जी हैं पर अवस्था तो पौने तेरह वर्ष की ही है न!

१. तीतरपंखी बादली, बिधवा काजल रेख।
वा बरसै वा घर करै, ई में मीन न मेख॥

२. मेवाड़ की कहावतें, भाग १ (प० लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ११७।

"होय रोकड़ा तो बींद परणै डोकरा" अर्थात् पास में धन हो तो वृद्ध का भी विवाह हो जाता है, आदि उक्तियों से स्पष्ट है कि वृद्ध अपने धन के बल पर निर्धन कन्या को एक प्रकार से खरीद लेता है। जब किसी निर्धन की लड़की का धनी वृद्ध के साथ विवाह हो जाता है तो उस निर्धन की बड़ी आवभगत होने लगती है, दाल-भात उसे खाने को मिलने लगते हैं। इसीलिए एक कहावत में कहा गया है—

"दाल भात लम्बा जीकारा।
ए बाई! परताप तुम्हारा॥

(६) **बड़ी बहू**—राजस्थान में बाल-विवाह की प्रथा के कारण अनेक बार ऐसा भी होता है कि वर की अपेक्षा वधू बड़ी अवस्था वाली आ जाती है। इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध कथावत कही जाती है—

"बड्डी भू का बड्डा भाग, छोटो बनड़ो घणा सुहाग।"

अर्थात् वर यदि छोटा हो और बहू बड़ी हो तो बहू के वृद्ध होने पर भी वह युवा ही बना रहेगा, इसलिए वर की ओर से स्त्री को अपनी मृत्यु तक सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। यह उक्ति राजस्थान के बाल-विवाह के प्रेमियों पर चरितार्थ होती है।

किन्तु अब धीरे-धीरे वृद्ध-विवाह और बाल-विवाह बहुत कम हो रहे हैं।

(७) **सास-बहू**—सामान्यतः सास-बहू में अच्छी तरह नहीं निभती। सास बहू पर अपना प्रभुत्व जमाये रखना चाहती है, बहू को यह सदा सह्य नहीं होता, इसलिए परस्पर अनबन के अनेक अवसर आ ही जाते हैं। राजस्थान में एक सास के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि वह एक बार कुछ समय के लिए घर से बाहर गई हुई थी। घर में बहू अकेली थी। एक भिखारिन द्वार पर आ खड़ी हुई। बहू ने उसे एक रोटी का टुकड़ा दे दिया। जब सास बाहर से चलकर अपने घर की ओर आ रही थी तो उसने भिखारिन को अपने घर से निकलते हुए देख लिया। पूछने पर मालूम हुआ कि बहू ने उसे रोटी का टुकड़ा दिया है। सास भिखारिन को घर के अन्दर ले आई और कहा—रोटी का टुकड़ा रख दे। फिर बहू के देखते अपने हाथ से सास ने वही रोटी का टुकड़ा भिखारिन को दे दिया और कहा कि अब तुम जा सकती हो। इस कथा में अतिरंजना का अंश भले हो और अपवादस्वरूप ही चाहे इस प्रकार की घटना कभी घटित हुई हो किन्तु इस कहानी में बहू पर सास की प्रभुत्व-भावना साकार हो उठी है।

यही कारण है कि जब तक सास जीती है, बहू अपने आपको बन्धन में समझती है। सास की मृत्यु पर भी उसे वास्तविक दुःख नहीं होता, लोगों को दिखाने के लिए वह कृत्रिम दुःख भले ही प्रकट करे। निम्नलिखित कहावतों में यही भाव व्यक्त हुआ है—

१. सासू मरगी कटगी बेड़ी।
भू चढ़गी हर की पैड़ी॥

अर्थात् सास मर गई तो बहू के बन्धन कट गये। वह 'हर की पैड़ी' पर चढ़ गई।

२. आज मरी सासू, काल आया आंसू।

अर्थात् सासू आज मरी और आँसू कल आये !

किसी-किसी सास के अत्याचार जब चरम सीमा पर पहुँच जाते हैं तो बहू घर छोड़कर निकल जाती है। इसीलिए एक कहावत में तो कहा गया है—

"बहू करे सो करवादो ने बेटा रो घर मंडवादो।"[1]

अर्थात् सास को चाहिए कि वह बहू से अधिक लड़े-झगड़े नहीं, बहू यदि घर छोड़कर निकल जायेगी तो पुत्र का घर बिखर जायगा।

यद्यपि यह सत्य है कि सास भी सब इकसार नहीं हुआ करतीं किन्तु वधू के प्रति सास के अत्याचारों ने कहावती ख्याति प्राप्त करली है। राजस्थान में तो इस सम्बन्ध में एक कहावत ही बन गई—

"सास बारी ने बऊ बिचारी।"[2]

अर्थात् सास-बहू को तकलीफ दे या न दे सास हमेशा बदनाम होती है और बहू सदा गरीब समझी जाती है।

गृह-स्वामिनी के अधिकार को सास छोड़ना नहीं चाहती और बहू उस अधिकार को प्राप्त करना चाहती है। अपने वधू-काल में सास जिन अधिकारों से वंचित रही थी, उस काल का स्मरण करके भी वह अधिकारों से चिपटे रहना चाहती है। प्रभुत्व प्राप्त करने से व्यक्ति के अहं की तृप्ति होती है। यह प्रभुत्व-भावना ही सास-बहू के संघर्ष का मुख्य कारण जान पड़ती है।

(८) नारी-सम्बन्धी धारणाएँ—राजस्थान में नारी के सम्बन्ध में जो कहावतें प्रचलित हैं, उनसे नारी के प्रति किसी ऊँची भावना का पता नहीं चलता। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

१. लुगाई री अकल खुडी में हुया करे।

अर्थात् स्त्री की बुद्धि एडी में हुआ करती है। वह कम अक्लवाली होती है।

२. लुगाई तो पगरखी की नई है।

तात्पर्य यह है कि पहली स्त्री की मृत्यु के बाद दूसरी से उसी आसानी से शादी करली जाती है जिस प्रकार एक जूतों की जोड़ी टूट जाने पर उसके बदले दूसरी खरीद ली जाती है।

३. गाडा को फाचरो 'र लुगाई को बाचरो कूट्योड़ो ही चोखो।

अर्थात् गाड़ी के फाचर और स्त्री के सिर को जितना कूटा जाय, उतना ही अच्छा। फाचर से तात्पर्य उस काठ की कील से है जो पहिये में ठोकी जाती है।

१. मेवाड़ की कहावतें, पहला भाग (पंडित लक्ष्मीलाल जोशी); पृष्ठ ६१

२. वही, पृष्ठ ६५।

'ढोल गँवार शूद्र पशु नारी' में जो भावना व्यक्त हुई है, वह उक्त लोकोक्ति में भी देखी जा सकती है।

४. घर सैं बेटी नीकली चाहे जम ल्यो चाहे जंवाई ल्यो।

अर्थात् बेटी जब घर से निकल गई तो चाहे वह यम के घर जाय, चाहे जामाता के यहाँ रहे !!

५. छोटी मोटी कामणी सगली बिस की बेल।

अर्थात् छोटी-मोटी कामिनी, सभी विष की बेल हैं।

६. तिरियाँ, तुरकाँ, वाणियाँ भील भला मत जाण।
देख गरीब न भूल जे, निपट कपट की खाण ॥[1]

नारी सम्बन्धी इस प्रकार की धारणाएँ केवल राजस्थान में ही नहीं, अन्य राज्यों में भी मिलती हैं।

(६) **आदर्श नारी**—राजस्थान में नारी के सम्बन्ध में जो उक्तियाँ प्रचलित हैं, उन्हें हम दो भागों में बाँट सकते हैं—(१) कुछ उक्तियाँ तो ऐसी हैं जो सामान्य लोगों में प्रचलित हैं और जिनमें नारी के सम्बन्ध में परम्परा-भुक्त प्रतिक्रियावादी विचार-धारा ही प्रतिबिम्बित हुई है। (२) दूसरे प्रकार की उक्तियाँ वे हैं जो साहित्यिक व्यक्तियों में अधिक प्रचलित हैं तथा वीररसात्मक साहित्य से जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। ऐसी उक्तियों में हमें राजस्थानी वीरांगना के भव्य दर्शन होते है। "बीरबानी" शब्द राजस्थान में स्त्री के पर्याय के रूप में प्रचलित है। सम्भव है वीर-प्रसविनी अथवा वीर को वरण करने वाली होने के कारण ही यह शब्द राजस्थान में प्रचलित हुआ हो।

वैदिक साहित्य में भी एक शब्द मिलता है "वीरिणी" जो वीरबानी के समकक्ष रखा जा सकता है। "**वीरिणी**" शब्द का अर्थ है वीरों को जन्म देने वाली। वीर-प्रसविनी नारी के आदर्श का उल्लेख वेदों में भी हुआ है। इन्द्राणी अपने आपको '**वीरिणी**' कहने में गौरव का अनुभव करती है।[2]

आदर्श की दृष्टि से राजस्थान में '**कूख बंकी गोरिया**' कहकर उस नारी की प्रशंसा की गई है जो वीर-प्रसविनी हो। इस प्रदेश में अनेक ऐसी वीरांगनाओं के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने अपने निर्मल चरित्र द्वारा पीहर और ससुराल दोनों पक्षों को उज्ज्वल कर अक्षय कीर्ति प्राप्त की थी। यद्यपि राजस्थान की कहावतों में नारी को विष की बेल बतलाया गया है किन्तु एक कहावत में उसी नारी को '**नर की खान**' कहा गया है। नारी यदि पुत्र प्रसव करे तो वह या तो शूरवीर को जन्म दे अथवा दानी को; अन्यथा उसे अपना नूर नहीं गँवाना चाहिए, उसका वन्ध्या रहना ही अच्छा है। निम्नलिखित कहावती दोहा राजस्थान में सर्वत्र प्रसिद्ध है—

"जननी जणे तो दोय जण, के दाता के सूर।
नीतर रहजे बांझड़ी, मती गंवावे नूर ॥

१. अर्थ स्पष्ट है।

1. Women in the Vedas by Dr. A. C. Bose (Prabudha Bharata, Holy mother, Birth Centenary Number, 1945); p. 161.

राजस्थान की वीर बालाओं ने जो शौर्य दिखलाया है, उससे इतिहास के पृष्ठ भरे पड़े हैं। किस प्रकार वीर माता अपने पुत्र को पलने में ही मृत्यु का गौरव सिखलाया करती थी, इसके सम्बन्ध में राजस्थान के अमर कवि श्री सूर्यमल्ल मिश्रण का निम्नलिखित दोहा लोकोक्ति की भाँति प्रचलित है—

इला न देणी आपणी, हालरिये हुलराय।
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माय॥

'अपनी पृथ्वी किसी को नहीं देनी चाहिए' इस भाव के झूले के गीतों के साथ झुलाती हुई पलने में ही माता पुत्र को रणांगण में मृत्यु की महत्ता सिखा देती है।

पति की मृत्यु होने पर किस प्रकार क्षत्रिय-बालाओं ने अपने आपको अग्नि-देव के समर्पित कर दिया था, इसे इतिहास के पाठक भली भाँति जानते हैं। ये क्षत्रिय-बालाएँ एक प्रकार से अग्नि-बालाएँ हुआ करती थीं जो अग्नि-देवता की गोद में उसी प्रकार आश्वस्त होकर चली जाया करती थीं जिस प्रकार लड़की अपनी माता की गोद में चली जाती है।

अमर सुहाग लेकर क्षत्रिय-बाला इस धरा-धाम पर अवतीर्ण होती थी। वह कभी वैधव्य का दुःख नहीं भोगती थी क्योंकि उसे विश्वास था कि सती होने पर वह स्वर्ग-लोक में अपने पति के साथ अनन्त काल तक आनन्द का उपभोग करती रहेगी। इसीलिए कहा गया है **"रावत जायी डोकरी सदा सुहागण होय"** अर्थात् क्षत्रिय-बाला सदा सुहागिन रहती है।

रात्रि-जागरण के अवसर पर जो गीत राजस्थान में गाये जाते हैं, उनमें जैतलदे जैसी नारी को आदर्श के रूप में ग्रहण किया गया है—

"जायो जायो रै जैतलदे सी धीव,
नाम निकाल्यो आपकै बाप को जी।"

अर्थात् जैतलदे-जैसी दुहिता उत्पन्न करना जिसने अपने पिता के नाम को उज्ज्वल किया।

लोकगीतों में प्रसिद्ध सजना जैसी नारियों ने वही काम कर दिखलाया था जो कोई भी वीर पुत्र कर सकता है। इसीलिए राजस्थान में तो एक कहावत ही प्रचलित हो गई—

कांइज न्याऊ डोकरी, कांइज आछो पूत।
कूख सिलायां पूत है, नहीं मूंत को मूंत॥

अर्थात् पुत्री का होना क्या बुरा और पुत्र का होना क्या अच्छा? जिस पुत्र को जन्म देकर माता अपने को धन्य समझे, जो उसकी कोख को शीतल करे, वही पुत्र कहलाने का अधिकारी है अन्यथा ऐसे पुत्र का न होना ही अच्छा।

राजस्थानी साहित्य में नारी के जिस आदर्श की प्रतिष्ठा हुई है, वह चित्त को मुग्ध कर लेता है। मारवणी की महिमा के सम्बन्ध में कही हुई नीचे की उक्ति अनुपम है—

गति गंगा, मति सरसुती, सीता सील सुभाइ।
महिलां सरहर मारवी, कलि में अवर न काइ॥

अर्थात् गति में गंगा के समान, मति में सरस्वती के समान और शील स्वभाव में सीता के समान मरुदेश की महिला की बराबरी करने वाली इस कलि काल में कोई नहीं।

(ग) अन्य सामाजिक कहावतें

राजस्थान की नारी तथा जाति-सम्बन्धी कहावतों पर पहले विचार किया जा चुका है। सामाजिक जीवन के अध्ययन के लिए ये कहावतें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक कहावतें राजस्थानी भाषा में प्रचलित हैं जिनसे यहाँ के सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।

१. **त्यौहार**—वैसे तो समस्त भारतवर्ष में ही बहुत से त्योहार मनाये जाते हैं किन्तु राजस्थान में त्योहारों की संख्या अपेक्षाकृत और भी अधिक है जैसा कि यहाँ की प्रचलित लोकोक्ति **"सात बार नौ त्योहार"** से जान पड़ता है। सप्ताह में जहाँ दिनों की संख्या सात है, वहाँ त्योहारों की संख्या यहाँ नौ है। इस उक्ति में किंचित् अतिरंजना का तत्त्व भले ही हो, किन्तु फिर भी त्योहारों की अधिकता पर इसके द्वारा अच्छा प्रकाश पड़ता है।

राजस्थान से सम्बन्ध रखने वाली कुछ लोकोक्तियाँ लीजिये—

(१) **गणगोर्‌यां नै ही घोड़ा न दौड़ं तो कद दौड़ं।**

गणगौर के दिन ही यदि घोड़े न दौड़ेंगे तो कब दौड़ेंगे?

गणगौर राजस्थान का एक महत्त्वपूर्ण त्योहार है। उपयुक्त पति की प्राप्ति के लिए यह त्योहार विशेषतः कन्याओं द्वारा मनाया जाता है। होली जलने के दूसरे दिन से ही वे गौरी की पूजा करने लगती हैं और यह गोरी-पूजन चैत्र शुक्ला चतुर्थी तक चलता है। चैत्र शुक्ला तृतीया और चतुर्थी को मेले भरते हैं जिनमें 'गवर' की सवारी किसी जलाशय पर ले जायी जाती है। प्रायः राजा-महाराजा तथा सरदार लोग भी इन सवारियों में सम्मिलित होते हैं।

(२) **तीज त्युहारां बावड़ी, ले डूबी गणगोर।**

श्रावणी तीज के बाद त्योहार जल्दी-जल्दी आते हैं, गणगौर के बाद चार महीनों तक त्योहार नहीं आते।

(३) **कसी कवाड़ा वच रे बाबा! धम्मोली धसकाय दे।**

हे बाबा! कसी, कवाड़ा बेचकर भी मेरे लिए **'धम्मोली'** का प्रबन्ध कर ही दे।

तीजों के त्योहारों का राजस्थान में बड़ा महत्त्व है। यह इस प्रदेश का सबसे प्यारा त्यौहार है। तीज को स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और चन्द्र-दर्शन के बाद फल, सत्तू आदि खाती हैं। दूज की रात को अनिवार्य रूप से गृहस्थ बहिन-बेटियों के लिए मिठाई मँगवाकर उन्हें देते हैं। उक्त कहावत में बेटी बाप से जिद करके कह रही है कि

पिताजी ! चाहे आपको औजार बेचना पड़े तब भी मेरे लिए मिठाई तो मँगवानी ही पड़ेगी।[1]

(४) **तीजां पाछै तीजड़ो, होली पाछै ढूंढ।**
फेरां पाछै चूनड़ी, मार कसम कै मूंड ॥

तीज के त्यौहार के बाद यदि कोई वस्त्रादि भेजे, होली बीत चुकने पर यदि होली के उपलक्ष्य में कोई चीज भेजी जाय, भाँवर फिर लेने के बाद यदि चुनरी भेजी जाय तो सब व्यर्थ है।

(५) **आडै दिन सैं बास्योड़ो ही चोखो।**

सामान्य दिन की अपेक्षा शीतला-पूजन का दिन ही श्रेष्ठ है जिससे मीठा तो खाने को मिले। शीतलाष्टमी के दिन यद्यपि ठण्डा भोजन किया जाता है किन्तु फिर भी पहले दिन तैयार किए हुए अनेक प्रकार के भोज्य-पदार्थ खाने को मिलते हैं।

इस प्रकार की कहावतों से राजस्थान के सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

२. **विवाह—"तिरिया तेरा, मरद अठारा"** यहाँ की एक कहावत है जिसके अनुसार स्त्री तेरह वर्ष तथा पुरुष अठारह वर्ष की अवस्था में विवाह-योग्य होते हैं।

जैसा पहले कहा जा चुका है, कुछ वर्षों पहले राजस्थान में बाल-विवाह की प्रथा जोरों पर थी और '**छोटे बनड़े**' की प्रशंसा के गीत गाते हुए यहाँ की स्त्रियाँ अघाती नहीं थीं किन्तु अब शिक्षा के प्रभाव से उच्च जातियों में बाल-विवाह के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई है और विवाह अपेक्षाकृत बड़ी अवस्था में होने लगे हैं।

राजस्थानी भाषा में अनेक कहावतें ऐसी हैं जो वृद्ध विवाह पर व्यंग्योक्तियों का काम देती हैं। एक कहावत में कहा गया है '**बाबोजी घोर जोगा, बीबीजी सेज जोगा**' अर्थात् नव वधू जब सेज के योग्य है तो बाबाजी (वृद्ध पुरुष) कब्र के योग्य हैं। इस प्रकार के अनमेल विवाह में स्त्री के लिए किसी भी क्षण विधवा हो जाने की आशंका बनी रहती है।

राजस्थानी कहावतों में बहुपत्नीत्व को भी हेय ठहराया गया है। उदाहरणार्थ एक कहावत लीजिए—

"दो बवां रो वर चूल्हो फूंकै।"

अर्थात् दो स्त्रियों का पति चूल्हा फूँकता है।

विवाह-सम्बन्धी कुछ रीति-रिवाजों को लेकर भी राजस्थान में कहावतें प्रचलित हुई हैं। 'मारवाड़ में बींद के सिर पर दही लगाने का आम दस्तूर है और जो कोई जमाई नालायक निकल जाता है तो सास उसको यह ताना देती है कि '**तूनें भला मेरा दही लजाया**'। 'दही लजाना' भी एक ओखाणा है।'

जैसे वर की माता उसे दूध पिलाती है, वैसे ही विवाह के अवसर पर सास जमाई के माथे पर हथेली से दही चिपका देती है अर्थात् उसे अपनी कन्या का वर मान लेती है। यही तथ्य "**दही री बात सही**" इस लोकोक्ति द्वारा प्रकट हुआ है।

---

१. राजस्थानी कहावतां (स्वामी नरोत्तमदास और पंडित मुरलीधर व्यास), भाग पहला; पृष्ठ ६७

'राजपूतों में दही कनात की आड़ से लगाया जाता है क्योंकि सास जमाई से परदा करती है और कभी उसके सामने नहीं होती, और जो कदाचित् 'रात-बिरात' सामने होती भी है तो अपने को जाहिर नहीं करती। सालियों और सहेलियों में छुप कर आती और बैठती है। इसलिए **"रात काली ने सासू साली"** का ओखाणा है।

बींदणी के तेल चढ़ाने का दस्तूर बींद के आ जाने पर किया जाता है क्योंकि तेल चढ़ी हुई लड़की बैठी नहीं रहती। जो तेल चढ़े पीछे सावे पर बींद नहीं आवे या कोई हरज मरज हो जाये तो उस वक्त बड़ी मुश्किल पड़ती है और लाचारी क साथ उसका विवाह किसी दूसरे आदमी के साथ करना पड़ता है। **"तिरिया तेल हमीर हठ चढ़े न दूजी बार"** की मसल मशहूर ही है

"चौथे फेरे धी हुई पराई" स्त्रियों द्वारा विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का एक टुकड़ा है जिसका तात्पर्य यह है कि चौथे फेरे में बेटी पराई हो जाती है।

राजपूतों के यहाँ विवाह में जब 'त्याग' दिया जाता है तो ढोल बजता है और इधर-उधर से बहुत आदमी जमा हो जाते हैं। उस वक्त चारण लोग बारबार निम्न-लिखित कहावती दोहा पढ़ते हैं।

"कंकण बंधण रण चढण, पुत्र बधाई चाव।
तीन दिवस ये त्याग रा, कूण रंक कुण राव ।।[1]

अर्थात् विवाह के अवसर पर कंकन बँधते समय, युद्धार्थ चढ़ते समय और पुत्र-जन्म की बधाई के चाव के समय तो सभी द्रव्य लुटाते हैं, चाहे कोई राजा हो अथवा रंक हो।

३. **संयुक्त कुटुम्ब**—संयुक्त कुटुम्ब की पद्धति इस प्रदेश की विशेषता रही है। निम्नलिखित कहावत संयुक्त कुटुम्ब को लक्ष्य में रखकर ही कही गई जान पड़ती है।

"बंधी भारी लाख की, खुल्ली बीखर ज्याय।"

अभिप्राय यह है कि संयुक्त परिवार में रहने से प्रतिष्ठा बनी रहती है, भाइयों के अलग-अलग हो जाने से इज्जत जाती रहती है।

किन्तु शहरों में प्रायः देखा जाता है कि संयुक्त कुटुम्ब में रहकर निर्वाह करना कठिन हो जाता है। इसीलिए एक अन्य राजस्थानी कहावत में कहा गया है—

"कलकत्तें रो धारो, बाप सूं बेटो न्यारो।"

अर्थात् कलकत्ते की यही प्रथा है कि पिता से पुत्र अलग हो जाता है।

४. **शूरवीरता**—शूरवीरता राजस्थान की संस्कृति का विशेष गुण रहा है। यहाँ के इतिहास को पढ़ने से तो ऐसा लगता है मानों राजस्थान वीरता की जन्म-भूमि हो। इसीलिए यहाँ की एक कहावत **'सूरा सो पूरा'** के अनुसार पूरा आदमी ही उसको माना गया है जो शूरवीर हो। एक अन्य कहावत में कहा गया है कि **"मिनख**

१. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़, बाबत सन् १८९१ ईसवी, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ २९-३२।

र माणसियो दो होय है" अर्थात् एक तो होता है मिनख अथवा मनुष्य, और दूसरा होता है "माणसिया"। इन दोनों में बड़ा अन्तर है, दोनों को एक ही समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। "माणसिया" तथाकथित मनुष्य के लिए एक तुच्छता-व्यंजक शब्द है। जो शूरवीर नहीं, वह मनुष्य वस्तुतः अधूरा है। उसे पूरा मनुष्य कैसे कहा जा सकता है ?

जो वीर पुरुष होते हैं, वे हाय-हाय नहीं करते, देश और धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर देते हैं।

ईसरदासजी की निम्नलिखित पंक्तियाँ राजस्थान में कहावत की भाँति प्रयुक्त होती हैं—

"मरदां मरणो हक्क है, ऊबरसी गल्लांह।
सापुरसां रा जीवणा थोड़ा ही भल्लाहं॥"[1]

जो वीर पुरुष किसी सन्निमित्त के लिए अपना प्राणोत्सर्ग कर देते हैं, उसके कारण संसार में उनका नाम अमर हो जाता है। सत्पुरुषों का थोड़ा ही जीना अच्छा है।

५. **प्रतिज्ञा-पालन**—प्रतिज्ञा-पालन अथवा वचन-रक्षा राजस्थानी संस्कृति का प्राण है। जो अपनी प्रतिज्ञा से टल गया, उसका जीवन ही व्यर्थ गया।[2] "**वचन और बाप** एक होते हैं।" राजस्थान की एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है जिसका प्रयोग पाबूजी तथा निहालदे सुलतान के पवाड़ों में भी अनेक बार हुआ है। कुछ उदाहरण लीजिए।

"बाप वचन तो होवें छं मरदां रा जुग में एक।
कोइ सीस तो कटवावें रे पिण वाचा जुग में ना तजें॥"[3]

मर्दों के बाप और वचन तो संसार में एक ही होते हैं, वे अपना सिर दे देते हैं, किन्तु दिये हुए वचन का उल्लंघन कभी नहीं करते। वाल्मीकि के राम ने भी वचनबद्धता के गौरव को प्रकट करते हुए कहा था, "**रामो द्विर्नाभिभाषते**" अर्थात् राम दो बार नहीं कहता। एक बार जो कह दिया, वह कह दिया, उसे वह बदलता नहीं, उससे वह हटता नहीं।

राजस्थान में प्रतिज्ञा करने वाला कहा करता है कि यदि मैं अपने वचन से चूक जाऊँ तो मुझे पापी ठहराया जाय, मैं खड़ा-खड़ा सूख जाऊँ और धोबी के कुण्ड में कंकड़ होकर गिरूँ। नानडिये ने गोरखनाथजी के समक्ष प्रतिज्ञा करते समय यही कहा था—

"वाचा चूकूं उबो सूकूं लागें हत्या पाप।
कोई धोबी की कूंड में रें कंकरिये होको मैं पडूं॥"[4]

---

१. पाठान्तर : "सापुरसां रा जीवणा थोड़ा ही फरमाया।"

२. जबान हारी जिकै जिलम हार्‌यो।

३. चौपड़ को पवाड़ो, पृष्ठ ७। श्री गणपति स्वामी द्वारा संगृहीत और बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त।

४. नानडियो को पवाड़ो; पृष्ठ ३१।

"वचन और बाप" एक होते हैं, इस लोकोक्ति का निहालदे सुलतान के पवाड़ों में भी अनेक बार प्रयोग हुआ है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित गीत लीजिये—

"जद बी यो मघपत जिस दिन कह रह्या।
म्हारी एक बी सुणो ना बी बेटी मेरो जाव ॥
केला बी गढ़ को हे बेटी गढ़पती।
जाणैं छोटो मैं कोन्या कोटड़ियो सिरदार ॥
करी मैं सगाई हे बेटी कमधजराव कै।
बों बी करै भाजणा मेरा खार ॥
बचन बाप भी हे बेटी दुनिया में एक है।
कय्यां नट ज्याऊँबी मुसकल मनै मंड ज्याय ॥"[1]

निहालदे का पिता मघपत उसे कह रहा है कि हे पुत्री ! मेरी बात सुनो। मैं कोई छोटे सरदारों में नहीं, केलागढ़ का गढ़ाधीश हूँ। मैंने कमधजराव से तेरी सगाई करदी है, मैं अपने वचन से अब कैसे फिर जाऊँ ? वह भी मुझे बुरी तरह आड़े हाथों लेगा और फिर हे पुत्री ! वचन और बाप तो दुनिया में एक होते हैं। जो अपने दिये हुए वचन का पालन नहीं करता, वह असली पिता का पुत्र नहीं। मैं कैसे इन्कार कर दूँ ? सोच तो सही, मुझे कितनी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा ?

६. **अतिथि-सत्कार**—एक प्रसिद्ध नीति-वचन के अनुसार अतिथि जिसके घर से निराश होकर लौट जाता है, वह गृह-स्वामी को दुष्कृत का भागी बनाकर स्वयं पुण्य लेकर चला जाता है इसलिए भारतीयों ने अतिथि-सत्कार को न केवल आदर की दृष्टि से देखा है बल्कि अतिथि के प्रति भारतीय गृहस्थों के मन में एक प्रकार की धर्म-बुद्धि भी देखी जाती है। आर्थिक संघर्ष की जटिलता तथा संकुलता के कारण यद्यपि इस युग में पहले जैसी बात तो नहीं रही किन्तु फिर भी राजस्थान में और विशेषतः यहाँ के गाँवों में अतिथि-सत्कार का अच्छा रूप दृष्टिगोचर होता है।

अतिथि-सत्कार राजस्थानी संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता रही है। घर पर आये हुए शत्रु का भी सम्मान करना यहाँ प्रशस्य ठहराया गया है। घर आयो बैरी ई पांमणो" यहाँ की एक प्रसिद्ध कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि घर पर आया हुआ शत्रु भी मेहमान होता है।

७. **सम्बन्ध**—पारिवारिक जीवन में सम्बन्धी परस्पर किस प्रकार व्यवहार करते हैं अथवा कौनसा व्यवहार आदर्श समझा जाता है आदि के विषय में अनेक उपयोगी संकेत राजस्थानी कहावतों में उपलब्ध होते हैं जिनका यहाँ दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है।

विवाहादि द्वारा समर्थ को अपना समबन्धी बनाना चाहिए जिससे समय-समय पर वह हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

१. बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी की पांडुलिपि से साभार उद्धृत।

सगो समरथ कीजिये, जद तद आवे काज ।

ससुराल को सुख का निवास-स्थान कहा गया है पर वहाँ बहुत दिनों तक रहने से अनादर होने लगता है। जामाता यदि दूर रहे तो वह फूल सदृश समझा जाता है। उसका बड़ा लाड़-चाव होता है और वह भारस्वरूप नहीं जान पड़ता। यदि वह उसी गाँव में रहने वाला हो तो उसका आदर घट जाता है और यदि जँवाई घर में ही रहने लग जाय तो वह गधे जैसा समझा जाता है और उससे चाहे जितना काम लिया जा सकता है।

दूर जंवाई फूल बरोबर, गाँव जंवाई आदो ।
घर जंवाई गधे बरोबर, चाये जितणो लादो ॥[1]

एक व्यक्ति ससुराल गया और वहाँ उसने दो महीने रहने की इच्छा प्रकट की। साले ने कहा कि यहाँ तो दो-चार दिन की आवभगत होगी। उसके बाद आपको भी दाव हाथ में लेकर घास काटना होगा।

सासरो सुख वासरो, पण च्यार दिनां रो आसरो ।
रैसां मास दो मास, देसां दाती बढ़ासां घास ।

एक कहावत में कहा गया है कि साले के बिना ससुराल किसी काम का नहीं[2] इसका मुख्य कारण सम्भवतः यही है कि साले से ससुराल में वंश-वृद्धि की आशा बनी रहती है।

अब अपने घर के कुछ सम्बन्धियों को लीजिये। बड़ा भाई पिता के समान माना गया है।[3] भाइयों के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन जैसे प्रिय भी नहीं और उन जैसे दुश्मन भी नहीं।

भायां सरीसा सेंण नहीं ने भांया सरीसा दुश्मण नहीं ।[4]

जिस प्रकार ससुराल में रहने वाले जामाता की प्रतिष्ठा नहीं होती, उसी प्रकार यदि बहन के घर भाई रहने लग जाय तो उसका भी वहाँ अनादर होने लगता है।[5] भाई से तो बहिन को हमेशा कुछ प्राप्ति की ही आशा रहती है जैसा कि नीचे की कहावत से प्रकट होता है—

होत की भाण अणहोत को भाई ।

अर्थात् यदि किसी के पास धन होता है तब तो वह किसी को बहिन बनाता है और यदि स्त्री के पास कुछ नहीं होता तो दूसरे को अपना भाई बनाती है।

ज्येष्ठ पुत्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह भाग्य से ही मिलता है—

---

१. मिलाइये :

गढ़ वैरी अर केहरी, सगो जंवाई धी ।
इतणा तो अलगा भला, जद सुख पावै जी ॥

२. साले बिना क्यां को सासरो ?

३. जेठो भ्राता पिता समो ।

४. मारवाड़ा रा ओखाणा, पृष्ठ ५७ ।

५. भाण कै घर भाई अर सासरै जंवाई ।

जेठा बेटा र जेठा बाजरा राम दे तो पावै।

पहले-पहल का लड़का और ज्येष्ठ मास में बढ़ा हुआ बाजरा ईश्वर के अनुग्रह से ही प्राप्त होता है।

एक अन्य कहावत में बड़े लड़के को भाई के बराबर भी कहा गया है।[1]

बेटे से पोता अधिक प्रिय होता है, यह तथ्य "मूल् सें ब्याज प्यारो" द्वारा प्रकट किया गया है।

बूआ को सामान्यतः प्राप्ति ही होती है किन्तु उसे लेने के साथ-साथ किसी को कुछ देना भी चाहिए, केवल लेना ही ठीक नहीं। इसलिए एक कहावत में कहा गया है कि बूआ के बहाने से लेना चाहिए और यह मेरी भतीजी है, यह समझकर देना भी चाहिए।[2]

एक कहावत के अनुसार ननद से भी अधिक माहात्म्य जेठ की लड़की का माना जाता है। ननद के भोजन कराने में जितना पुण्य है, उतना जेठ की लड़की के आँगन में पैर रखने पर हो जाता है।[3]

सपत्नी तो यदि कच्चे चून की भी हो तो भी उसे बुरा बतलाया गया है।[4] सौत को सौत किसी भी हालत में नहीं सुहाती।

माता की मृत्यु होने पर पिता यदि दूसरी स्त्री ले आये तो सौतेली माता के आने पर पिता का पुत्र पर स्नेह बहुत कम हो जाता है।[5]

८. **भोज्य और पेय पदार्थ**—भोज्य पदार्थों में खीर हलुए का भोजन अच्छा माना जाता है।[6] श्राद्ध-पक्ष के बाद नवरात्र करने वाले ब्राह्मण आनन्द से खीर जलेबी उड़ाते हैं।[7] जहाँ मूसल से चूरमा कूटा जा रहा हो, वहाँ कुशल-क्षेम का राज्य समझना चाहिए।[8] एक साहूकार भगवान से प्रार्थना करते हुए कह रहा है—**"घी सक्कर अर दूध के ऊपर पप्पड़ा"** अर्थात् हे परमेश्वर ! मुझे घी व शक्कर और मलाई से परिपूर्ण दूध खाने को मिले। निर्धन व्यक्ति के मन में भी गुलगुले खाने की इच्छा होती है किन्तु गुड़ तेल आदि वह जुटा नहीं पाता। निम्नलिखित कहावत में एक साधनहीन स्त्री इस प्रकार अपना दुखड़ा रो रही है—

१. जेठा बेटा भाई बराबर।

२. भुवां मिस लिए अर भतीजी मिस दिये।

३. "नणद जिमाई, जेठौती आंगण आई। राजस्थानी रनिवास (श्री राहुल सांकृत्यायन) पृ० १०५।

४. सोक तो काचै चून की भी बुरी।

५. बाप गयो मांई सूं, मांचो गयो वांई सूं।

६. खाबो खीर को र बाबो तीर को।
खाबो सीर को र मिलबो वीरा को॥

७. गया कनागत आई देबी।
बामण जीमैं खीर जलेबी॥

८. जठे पड़ै मूसल, उठे ही खेम कूसल।

'गुड़ कोनी गुलगुला करती, ल्याती तेल उधारो।
परींडं में पाणी कोनी, बलीतो कोनी न्यारो।
कड़ायो तो मांग कर ल्याती पण आटा को दुख न्यारो।'

गुड़ नहीं है, अन्यथा गुलगुला बनाती। तेल तो किसी से उधार ही माँग लाती। घर के जलागार में पानी नहीं है, ईंधन भी मैं कहीं से जुटा नहीं पाई हूँ। कड़ाह तो माँगकर ही ले आती किन्तु आटे का रोना अलग ही है। जब पास में कुछ भी नहीं है तो वह गुलगुले बनायेगी क्या खाक़!

गेहूँ के चून में सिर्फ गुड़ या चीनी मिलाकर बिना घृत के जो लड्डू बनाये जाते हैं, वे बूर के लड्डू कहलाते हैं। उनको खाने वाला भी पछताता है क्योंकि उनमें घृतादि के अभाव के कारण स्वाद नहीं होता। न खाने वाला इसलिए पछताता है कि न जाने वे कितने स्वादिष्ट होंगे। कहीं-कहीं बुरादा भी इन लड्डुओं में मिला दिया जाता है। इसीलिए एक कहावत में कहा गया है।

बूर का लाडू खाय सो वी पिस्तावै, न खाय सो बी पिस्तावै।[१]

बलि के लिए तो लड्डू तैयार किये जाते हैं, स्वाद के लिए उनमें इलायची नहीं डाली जाती।[२]

चावल को पुष्टिकर अन्न नहीं माना जाता। चावल खाने वाले केवल दरवाज़े तक चल सकते हैं, और अधिक चलने में वे असमर्थ रहते हैं।[३] **"धान पुराना"** कह कर पुराने चावल की प्रशंसा की गई है। अनुभवी व्यक्ति के अर्थ में **'पुराना चावल'** राजस्थानी भाषा का एक कहावती पद्यांश भी है।

इसी प्रकार की कुछ कहावतें और लीजिये—

(१) **गेहूँ कहियौ कै म्हारे ऊपर चीरो।**
म्हारी खबर कब पड़ै कै आवै बहन रो बीरो॥

(२) **गुज्जी कहियौ कै म्हारें ऊपर भालो।**
म्हनै खावै जको उठै, बेहके बैठोड़ों टालो।

(३) **मत वायजो कांगणी घर-घर घट्टी मांगणी।**

(४) **सासू बहू रों कांई रीसणो, नै मंडया रों कांई पींसणो।**

गेहूँ कहता है कि मेरे ऊपर चीरा है। जब स्त्री का भाई अपनी बहन को लिवाने आता है तब मेरा पता पड़ता है क्योंकि तब भाई को गेहूँ की रोटी बनाकर खिलाई जाती है।

गुज्जी नामक अनाज कहता है कि मेरे ऊपर भाला है। अगर मुझे दुबला बैल खा लेता है तो वह फिर से स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है।

एक ग्रामीण महिला अपने पति से सानुरोध प्रार्थना करती है कि हे पतिदेव!

---

१. पाठान्तर—
काठ का लाडू खाय सो बी पिस्तावै, न खाय सो बी पिस्तावै।

२. भूतां कै लाडुआं में इलायची को के स्वाद?

३. चावलां को खाणो, फलसै तांई जाणो।

कांगणी नामक अनाज को खेत में पैदा न करो क्योंकि उसको पीसने में बड़ी कठिनाई होती है, घर-घर की चक्कियों पर जाना पड़ता है।

सास और पुत्र-वधू का 'रीसाणा' जिस प्रकार साधारण बात है, उसी प्रकार मंडवा का पीसना भी सरल है। मंडवा नामक अनाज मारवाड़ के बीलाड़ा नामक नगर में विशेष होता है। यह अनाज देखने में काला होता है। अतएव इस विषय में यह कहावत भी सर्वत्र प्रचलित है—

मंडवो माल घर में घाल।
पावणो पही आवै तो परो छिपाव॥[1]

एक कहावत में कहा गया है कि भूखा रह जाना मंजूर है किन्तु जौ का दलिया खाना नहीं।[2] कुछ कहावतों में पाक-विद्या-सम्बन्धी उपयोगी संकेत भी मिल जाते हैं। जैसे, खीर और खिचड़ी मन्द आँच में ही अच्छी तरह सीझती हैं।[3]

पेय-पदार्थों में छाछ और राबड़ी का अनेक कहावतों में उल्लेख हुआ है। श्रावण महीने की छाछ हानिकर और कार्तिक की छाछ हितकर होती है।[4] एक वृद्ध के मुख से राबड़ी की प्रशंसा में कहलवाया गया है।

"म्हानै इमरत लागै राबड़ी, जा में दांत लागै न जाबड़ो।"

अर्थात् हमें राबड़ी अमृत-तुल्य लगती है जिसमें न दाँत का प्रयोग करना पड़ता है और न जबड़े का।

राबड़ी वस्तुतः गरीबों का पेय पदार्थ है। इसलिए एक कहावत में कहा गया है 'राबड़ी में गुण होता तो ब्या में ना रांधता' अर्थात् राबड़ी में यदि गुण होते तो उसे विवाह में ही क्यों न राँधते?

मादक-पदार्थों के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावती पद्य प्रसिद्ध है—

"भांग मांगै भूगड़ा, सुलफो मांगै घी।
दारू मांगै जूतिया, खुसी हो तो पी॥"

भाँग पर भुने हुए चने और सुलफे पर घी से बने हुए व्यंजन चाहिएँ। शराबी पर तो जूते पड़ने से ही उसकी अक्ल ठिकाने आती है।

आज मरां काल मरां, मर्‌या-मर्‌या फिरां।
घाल कटोरे दलमलां जणां बनड़ा हुआ फिरां॥

यह किसी पोस्ती की उक्ति है जो बिना पोस्त के प्याले पिये निर्जीव-सा रहता है और पोस्त का प्याला मिलते ही मस्त होकर अपने को वर-सदृश समझने लगता है।

कुछ ऐसी कहावतें भी हैं जिनमें भोजन-सम्बन्धी आदतों पर प्रकाश पड़ता है। जैसे—

१. राजस्थानी कहावतें, श्री शिवसिंह चोयल, राजस्थान भारती, भाग २, अंक २, मार्च सन् १९४९।

२. भूखो रह ज्याणो पण जौ को दलियो नहीं खाणो।

३. खीर खीचड़ी मंदी आँच।

४. सावण की छा भूतां नै, कातिक की छा पूतां नै।

"लालाजी करी ग्यारस अर बा बारस की दादी।"

अर्थात् द्वादशी के दिन लालाजी जितना भोजन करते हैं, उससे कहीं अधिक उन्होंने फलाहार के रूप में एकादशी के दिन भर-पेट उड़ाया।

६. **स्वास्थ्य**—भोजन, पानी, निद्रा, हवा, स्नान आदि के सम्बन्ध में जो अनुभव समाज को प्राप्त हुए, वे ही स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतों के रूप में संगृहीत हैं। राजस्थानी भाषा में प्रचलित कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं—

भोजन (सामान्य)

१. थोड़े कवे घणो खावणो जोईजै।

छोटे-छोटे कौर लेकर भरपेट भोजन करना चाहिए।

२. घणो खावे, घणो मरै।

अधिक भोजन हानिप्रद होता है।

३. पेट कूई सो मूंडो सूई सो।

अत्यधिक भोजन करने के कारण जिसका पेट कुएँ जैसा हो जाता है, उसका मुँह सुई जैसा रूप धारण कर लेता है अर्थात् उसके मुख की कान्ति जाती रहती है।

४. ऊपर भरै नीचे झरै, जिके रो गुरू गोरखनाथ कांइ करै।

अच्छे पौष्टिक पदार्थ खाते रहने पर भी जो व्यक्ति घोर असंयमी होता है, वह शीघ्र यमपुर पहुँच जाता है।

५. अन्न मुकता, घी जुगता।

अन्न पेट भरकर, किन्तु घी पचे उतना ही खाना चाहिए।

६. जीम जूठ र सू जाणो।

भोजन के बाद कुछ देर सो जाना चाहिए।

७. मांस खायां मांस वधे, घी खायां खोपड़ी।
दूध खायां जोर वधे, नर हरावे गोरड़ी॥

मांस से मांस, घी से बुद्धि और दूध से बल बढ़ता है।

८. जीम र दौड़े जिके रे लारे मौत दौड़े॥

जो भोजनोपरान्त दौड़ता है, उसके पीछे मौत दौड़ती है।

६. लूखो भोजन, भूत भोजन।

अर्थात् रूखा-सूखा भोजन अच्छा नहीं समझा जाता। वह प्रेत-भोजन है।

१०. चोखो खाणो, खरो कमाणों।

मेहनत करके अच्छी कमाई करने वाले को पौष्टिक भोजन करना चाहिए।

११. ठंडो न्हावे ऊनो खावे जिण घर वैद कदे नहिं जावे।

जो ठंडे पानी से नहाता है और ताजा भोजन करता है, उसके घर वैद्य कभी नहीं जाता।

१२. अन्नदेव मोटो है, माथे चढ़ार खावणो जोईजै।

अन्न बड़ा देव है, भोजन आदरपूर्वक और प्रसन्न-चित्त होकर करना चाहिए।

१३. अन्न छूट्या जिकां रा घर छूट्या ।

अन्न खाना छूट जाने से कमजोरी आ जाती है और मनुष्य मौत के मुँह में चला जाता है ।

विशेष

१. रोटी कहे हूँ हालूँ चालूँ, बाटी कहे बहूं मजल पुगाऊं ।
चावल कह मेरा हलका खाणा, मेरे भरोसे कहीं न जाणा ॥[1]

रोटी कहती है कि मेरे बल पर केवल चलना-फिरना हो सकता है, बाटी कहती है कि मैं लम्बी यात्रा करवा सकती हूँ, चावल कहता है कि मैं हलका भोजन हूँ मेरे भरोसे कहीं न जाना ।

२. चूरे सूं बाटी मिलै अर उड़दां री दाल ।
ऊपर सूं नींबू पड़ै, बरफी कांई माल ॥

चूरमा बाटी हो तथा साथ में हो उड़द की दाल, और ऊपर से नींबू का रस निचोड़ दिया जाय तो फिर बरफी क्या चीज़ है ?

३. (अ) लूण बिना पूण रसोई ।
(आ) खांड बिना मोडी रांड रसोई ।
(इ) दाल बिना बाल रसोई ।

नमक, चीनी और दाल के बिना भोजन का आनन्द नहीं आता ।

फल-दूध आदि

१. अमरूद कहे म्हें में बीज नहीं होंवता तो हूँ जहर हो ।

अर्थात् अमरूद कहता है कि मुझ में बीज नहीं होते तो मैं ज़हर था ।

२. नींबू कहे म्हें में बीज नहीं होंवता तो हूँ इमरत हो ।

अर्थात् नींबू कहता है कि मुझ में बीज नहीं होते तो मैं अमृत था ।

३. दिनगूं मूली, रात ने सूली ।

अर्थात् मूली सवेरे लाभप्रद और रात को हानिकारक होती है ।

४. हड्ड बहेडा आंवला, घी सक्कर में खाय ।
हाथी दाबे काख में, साठ कोस ले जाय ।

५. दूध इमरत है ।

६. गाय माता गोतरी, डूडियो गणेश ।
भैंस रांड भूतणी पाडियो पलीट ॥

गाय का दूध सात्विक और भैंस का तामसिक होता है, इसलिए प्रथम की देव-कोटि में तथा दूसरे की राक्षस-कोटि में गणना की गई है ।

१. रूपान्तर :

रोटी कै हूँ आऊँ जाऊँ, खीच कै हूँ ठेठ पुगाऊँ ।
घाट कै म्हारो फुसकर नांव, म्हारे भरोसे मत जाये गाँव ॥

पानी

१. पाणी पीणों छाणियो 'र करणों मण रो जाणियों ।

२. (अ) दूध पी 'र पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् दूध पीकर पानी नहीं पीना चाहिए ।

(आ) चीकणो खा 'र पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् चिकना खाकर पानी नहीं पीना चाहिए ।

(इ) खीर खा 'र पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् खीर खाकर पानी नहीं पीना चाहिए ।

(ई) निरणे कालजे पाणी नहीं पीवै ।

अर्थात् खाली पेट पानी नहीं पीना चाहिए ।

(उ) पसीने में पाणी नहीं पीणों जोईजे ।

अर्थात् पसीने में पानी नहीं पीना चाहिए ।

३. जिसो पीवे पाणी, उसी ऊपजे वाणी ।

अर्थात् जैसा पानी पिया जाता है, वैसी ही वाणी उपजती है ।

निद्रा

"सूवे जद डावो पसवाड़ो दाब 'र सूवे ।[1]

सोने के समय बांई करवट सोना चाहिए ।

वायु-सेवन

"सो दवा, एक हवा ।"

शुद्ध वायु-सेवन औषधि से सौ गुना लाभप्रद है ।

मास-चर्या

१. चैते गुल वैशाखे तेल जेठे पंथ अषाढ़े बेल,
सावण साग भादवों दही, क्वार करेला काती मही ।
अगहन जीरा पूसे धाणा, माहे मिसरी फागण चिणा ।।

चैत्र में गुड़, वैशाख में तेल, ज्येष्ठ में पैदल-यात्रा, आषाढ में बेल-फल, श्रावण में हरे शाक, भाद्र में दही, क्वार में करेला, कार्तिक में छाछ, मार्गशीर्ष में जीरा, पौष में धनिया, माघ में मिश्री और फाल्गुन में चना वर्ज्य हैं ।

२. सावण हरडे भादू चीत ।
आसोजां गुड़ खावो मीत ।
काती मूला मंगसर तेल ।
पोंह में करो दूध सूं मेल ।
माघ मास घिव खिचड़ी खाय ।
फागण दिनूगे उठ न्हाय ।।[2]

१. खायें 'र मूते सूवे डावें ।
क्यों फेर वैद बसाये गाँवे ।

२. पंडित मुरलीधर जी व्यास के सौजन्य से प्राप्त ।

सावण में हरड़, भाद्र में चिरायता, आश्विन में गुड़, कार्तिक में मूली, मार्गशीर्ष में तेल, माघ में घी और खिचड़ी तथा फाल्गुन में प्रातःकाल का स्नान लाभप्रद हैं।

ऊपर नमूने के लिए कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतें दी गई हैं। इस प्रकार की और भी अनेक कहावतें राजस्थानी भाषा में प्रचलित हैं।

इन स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतों की उपयोगिता में सन्देह नहीं किया जा सकता। श्री रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में "गाँव के लोगों ने हज़ारों वर्षों के पुराने स्वास्थ्य सम्बन्धी अनुभवों को कहावतों की छोटी-छोटी डिबियों में भर रक्खा है, जो गाँव के गले-गले में लटकती मिलेंगी। उनके अनुभव बड़े सच्चे और लाभदायक साबित हुए हैं।

एक कहावत के अनुसार में लगातार लगभग बत्तीस वर्षों से प्रातःकाल उठते ही, दातुन करके पानी पी लेता हूँ। इसका परिणाम यह हुआ है कि सन् १९१९ के इन्फ्लुएन्जा के बाद आज तक मुझे बुखार नहीं आया और न ज़ुकाम ही हुआ। मेरा विश्वास है कि यह प्रातःकाल पानी पीने का ही फल है।[1]

१०. **व्यवसाय**—राजस्थान में खेती और व्यापार का गुण-गान किया गया है तथा नौकरी को हेय ठहराया गया है जैसा कि निम्नलिखित कहावतों से स्पष्ट है—

१. धन खेती, धिक चाकरी, धन-धन वणिज ब्योहार।

२. नौकरी ना करी।

३. नौकरी की जड़ धरती सें सवा हाथ ऊँची।

४. नौकरी नौ करो र एक नहीं करो।

५. नौकरी रे नकारें रो बैर है।

नौकरी न करना ही अच्छा। मालिक जब चाहे नौकर को हटा सकता है, नौकरी की कोई जड़ नहीं होती। नौकर नौ काम करता है किन्तु एक काम नहीं करे तो मालिक उससे रुष्ट हो जाता है। वह मालिक को किसी चीज के लिए इन्कार नहीं कर सकता। मालिक यदि पाँच वर्ष का और नौकर पचास वर्ष का भी हो तो भी नौकर को दबकर चलना पड़ता है।

कुछ लोग हैं जो ब्याज पर रुपये उठाते रहते हैं और ब्याज भी इतनी तेजी से बढ़ता है कि उसे घोड़े भी नहीं पहुँच सकते।[2] किन्तु फिर भी ब्याज की अपेक्षा व्यापार करना अधिक लाभदायक माना गया है। ब्याज को व्यापार का दास कहा गया है।[3]

खेती और व्यापार यद्यपि दोनों को प्रशस्य ठहराया गया है, तथापि इन दोनों में से एक को ही अंगीकार करना चाहिए। जो दोनों ओर मन लगाता है, उसके

१. हमारा ग्राम साहित्य, पृष्ठ २४९।
२. ब्याज नै घोड़ा ही को पूगै नी।
३. ब्याज व्यापार रो गोलो है।

लिए न खेती लाभदायक होती है और न व्यापार।[1]

एक कहावत में कहा गया है कि "**गम्योड़ी खेती अर कमायोड़ी चाकरी बराबर**" अर्थात् बिगड़ी हुई खेती और सुधरी हुई नौकरी दोनों बराबर हैं। नौकरी कितनी ही अच्छी तरह क्यों न की जाय, लाभकारिणी सिद्ध नहीं होती। किन्तु वर्तमान युग में लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन हुआ है। खेती को छोड़कर अब बहुत से लोग नौकरियों की तरफ़ झुक रहे हैं। खेती में और विद्योपार्जन में बहुत परिश्रम करना पड़ता है,[2] इसलिए अनेक लोग अब गाँवों को छोड़कर फैक्ट्री और मिलों में काम करने के लिए शहरों की ओर जाने लगे हैं।

एक कहावत में विद्वान् के लिए कहा गया है कि वह न तो खेती करता है और न व्यापार के लिए कहीं जाता है। अपनी विद्या के बल पर बैठा मौज करता है।

"**खेती करै न बिणजी जाय, विद्या कै बल बैठ्यो खाय।**"

किन्तु आजकल शिक्षितों की बेकारी को देखते हुए उक्त कथन को स्वीकार नहीं किया जा सकता। आर्थिक संघर्ष के इस युग में आज विद्वानों को भी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

इसलिए राजस्थान की एक अन्य लोकोक्ति में यथार्थ ही कहा गया है कि विद्या अर्थकरी होनी चाहिए। यदि विद्या पढ़कर भी कोई जीविकोपार्जन न कर सके तो उस विद्या से क्या लाभ?

"**भाई भिणज्यो सोई, ज्यां में हंडिया खदबद होई।**"

अर्थात् वही विद्या पढ़नी चाहिए जिससे हँडिया खुदबुद करे अर्थात् भोजन मिल सके।

वैसे भी किसी प्रकार की मजदूरी करना बुरा नहीं है, यदि बुरा है तो चोरी-जारी करना। "**मजूरी रो मेणो कोनी, चोरी जारी रो मेणो है।**" मजदूरी करने वाले पर व्यंग्य नहीं कसा जा सकता, व्यंग्य कसा जाना चाहिए चोरी-जारी करने वाले पर।

११. आभूषण प्रेम—राजस्थानी स्त्रियों का आभूषण-प्रेम प्रसिद्ध है किन्तु आभूषण केवल आभूषण के लिए ही नहीं होता। लोगों के पास बचत होती है तो गहने बनवा लिये जाते हैं, फिर ये ही आभूषण विपत्ति पड़ने पर जीवन-निर्वाह के आधार बन जाते हैं। श्रीमती ऐनी बेसेंट ने भी आभूषणों को किसानों का परम्परागत सेविंग्स बैंक (Traditional peasants' Savings Bank) कहा था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें उल्लेखनीय हैं—

१. **गहणो ने गनायत अवखी पुल में काम आवे हैं।**
आभूषण और सम्बन्धी दुःख में सहायक होते हैं।
२. **गहणा धांया रा सिणगार, भूखां रा आधार।**

१. खेती करै बिणज नै ध्यावै दो मां आडी एक ना आवै।
२. भखत विद्या, पचत खेती।

आभूषण जहाँ धनियों के शृंगार हैं, वहाँ वे निर्धनों के लिए आधार भी हैं।

१२. राजनैतिक चेतना—राजस्थान की जनता राज्य के डर से बहुत त्रस्त और आशंकित रहा करती थी। राजा की बात सुनने वाले को राजा के शब्दोच्चारण के पूर्व ही कम्पन हो आता था। राजा न जाने क्या हुक्म दे दे, इसका डर हमेशा बना रहता था। कचहरी से कोई बुलावा आ जाता था तो वह यम के बुलावे से भी बदतर समझा जाता था। इसलिए एक कहावत में कहा गया है—

"जम रो बुलावो आइजो पण राज रो बुलावो मत आइजो।"

अर्थात् यम का बुलावा भले ही आ जाय, राज्य का बुलावा न आवे। अगर घर के किसी व्यक्ति को कोई जागीरदार बुलाता तो सारे घर में उदासी का वातावरण छा जाता था।

"जमींदार के बावन हात हुवै" यह भी एक राजस्थानी कहावत है जिसका तात्पर्य यह है कि जमींदार एक विविध साधन-सम्पन्न व्यक्ति होता है। उसकी साधन-सम्पन्नता के कारण भी लोग जमींदार से भयभीत रहा करते थे।

किन्तु अब देश के स्वतन्त्र हो जाने के बाद राजस्थान में जागीरदारी प्रथा समाप्त हो गई है और आशा की जाती है कि राजस्थानी प्रजा के दिन फिरेंगे और सुख-शांतिपूर्वक वह अपना जीवन बसर कर सकेंगी।

४. शिक्षा, ज्ञान और साहित्य

(क) शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें

पातंजल महाभाष्य में कहा गया है—

सामृतैः पाणिभिघ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः ॥

अर्थात् अमृत भरे हाथों से गुरु शिष्यों को पीटते हैं, विष-सिक्त हाथों से नहीं। शिष्य लाड़-चाव से बिगड़ जाते हैं, ताड़ना से उनका सुधार होता है। राजस्थानी भाषा की निम्नलिखित कहावतों में भी इसी प्रकार की बात कही गई है—

गुरु की चोट, विद्या की पोट।

अर्थात् गुरु की चोट से विद्या प्राप्त होती है।

सोटी बाजै चमचम, विद्या आवै धमधम।

अर्थात् सोटी चमचम बजती है, तभी विद्या धमधम करती हुई आती है।

किसी अंश में तो यह सच है कि ताड़ना के डर से विद्यार्थी कुछ पढ़ जाते हैं किन्तु आजकल के मनोवैज्ञानिकों और शिक्षण-शास्त्रियों के मतानुसार विद्या के प्रति सच्चा अनुराग तो प्रेम द्वारा ही जागृत किया जा सकता है। कुछ पुराने गुरु तो अपने शिष्यों को यहाँ तक पीटते थे कि जिसे देखकर जी दहल जाय। एक छात्र के लिए कहा जाता है कि जब वह चटशाला नहीं गया तो गुरुजी ने कुछ विद्यार्थियों को उसे लाने के लिए भेजा किन्तु विद्यार्थी जब इसमें कृतकार्य न हो सके तो गुरुजी स्वयं उसके घर पहुँचे। छात्र उस समय भोजन कर रहा था। गुरुजी को देखते ही डर के

मारे छत पर जा चढ़ा। गुरुजी भी उसके पीछे-पीछे छत पर जा पहुँचे। विद्यार्थी गुरु के डर से छत पर से कूद पड़ा जिससे उसका प्राणान्त हो गया !

पातंजल महाभाष्य के श्लोकों में जिन गुरुओं का उल्लेख किया गया है, निश्चय ही वे इतने अमानुषिक कदापि नहीं रहे होंगे और जैसा कि कबीर ने कहा है—

"गुर कुम्हार सिष कुम्भ है, गढि गढि काढै खोट।
भीतर हाथ सहार दे, बाहर बाहर चोट॥"

सच्चे गुरु की चोट के मूल में भी शिष्य का हित ही निहित रहता है किन्तु इस प्रकार की कहावतों का कभी-कभी दुरुपयोग भी देखा जाता है। शिक्षा-मनोविज्ञान के साथ-साथ आज हमारी धारणाओं में भी परिवर्तन हो रहा है किन्तु कहावतें अशिक्षितों के मानस-पट पर कभी-कभी इस प्रकार अंकित हो जाती हैं कि उनसे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। गाँवों में शिक्षा का प्रकाश या तो पहुँचता ही नहीं, या देर से पहुँचता है, इसलिए विकसित होते हुए शिक्षा-मनोविज्ञान के अनुकूल कहावतों का निर्माण नहीं हो पाता।

कुछ कहावतें राजस्थान में ऐसी भी हैं जिनसे यहाँ की प्राचीन शिक्षा-पद्धति पर प्रकाश पड़ता है। इस सम्बन्ध में दो कहावतें लीजिये—

१. **ओनामासी धम, बाप पढ्या न हम।**

इस कहावत का **"ओनामासी धम"** "ॐ नमः सिद्धम्" का अपभ्रष्ट रूप है। प्राचीन शिक्षा-पद्धति द्वारा जिन्होंने शिक्षा प्राप्त की है, वे भली भाँति जानते हैं कि राजस्थान में **"सिद्धों"** द्वारा किस प्रकार वर्णों का अभ्यास कराया जाता था। जो छात्र इस प्रणाली द्वारा वर्ण-ज्ञान प्राप्त करते थे, वे पंक्तियों को केवल रटते थे, वे यह नहीं समझते थे कि इन पंक्तियों का तात्पर्य क्या है। गुरूजी एक पंक्ति को गाकर बोलते और छात्र उनके पीछे गाते हुए-से आवृत्ति करते जाते थे। **'सिद्धों'** की पद्धति जब पहले-पहल चली होगी तब संस्कृत-पंक्तियों का अर्थ भी छात्रों को हृदयंगम कराया जाता होगा, कालान्तर में संस्कृत-ज्ञान के अभाव से लोग शुद्ध रूप को भूल गये और केवल पुरानी लकीर को पीटना रह गया।

२. **"ढलग्यो नामीनोरै तो क्यूं हलियो टेरै।"**

इस कहावत का **"नामीनोरै"** सारस्वत व्याकरण के सूत्र **"नामिनोरः"** का अपभ्रंश रूप है। इससे पता चलता है कि इस प्रान्त में कभी सारस्वत व्याकरण पढ़ने का अच्छा प्रचार था।

आज तो **"सिद्धो-पद्धति"** लुप्तप्राय है और सारस्वत व्याकरण के स्थान में भी "लघुसिद्धान्त कौमुदी" का ही सर्वत्र जयजयकार हो रहा है।

कई वर्षों पहले प्राचीन प्रणाली के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के मुख से सुनाई पड़ता था **"पडवा पाटी फोड़ बतरणो"** अर्थात् प्रतिपदा को पट्टी, बतरना, स्लेट और पेंसिल फोड़ दो। इस प्रकार की पाठशालाओं में रविवार को छुट्टी न होकर प्रतिपदा को छुट्टी हुआ करती थी क्योंकि **"पड़वा पाठ विवर्जिता"** के अनुसार प्रतिपदा के दिन पढ़ना अनिष्टकारक समझा जाता था। इसी प्रकार एक दूसरी उक्ति

है—**"पड़वा पाटी भांगणी, बीज पाटी सांभणी"** अर्थात् प्रतिपदा को स्लेट फोड़ देनी चाहिए और द्वितीया को सम्हाल लेनी चाहिए।

शिक्षा-सम्बन्धी अनेक कहावतों में रटने अथवा वस्तु को कण्ठाग्र कर लेने का गुणगान किया गया है, जैसे—

(१) **घोखत विद्या नै खोदत पाणी।**

अर्थात् रटने से विद्या प्राप्त होती है और खोदने से पानी मिलता है।

(२) **माया अंट की, विद्या कंठ की।**

अर्थात् गाँठ का पैसा और कंठस्थ की हुई विद्या काम आती है।

एक कहावत में कहा गया है कि पूछते-पूछते मनुष्य पण्डित हो जाता है।[1] इसी प्रकार एक अन्य कहावत द्वारा पठन के साथ-साथ सांसारिक अनुभव को भी अत्यन्त आवश्यक बतलाया गया है।[2] मनुस्मृति में भी कहा है कि छात्र चतुर्थांश शिक्षक से, चतुर्थांश स्वाध्याय से, चतुर्थांश सहपाठियों से और चतुर्थांश अनुभव से सीखता है।[3]

शिक्षा की दृष्टि से राजस्थान अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बहुत पिछड़ा हुआ है। प्रतिशत साक्षर व्यक्तियों की संख्या यहाँ बहुत कम है। एक कहावती पद्य के अनुसार यहाँ की निरक्षरता दूर करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।[4] शिक्षा-सम्बन्धी कहावतें भी यहाँ अपेक्षाकृत कम ही संख्या में मिलती हैं।

(ख) मनोवैज्ञानिक कहावतें

कभी-कभी देखा जाता है कि हम किसी कारणवश गाड़ी चूक जाते हैं और घर आकर सारा गुस्सा स्त्री पर उतारते हैं। सौदागर सट्टे में हार जाता है तो मुनीम-गुमाश्तों पर अकारण उबल पड़ता है। आफिस में काम करनेवाले क्लर्क पर बड़े साहब की ओर से फटकार पड़ती है, क्लर्क घर आकर बात की बात में बच्चों पर चपत झाड़ देता है। इस प्रकार असली वस्तु या व्यक्ति को छोड़कर किसी के भाव-प्रवाह का दूसरी ओर प्रवर्तित हो जाना मनोविज्ञान की भाषा में स्थानान्तरीकरण (Projection) कहलाता है। **"कुम्हार को कुम्हारी पर बस चालै कोनी, गधेड़ै का कान इंठै"** जैसी राजस्थानी कहावतों में स्थानान्तरीकरण के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं।

कहावतों का सम्बन्ध मुख्यतः जीवन के क्रिया-कलापों से रहता है। दर्शन-शास्त्र की तरह उनमें तात्त्विक विश्लेषण तो नहीं मिलता किन्तु फिर भी बहुत-सी लोकोक्तियों में जीवन की व्यावहारिक सचाई इस प्रकार अभिव्यक्त होती है कि वह बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है। मनुष्य की चेष्टाओं और उसकी क्रियाओं से उसके अन्तःकरण का, उसके अचेतन मन का, बहुत कुछ आभास मिल जाता है।

---

१. पूछता नर पंडित।
२. पढ्यो तो है पण गुण्यो कोनी।
३. देखिये—
प्राचीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था, वीणा, अक्टूबर १९४४, पृष्ठ ५३४।
४. मारवाड़ री मूढ़ता मिटसी दोरी मिंत।

शेक्सपियर के सुप्रसिद्ध नाटक हैमलेट में जहाँ नाटक के भीतर नाटक दिखलाया जाता है, वहाँ अभिनेत्री रानी राजा की मृत्यु होने की हालत में कभी भी दूसरा विवाह न करने पर ज़ोर देती है। इस प्रकार की अकल्पित शादी यदि कभी चरितार्थ हो जाय तो वह सब अभिशापों को अंगीकार करने के लिए अपनी तत्परता दिखलाती है। हैमलेट ने जब क्लाडियस की स्त्री से पूछा कि आपको नाटक कैसा लगा, उसने उत्तर दिया—"The lady protests too much, methinks." किसी बात को सिद्ध करने के लिए उस पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर देना उस वस्तु की सदोषता ही सिद्ध करता है।[1] झूठे आदमी के अचेतन मन में यह बात समायी रहती है कि उसकी बात पर लोग विश्वास नहीं करेंगे, इसलिए वह आदमी अपनी झूठ को छिपाने के लिए अनेक प्रकार की सौगन्ध खाया करता है, किन्तु अधिक सौगन्ध खाने से उसकी असत्यता ही प्रमाणित होती है। **"झूठा की के पिछाण ?" कह—"बो सोगन खाय"। सोगन और सीरणी तो खाणे की ही होय है,** अर्थात् झूठे की क्या पहचान ? उत्तर—वह सौगन्ध खाता है। सौगन्ध और मिठाई तो खाने ही के लिए हैं, जैसी लोकोक्तियों में मनोवृत्तियों के अध्ययन के लिए अच्छी सामग्री मिल जाती है। इसीलिए सौगन्ध खाने वाले नीम के नीचे सौगन्ध खाते हैं और पीपल के नीचे इन्कार कर देते हैं।[2]

प्रायः देखा जाता है कि जब मनुष्य एक बार बुराई की ओर प्रवृत्त हो जाता है तो उसका शतमुख पतन होने लगता है। वह सोचता है कि जब एक बार झूठ बोलना ही है तो उसमें कमी क्यों की जाय ? एक बार जब उससे मर्यादा का अतिक्रमण हो जाता है तो उसके मन में यह विचार घर करने लगता है कि लोगों की दृष्टि में तो अब मैं बुरा बन ही चुका, अब यदि मैं बुरे काम करूँ तो मुझे ऐसा करने से कौन रोक सकता है ? वस्तुतः बुराई से रोकनेवाली तो मर्यादा है जिसे वह हाथ से खो बैठा है। **"झूठ बोलणियो 'र धरती पर सोवणियो संकड़लो क्यूं भुगतै ?"** अर्थात् झूठ बोलनेवाला और धरती पर सोनेवाला तंगी क्यों भोगे ? **"उतार दी लोई, के करैगो कोई ?"** जब मान-मर्यादा सब छोड़दी तो अब किसकी क्या परवाह ? **"नकटा, नांक कटी ?"** कह—**"मेरी तो सवा गज बधी।"** अर्थात् जब नकटे से कहा गया कि तुम्हारी तो नाक कट गई तब उसने उत्तर दिया कि मेरी तो सवा गज बढ़ गई है। इस कहावत में भी इसी मनोवृत्ति के दर्शन होते हैं।

जो आदत पड़ जाती है, वह बड़ी मुश्किल से छूटती है। मनोवैज्ञानिकों का मत है कि आदत हमारी बुद्धि पर भी हावी हो जाती है, बुद्धि आदत का अनुसरण करने लगती है, आदत बुद्धि का अनुसरण नहीं करती। इसीलिए बड़े-बड़े विद्वान् और बुद्धिमान् भी जब बुरी आदत के चंगुल में फँस जाते हैं तो उससे उनका भी छुटकारा नहीं हो पाता। निम्नलिखित कहावतों में इसी तथ्य को प्रकट किया गया है।

१. **"चोर चोरी सैं गयो जूती बदलण सैं थोड़ोई गयो।"**

१. अति भक्ति चोर के लच्छन।

२. नीम तलैं सोगन खाय, पीपल तलैं नट ज्याय

किसी के उपदेश से चोर ने चोरी करना छोड़ दिया। एक बार जब उसने दूसरे के जूते बदल लिए तो किसी के पूछने पर उसने उत्तर दिया—चोर चोरी करने से गया तो क्या जूते बदलने से भी गया ? कहने का तात्पर्य यह है कि प्रयत्न करने पर आदत थोड़ी-बहुत छूटती है किन्तु वह सर्वांशतः नहीं छूटती।

२. कुत्तं की पूंछ बारा बरस दबी रही पण जद निकली जद ही टेढ़ी।

अर्थात् कुत्ते की पूँछ बारह वर्षों तक दबी रही किन्तु जब निकली तभी टेढ़ी निकली अर्थात् स्वभाव का छोड़ना सम्भव नहीं।

"बकरी दूध तो दे पण दे मींगणी करके।"

अर्थात् बकरी दूध तो देती है पर देती है मेंगनी करके !

आदत से लाचार होने के कारण जो मज़ा किरकिरा करके काम करता है, उसके लिए उक्त लोकोक्ति का प्रयोग होता है।

दुराग्रही के आग्रह की अच्छी अभिव्यक्ति निम्नलिखित कहावत में हुई है :

"पंचां की बात सिर माथे पण म्हारलो नालो अठी कर ई भवंगो।"

अर्थात् पंचों की बात को तो मैं शिरोधार्य करता हूँ किन्तु मेरा नाला इधर होकर ही बहेगा।

जब लोगों के समझाने-बुझाने पर भी कोई दुराग्रही अपना हठ नहीं छोड़ता और मनमानी करने पर तुल जाता है, तब इस उक्ति का प्रयोग होता है।

अमेरिका के मनोवैज्ञानिक ऐडलर ने हीन-भाव की मनोवृत्ति का अच्छा विवेचन किया है। जिस व्यक्ति में कमी होती है, वह उस कमी को ढकने के लिए अपनी प्रशंसा करता है, जिसमें ज्ञान नहीं होता वह बढ़-बढ़ कर बातें बनाता है, जो ज्यादा धमकी देता है, वह धमकी के अनुसार काम नहीं कर पाता। ज्ञान की कमी, चातुर्य का अभाव, अंग-विकार आदि अनेक कारणों से मनुष्य अपने में हीन-भाव का अनुभव करने लगता है। कहावतों में हीन-भाव का कोई सैद्धान्तिक विश्लेषण नहीं मिलता किन्तु वह हीन-भाव किस प्रकार अपने आपको अभिव्यक्त करता है, इसके अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। इस दृष्टि से कहावतें एक प्रकार से प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का रूप प्रस्तुत करती हैं। निम्नलिखित राजस्थानी कहावतें हीन-भाव की व्यावहारिक अभिव्यक्तियाँ हैं :

१. "गरजै जिको बरसै कोनी।"

अर्थात् जो गरजता है, वह बरसता नहीं।

अभिमानी कोरी डींग मारता रहता है, उससे कुछ करते-धरते नहीं बनता। वास्तव में उसमें करने की शक्ति ही नहीं होती है, जिसमें शक्ति होती है, वह काम को करके दिखला देता है। उसके गरजने का अर्थ केवल यह है कि वह अपनी शक्ति के अभाव को केवल डींग मारकर छिपाना चाहता है।

२. चणा चाब कर कहै, म्हे चावल खाया।
नहीं छान कर फूस, म्हे हेली सैं आया॥

अर्थात् चने चबाते हैं और कहते हैं कि हम चावल खाने वाले हैं। छप्पर पर

फूस तक नहीं हैं और कहते हैं हम हवेली से आये हैं !

मनुष्य की यह मनोवृत्ति है कि दूसरों की दृष्टि में अपने आपको नगण्य समझा जाना वह पसन्द नहीं करता। इसीलिए कुछ न होने पर भी वह आडम्बर का आश्रय लेता है।

३. **"थोथो चणो बाजै घणो।"**

अर्थात् जिनमें गुण नहीं होते, वे ही बढ़-चढ़ कर बातें बनाते हैं।

४. **"थोथा पिछोड़ें उड़ उड़ जायँ।"**

अर्थात् थोथा अनाज फटकने से उड़ जाता है।

मूर्ख व झूठों की जब जाँच की जाती है, तब वे जांच के सामने नहीं ठहर पाते। कबीर ने कहा है—

"यह तन सांचा सूप है, लीजे जगत पछोर।
हलकन को उड़ जान दे, गरुए राख बटोर॥

"अधजल गगरी छलकत जाय" के भाव को संस्कृत सुभाषितकार ने निम्न-लिखित शब्दों में व्यक्त किया है—

"संपूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्, अर्द्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।
विद्वान्कुलीनो न करोति गर्वं, गुणैर्विहीना बहु जल्पयन्ति॥"

कमजोर आदमी को गुस्सा अधिक आता है, यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। गुस्सा वस्तुतः शक्ति की क्षति-पूर्ति का प्रयास मात्र है। **"कमजोर गुस्सा ज्यादा"** में यही बात कही गई है।

कोई मनुष्य दोषी होते हुए भी अपने को दोषी मानना नहीं चाहता क्योंकि उसके मन में यह डर बना रहता है कि उसका दोष सिद्ध हो जाने पर वह समाज की दृष्टि में गिर जायगा। **"पाखी हालो पहली करकै"** अर्थात् जख्म में पहले दर्द होता है, दोषी अपने दोष की बात सुनता है तो उसे चुभती है। **"सांच कह्यां झाल उठै"** अर्थात् सच कहने से सुनने वाला क्रुद्ध हो उठता है। इस कहावत में भी यही बात कही गई है।

अपने से जिन व्यक्तियों का साहचर्य अथवा सम्बन्ध है, उनको भी वह बुरा नहीं बतलाता क्योंकि उनको बुरा बताने से वह भी संपर्क अथवा सम्बन्ध-जन्य दोष का भागी बन जाता है। **"आपकी मा नै डाकण कुण बतावै ?"** अर्थात् अपनी माँ को डाकिनी कौन कहे ? जैसी कहावतों में यही सत्य दरसाया गया है।

राजस्थानी भाषा में अनेक कहावतें सहज ही उपलब्ध हैं जिनसे मानव-मन की विभिन्न वृत्तियों के अध्ययन के लिए अच्छी सामग्री मिल जाती है।

(ग) राजस्थानी साहित्य में कहावतें

शिष्ट-साहित्य—विवेचन की सुविधा के लिए हम राजस्थानी साहित्य को शिष्ट-साहित्य और लोक-साहित्य दो भागों में बांट लेते हैं। काल-क्रम की दृष्टि से शिष्ट-साहित्य निम्नलिखित तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) प्राचीन राजस्थानी (संवत् १२००-१६००)

(ख) माध्यमिक राजस्थानी (संवत् १६००-१९५०)

(ग) आधुनिक राजस्थानी (संवत् १९५० से अब तक)

(क) प्राचीन राजस्थानी

ग्रियर्सन के शब्दों में "गुजरात मध्य युग में राजपूताने का अंश मात्र था। यही कारण है कि गुजराती का राजस्थानी से इतना अधिक साम्य है।"[1] स्व० श्री-नरसिंहराव दीवेटिया के मतानुसार भाषा के रूप में "गुजराती" शब्द का सबसे पहला उल्लेख सन् १७३१ ई० में मिलता है किन्तु इससे भी पहले महाकवि प्रेमानन्द ने "नागदमरण" में "गुजराती" शब्द का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—

"हदे उपनी माहारे अभिलाषा,
वांधु नागदमरण गुजराती भाषा।"

इससे पूर्व भाषा के रूप में "गुजराती" शब्द नहीं मिलता।[2]

सन् १४५५-५६ (वि० सं० १५१२) में जालोर मारवाड़ के कवि पद्मनाभ ने **"कान्हड़दे प्रबन्ध"** की रचना की थी। सन् १९१२ में एक सजीव वाद-विवाद गुजरात में इस विषय को लेकर चला था कि उक्त प्रबन्ध गुजराती में लिखा गया था अथवा प्राचीन राजस्थानी में। वस्तुतः देखा जाय तो यह ग्रन्थ उस युग में लिखा गया जब राजस्थानी और गुजराती का परस्पर विभेद नहीं हो पाया था, इसलिए इस कृति की भाषा वही रही होगी जो उस जमाने में जालोर में बोली जाती होगी।[3] डा० दशरथ शर्मा ने कुछ समय पूर्व प्रकाशित अपने एक लेख में **"कान्हड़दे प्रबन्ध"** को प्राचीन राजस्थानी का ग्रन्थ माना है।[4] कवि ने स्वयं **"प्राकृतबंध कवि मति करी"** कहकर प्रबन्ध की भाषा को सामान्यतः प्राकृत नाम से अभिहित किया है, किन्तु यह प्राकृत वैयाकरणों की प्राकृत नहीं है, उस जमाने की लोक-भाषा को ही कवि ने प्राकृत का नाम दिया होगा।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि वि० सं० १५१२ में भाषा के रूप में **'गुजराती'** अथवा **'राजस्थानी'** शब्द का प्रयोग नहीं होता था। गुजरात के विद्वान् जिसे जूनी गुजराती तथा राजस्थान के विद्वान् जिसे प्राचीन राजस्थानी कहते हैं, उस भाषा को इटली के प्रसिद्ध भाषावित् स्व० डा० टैसीटोरी ने **"प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी"** का नाम दिया था तथा ईसवी सन् १३वीं शती से लेकर १६वीं शती के अन्त तक के युग को उन्होंने **"प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी काल"** की संज्ञा दी थी।[5] इस प्राचीन राजस्थानी से

---

1. Linguistic Survey of India, Vol. IV, part II, p. 328.
२. आपणा कवियो (केशवराम का. शास्त्री); पृष्ठ ४।
3. Linguistic Survey of India, Vol. 1, part I, p. 176.
४. शोध पत्रिका, भाग ३, अंक १; पृष्ठ ५१।
५. वचनिका राठौड़ रतनसिंघजी री अंग्रेजी भूमिका; पृष्ठ ४।

ही जो गुजरात से लेकर प्रयाग मंडल तक फैली हुई थी, आधुनिक गुजराती तथा आधुनिक राजस्थानी का विकास हुआ और विकसित होते-होते वे दो स्वतन्त्र भाषाओं के रूप में परिवर्तित हो गईं जिनमें परस्पर समानताएँ होते हुए भी व्यावर्तक विशेषताएँ स्पष्ट परिलक्षित होने लगीं।

प्राचीन राजस्थानी साहित्य से कहावतों-सम्बन्धी जो उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं, उनमें से प्राय: सभी समान रूप से "जूनी गुजराती" के भी उदाहरण माने जा सकते हैं। किन्तु इस विषय में किसी भी प्रकार की भ्रान्त धारणा न हो, इसलिए ऊपर का स्पष्टीकरण आवश्यक समझा गया।

कवीश्वर शालिभद्रसूरि कृत "भरत बाहुबलि रास" रचना-काल सं० १२४१।

(१) विण बंधव सवि संपइ ऊणी।
जिम "विण लवण रसोइ अलूणी" ॥८३॥

अर्थात् बांधवों के बिना संपत्ति उसी प्रकार न्यून समझी जाती है जिस प्रकार नमक के बिना रसोई अलोनी रहती है।

(२) जं विहि लिहीउं भालयलि।
तं जि लोइ इह लोइ पामइ ॥६३॥

अर्थात् विधाता ने जो ललाट में लिख रखा है, उसे ही इस लोक में लोग प्राप्त करते हैं।

(३) हीउं अनइ हाथ हथियार।
एह जि वीर तणउ परिवार ॥१०४॥[1]

अर्थात् हृदय और हाथ का हथियार, यही वीर का परिवार है।

—प्रबोध चिन्तामणि जयशेखर सूरि सं० १४६२ के लगभग।

(१) वानरडउ नइ वीछीइ खाधु।
दाह जरिउ दावानलि दाधु ॥

अर्थात् बंदर जिसे बिच्छू ने डस लिया हो, दाह से तो पहले ही जला हुआ था, दावानल से और दग्ध हो गया।

(२) घेवर मांहि ए घृत ढलिऊं।

अर्थात् घेवर में घी गिरा।

(३) चोर माइ जिम छानउ रूअइ।

अर्थात् चोर की माता जिस प्रकार छिपकर रोती है।

(४) केतूं कुसल विमासीइ वसतां नई नइ कूलि।

अर्थात् नदी के किनारे रहनेवालों का क्या कुशल?

—पृथ्वीचन्द्र चरित्र श्री माणिक्यचन्द्र सूरि वि० सं० १७४८।

(१) छासिइं केरउ आफरु, वासिइ केरउ नेह।
कँवल केरउ मोलीउं, घिसत न लागइ खेव ॥[2]

[1] मिलाइये—
कंता फिरज्यो एकला, किसा विराणां साथ।
थारा साथी तीन जण, हियो कटारी हाथ॥
—राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान, पृष्ठ १७।

[2] प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ : सं० श्री जिनविजयजी; पृष्ठ १४१।

(२) तीणइं सोनइं किसिउं कीजइं जीणइं त्रूटइं कान।

अर्थात् उस सोने का क्या किया जाय जिससे कान टूटते हों?

आधुनिक राजस्थानी में यही कहावत "**बाल् सोनो, कान तोड़ै**" के रूप में प्रचलित है।

—श्री वीर कथा लखमसेन पदमावती कवि दाम-कृत, वि० सं० १५१६।

(१) बालस्य माय मरणं, भार्या मरणं च यौवनकाले।
वृद्धस्य पुत्र मरणं, तिन दुखाइं गिरुग्राइं ॥[२]

अर्थात् बालक की माता का मरण, यौवन-काल में भार्या का मरण और वृद्ध के पुत्र का मरण, ये तीन भारी दुःख हैं।

(२) पर दुखइं जे दुखीयां, पर सुख हरख करन्त।
पर कज्जइ सूरा सुहड़, ते बिरला नर हुन्त ॥

अर्थात् पर-दुःख में जो दुखी और पराये सुख से सुखी होते हैं और परोपकार के लिए जो कमर कसे रहते हैं, ऐसे मनुष्य विरले ही होते हैं।

(३) पर दुखइ सुख ऊपजइ, पर सुख दुक्ख धरन्त।
पर कज्जइ कायर पुरुष, धरि धरि बार फिरन्त ॥

अर्थात् पराये दुःख से जिनको सुख मिलता है, दूसरे के सुख से जो दुखी होते हैं और पराये कार्य में जो कायरता दिखलाते हैं, ऐसे मनुष्य घर-घर के दरवाज़ों पर फिरते हैं।

(४) सीह सिवाणो सापुरिस, पड़ि पड़ि पुनि ऊठन्ति।
गय गड्डर कुच कापुरिस, पड़े न वलि ऊठन्ति ॥[३]

—सीताहरण कर्मण रचित, वि० सं० १५२६।

(१) देव घातक दूबलानइ मेहलिउ विश्वास।

अर्थात् दैव भी दुर्बल के लिए घातक होता है।

(२) गई तिथि नवि वांचइ ब्राह्मण, एह बोल वीसार।

अर्थात् गई तिथि को ब्राह्मण भी नहीं 'पढ़ता'।

(३) कीधां कर्म न छूटीइ, बोलइ वेद पुराण।

अर्थात् किये हुए कर्मों से छुटकारा नहीं।

—ढोला मारू रा दूहा; कल्लोल वि० सं० १५३०।

डा० मोतीलाल जी मेनारिया के अनुसार "**ढोला मारू रा दूहा**" का निर्माण काल वि० सं० १५३० है।[४] इस काव्य का मालवणी-मारवणी संवाद अत्यन्त लोक-

---

१. प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ : सं० जिनविजय जी, पृष्ठ १५८।

२. मिलाइये—
"मत मारियो बालक की माय, मत मारियो बूढ़े की जोय।"

३. श्री अगरचंदजी नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हस्तलिखित प्रति से उद्धृत।

४. देखिये : राजस्थानी भाषा और साहित्य; पृष्ठ १०१।

प्रिय हुआ है। इसमें स्थान-स्थान पर सूक्तियाँ भी मिलती हैं। उदाहरण के लिए एक सूक्ति लीजिये—

डूंगर केरा वाहला, ओछां केरा नेह।
वहता वहै उतावला, झटक दिखावै छेह॥

पहाड़ी नाले और ओछे पुरुषों का प्रेम बहते समय तो बड़ी तेजी से बहते हैं, पर तुरन्त ही अन्त दिखा देते हैं।

इस काव्य में कहीं-कहीं ऐसी पंक्तियाँ भी मिल जाती हैं जिनको पढ़कर किसी सूक्ति अथवा कहावत का स्मरण हो जाता है। उदाहरण के लिए एक ऐसी ही पंक्ति लीजिये—

"उत्तर आज स उत्तरउ सही पड़ेसी सीह।"

अर्थात् आज उत्तर दिशा का पवन उतर आया है, अवश्य ही शीत पड़ेगा।

यह पंक्ति "**उत्तरस्यां यदा वायुः तदा शीतं प्रवर्तते**" का स्मरण दिलाये बिना नहीं रहती।

इस काव्य की साहित्यिक विशेषताओं के कारण मैंने इसे शिष्ट साहित्य के अन्तर्गत ही रखा है। लोक-प्रचलित कहावतों का इस ग्रन्थ में अभाव है, भले ही इसकी अनेक पंक्तियों को कहावतों की-सी प्रसिद्धि मिल गई हो।

—विमल प्रबन्ध (लावण्य समय) वि० सं० १५६८. (गुजराती प्रधान)

(१) **घर घरणिइं नवि बलणिइं होइ।**
एह वात जांणइ सहु कोइ॥[1]

(२) **पण घर सूनूं विण सन्तान।**

(३) **बरस सोलमइ पंथिइ रहिउ।**
बेटउ मित्र समाणउ कहिउ॥[2]

प्राचीन राजस्थानी के जिन ग्रन्थों से ऊपर उद्धरण दिये गये हैं, उनमें कहावतों का प्रयोग विरल है, ढूंढने से ही कहावतें उपलब्ध होती हैं।

(ख) माध्यमिक राजस्थानी

समयसुन्दर और राजस्थानी कहावतें—अपने ग्रन्थों में कहावतों के प्रचुर प्रयोग की दृष्टि से इस युग के कवियों में कविवर समयसुन्दर का नाम सबसे पहले लिया जाना चाहिए। कवि की मातृभूमि होने का गौरव मारवाड़ प्रान्त के साचौर स्थान को प्राप्त है। पोरवाड़ वंश में इसका जन्म हुआ। पिता का नाम रूपसी और माता का लीलादे या धर्मश्री था। जन्म-काल वि० सं० १६२० होने की सम्भावना की जाती है। वि० सं० १६४८ में सम्राट् अकबर के आमंत्रण पर लाहौर यात्रा भी आपने की थी। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "सीताराम चौपई" की ढाल इन्होंने अपनी जन्मभूमि साँचौर में ही बनाई। सं० १७०२ में इनका अहमदाबाद में स्वर्गवास हुआ। साठ वर्ष तक

---

१. मिलाइये—
"न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।"

२. मिलाइये—
"प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रे मित्रवदाचरेत्।"

निरन्तर साहित्य-रचना करते हुए इन्होंने भारतीय वाङ्मय को समृद्ध बनाया। स्तवन-गीत आदि इनकी लघु कृतियाँ सैकड़ों की संख्या में हैं जो खोज करने पर मिलती ही रहती हैं। इसी से लोकोक्ति है कि "समयसुन्दर रा गीतड़ा, कुंभे राणे रा भीतड़ा" अथवा "भीतों का चीतड़ा"। अर्थात् कविवर की रचनाएँ अपरिमित हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ "सीताराम चौपई" की रचना सं० १६७७ के आस-पास हुई।[1] यह ग्रन्थ सरल सुबोध भाषा में लिखा गया है जिसमें लोक-प्रचलित ढालों का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ ६ खण्डों में समाप्त हुआ है और प्रत्येक खण्ड में सात-सात ढाल हैं। लोकोक्तियों के प्रयोग की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है। इसमें प्रयुक्त बहुत-सी कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं।

१. उंघतणइ बिछाणउ, लाधउ, आहींणइ दूकांणउ बे।
मुंगनइ चाउल मांहि घी घणउ प्रीसाणउ बे।

—प्रथम खण्ड, ढाल ६, छन्द ५

२. छट्ठी रात लिख्यउ ते न मिटइ। —प्रथम खण्ड, छन्द ११

३. करम तणी गति कहिय न जाय। —दूसरा खण्ड, छन्द २४

४. तिमिरहरण सूरिज थकां, कुंण दीवानउ लाग।

—दूसरा खण्ड, ढाल ३, छन्द १२

५. रतन चिन्तामणि लाभतां, कुंण ग्रहइ कहउ काच।
दूध थकां कुण छासिनइ, पीयइ सहु कहइं साच॥

—खण्ड २, ढाल ३, छन्द १३.

६. भरतनइ तात किसी एक करणी, आपणी करणी पार उतरणी।

—खण्ड ३, ढाल ४, छन्द ६

७. बालक वृद्ध नइ रोगियउ, साध बामण नइ गाइ।
अबला एह न मारिया, मार्‌यां महापाप थाइ॥

—खण्ड ३, ढाल ७, छन्द ३

८. महिधर राय सुखी थयो, मुंग मांहि ढल्यो घीय।
बिछावण लह्यो ऊंघतां, धान पछउ अे सीय॥

—खण्ड ४, ढाल ४, छन्द ४

९. पांचां मांइं कहीजियइं, परमेसर परसाद। —खण्ड ५, ढाल १, छन्द १

१०. साधु विचारयो रे सूत्र कहेइ, समरथ सच्चा वेह। —खण्ड ५, पृष्ठ ७३

११. लिख्या मिटइं नहि लेख। —खण्ड ५, ढाल ३, छन्द १

१२. मूर्छागत थइ मावड़ी, दोहिलो पुत्र वियोगि। —खण्ड ५, ढाल ३, छन्द ११

१३. पाछा नावइं जे मुआ। —खण्ड ५, ढाल ६, छन्द २०

१. कविवर समयसुन्दर (श्री अगरचन्द नाहटा) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५७, अंक १, सं० २००९।

१४. मइ मतिहीरण न जाण्यो, त्रूटइं अति घणो ताण्यो ।
—खण्ड ५, ढाल ७, छन्द ४५

१५. कीड़ी ऊपर केही कटकी । —खण्ड ६, ढाल २, छन्द ४६

१६. ए तत्त्व परमारथ कह्यो मइं, त्रूटिस्सइ अति ताणियो ।
—खण्ड ६, ढाल १२ छन्द १२

१७. ऊषाणउ कहउ लोक, पेटइ को घालइ नहीं अति वाल्ही छुरी रे लो ।
—खण्ड ७, ढाल १, छन्द ६७

१८. घंत ऊपरि जिम षार, दुख मोहे दुख लागो राम नइ अति घणा रे लो ।
—खण्ड ८, ढाल १, छन्द २२, पृष्ठ १६२

१९. छट्ठी राति लिख्या जे अक्षर, कूण मिटावइ सोइ ।

२०. आभइं बीजलि उपमा हो । —पृष्ठ ११६

२१. थूकि गिलइ नहिं कोइ । —खण्ड ६, ढाल ३, छन्द ११

ऊपर दी हुई कहावतों का क्रमशः अर्थ है—ऊँघती हुई को बिछौना मिल गया । मूँग-चावल में घी परोसा गया । छठी की रात जो लिख दिया गया, वह अमिट है । कर्म की गति कही नहीं जा सकती । सूर्य के होते दीपक को कौन पूछे ? चिन्तामणि मिलते काँच कौन ग्रहण करे ? दूध मिलते छाछ कौन पिए ? अपनी करनी से सब पार उतरते हैं । बालक, वृद्ध, रोगी, साधु, ब्राह्मण, गाय और अबला इन्हें नहीं मारना चाहिए, क्योंकि इन्हें मारने से महा पातक हो जाता है । घी बिखरा तो मूँगों में । ऊँघते को बिछौना मिल गया । पंचों को परमेश्वर का प्रसाद कहा जाता है । समर्थ देता है । लिखे लेख नहीं मिटते । पुत्र वियोग दुःसह है । मरे हुए वापिस नहीं आते अधिक तानने से टूट जाता है । कीड़ी (चींटी) पर कैसी फौज ? ताना हुआ टूट जाता है । प्यारी सोने की छुरी को भी कोई पेट में नहीं रखता । घाव पर नमक, इसी प्रकार राम को दुःख में दुःख अधिक लगा । छठी रात को जो अक्षर लिख दिये गये, उनको कौन मिटा सकता है ? बादल की बिजली । थूककर कोई नहीं चाटता ।

ऊपर दी हुई कहावतों के राजस्थानी रूपान्तर आज भी उपलब्ध हैं । इससे कम से कम इतना स्पष्ट है कि कवि समयसुन्दर के जमाने में उक्त कहावतें प्रचलित थीं । कवि ने कहावतों के साथ-साथ सूक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है । कहीं-कहीं संस्कृत-सूक्तियों का अनुवाद भी कर दिया है । उदाहरणार्थ—

"जीवतो जीव कल्याण देखई" पृष्ठ १०४ वाल्मीकि रामायण के 'जीवन्भद्राणि पश्यति' का अनुवाद-मात्र है । 'सीताराम चौपई' में यह उक्ति राम की हनुमान के प्रति है । राम हनुमान से कहते हैं कि ऐसा प्रयत्न करना जिससे सीता जीवित रहे । वाल्मीकि रामायण में आत्म-हत्या न करने का निश्चय करते हुए स्वयं हनुमान कहते हैं कि यदि मनुष्य जीता है तो कभी न कभी अवश्य कल्याण के दर्शन करता है । इसी प्रकार वीसार्यो अंगीकार नहि उन्नमनइ आचार "अंगीकृतं सुकृतिन. परिपालयन्ति" का स्मरण दिलाता है। कहावत के लिए कवि ने "आहींरण" और 'ऊषाणउ' का प्रयोग किया है । एक स्थान पर सूत्र शब्द का प्रयोग हुआ है । कहावत भी वस्तुतः एक प्रकार का वाक्-सूत्र ही है ।

"सीताराम चौपई" के अतिरिक्त कवि की अन्य कृतियों में भी यत्र-तत्र कहावतें बिखरी मिलती हैं।

"आप मुयां विन सरग न जाइयइ।"

अर्थात् अपने मरे बिना स्वर्ग जाना नहीं होता।

"वाते पापड़ किमही न थाइ।"

अर्थात् बातों से पापड़ नहीं होते।

"आपणी करणी पार उतरणी।"

अर्थात् अपनी करनी से ही पार उतरा जा सकता है।

"सूता तेह विगूता सही जागंता काऊ डर भय नहीं।"

(सूता जगावण गीत)

अर्थात् सोये हुए को डर रहता है, जगने वाले को नहीं।

"सूतां री पाडा जिरणे एह बात जग जारणे रे।"

अर्थात् सोये हुए की (भैंस) पाडा जनती है।

"आप डूबें सारी डूब गई दुनिया।" (नेमिफाग)

अर्थात् आप डूब गये तो सब दुनिया डूब गई।

माल कवि कृत पुरन्दर चउपई और कहावतें—माल कवि की यद्यपि निश्चित तिथि ज्ञात नहीं है तथापि कहावतों के सिलसिले में उनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कवि द्वारा रचित 'पुरन्दर चउपई' में से कुछ कहावतें यहाँ दी जा रही हैं।

१. जां संपइ तां पाहुरणा, जां सांवरण तां मेह।
जां सासू तां सासरउ, जां यौवन तां नेह॥

जहाँ सम्पत्ति है, वहीं अतिथि हैं; जहाँ श्रावण है, वहीं वर्षा है; जहाँ सास है, वहीं ससुराल है; जहाँ यौवन है, वहीं स्नेह है।

२. पर भव कहि किरण दीठा

अर्थात् यह तो बताओ कि परलोक देखा किसने है?

३. अणमिलतइ जे संयमी।

अर्थात् न मिलने पर जो संयमी रहते हैं।

आज भी कहा जाता है **"अणमिले का सै जती हैं"** अर्थात् विषय-भोग सुलभ न होने पर सभी अपने को संन्यासी कह सकते हैं।

४. छांनऊ कस्तूरी गुण न रहइ।

अर्थात् कस्तूरी का गुण छिपा नहीं रहता। **"न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते।"** इसी आशय को व्यक्त करने वाली संस्कृत कहावत है।

५. मन मांहि भावइ मूंड हलावइ।

अर्थात् मन को अच्छा लगता है किन्तु मस्तक हिलाकर निषेध करता है।

६. बिल्ली भागइ छीकउ त्रूटउ, घीय ढल्यो तउ मूंगां मांहे।

अर्थात् बिल्ली के भाग्य से छींका टूट गया, घी बिखरा तो भी मूँगों में ही।

७. कह कवि बइसइ ऊंट ।

अर्थात् न जाने ऊँट किस करवट बैठे ? यह एक बड़ी व्यापक कहावत है जो भारतवर्ष की अनेक प्रादेशिक भाषाओं में भी पाई जाती है ।

८. **मूआं का क्या मारिये । "मृतस्य मरणं नास्ति"**, ऐसी ही एक संस्कृत लोकोक्ति है ।

९. दूज वूठ अलखामणउ मरई न मांचउ छंडहरे ।

अर्थात् न मरता है, न चारपाई छोड़ता है ।

"पुरन्दर चउपई" कोई कहावतों का संग्रह-ग्रन्थ नहीं है । इसमें जम्बू द्वीप के विलासपुर नामक नगर में राज्य करने वाले सिंह रघुराय के पुत्र पुरन्दर की कथा कही गई है और बीच-बीच में अनेक लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग हुआ है ।

इस युग के अन्य कवियों और लेखकों में ईसरदास, पृथ्वीराज, कुशललाभ, जगाजी, कृपाराम, बाँकीदास तथा महाकवि सूर्यमल्ल आदि के नाम प्रसिद्ध हैं । ईसरदास की **"हालां झालां रा कुंडलियां"** के निम्नलिखित पद्य कहावतों की ही भाँति प्रचलित हैं—

१. **मरवां मरणो हक्क है ऊबरसी ल्लांह ।**
सादुरसां रा जीवणा थोड़ा ही भल्लांह ॥

अर्थात् मृत्यु वीरों का अधिकार है, उनकी बातें रह जायेंगी । सत्पुरुषों का थोड़ा जीना ही अच्छा है ।

२. **केहर केस भगंम मण, सरणाई सुहड़ांह ।**
सती पयोहर क्रपण धन, पड़सी हाथ मुवांह ॥

अर्थात् सिंह के केश, सर्प की मणि, योद्धा का शरणागत, सती के स्तन और कृपण का धन, मरने पर ही दूसरों के हाथ पड़ेंगे ।

दूसरा दोहा अपभ्रंश के ग्रन्थों में भी मिलता है । इससे स्पष्ट है कि कवि ने इसे परम्परा-प्राप्त साहित्य से ही ग्रहण किया है ।

राठोड़ राज पृथ्वीराज की प्रसिद्ध कृति **"वेलि क्रिसन रुकमणी री"** में कहावतों का प्रायः अभाव है । राजस्थानी में **"भला भली प्रिथमी छै"** एक कहावत है जिसका अर्थ यह है कि इस पृथ्वी पर एक से एक बढ़कर महापुरुष हैं । केवल इस एक कहावत का संकेत 'वेलि' के निम्नलिखित दोहले में मिलता है—

सरिखां सूं बलभद्र लोह साहियै, वड़फरि उछजतै विरुधि ।
भलाभली सति तोई भंजिया, जरासेन सिसुपाल जुधि ॥

कुशललाभ की **"ढोला मारू री चौपई"** और **"माधवानल कामकंदला"** बहुत लोकप्रिय रचनाएँ हैं । इन दोनों में से कहावती पद्यों के कुछ उदाहरण लीजिए—

ढोला मारूरी चौपई

१. **असत्री पीहर नर सासरै, संजमीयां सहवास ।**
एता होमै अलखामणा, जो मांडै घरवास ॥

अर्थात् स्त्री पीहर और पुरुष ससुराल रहने लगें, संयमी सहवास करने लगें तो ये अप्रिय हो जाते हैं।

माधवानल कामकंदला

२. दुर्बल नइं बल राय नूं, मूरख नइं बल मोन्य।
बालक बल रोवा तणूं, तस्कर बल नइं शौन्य ॥[1]

अर्थात् दुर्बल को राजा का, मूर्ख को मौन का, बालक को रुदन का और चोर को शून्यता का बल रहता है।

३. रुदया भींतरि रही रडउं, चोर तणी जिम माय।

अर्थात् चोर की माँ हृदय के भीतर ही रोती है।

कहीं-कहीं ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं जिन्हें संस्कृत-सूक्तियों की छाया कहा जा सकता है। जैसे—

जू कइरइं नहू पानडूं फूल नहीं वट वृक्ष।
तु सिउ दोस वसंतनउ, सरयु तेह समक्ष ॥
आदित्य आंखि जु विश्वनी, ऊघाडण अ आंक।
थासिइ अन्ध उलूक तु, सूरिजनु स्यु वांक ॥[2]

अर्थात् करील में यदि पत्ते न हों, वट-वृक्ष में फूल न हों तो इसमें वसन्त का कोई दोष नहीं। इसी प्रकार उल्लू को यदि दिन में नहीं दिखाई पड़े तो इसमें विश्व के लिए चक्षु स्वरूप सूर्य का क्या दोष है ?

जगाजी द्वारा रचित वचनिका तथा उनके कवित्तों में कहावतों का प्रयोग नहीं मिलता। कवित्तों में कहीं-कहीं "मिटं न लेख करम्म रो" जैसी पंक्तियाँ मिल जाती हैं।

राजिया के सोरठे और कहावतें—कहावतों के प्रयोग की दृष्टि से कृपाराम का नाम सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इनका रचना काल सं० १८६५ के आस-पास है। ये जोधपुर राज के गाँव खराड़ी के निवासी खिड़िया शाखा के चारण थे। बड़े होने पर ये सीकर के रावराजा लक्ष्मणसिंह के पास चले गये और अन्त समय तक वहीं रहे। राजिया के नाम से जो सोरठे राजस्थान में प्रचलित हैं, वे कृपाराम के बनाये हुए हैं। राजिया इनका नौकर था। उसी को सम्बोधित करके ये सोरठे कहे गये हैं।[3] इन सोरठों के कारण कवि की अपेक्षा भी रजिया का नाम अधिक विख्यात हो गया है।

---

१. मिलाइये :

क. विभूषणं मौनमपण्डितानाम्।
ख. बालानां रोदनं बलम् ॥

२. मिलाइये :

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोलूकोऽप्यवलोक्यते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
धारा नैव पतंति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥

३. राजस्थानी भाषा और साहित्य (डा० मोतीलाल मेनारिया); पृष्ठ १६५।

इन सोरठों की भाषा सरल, रोचक और उपदेशप्रद होने के कारण राजपूताने के निवासी प्रायः इन सोरठों को बोलते देखे जाते हैं। शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जिसे राजिया के दो-चार सोरठे याद न हों। राजाओं और सरदारों की सभा में राजिया में सोरठे मौके ब मौके सुने जाते हैं। साधारण लोग इन्हें सांसारिक व्यवहार में अच्छी तरह नित्य प्रयोग करते हैं। वेस्टर्न राजपूताना स्टेट्स के भूतपूर्व ब्रिटिश रेज़िडेण्ट कर्नल पाउलट साहब इन सोरठों पर इतने मुग्ध थे कि उन्होंने बड़ी मेहनत से जितने भी सोरठे मिल सके, उनका संग्रह कर अँग्रेजी भाषा में अनुवाद किया था। उक्त रेज़िडेण्ट साहब इन सोरठों की तारीफ में कहा करते थे कि **"मारवाड़ी भाषा के साहित्य में राजिया के सोरठे अमूल्य वस्तु हैं।"**[1]

राजिया के सोरठों में अनेक सोरठे तो ऐसे हैं जिनमें लोक-प्रचलित कहावतों के प्रयोग से सोरठों में चमत्कार आ गया है, अनेक सोरठे ऐसे भी हैं जो अपने चमत्कार के कारण राजस्थान में कहावतों की भाँति प्रयुक्त होने लगे हैं। पहले प्रकार के सोरठों के कुछ उदाहरण लीजिये—

कहणी जाय निकाम, आछोणी आंणी उकत।
दांमा लोभी दांम, रंजे न बातां राजिया ॥५७॥

अर्थात् हे राजिया ! पैसे के लोभी के सामने अच्छी-अच्छी उक्तियाँ पेश करके भी कहा हुआ व्यर्थ होता है, क्योंकि वह बातों से प्रसन्न नहीं होता, पैसे से होता है। **"दमड़ां को लोभी बातां सूं कोनी रीझै"** राजस्थान की एक प्रसिद्ध कहावत है जिस का उक्त पद्य के उत्तरार्द्ध में प्रयोग हुआ है।

डूंगर जलती लाय, जोवै सारो ही जगत।
प्राजलती निज पाय, रती न सूझै राजिया ॥६९॥

"डूंगर बलती दीखै, पगां बलती कोनी दीखै" इस कहावत ने ही उक्त सोरठे का रूप धारण कर लिया है। इसी प्रकार निम्नलिखित सोरठे का पूर्वार्द्ध राजस्थान की एक कहावत ही है—

एक जणे को भार, सात पांच की लाकड़ी।
तैसे ही उपकार, राम मिलण ने राजिया ॥१२६॥

निम्नलिखित सोरठे अपनी सरल एवं चमत्कारमयी अभिव्यक्ति के कारण राजस्थान में लोकोक्तियों की भाँति ही व्यवहृत होते हैं—

नहचै रहो निसंक, मत कीजे चल विचल मन।
ऐ विधना रा अंक, राई घटे न राजिया ॥८२॥

इस सोरठे का उत्तरार्द्ध एक कहावत ही समझिये जिसका अभिप्राय यह है कि विधाता के अंक राई भर भी नहीं घटते। नीचे लिखे सोरठे भी लोगों द्वारा बहुधा सुने जाते हैं—

मतलब सूं मनवार, नौत जिमावै चूरमा।
बिन मतलब मनवार, राब न पावै राजिया ॥९०॥

---

१. राजिया के सोरठे (श्री जगदीशसिंह गहलोत) भूमिका; पृष्ठ १।

अर्थात् मतलब होने पर संसार 'चूरमा' जिमाता है, बिना मतलब 'राब' भी नहीं मिलती।

समझणहार सुजाण, नर ओसर चूके नहीं।
ओसर रो अवसाण, रहे घणा दिन राजिया ॥१॥

अर्थात् समझने वाला अवसर को नहीं चूकता, अवसर का अहसान बहुत दिनों तक रहता है।

राजिया के सोरठों की भाँति नाथिया आदि के सोरठों में भी स्थान-स्थान पर कहावतों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणार्थ—

१. **बिकतां लगै न बार, बोलै जिण रा बूबला।**
अणबोलां री ज्वार, निरखै कोय न नाथिया ॥

अर्थात् बोलने वालों के बूबले बिकते भी देर नहीं लगती और न बोलने वालों की ज्वार की तरफ़ भी कोई नहीं देखता।

२. **अदघट करै अवाज, नहिं कर भरियां नाथिया।**

अर्थात् आधा खाली घड़ा आवाज़ करता है, भरा हुआ नहीं।

३. **तातो लीजै तोड़, बांण्यो अर बीजो बड़ो।**

अर्थात् बड़ा जब गरम हो, तभी उसे काम में ले लेना चाहिए, इसी प्रकार बनिये से भी अवसर पर फायदा उठा लेना चाहिए।

संवत् १८५८ की संबोध अष्टोत्तरी से यहाँ जैन कवि ज्ञानसार (सं० १८००-१८९८) के भी कुछ कहावती सोरठे उद्धृत किये जा रहे हैं—

१. **पहरीजें पर प्रीत, खाईजै अपनी खुसी।**

अर्थात् जैसा दूसरों को अच्छा लगे, वैसा पहनना चाहिए और जैसा अपने को अच्छा लगे, वैसा खाना चाहिए।

२. **अब फाटो आकाश, कह कारी कैसी करें।**

अर्थात् अब आकाश फट गया, पैबन्द कैसे लगे ?

३. **करिवर केरो कान, तरल पूंछ तुरियां तणी।**
पीपल केरो पान, निचला रहै न नारणा ॥

अर्थात् हाथी का कान, घोड़े की तरल पूँछ और पीपल का पत्ता, ये निश्चल नहीं रहते।

४. **ताता चढ़ण तुरंग, भांत भांत भोजन भला।**
सुथरा चीर सुरंग, नहीं पुण्य बिन नारणा ॥[1]

अर्थात् तीखे घोड़ों की सवारी, भाँति-भाँति के अच्छे भोजन, साफ़-सुथरे सुरंगे वस्त्र, ये बिना पुण्य नहीं मिलते।

नारणा के उक्त सोरठों में वैण सगाई के रक्षार्थ ही **"अब फाटो आकाश, कह कारी कैसी लागै"** के स्थान में **"अब फाटो आकाश कह कारी कैसी करें"** का प्रयोग हुआ है।

१. बिड़ला सैंट्रल लाइब्रेरी, पिलानी की एक हस्तलिखित प्रति से साभार उद्धृत

राजस्थानी साहित्य में कविराजा बांकीदास का नाम बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है। आपकी लिखी हुई **"बांकीदास री ख्यात"** राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसमें स्थान-स्थान पर **"ओखाणों"** और कहावती पद्यों का प्रयोग हुआ है। बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी की हस्तलिखित प्रति से कुछ उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

१. रायमल वेद मुहतो सोजत हुवो वीरमदेवजी रे कांम आयो सिर पड़िया जूझियो कबन्ध हुय बेटा नूं मारियो उण दिण रो उखांणो।

मुहतां माटी मार कां। घर रा गिणे न पार का। —वात संख्या २२४८

२. **"वारै बेटा राम रा, काज रा न कांम रा।**
जो नहीं होती रणछोड़, सारा बाजता हांडी फोड़।।" —वात संख्या २२८४

३. **आधी धरती भीम, आधी लोदरवे धणी।**
काक नदी छै सीम, राठोड़ां ने भाटियां।। —वात संख्या ७८४

४. पांच वकार सूं पंडित पूज्य होय वपु करि, वित्त करि, वाणी करि, विद्या करि, विनय करि। —वात संख्या २०१९

५. बीरबल की मृत्यु पर अकबर की उक्ति—

"हूँ बीरबल री लोथ कांधै लै बालतो तो उणरी चाकरी सूं उऋण होतो हूं।" — वात संख्या २४४६

"खुदा ताला री कृपा सूं बीरबल मोनूं मिलियो हो म्हांरा दिल मांहली बात बाहर आणतो दारू ज्यूं।" — वात संख्या २४४७

६. ऋषि कपाट जडि गुफा में बैठो हुतो। राजा जाय कह्यो—किवाड़ खोलो। जद ऋषि कह्यो—कुण है? राजा कह्यो—हूँ राजा हूँ। जद ऋषि कह्यो—राजा तो इन्द्र है। जद भोज कह्यो—किवाड़ खोलो, हूँ दाता हूँ। जत ऋषि कह्यो—दाता तो करण हुवो। जद भोज कह्यो—किवाड़ खोलो, हूँ क्षत्रिय हूँ। जद ऋषि कह्यो—क्षत्रिय तो अर्जुन हुवो। जद भोज कह्यो—खोलो किवाड़। ऋषि कह्यो कुण है? भोज कह्यो—मनुष्य है। ऋषि कह्यो—**मनुष्य तो धारापति भोज है।**[1] तो हाथ लगा बिनां खोलियां किवाड़ खुल जासी। यूं हिज हुवो।

महाकवि सूर्यमल्ल की भी अनेक पंक्तियां लोकोक्तियों की भाँति प्रचलित हुई हैं। यहाँ **"वीर सतसई"** से केवल दो उदाहरण दिये जा रहे हैं—

१. **इला न देणी आपणी।** —दोहा २३४
अपनी ज़मीन किसी को न देनी चाहिए।

२. **रण खेती रजपूत री।** —दो० ११८
युद्ध ही राजपूत की खेती है।

राजस्थान की ख्यातों और बातों में जो कहावती दोहे मिलते हैं, उनका

---

१. मिलाइये—नैव देवा अतिक्रामन्ति, न पितरो न पशवो, मनुष्या एवैके अतिक्रामन्ति।
—शतपथ ब्राह्मण। २-४-२-६

विवेचन मैंने "राजस्थान के ऐतिहासिक प्रवाद" तथा "राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान" में विस्तारपूर्वक किया है।

(ग) आधुनिक राजस्थानी

आधुनिक राजस्थानी साहित्य में कहावतों के विशेष प्रयोग की दृष्टि से दो पुस्तकों के नाम उल्लेखनीय हैं। "एक है श्री भीमराज द्वारा रचित "मूंघा मोती" और दूसरी है पंडित मांगेलालजी चतुर्वेदी द्वारा लिखित "मरु भारती"। दोनों में से कहावतों के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

(अ) मूंघा मोती

१. पाड़ोसी रो पूत, भलो तपाणो तावड़ं। —सोरठा १०३
पड़ौसी के लड़के को धूप में तपाना ही अच्छा।

२. भली राड़ स्यूं बाड़, मंगल नाकै रंवणो। —सोरठा १०७
झगड़े से बाड़ अच्छी है।

३. मिलतारू रो काम, बातां मांभ्रीं नीसरं। —सोरठा ११८
मिलने-जुलने वाले का काम बातों ही बातों में निकल जाता है।

४. मंगल् बीनें जाय, जीनें झुकतो पालड़ो। —सोरठा १३२
जिधर पलड़ा झुकता है, उधर ही लोग जाते हैं

५. जलमें जद जा दीख, पूतां रा पग पालणं। —सोरठा १४६
पूत के पैर पलने में ही दिखलाई पड़ जाते हैं।

६. मंगल् मिटै न भूख, मन रा लाडू खाण स्यूं। —सो० १६०
मन के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती।

७. होय अंधेरी रात, न घी घाल्यौ छानौ रहवं। —सो० १६२
अंधेरी रात में भी घी डाला हुआ छिपा नहीं रहता

८. तपं तावड़ो लोक, मंगल् बरखा भी जदी।[1] —सो० २०२
जब संसार धूप में तप लेता है, तभी वर्षा होती है।

९. मंगल बालक जीत, खेलण में राजी रवं। —सो० २०८
बालक खेलने से ही प्रसन्न रहते हैं।

१०. दुबले नै दो साढ़, जाट बिचारं खेत में। —सो० २१२
दुबली और दो आषाढ़।

११. गधो न घोड़ो होय, ठम ठम कर भाऊं चलो। —सो० २३ हास्य व्यंग्य
ठम-ठम कर चलने से गधा घोड़ा नहीं हो सकता।

१२. छाज निजी बंधेज, बोल्यो सो तो बोलियै।
मंगल सोऊ वेज, बोलण लागी छालणी॥ —सो० २४ हास्य व्यंग्य
छाज तो बोले सो बोले लेकिन चलनी भी जिसमें सौ छिद्र होते हैं, बोलने लगी।

१. पाठान्तर—
"आडंग कर गरमी करै, जद बरसण री आस।"

इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर कहावती लोक-विश्वासों का भी उल्लेख हुआ है।

उदाहरणार्थ—

१. तड़कै तड़कै आय कांव कांव कागो करे।
मंगल यूं के ज्याय, पत्तर मिनखर आयसी॥ —सो० ६ फुटकर

कौए का बोलना प्रिय के आगमन की सूचना देता है।

२. पग में चालै खाज, जूती पर जूती पड़ै।
मंगल कैंग्री काज, करणी पड़ै मुसाफिरी॥

पग में खाज चलने और जूती पर जूती पड़ने से यात्रा करनी पड़ती है।

३. हाथ हथेली खाज, मंगल चालै मिनख रे।
कठै सेयं ही र भाज, रिपिया आसी तावला॥

हथेली में खुजलाहट इस बात की द्योतक है कि शीघ्र ही कहीं से रुपया आयेगा।

४. हिचकी बारूंबार, आय र हलकारै जियां।
वे ज्यावै समचार, मंगल कैंरो याद रो॥

बारंबार आने वाली हिचकी यह समाचार दे जाती है कि कोई स्मरण कर रहा है।

ऊपर दिये हुए सोरठे राजिया, भैरिया, किसनिया आदि की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं।

(आ) मरु-भारती

१. "दांत ! न वीज्यो काट थे, वसी बीच में आय।"
"निचली रीजे जीभड़ी, देगी तुं तुड़वाय॥" —पृ० २२

२. पानी तो बहतो भलो, नदी हो कि नहर।
भोजन मा के हाथ को, होय भलां ही जहर॥ पृ० ४३।

३. "करसी छोरी काणती ! कुण तेरै सें ब्याह ?"
"घरां खिलास्यूं बीर नें, वे दूल्हे के डाह॥" —पृ० ४८

४. नीवो नर किंचित् पढ्यो, कह "मैं कीं सें घाट।"
हुयो पसारी ऊनरो, लै हलदी की गांठ॥ —पृ० ५१

५. तुलसी सूर सुकाव्य की, दोय ऊजली आंख।
"मूंग मोठ में कुण बडो ?" करै कौन यह आंक ? —पृ० ५३

६. फाड़ै सो मण दूध न, काचर को एक बीज। —पृ० ५५

७. जासी करणी आपकी, के बेटो के बाप। —पृ० ७१

अर्थात् जीभ ने दाँतों से कहा—'तुम्हारे बीच में आ बसी हूँ, कहीं काट न देना।' दाँतों ने उत्तर दिया—'तू चुपचाप रहना, ऐसा न हो कि अपनी चंचलता से हमें तुड़वा दे।' पानी बहता हुआ ही अच्छा है, चाहे नदी हो, चाहे नहर। भले ही विष हो, भोजन तो माँ के हाथ का ही अच्छा है। किसी कानी लड़की को यह पूछने पर कि तुम्हारे साथ कौन शादी करेगा, उसने उत्तर दिया—'अपने भाई को मैं घर में खिलाऊँगी।'

छोटा मनुष्य जब कुछ पढ़ जाता है तो कहने लगता है कि अब मैं किससे कम हूँ ? चूहा हल्दी की गाँठ लेकर पंसारी बन गया। तुलसी और सूर काव्य की ये दो आँखें हैं। मूँग और मोठ में कौन बड़ा है ? यह मूल्याङ्कन कौन करे ? काचर के एक बीज से सौ मन दूध भी फट जाता है। चाहे पुत्र हो, चाहे पिता, सब को अपने-अपने कर्मों का फल मिलता है।

"मूँधा मोती" तथा "मरु भारती" दोनों में राजस्थानी लोकोक्तियों की भरमार है। कहीं से पृष्ठ खोलिए, कोई न कोई कहावत हाथ लग ही जाती है। "मूँघां मोती" की रचना जहाँ ठेठ राजस्थान में हुई है, वहाँ "मरु भारती'; की भाषा हिन्दी के अधिक निकट है जैसा कि "करे कौन यह आँक" जैसे प्रयोगों द्वारा स्पष्ट है।

(२) **लोक-साहित्य**—"सुण गूजर का डावड़ा, यो पोथी को ज्ञान" कह कर जब पण्डित ज्योतिषी ने लोक-ज्ञान की अवहेलना की तो गूजर के लड़के ने उत्तर दिया था।

"दृष्टीगोचर ज्ञान सब, लोक तणो उनमान,
कह गूजर को डावड़ो, पोथी लिखो निकाम।
लोक तणो उनमान ले, दियो ग्रन्थ में मेल।"

अर्थात् जितना ज्ञान दृष्टिगोचर होता है, वह लौकिक अनुमान मात्र है। जो पुस्तकों में लिखा है, उसका महत्त्व क्या है ? वह तो बेकार है। सच तो यह है कि जो लोक-ज्ञान है, उसे ही तो पुस्तकों में रख दिया गया है।

आज जब कि लोक-साहित्य का वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा है, उसके महत्त्व के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। लोक-साहित्य के विभिन्न अंगों के अन्तर्गत कहावतों का भी अपना विशिष्ट स्थान है। विद्वानों द्वारा रचित साहित्य में कहावतों का उतना प्रयोग नहीं देखा जाता जितनी प्रचुरता के साथ उनका प्रयोग लोक-साहित्य में देखने को मिलता है और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि कहावतें वस्तुतः लोकोक्तियाँ हैं, सच्चे अर्थ में लोक की उक्तियाँ हैं।

लोकोक्तियाँ पवाड़ों, लोक-गीतों, वार्ताओं तथा ख्यालों आदि में विशेषतः उपलब्ध होती हैं।

पवाड़े और कहावतें—राजस्थानी लोक-साहित्य में पाबूजी तथा निहालदे सुलतान के पवाड़े अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। पाबूजी के पवाड़ों में प्रयुक्त कुछ कहावतें लीजिए—

१. कोइ बिना तो बजाई रै हाथां री ताली ना बजै।
बिना बजाई हाथों की ताली नहीं बजती।
२. छोटै तो मुखड़ा ह रै थे मोटी वातां मत करो।
छोटे मुँह बड़ी बात मत करो।
३. सूरां तो नारां का रै वै वार कर्योड़ा ना फिरै।
शूरवीरों और सिंहों के वार वापिस नहीं जाते।
४. बींन बिना सूनी लागै जुग में जिण बिद जांन।
जिस प्रकार दूल्हे के बिना बरात सूनी लगती है।

५. मूल हूँ तो प्यारो थांनै लागै ब्याज ।

कोइ प्यारी तो बेटा हूं लागै थानै पेमा डीकरी ।

मूल से ब्याज आपको प्रिय लगता है, पेमा लड़की बेटे से भी प्रिय लगती है ।

६. कोइ बेटी केरो दुखड़ो रै माता की छाती दलमलै ।

लड़की के दुःख से माता का हृदय विदीर्ण हो जाता है ।

७. कोनी म्रो गरूजी म्हारै माय र बाप ।

अम्बर तो पटक्योजी गुरूजी धरती झेलियो ।[1]

अर्थात् मेरे माता-पिता कोई नहीं; अम्बर ने मुझे डाल दिया और धरती ने झेल लिया ।

बिड़ला एज्यूकेशन ट्रस्ट के राजस्थानी शोध विभाग द्वारा निहालदे सुलतान के पवाड़ों का भी संग्रह किया गया है । निहालदे सुलतान के ५२ पवाड़े प्रसिद्ध हैं जो अभी प्रकाश में नहीं आये हैं । पवाड़ों की हस्तलिखित प्रति से कुछ कहावतें यहाँ उद्धृत की जा रही हैं ।

१. अब घर आज्या होणी वैरण ना टलै ।

अर्थात् अब घर आ जाओ, होनहार नहीं टलती ।

२. कमधजराव ने जब सुलतान से पूछा कि तुम्हारे माता-पिता कौन हैं और तुम कहाँ के रहने वाले हो ? तो उसने उत्तर दिया ।

"अम्बर भी पटक्या या झेल्या माता धरतरी"

कोन्या कहिये मायी बाप ।

भिखा किसी में हो राजा, मत पड़ो ।

मुश्कल कटता दिन और रात ।

इतनी भी कह के मणधारी रोवण लाग्या ।

उभल्यां समदर जी डटता नांय ।।

अर्थात् मैं अनाथ हूँ, आसमान ने मुझे नीचे डाल दिया और धरती माता ने सँभाल लिया । हे राजन् ! विपत्ति किसी पर न पड़े, विपत्ति के दिन-रात मुश्किल से कटते हैं । इतना कहकर वह रोने लगा । सच है, समुद्र जब मर्यादा का उल्लंघन करके बहने लगता है, तब वह किसी के रोके नहीं रुकता ।

ऊपर के प्रसंग की पंक्तियाँ राजस्थान की प्रचलित लोकोक्तियाँ हैं ।

३. **"पूत विराणा हे राणी दोरा राखणा ।"**

अर्थात् हे रानी ! पराये पूत का रखना बड़ा दुष्कर है । कमधजराव की रानी के प्रति यह सुलतान की उक्ति है ।

लोक-गीत और कहावतें—राजस्थान के लोक-गीतों में भी स्थान-स्थान पर कहावतों का प्रयोग दृष्टिगत होता है किन्तु उनमें भी जहाँ कथा का निबन्धन होता है, कहावतें अधिकता से काम में लाई जाती हैं । यही कारण है कि लम्बे ऐतिहासिक गीतों

१. ये उद्धरण श्री गणपति स्वामी द्वारा संगृहीत पवाड़ों में से लिये गये हैं जिनकी हस्तलिखित प्रति बिड़ला सैंट्रल लाइब्रेरी पिलानी के सौजन्य से प्राप्त हुई है ।

में लोकोक्तियों की दृष्टि से अध्ययन की विशेष सामग्री मिल जाती है। कुछ उदाहरण लीजिये—

१. हरसा बीर मेरा रै
सेलां रा भर ज्यां गैरा घाव
जामण का रै जाया
बोलां रा घाव ज जुग में ना भरैं।

अर्थात् भालों के घाव भर जाते हैं, बोली के घाव नहीं भरते।

२. पाप्यां रो रै जुग में सीरी को नहीं।[1]

अर्थात् संसार में कोई भी पापियों का पाप बँटाने वाला नहीं।

३. नांय भरोसो के करैं स कोइ या रांगड़ की जात।

अर्थात् यह राँगड़ की जाति है, इसका कोई भरोसा नहीं, यह क्या करे ?

४. नहीं मरे की बूटी।[2]

अर्थात् मरे की कोई औषधि नहीं।

५. सुण्योड़ी हो ज्या भूठ तुम्हारी नणदूली ये।
कांन सुण्योड़ी होज्या बा भूठ ये॥
कोइ आंख्यां तो देख्योड़ी ये नणदल भूठी ना हुवै जी।[3]

अर्थात् कानों से सुनी हुई बात भूठी हो सकती है, किन्तु आँखों देखी बात भूठी नहीं होती।

ऐतिहासिक गीतों के अलावा, राजस्थान के अन्य लोक-गीतों से भी कुछ कहावती उक्तियों के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

१. ऊजड़ खेड़ा भंवरजी, फेर वसै जी।
हांजी ढोला, निरधण रै धन होय।
जोवन गयां पाछो कोन्या बावड़ै जी।
ओजी थां ने लिखूं बारम्बार।
प्यारा घर आवजो, क थाँरी धण एकली जी। —पृष्ठ ३२५

२. कागद हो तो वांचूं लूं, करम न वांच्यो जाय। —पृष्ठ ३६६

३. बैंगण तो काचा भला, पाकी भली अनार।
प्रीतम तो पतला भला, मोटा जाट गिंवार॥ —पृष्ठ ३६७

४. घर घोड़ी पिव अचपलो, वैरीवाड़े वास।
नित उठ खड़कै ढोलड़ा, कद चुड़ले री आस॥ —पृष्ठ ३६८

५. कै कोम्रो जागै राजा बादस्या,
कै कोम्रो बालक की अे जी अै माय।

१. जीण माता रो गीत।
२. डूंगजी जवारजी रो गीत।
३. तेजाजी रो गीत।
ये गीत श्री गणपति स्वामी द्वारा संगृहीत हैं और बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं।

कै कोयी जागै तिरिया अेकली जी ।। —पृष्ठ ३७४

६. आगे बाबोजी फूटरा घणा फेरू टाट घड़ायली। —पृष्ठ ४२६

७. बिणजारी अे लोभण, गुड़ डलिया में जाय।
विमठ्यां तो चिमठ्यां जावै खांडड़ो, बिणजारी अे।। —पृष्ठ ५०८

८. गहणो धायां रो सिणगार अर भूखां रो आधार। —पृष्ठ ५०६

६. सिंघ होसी सिंहणी को रै जाये। —पृष्ठ ५४१

१०. नार मुइ या बुरी हुई, टाबर बारा जी बाट। —पृष्ठ १४४

११. जलाजी मारू, पुरसां मांयलो पुरस भलो राठोड़ो हो।
जलाजी मारू, राण्यां मांयली रणी भली भटियाणी हो।
जलाजी मारू, छींटां मांयली छींटा भली मुलतानी हो।
जलाजी मारू, रुपियां मायलो, रुपयो भलो गंगासाही हो।
जलाजी मारू, सहरां मांयलो सहर भलो बीकाणै हो।—पृ० १५८-६६

१२. स्यालू सांगानेर का, जी बना म्हारा, अंगियां कोर जड़ाय।।—पृष्ठ १७१

कभी-कभी लोक-गीतों में ऐसी पंक्तियाँ भी आती हैं जिन्हें कहावतमूलक कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ—

१. तीज तिव्हारां मा बावड़ो जं। —पृष्ठ ६४

२. पोह महीने पालो पड़सी, खालड़ी रो खोह।[1] —पृष्ठ ५११

लोक-कथाएँ और कहावतें—कहावतों के अध्ययन की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण हैं लोक-कथाएँ। कथा कहने वाला बीच-बीच में कहावतों का प्रयोग करता चलता है जिससे कथा का आकर्षण कई गुना बढ़ जाता है और श्रोताओं पर प्रभाव भी बहुत पड़ता है। राजस्थानी की दो प्रसिद्ध वार्ताओं से कहावतों के उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं—

"रतना हमीर री वारता"

१. कपूर नूं घणो ही छिपावै तो पिण सुगन्ध आवै ही आवै। —पृष्ठ ३१

कपूर को चाहे जितना छिपाओ, उसमें से सुगन्ध आती ही है।

२. कपटी पर त्रिय संग करै, पर हर निज त्रिय प्रीत।
घर रा जिके न घाट रा, रजक स्वान री रीत।। —पृष्ठ ७१

अपनी स्त्री से प्रीति छोड़कर जो कपटी पर-स्त्री के साथ प्रीति करता है, वह धोबी के कुत्ते की तरह न घर का रहता है, न घाट का।

३. कूप भेक जाणै किसूं, बारधरो बिस्तार। —पृष्ठ ७०

कूप-मण्डूक समुद्र के विस्तार को नहीं जानता।

४. जीहों चाखी दाख जिन न रुचै नीमोलीह। —पृष्ठ ६१

जिन्होंने द्राक्षा का आस्वादन किया है, उन्हें 'निबौरी' नहीं रुचती।

---

१. लोक-गीतों के उद्धरण 'राजस्थान के लोक-गीत' से लिये गये हैं जिनका सम्पादन श्री रामसिंह, श्री सूर्यकरण पारीख तथा श्री नरोत्तमदास स्वामी ने कई वर्ष हुए किया था। उद्धृत पंक्तियों के अर्थ के लिए भी यही संस्करण द्रष्टव्य है।

"पन्ना वीरम दे री वारता"

१. उडगन ऊगं नवलखां, छिप्यो न रहसी चन्द । —पृष्ठ ३४

२. तीजां पुंगल देस री गवरल उदिया दीप ।
दिली दसेरो देखिये, मोती समंदां सीप ।। —पृष्ठ २१

३. नेह की रीत तो काचो तागो छ ँ । —पृष्ठ ६६

४. भोलो अति भूंडो भलो, प्यारो घर को पीव ।
देख पराई चोपडी, क्यूं तरसावं जीव ।। —पृष्ठ ६७

५. शिव बिनां इस्यो कुंण जको जहर री घूंट जारं । —पृष्ठ ८०

अर्थात् नौ लाख तारों के उदित होने पर भी चन्द्रमा छिपा नहीं रहता। पूंगल की तीज, उदयपुर की गणगौर, दिल्ली का दशहरा और समुद्री सीप के मोती प्रशस्य होते हैं। प्रीति की रीति तो कच्चे धागे के समान है। अपने घर का प्रिय यदि भोला और अत्यन्त भौंडा भी हो तो भी वह अच्छा है। परायी चुपड़ी हुई रोटी को देखकर जी मत ललचाओ। शिव के बिना ऐसा कौन है जो विष को पचा सके ?

ऊपर की वार्ताएँ साहित्यिक शैली में लिखी हुई वार्ताएँ हैं, इसलिए उनमें यदि कहावतों की प्रचुरता न भी मिले तो कोई अचम्भे की बात नहीं किन्तु राजस्थान में जो असंख्य लोक-कथाएँ प्रचलित हैं, उनमें किसी भी लोक-कथा को पढ़िये-सुनिये, कहावतें अनायास हाथ लग जायेंगी।

राजस्थान के लोक-काव्य और कहावतें— नरसी को माहेरो' तथा पदम भक्त का बनाया हुआ 'रुक्मिणी' मंगल ये दो राजस्थानी भाषा के प्रसिद्ध लोक-काव्य हैं। 'माहेरो' में कहीं-कहीं कहावती उक्तियाँ मिल जाती हैं। जैसे—

१. मायडली बिना तो कांइ बाप को हेज । —पृष्ठ ५४

२. पहले केश लचाय कं, पछं वढ़ायो चोर ।
आवत लाज गनाय कं, आखर जात अहीर ।।

किन्तु कहावतों के प्रयोग की दृष्टि से रुक्मिणी मंगल का विशेष महत्त्व है। महाराज पृथ्वीराज की बनाई हुई 'किसन रुकमणी री' का भी विषय यही है जो 'रुक्मिणी मंगल' का है किन्तु साहित्यिक शैली अथवा डिंगल में लिखी जाने के कारण वेलि में कहावतों का प्रायः अभाव है जबकि 'रुक्मिणी मंगल' में कहावतों की प्रचुरता है जैसा कि नीचे के दिये हुए उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत होगा—

१. सबलां सेती सगपण कीजे, पाणीं पहलो पाजे । —पृष्ठ १०

२. येकज घर में दो मता, भली काय सें होय ।
पुरुष जु पूजं देवता, भूत जु पूजं जोय ।। —पृष्ठ १३

३. समंदरां सूं सीर पड्यो जब नाडूल्यां कुण न्हावं । —पृष्ठ ३८

४. मानसरोवर हंसा देख्यां काग निजर नहिं आवं । —पृष्ठ ३८

५. मन मोती धन नैन को जाणो येक सुभाय ।
फाटें पीछे नां मिले, कोट ज करो उपाय ।। —पृष्ठ ४०

६. डूंगरिया को वाहलो, ओछां तणो सनेह ।
बहतां बहं उतावला, तुरतहि आवं छेह ।। —पृष्ठ ४१

७. ब्याव वैर घर प्रीत लायक बराबर सूं कीजिए। —पृष्ठ १२
८. साठी बुद्ध गई अब थांकी। —पृष्ठ १५
९. झालर बाज्यां हरि भगत, रिण बाज्यां रजपूत।
इतनी सुण नहिं उठ चलै, आठूं गांठ कपूत॥ —पृष्ठ ९२
१०. घरै हांण हांसी जगमांही। —पृष्ठ १०४
११. छठी रात का लेख टलैं नां दाणा पाणीं ल्याया। —पृष्ठ १०४

अर्थात् सबलों से सम्बन्ध करना चाहिए, पानी आने के पहले पाल बाँधनी चाहिए। एक ही घर में जहाँ दो मत हों, पुरुष देवता को पूजता हो और स्त्री भूत को पूजती हो, वहाँ कुशल कहाँ से हो? समुद्रों में जहाँ हमारा हिस्सा हो, वहाँ नालों में कौन स्नान करे? मानसरोवर के हंस देख लेने पर कौवों पर दृष्टि नहीं जाती। मन, मोती और नेत्रों का एक ही स्वभाव होता है। करोड़ों उपाय चाहे करलो, फटने पर ये नहीं मिलते। पर्वत का नाला और तुच्छ मनुष्यों का स्नेह प्रवाहित होते समय तो वेग से बहते हैं किन्तु शीघ्र ही उनका अन्त हो जाता है। विवाह, वैर और प्रीति बराबर वालों से करना चाहिए। साठ वर्ष की अवस्था में बुद्धि नष्ट हो जाती है। झालर बजने पर हरि-भक्त और युद्ध का डंका बजने पर यदि राजपूत उठकर नहीं चलें तो वे दोनों ही पूर्णतः कुपुत्र हैं। घर में हानि हो और संसार हँसे। छठो रात के लिखे लेख नहीं टलते।

राजस्थान के ख्याल और कहावतें—ख्याल एक प्रकार के लोक-नाटक हैं जिनका अभिनय खुले मैदान में होता है। राजस्थान के लोक-कवियों द्वारा रचित ख्याल सैंकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं। ख्यालों के रचयिताओं में चिड़ावा निवासी नानूलाल ने सर्वाधिक ख्याति प्राप्त की। उसके बनाये हुए लगभग ४०-५० ख्याल मिलते हैं। ये ख्याल लोक-प्रचलित राजस्थानी भाषा में लिखे गये हैं जिनमें कहीं-कहीं खड़ी बोली का पुट भी आ गया है। डिंगल की रचनाओं और इस प्रकार की लोक-कृतियों में आसानी से भेद किया जा सकता है। कुछ ख्यालों से यहाँ कहावतें उद्धृत की जा रही हैं जिनसे इस बात का सहज ही अनुमान हो सकेगा कि कहावतों के प्रयोग की दृष्टि से ये ख्याल कितने महत्त्वपूर्ण हैं।

शाहजादा को ख्याल

१. कांच कटोरो फूट्यो मोती जुड़ नहीं सकता कोय। —पृष्ठ १२
२. कुत्तो पूत कपूत बाईजी बुचकार्‌यो स्यामैं आवै। —पृष्ठ २८
३. केहर केश भुजंग मणि बिन मूया हाथ न आवै। —पृष्ठ १२
४. खर कूं आप खुवावो मिसरी जाणे वीष समान। —पृष्ठ २७
५. गुड़ देणें सें मरज्या जिसकूं विष काहे कूं देना। —पृष्ठ २७
६. ग्रह बिन घात भेद बिन चोरी शाहजादा ना होय। —पृष्ठ १०
७. चात्रक हो सो बंच कर निकलैं मूरख पांव फंसाव। —पृष्ठ १२
८. ठंडो लो तातै लो नैं सुण सूलतान का न्याय। —पृष्ठ २७

१. ऊपर के उद्धरण खेमराज श्री कृष्ण द्वारा प्रकाशित "नरसी मेहेता का बड़ा मामेरा" तथा "बड़ा रुक्मिणी मंगल" से दिये गये हैं।

ख्याल नल राजा को

पोंवै आभल को ख्याल

ख्याल छोटे कंथ को

ख्याल जगदेव कंकाली को

(५) बडा बडाई नां करें जी, बडा न बोलैं बोल ।
हीरा मुख सें कद कहै स है, लाख हमारा मोल ॥ —पृष्ठ १७

(६) बैरी मंगल पावणां अणकोक्या आवन्त । --पृष्ठ २०

सुलतान मरवण का भात का ख्याल

(१) औसर का चूका नै पिता मोसर कभी न पावता । —पृष्ठ ६९

(२) घुसण कुत्ता न खाय । —पृष्ठ ४४

चन्द्रभान का ख्याल

(१) काम पड्यां कर देवां जग में एक चणं दो दाल । —पृष्ठ ३

ढोल सुलतान न्ह्यालदे का ख्याल

(१) मालक को मालक कुण ? —पृष्ठ ८

(२) भाग पुरस का तेज छिपाया ना छिपैं । —पृष्ठ १४

(३) घर ज्वांई और भ्रात भैण घर ये दो स्वान समान । --पृष्ठ ३०

(४) गोली जात गुलाम काग की ठोक्यां रहै ठिकाणें ।
ठोक्यां रहै ठिकाणें चले वे तौर सें ।
गोलो मूंज बल खाय परायें जोर सें । पृष्ठ ५२ ।

काच, कटोरा और फूटा मोती, जुड़ नहीं सकते । कुत्ता और कुपुत्र पुचकारने से सामना करने लगते हैं । गधे को मिश्री खिलाओ तो भी वह उसे विष समझने लगता है । जो गुड़ देने से मर जाता हो, उसे विष क्यों दिया जाय ? बिना ग्रह के घात और बिना भेद के चोरी नहीं होती । चतुर बचकर निकल जाता है, मूर्ख अपने पाँव फँसा लेता है । ठंडा लोहा गरम लोहे को खा जाता है । पिश्ते, दाख और बादाम को छोड़ कर मूर्ख गाजर खाता है । स्त्री, पृथ्वी और धर्म पर जब संकट पड़ा हो तो प्राणों का बलिदान कर देना चाहिए । बंदर और अड़ियल घोड़ा पिटने पर ही वश में आते हैं । सिंह चाहे भूखा रह जाय, घास नहीं खाता ।

जो निरपराध को दोषी ठहराता है, उसे शाप लगता है । चतुर व्यक्ति से असली और नकली का भेद छिपा नहीं रहता । जब बात बन जाती है तो सभी साथ देते हैं, बिगड़ने पर कोई साथ नहीं देता । पेट भरने के लिए मनुष्य सौ-सौ पाखण्ड रचता है । कौआ होकर हंसिनी की ओर तके, यह अनुपयुक्त है । आवश्यकता पड़ने पर पुण्य और पाप की परवाह न कर सब बुरा व्यापार करने लगते हैं । इश्क के जाति नहीं होती । अनादरणीय मेहमान यम से भी बुरा लगता है । स्त्री हीनबुद्धि होती है, उसे डिगते देर नहीं लगती । धर्मराज के सामने रत्ती-रत्ती का हिसाब देना होगा । शूरवीर का पुत्र लाख वर्ष के वैर को भी नहीं भूलता । संसार में सात पदार्थ बड़े हैं—राज्य का भोग, घुड़सवारी, धन, संतान, भुजबल, भाई और सुन्दर—सुघड़ स्त्री । दुनिया में सत्पुरुषों की गाथाएँ हमेशा चलती हैं । जो हिम्मत करता है, उसकी भगवान सहायता करते हैं । इश्क, रोग, खाँसी और मद, ये छिपाये नहीं छिपते । बैलों की जोड़ी के बिना गाड़ी नहीं चलती, जूतियों की जोड़ी के बिना काँटा पैर में चुभता है । जोड़ी के बिना अकेला मोती सस्ते मोल बिकता है । बिना पके आम चूसने में नहीं आता ।

बिना बल के बुद्धि बेचारी समझी जाती है। वहम का कोई इलाज नहीं। छोटा छोटे मुख से छोटी ही बात करता है। जग में जीना सबसे बड़ा है। दातारों की बातें दातार ही समझते हैं। नाला समुद्र नहीं हो सकता। बड़े स्वयं अपनी प्रशंसा नहीं करते। हीरा कब कहता है कि मेरा मूल्य एक लाख है? वैरी और मेहमान बिना बुलाये आ जाते हैं। एक बार अवसर चूक जाने पर दुबारा हाथ नहीं लगता। भौंकने वाला कुत्ता काटता नहीं। काम पड़ने पर संसार में 'एक चना दो दाल' कर देंगे। मालिक का मालिक कौन? सौभाग्यशाली पुरुष का तेज छिपाये नहीं छिपता। ससुराल में जामाता का घर बनाकर रहना और बहिन के घर भाई का रहना श्वान के समान है। गुलाम और कौवा पिटने पर ही ठीक होते हैं। गुलाम और मूँज (रस्सी) पराये बल पर जोर खाते हैं।

ऊपर के पृष्ठों में राजस्थान के शिष्ट साहित्य और लोक-साहित्य में प्रयुक्त कहावतों पर एक विहंगम दृष्टि डाली गई है। अनेक बार शिष्ट साहित्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थों में ढूंढ़ने पर भी कहावतें नहीं मिलतीं जब कि लोक-साहित्य के सामान्य ग्रन्थों में अनायास कहावतें हाथ लग जाती हैं। कहावतों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण न होने के कारण ही शिष्ट साहित्य के बहुत से प्रसिद्ध ग्रन्थों को भी छोड़ना पड़ा है जब कि कहावतों के लिए उपयोगी होने के कारण शिष्ट तथा लोक-साहित्य से सम्बद्ध सामान्य ग्रन्थों को भी यहां विचारार्थ ले लिया गया है।

५. धर्म और जीवन-दर्शन

इस शीर्षक के अन्तर्गत ईश्वर, धर्म-भावना, शकुन, लोक-विश्वास तथा भाग्य आदि से सम्बन्ध रखनेवाली सभी प्रकार की कहावतों का समावेश किया जा सकता है। सबसे पहले ईश्वर-सम्बन्धी कहावतों को ही लीजिये—

(क) ईश्वर-सम्बन्धी कहावतें

प्रायः दुनिया की सभी भाषाओं में ईश्वर-विषयक कहावतें मिलती हैं। आज तो जीवन की जटिलता तथा विचार-स्वातन्त्र्य की भावना के कारण यहाँ तक कहा जाने लगा है कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं, ईश्वर ने मनुष्य को नहीं बनाया, मनुष्य ने ही अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ईश्वर का निर्माण कर लिया है किन्तु राजस्थान में ऐसी कोई कहावत शाहद ही मिले जिसमें ईश्वर के अस्तित्व पर सन्देह प्रकट किया गया हो। हाँ, ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करने वाली कहावतें यहाँ सहज ही मिल जायँगी। उदाहरण के लिए ऐसी दो कहावतें लीजिये—

(१) कण कण भीतर रामजी, ज्यूं चकमक में आग।

जिस प्रकार चकमक पत्थर में आग रहती है, उसी प्रकार कण-कण के भीतर ईश्वर का निवास है।

(२) राम जी ऊपर चढ्यो देखै है।

भगवान ऊपर से सभी के भले-बुरे कर्मों को देख रहा है। इसलिए मनुष्य को यह समझकर कि मुझे कोई नहीं देखता, कुकर्म नहीं करना चाहिए।

बहुत-सी कहावतों द्वारा ईश्वर की उदारता, दयालुता और न्याय-बुद्धि का पता चलता है। यथा,

(१) कीड़ी नै कण, हाथी नैं मण।

ईश्वर चींटी को उदर-पूर्ति के लिए जहाँ कण भर देता है, वहाँ हाथी को मन भर दे देता है अर्थात् वह छोटे-से-छोटे प्राणी से लेकर बड़े-से-बड़े जीव की आवश्यकताएँ पूरी करता है।

(२) आंधा की माखी राम उड़ावै।

अन्धे की मक्खी भगवान् उड़ाता है अर्थात् वह निर्बल का सहायक है।

(३) आखर रामजी कै घर न्याव है।[1]

अन्त में भगवान के यहाँ न्याय अवश्य है।

(४) बदी राम बैर।

बुराई से भगवान की शत्रुता है।

एक कहावत में राम-नाम की महिमा का इस प्रकार बखान किया गया है—
"रामजी को नांव सबा मिसरी, जब चाखें जद गूंदगिरी।"

---

१. मिलाइये—
'देर है, अन्धेर कोनी।'

भगवान् का नाम लेने से मेवे-मिसरी मिलते रहते हैं अर्थात् मनुष्य हमेशा आनन्दपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है।

किन्तु भगवान् का स्मरण करने वालों में कुछ लोग तो श्रद्धा से ऐसा कहते हैं और कुछ लोगों को विवश होकर ऐसा करना पड़ता है। एक कहावत लीजिये—

"हर-हर गंगा गोदावरी किमंक सरदा अर किमंक जोरावरी।"

स्नान करते समय जाड़े के दिनों में जो भगवान् का नाम लिया जाता है, उसमें कुछ तो श्रद्धा और कुछ शीत का भय, दोनों का सम्मिश्रण रहता है।

निम्नलिखित कहावतों में ईश्वर को सर्वशक्तिशाली ठहराया गया है—

(१) **राम सूं जोर नहीं।**

भगवान् के आगे किसी का वश नहीं चलता।

(२) **राम को अर राजा को सिर ऊपर कर गैलो है।**

भगवान् और राजा जो चाहें कर सकते हैं, उनके मार्ग में कोई बाधक नहीं हो सकता।

भगवान् यदि देना चाहे तो वह किसी भी मार्ग से दे सकता है।

"राम दे तो बाड़ में ही दे दे।"

देव-विषयक कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें विचार का स्तर अपेक्षया उच्च मालूम पड़ता है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित कहावत पर विचार कीजिये—

"मानै तो देव, नहीं भींत को लेव।"

अर्थात् मूर्ति में देवत्व के आरोप का मूल कारण भावना ही है जिसकी पुष्टि संस्कृत के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भी हो जाती है—

न काष्ठे विद्यते देवो, न शिलायां न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्॥[1]

(ख) नैतिकता और धर्म-सम्बन्धी कहावतें—

एक सामान्य परिवार में ही हम देखते हैं कि कुछ सदस्य भले होते हैं, कुछ बुरे। राजस्थान की कहावतों का परिवार तो बहुत बड़ा है। फिर यदि इस विशाल परिवार में अच्छी और बुरी दोनों ही प्रकार की कहावतें उपलब्ध हों तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? जब दुनिया में स्वार्थपरता तथा असत्य आदि अवगुण हैं तो उनसे सम्बन्ध रखने वाली कहावतें ही क्योंकर नहीं मिलेंगी? कहावतों में तो जीवन की अभिव्यक्ति होती है, उस जीवन की जिसमें धूप और छाया दोनों हैं। जीवन का यदि एक शुक्ल पक्ष है तो दूसरा कृष्ण पक्ष भी है। उदाहरण के लिए नैतिक और अनैतिक दोनों प्रकार की कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

नैतिक

(१) **सांच नै आंच कोन्या।**

अर्थात् सांच को आंच नहीं।

---

१. मिलाइये—
"मानला तर देव, नाहीं तर दगड।" (मराठी कहावत)

(२) **साचं रा बोलबाला, झूठे रा मुँह काला ।**

सच्चे का बोलबाला और झूठे का मुँह काला ।

(३) **ऐंठवाड़ो खाणो पण ऐंठवाड़ी बात नहीं करणी ।**

झूठा खा भले ही लिया जाय किन्तु झूठी बात नहीं करनी चाहिए ।

(४) **धरम कियां सूं धन वधै ।**

अर्थात् धर्म करने से धन बढ़ता है ।

(५) **नीत गैल बरकत है ।** (नीयत के अनुसार बरकतहोती है ।)

अनैतिक

(१) **करो पाप तो खावो धाप ।**

अर्थात् पाप करो और धाप कर खाओ ।

(२) **करो धरम तो फूटै करम ।**

अर्थात् धर्म करो और दुर्भाग्य का आश्रय लो ।

(३) **साची कही, भाठा की दई ।**

अर्थात् सत्य कहने से दूसरे को ऐसा लगता है जैसे पत्थर से प्रहार किया हो ।

ऊपर दी हुई नैतिक कहावतों में सत्य और धर्म का जयजयकार हुआ है जब कि अनैतिक कहावतों में पाप को फलता-फूलता हुआ तथा सत्य को कटु बतलाया गया है।

उक्त अनैतिक कहावतों को पढ़कर, यह भ्रान्त धारणा नहीं बना लेनी चाहिए कि इस प्रकार की उक्तियाँ अनैतिकता के प्रचारार्थ जीवन-सूत्रों का काम देने लगती हैं। वस्तु-स्थिति यह है कि जब हम संसार में अन्याय और अत्याचार करने वालों को अमन-चैन से जीवन व्यतीत करते हुए देखते हैं तथा धर्मात्मा व्यक्ति हमारे ही सामने दुःख भोगते हैं तो हमारे मुख से थोड़े समय के लिए इस प्रकार के उद्गार निकल पड़ते हैं जिनसे नैतिकता और धार्मिक भावना के प्रति हमारी आस्था हिलती हुई-सी मालूम पड़ती है किन्तु स्थायी रूप से हमारा ध्यान उन्हीं कहावतों की ओर जाता है जो नैतिकता और धार्मिक भावना का समर्थन करती हैं । अनैतिकता के प्रचार की बात तो दूर, पूर्वी देशों में तो नीति-साहित्य के अन्तर्गत ही कहावतों की गणना की गई है । राजस्थानी कहावतों में अनैतिक कहावतों की अपेक्षा नैतिक कहावतें ही संख्या में भी अधिक हैं । अनैतिक कहावतें अनेक बार तथ्य-कथन के रूप में प्रयुक्त न होकर व्यंग्य के रूप में भी उच्चरित होती हैं ।

(ग) लोक-विश्वास-सम्बन्धी कहावतें—

अन्धविश्वास के स्थान में मैं जानबूझकर ही 'लोक-विश्वास' शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ। लोक-विश्वास क्या असत्य-विश्वास का नामान्तर है अथवा उस विश्वास का नाम है जो सहेतुक न हो, युक्तियुक्त न हो ? उदाहरण के लिए एक लोक-विश्वास को लीजिए । शीशा यदि किसी के हाथ से फूट जाय तो दुर्भाग्य का सूचक समझा जाता है ।[1] जिस अशिक्षित आदिम समाज में इस प्रकार

1. To break a looking glass betokens that the owner will lose his, or her best friend. (Yorkshire)

To break a looking glass means seven years' bad luck but not want. (General)

का लोक-विश्वास प्रचलित हुआ होगा, उस समय उस समाज-विशेष में इस प्रकार का लोक-विश्वास अहेतुक अथवा युक्ति-हीन नहीं समझा गया होगा। शीशा एक ऐसी वस्तु है जिसमें व्यक्ति का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है। जिस पदार्थ में व्यक्ति को प्रतिबिम्बित करने की शक्ति है, उस पदार्थ के किसी व्यक्ति द्वारा टूट जाने से उस व्यक्ति-विशेष को हानि हो सकती है, ऐसी कुछ चिंतन-पद्धति अथवा धारणा तत्कालीन समाज की रही होगी। उस युग का मनुष्य जिन आधारों को लेकर अपने सीमित बुद्धि-बल से जिन निष्कर्षों पर पहुँचा, वे निष्कर्ष ग़लत हो सकते हैं किन्तु युक्ति की प्रक्रिया उसके मन में भी चलती रही होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

एक दूसरे लोक-विश्वास को लीजिए। ग्रीस के निवासियों का यह विश्वास था कि पैदा होने के आठ दिन तक बच्चे को अकेला नहीं छोड़ना चाहिए। बहुत से देशों में अब भी यह विश्वास प्रचलित है कि पैदा होने के आठ दिन तक बच्चे को अँधेरे में नहीं रहने देना चाहिए क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि बुरी आत्माएँ उसे हानि पहुँचा दें। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के लोक-विश्वासों के पीछे भी कुछ न कुछ युक्तियाँ अवश्य चल रही थीं चाहे वे किसी स्तर की क्यों न हों। इसलिए लोक-विश्वासों को अन्ध-विश्वास नहीं कहा जा सकता। जो समाज इस प्रकार के लोक-विश्वासों को सच्चा करके मानता है, उसकी दृष्टि में तो ऐसे विश्वास अन्ध-विश्वास हैं ही नहीं। अन्ध-विश्वास का प्रश्न तो तब खड़ा होता है जब किसी व्यक्ति अथवा समाज के बौद्धिक विकास के साथ इस प्रकार के लोक-विश्वासों का सामंजस्य न बैठता हो।

लोक-विश्वासों से सम्बन्ध रखने वाली दो राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(१) थावर को थायर ही किसा गांव बलै हैं ?

पुत्र-कामना करने वाली कुछ स्त्रियाँ समझती हैं कि शनिवार के दिन दूसरों के घर आग लगा देने से पुत्र उत्पन्न होता है। इस लोक-विश्वास का संकेत उक्त कहावत में मिलता है।

बीघै-बीघै भूत अोर बिसवै बिसवै सांप।

राजस्थान में बीघै-बीघै की दूरी पर भूत और बिस्वे बिस्वे की दूरी पर साँप रहते हैं।

राजस्थान के सम्बन्ध में कही हुई इस कहावत का पूर्वार्द्ध तो बड़ा अद्भुत मालूम पड़ता है किन्तु इतिहास के आलोक में यदि हम इस लोक-विश्वास की छान-बीन करें तो सब रहस्य खुलने लगता है।

"जातकों के समय से ही मरुकान्तर (रेगिस्तानी भूमि) भूतों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। उस समय भी हज़ारों की संख्या में चलने वाले वाणिज्य-सार्थ कितनी ही बार भूतों के फेर में पड़ जाते थे। एक बार कोई सार्थवाह अपने कारवाँ के साथ मरु-कान्तर में जा रहा था। आगे वह भूमि आने वाली थी, जहाँ दिनों चलते रहने पर भी पानी का कहीं पता नहीं चलता था, चारों ओर केवल बालू ही बालू दिखती। सार्थ को उधर से एक दूसरा कारवाँ आता मिला। उसकी गाड़ियों के चक्कों में कीचड़ लिपटी हुई थी। लोग कमल के फूल अपने गलों में लटकाये हुए थे, कमल के पत्ते भी

उनके पास थे। जलाशय के बारे में पूछने पर कहा—"पानी के बारे में क्या पूछते हो ? आगे तो महासरोवर लहरें मार रहा है।" सार्थवाह ने सोचा—"फिर गाड़ियों पर मुशकों में पानी भरके ढोने से क्या फायदा ?" पानी वहाँ गिरवाकर वह आगे बढ़ा। वहाँ सरोवर का कहाँ पता था ? सार्थ निर्जल मरुभूमि में बढ़ता चला गया और उसके सभी आदमी और पशु वहाँ प्यास के मारे मर गये। कुछ दिनों बाद आने वाले दूसरे सार्थों को देखने के लिए उनकी केवल सफ़ेद हड्डियाँ रह गईं।

ढाई हज़ार वर्ष पहले भी भूत इस तरह धोखा देकर सारे सार्थ को मार डालते थे। आज भी वहाँ ऐसे भूतों की कमी नहीं। दुर्गा खवास और उपला चोबदार दोनों मंगलपुर से मखनपुर जा रहे थे। पास में घड़ी तो थी नहीं। उनको चलना चाहिए था तीन-चार बजे रात को, ठण्डे-ठण्डे रेगिस्तान में यात्रा तै करना अच्छा होता है, लेकिन वह आधी रात को ही चल पड़े। मंगलपुर से दो मील चलने पर मीलरास का गाँव आता है जहाँ एक जोहड़ी (पोखरी) सूखी पड़ी थी। वहाँ पर आग जलती दिखाई पड़ी। दुर्गा ने कहा—"चलो, वहाँ चलकर चिलम पी लें। फिर चलेंगे।" उपला ने 'हाँ' कहा। किन्तु ऊँट को उधर ले जाने लगे तो वह एक डग भी आगे रखने के लिए तैयार नहीं था। ऊँट अगमजानी होते हैं। बहुत मारा-पीटा लेकिन ऊँट अपनी जगह से नहीं डिगा। उपला कुछ सयाना आदमी था। उसने कहा—"हो, कोई बात है, जभी तो ऊँट नहीं चल रहा है।" लेकिन दुर्गा को विश्वास नहीं आया। वह चिलम पीने पर तुला हुआ था। ऊँट से उतर पैदल ही दोनों आगे की ओर बढ़े, लेकिन वह जितना ही आगे जाते, आग उतनी ही दूर हटती जा रही थी। भूत अपने पुर्खा जातक वाले भूत की तरह चाहता था कि दोनों को रस्ते से भटकाकर घोर कांतार में ले जाये। दुर्गा को चिलम पीने का ख्याल छूट गया, और उसने उपला को पकड़कर कहा, "मुझे तो डर लग रहा है" खैर दोनो की हड्डियाँ रेगिस्तान में सफ़ेद होने से बच गईं, वह समय पर सम्हल गये।"[१]

इसी प्रकार एक अन्य कहावत में कहा गया है "**भूत रो ठिकाणों आमली में।**"[२] इमली के पेड़ के लिए जनश्रुति है कि उसके नीचे प्रायः भूत-प्रेत का निवास होता है।

शरीर के अंगों सम्बन्धी लोक-विश्वास—राजस्थान की अनेक कहावतों में शरीर के अंगों से सम्बन्ध रखने वाले लोक-विश्वासों की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) **माथो मोटो सिरदार को अर पग मोटो गंवार को।**[३]

अर्थात् बड़ा मस्तक सरदार का होता है और बड़ा पैर गँवार का होता है।

(२) **छाती पर केश नहीं जकं सूं बात नहीं करणी।**

अर्थात् जिसकी छाती पर बाल नहीं हों, उससे बात नहीं करनी चाहिए।

१. देखिये :
'राजस्थानी रनिवास'—श्री राहुल सांकृत्यायन; पृष्ठ ७१-७२।

२. मालवी कहावतें, भाग १ (श्री रतनलाल महता); पृष्ठ १४।

३. सिर भारी सिरदार का, पग भारी मुरदार का।"

छाती पर बालों का होना पुरुषत्व का चिन्ह समझा जाता है। जिस पुरुष के छाती पर बाल नहीं होते, उससे बातचीत तक करना बुरा समझा गया है।

(३) काणं खोड़ो खायरो, ऐंचांताण होय।
इण नै जद ही छेड़िये, हाथ घेसलो होय॥

काना, खोड़ा, बिडालाक्ष और ऐंचाताना (जिसकी पुतली ताकने में दूसरी ओर को खिंचती हो), ये दुष्ट समझे जाते हैं।

तिथि, वार आदि सम्बन्धी लोक-विश्वास—एक राजस्थानी कहावत '**अण-पूछ्यो मुहरत भलो कै तेरस कै तीज**' के अनुसार तेरस या तीज, ये दो शुभ मुहूर्त के दिन माने जाते हैं।

स्थापना करने के लिए शनिवार तथा व्यापार के लिए बुधवार अच्छे दिन समझे गये हैं—

"थावर कीजै थरपना, बुध कीजै व्योपार।"

कहा जाता है कि शुक्रवार के दिन जिस काम के लिए संकल्प किया जाता है, वह कभी पूरा नहीं पड़ता। नये कपड़े पहनने के लिए बुध, बृहस्पति तथा शुक्र, ये तीन दिन शुभ माने गये हैं—

"बुध बृहस्पत शुक्करवार, कपड़ा पहरं तीन वार।"

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि '**मांज्या थाल, उतर्या वार**' के अनुसार दुपहर का भोजन होने पर वार उतर जाता है अर्थात् उस समय से आगामी वार का प्रारम्भ मान लिया जाता है।

डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने दिखाया है कि '**पुण्याह और 'पुण्य रात्र**' का विचार पाणिनि के जमाने में भी प्रचलित था।[1]

किन्तु अथर्ववेद में तिथि, नक्षत्र, ग्रह, चन्द्रमा इन सब की अपेक्षा अधिक महत्त्व मन्त्र की शक्ति को दिया गया है—

न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमाः।
अथर्वमंत्रसंप्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति॥

—अथर्व० परिशिष्ट २५

राजस्थानी की एक कहावत में कहा गया है कि शुभाशुभ का विचार तो धनवानों के लिए है, निर्धनों के लिए उसका कोई अर्थ नहीं—

"भदरा जां घर लागसी, जां घर रिध और सिद्ध।"

तिथि, नक्षत्र, वार आदि से सम्बद्ध लोक-विश्वासों के अतिरिक्त भी बहुत से लोक-विश्वास राजस्थान में प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ दो कहावतें लीजिये—

(१) गहण को दान, गंगा को असनान।

---

1. The idea that certain days (Punyaha, V. 4. 90.) and nights are auspicious (Punyaratra, V. 4. 87.) was also prevalent.
—India as known to Panini. p. 387.

गंगा-स्नान करने से जैसे पुण्य होता है, उसी प्रकार ग्रहण के अवसर पर दान देने से भी ।

(२) निनांवेरो नांव कुण लेवे ।

निर्वंशी का नाम कौन ले ? जिस पुरुष के सन्तान नहीं होती, उसका नाम लेना भी अशुभ समझा जाता है ।

लोक-देवताओं से सम्बन्ध रखने वाली भी कुछ राजस्थानी कहावतें उपलब्ध हैं । यथा—

(१) आधा में दई देवता, आधा में खेतरपाल् ।

आधे में कुल देवी-देवता और आधे में अकेला क्षेत्रपाल । इससे क्षेत्रपाल की महत्ता प्रकट होती है ।

(२) तेल बाकला भैंरू पूजा ।

तेल और सिझाये हुए मोठ से भैरव नामक देवता की पूजा होती है ।

(घ) शकुन-सम्बन्धी कहावतें

१. शकुन और जातीय चेतना—जिस जाति में किसी व्यक्ति का जन्म हुआ है, वह उस जाति के विश्वासों, भावनाओं, अभिरुचियों आदि को उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त करता है। मनुष्य जो कुछ दूसरों के मुख से निरन्तर सुनता रहता है, उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता, चाहे वह उसके व्यक्तिगत अनुभव के विरुद्ध ही क्यों न पड़ता हो। जातीय चेतना व्यक्तिगत चेतना को आक्रान्त कर लेती है। ऐसी स्थिति में आत्म-स्वीकृति ही प्रायः देखी जाती है, सत्यासत्य के तात्त्विक निर्णय का प्रयत्न नहीं किया जाता।

आज भी हम देखते हैं कि रास्ते में बिल्ली आ जाती है, शृगाल अथवा खर दायें बोलने लगता है, गाय बाँई तरफ़ आ जाती है, कोई विधवा स्त्री मिल जाती है, बूँदें पड़ने लगती हैं अथवा खाली घड़ा मिल जाता है तो बहुत से मनुष्य अपनी यात्रा स्थगित कर देते हैं। ये सब वस्तुएँ उनके व्यक्तित्व का अंग बन गई हैं, क्योंकि बचपन से ही उनको इस तरह की बातों में विश्वास करना सिखलाया गया है। इस तरह के विश्वास व्यक्तिगत घटित घटनाओं के आधार पर ही बने हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता; ये तो इस तरह के विश्वास हैं जिनको स्वतः स्वीकार कर लिया गया है। इस प्रकार के विश्वास सामाजिक संस्कारों का रूप धारण कर लेते हैं, उस हालत में व्यक्ति-विशेष का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। ऐसे समाज का प्रतिक्रियावादी व्यक्ति तो प्रायः सोचा करता है—"मैं कौन होता हूँ जो अपने विद्वान् एवं अनुभवी पूर्वजों की मान्यताओं के विरुद्ध आचरण करूँ? पूर्वजों ने जिन उपयोगी परम्पराओं का निर्माण किया है, मेरा कर्तव्य है कि उनको बनाये रखने में पूर्णतः योग दूँ।"

सगुन-असगुन का सम्बन्ध केवल व्यक्ति से नहीं किन्तु, जैसा ऊपर कहा गया है, सामाजिक संस्कारों से उनका विशेष सम्बन्ध है। शकुन-मनोविज्ञान का रहस्य तभी हृदयंगम किया जा सकता है जब व्यक्ति का विचार न कर वर्ग अथवा समूह पर हम अपनी दृष्टि रखें। जहाँ मस्तिष्क का बहुत अधिक विकास न हुआ हो, जहाँ विचारों की दृष्टि से मानसिक शैशव की अवस्था हो, वहाँ अत्यन्त उच्च बौद्धिक और धार्मिक स्थिति की कल्पना नहीं की जा सकती। पीढ़ी दर पीढ़ी चली आती हुई परंपराएँ शकुनों को चिरस्थायी बनाये रखने में बड़ा योग देती हैं। कभी-कभी तो यहाँ तक देखा जाता है कि आधुनिक युग का अत्यन्त उच्च शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति भी शकुनों के प्रभाव से बुरी तरह आक्रान्त है। केवल उस व्यक्ति की दृष्टि से विचार करने पर यह बात हमें बड़ी अजीब-सी लगती है, किन्तु जिन जातिगत-संस्कारों में उस व्यक्ति का पालन-पोषण हुआ है और जिस प्रकार के घर तथा समाज के वातावरण में वह अब भी अपना जीवन व्यतीत कर रहा है, उन सब बातों को दृष्टि में रखते हुए यदि हम उस शिक्षित व्यक्ति के व्यवहार पर विचार करें तो सारा रहस्य खुलने लगता है। डा० जानसन तक के लिए प्रसिद्ध है कि वह शकुनों आदि में बड़ा विश्वास किया करता था।[1]

---

1. Dr. Johnson was a scrupulous observer of signs, omens and particular days. (Select Proverbs of All Nations by Thomas Fielding, p. 219.)

(२) **शकुन का महत्त्व**—हमारे यहाँ तो इस विषय का एक अलग शास्त्र ही बन गया है जो शकुन-विद्या अथवा शकुन-शास्त्र के नाम से विख्यात है। पद्म पुराण, अग्नि पुराण तथा मुहूर्त चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में शकुन-विद्या का सविस्तर वर्णन हुआ है। यह शकुन-शास्त्र भी बहुत प्राचीन है। कुमार गोतम के जन्म के समय भी ज्योतिषी बुलाये गये थे और शकुन देखने वाले लोग भी उस समय विद्यमान थे।"[1]

राजस्थानी भाषा में भी शकुन से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कहावतें मिलती हैं। एक कहावत में कहा गया है—**'मिनख सूण की दई रोटी खाय है'** जिसका आशय यह है कि मनुष्य शकुन की दी हुई रोटी खाता है। शुभ शकुन होने पर ही मनुष्य को यात्रा में यथेच्छ धन-धान्य आदि की प्राप्ति होती है, अन्यथा वह इधर-उधर भटक कर खाली हाथ लौट आता है। शकुन की प्रशंसा में ही यह उक्ति कही गई है।

(३) **शकुन के विविध रूप**—अकाल, बीमारी, मृत्यु आदि जीवन के विषादात्मक प्रसंगों तथा जन्म, विवाह, उत्सव आदि शुभ अवसरों से शकुनों का विशेष सम्बन्ध प्रायः सभी देशों में देखा जाता है। राजस्थानी भाषा की कहावतों में अनेक रूपों में शकुनों की अभिव्यक्ति हुई है।

(क) शरीर के अंगों द्वारा शकुन-निर्धारण

पुरुषों की दाहिनी आँख का फड़कना शुभ तथा बाँई आँख का फड़कना अशुभ समझा जाता है। इसके विपरीत स्त्री की दाँई आँख का फड़कना अशुभ और बाँई आँख का फड़कना शुभ समझा जाता है—

आँख फड़कै बाँई, कै बीर मिलै कै साँई।
आँख फड़कै दहणी, लात घमूका सहणी॥

अर्थात् यदि स्त्री की बाँई आँख फड़के तो भाई मिले या पति मिले। यदि दाहिनी आँख फड़के तो उसे लात-घूँसा सहना पड़े।

अपने आप बिना किसी प्रयत्न के जब मनुष्य का कोई अंग फड़कने लगता है तो मानव का शिशु-मन उसके साथ शुभाशुभ परिणाम की नियोजना कर लेता है। सामान्यतः मनुष्य अपनी इच्छा से अंगों का संचालन करता है किन्तु जहाँ उसकी इच्छा के बिना अपने आप उसका कोई अंग फड़कने लगता है तो मानव की आदिम मनोवृत्ति उसमें एक प्रकार की असाधारणता के दर्शन करने लगती है और अहेतुक-से प्रतीत होते हुए इस कार्य में वह शुभ अथवा अशुभ की कल्पना कर लेती है।

यह तो आँख जैसे अंग के यत्किंचित् फड़कने के सम्बन्ध में हुआ किन्तु नाक और मुँह से वेग के साथ सहसा छींक के रूप में जो प्रबल वायु-स्फोट होता है, उसके सम्बन्ध में विश्व के सभी देशों में यदि शकुन-अपशकुन का विचार किया गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। चीनियों का विश्वास है कि यदि कोई साल की अन्तिम संध्या को छींके तो नव वर्ष उसके लिए अशुभ समझा जायगा। जापानियों का कहना है कि यदि कोई एक बार छींके तो समझना चाहिए, कोई उसकी प्रशंसा कर रहा है,

---

१. बुद्धकालीन लोक-जीवन : (भरतसिंह उपाध्याय) सम्मेलन पत्रिका—लोक-संस्कृति अंक, पृष्ठ १३८।

दो बार छींके तो जानना चाहिए, कोई उसकी निंदा कर रहा है, तीन बार छींकना अस्वास्थ्य का द्योतक है। श्याम देश के लोगों का विश्वास है कि देवता हमेशा मनुष्य के पाप और पुण्य के हिसाब की किताब के पन्ने पलटते रहते हैं और जब जिसका पन्ना उनके सामने होता है तब वह मनुष्य छींकता है। इसी कारण श्याम देश में छींकने पर कहा जाता है। **"निर्णय आपके अनुकूल हो।"** हमारे देश के हिन्दुओं में भी एक प्राचीन रीति है कि जब कोई छींकता है, तब कहते हैं **"शतं जीव"** या **"चिरं जीव"**। बुद्ध के जमाने में भी यह प्रथा प्रचलित थी। गग्ग जातक में बुद्ध ने छींक के बाद **"चिरंजीव"** कहने वाले अपने शिष्यों को आड़े हाथों लिया था। हिन्दुओं में ही नहीं, यह प्रथा यूनानियों, रोमनों और यहूदियों में भी थी। अंग्रेजों में भी जब कोई छींकता है तो पुरानी परिपाटी के लोग कहते हैं **"ईश्वर कल्याण करे।"**[1]

राजस्थान में प्रचलित निम्नलिखित कहावती दोहे के अनुसार यह माना जाता है कि भोजन करने, पानी पीने तथा सोने के समय छींक शुभ है किन्तु दूसरे के घर पर जाते समय छींक एक प्रकार का अपशकुन है—

छींकत खाये छींकत पीये, छींकत रहिये सोय।
छींकत पर घर कदे न जाये, आछा कदे न होय॥

भोजन के लिए बैठते समय यदि किसी ने छींक दिया तो वह शुभ है क्योंकि वह किसी दूसरे के यहाँ भोजन-निमंत्रण की पूर्व-सूचना समझी जाती है किन्तु पराये घर जाने के समय यदि किसी ने छींक दिया तो इससे दूसरों से लड़ाई होने की सम्भावना रहती है, इसलिए वह अशुभ है।

(ख) जाति-विशेष द्वारा शकुन-निर्धारण

माथे पर बिना तिलक किये हुए यदि ब्राह्मण मिल जाय तो वह अपशकुन समझा जाता है। राजस्थानी भाषा की एक कहावत में कहा गया है **"सूनै मांथै बामण आछयो कोन्या।"** किन्तु वही यदि तिलक किये हुए मिले तो सब आशाएँ पूर्ण हो जाती हैं—

बामण जो तिलकां कियां सामो आय मिलंत।
सुकन विचारे पंथिया आसा सकल फलंत॥

दर्पण हाथ में लिए हुए नाई का सामने मिलना भी अत्यन्त शुभ समझा जाता है।

नाई सामो आवतो दरपण लीधां हाथ।
सुकन विचारे पंथिया आसा सह पूजन्त॥

धुले कपड़े लिए हुए यदि धोबी सामने आ रहा हो तो वह रोज़गार के लिए शुभ समझा जाता है।

धोबी धोया कापड़ा, सामो आय मिलन्त।
सुकन विचारे पंथिया, पग पग लाभ करन्त॥

---

1. Vide Sneezing Salutations Appendix. (The Ocean of Story Vol. III edited by N. M. Penzer.)

सुनार के लिए कहा गया है कि वह चाहे दाहिनी ओर मिले चाहे बाईं ओर, वह किसी भी अवस्था में शुभ नहीं है।[1]

(ग) पशु-पक्षियों द्वारा शकुन-निर्धारण

खर, शृगाल, गाय, तीतर, शकुन चिड़िया, नीलटाँस आदि पशु पक्षियों को दायें-बायें देखकर भी शकुन-निर्धारण किया जाता है। उदाहरणार्थ कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(अ) बांऊँ तीतर बांऊँ स्याल, बांऊँ खर बोलै असराल।
बांऊँ घूघू घमका करै तो लंका को राज बिभीषण करै॥

अर्थात् तीतर, सियार, खर तथा उल्लू यदि निरन्तर बायें बोलें तो उतनी ही समृद्धि प्राप्त हो जितनी समृद्धि लंका का राज्य मिलने पर विभीषण को मिली थी। ध्वनि यह है कि विभीषण को भी लंका का राज्य मिलते समय यही शकुन हुए थे।

(आ) सदा भवानी दाहणी, सन्मुख होय गणेश।
पाँच देव रिच्छा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश॥

"भवानी" से तात्पर्य यहाँ "सोन चिड़ी" अथवा "शकुन चिरैया" से है जो दाहिनी ओर आने पर शुभ समझी जाती है।

(इ) सींगालो दस जीमणी ज्यो जोवंतो जाय।
आं सुकनां सूं पंथिया, पग पग लाभ कराय॥

दाहिनी तरफ आया हुआ बैल पद-पद पर लाभप्रद होता है।

(ई) गऊ सवच्छी आवती कबहुक सांमी होय।
सकुन विचारै पंथिया लखमी लाहो होय॥

अर्थात् बछड़े सहित गाय सामने मिलने पर लक्ष्मी प्राप्त होती है।

(उ) हस्ती सुंदर मांडियो, साहमो जो आवंत।
सुकन विचारे पंथिया, दिन दिन अत दीपन्त॥

अर्थात् सुसज्जित हाथी यदि सामने मिले तो शुभ समझा जाता है।

(ऊ) कहा जाता है कि यात्रा के समय यदि हरिन आ जा जायँ तो मृत्यु होती है।[2] एक प्रचलित लोक-विश्वास के अनुसार प्रवास के लिए जाते समय हरिणों का दायें तथा लौटते समय बांयें आना शुभ समझा जाता है।

किन्तु जहाँ भगवान का बल हो, वहाँ शकुन कोई चीज़ नहीं समझी जाती। राजस्थान के एक कहावती दोहे में कहा गया है—

हर बडा क हिरणा बड़ा, सुगणा बड़ा क स्याम।

१. आटो कांटो घी घड़ो खुल्लै केसां नार।
बावों भलो न दाहिणो, स्याली जरख सुनार॥

२. द्रष्टव्य "कल्पना" वर्ष ३ अंक २ में प्रकाशित श्री मन्मथराय का "पुराणों में वर्णित कुछ विद्याएँ" शीर्षक लेख; पृष्ठ १३५।

अरजन रथ नै हांक दे, भली करैं भगवान ।।[१]

प्रसिद्ध है कि एक बार हरिणों को बांई ओर देखकर रथ हाँकने में अर्जुन को हिचकिचाहट होने लगी। इस पर किसी ने कहा—जब भगवान् अनुकूल हों, तब शकुनों का क्या विचार? हरि बड़े या हरिण बड़े? शकुन बड़े या श्याम? अर्थात् हरि अथवा श्याम ही बड़े हैं, हरिण और शकुन नहीं।

राजस्थान के वे योद्धा भी, जो प्राणों को हथेली पर रखकर युद्ध के लिए प्रयाण करते थे, सगुन-असगुन का कोई विचार नहीं करते थे। राजस्थान के प्रसिद्ध कवि बांकीदास जी कह गये हैं—

सूर न पूछै टीपणो, सुकन न देखै सूर।
मरणां नूं मंगल गिणै, समर चढ़ै मुख नूर ।।

अर्थात् शूरवीर ज्योतिषी के पास जाकर मुहूर्त नहीं पूछता, न वह शकुन को ही देखता है। वह तो मृत्यु को मंगलस्वरूप समझता है और युद्ध में उसके नूर चढ़ता है। राजस्थान के जिन वीरों ने धर्म और मान-मर्यादा की रक्षा के लिए "**मरण महोत्सव**" मनाया, उनके लिए शकुन-अपशकुन का विचार कैसा?

(४) **शकुनों का मनोविज्ञान**—तो क्या इसका अर्थ यह है कि कायर मनुष्य ही शकुन-अपशकुन के विचार से भयभीत होता है? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें शकुनों के मनोविज्ञान पर विचार करना होगा। श्री लालजीराम शुक्ल के मतानुसार "असगुन पर विचार करने वाले व्यक्ति के मन में कोई मानसिक ग्रन्थि रहती है। इस ग्रन्थि के कारण उसका ध्यान असगुन पर ही आकर्षित होता है। बुद्ध भगवान का कथन है कि छिपा हुआ पाप ही मनुष्य को लगता है, खुला पाप नहीं लगता। जो व्यक्ति अपने खुले पाप को प्रकट कर देता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है। आधुनिक मनोविश्लेषण-विज्ञान द्वारा मानसिक चिकित्सा का रहस्य भगवान् बुद्ध के उक्त कथन में निहित है। जब मनोविश्लेषण द्वारा रोगी अपने पुराने कुकृत्य को जानकर उसे स्वीकार कर लेता है तो उसका रोग नष्ट हो जाता है। जो व्यक्ति सदा स्वच्छ धारणाएँ अपने मन में रखता है, जो दूसरे के अहित की बात मन में नहीं लाता, जो परोपकार में ही अपना समय व्यतीत करता है, उसका असगुनों की ओर ध्यान आकर्षित नहीं होता। यदि उसका ध्यान आकर्षित भी किया जाए तो वह उसमें भी कल्याणकारी भावना ही पाता है। जिसका मन जितना ही अधिक दूषित होता है, वह उतना ही अधिक कायर होता है। ऐसे व्यक्ति को अनेक प्रकार के दुःख होना अनिवार्य है। जब उसको वास्तविक दुःख नहीं रहता तब वह कल्पना से ही दुःख की सृष्टि कर लेता है। असगुन के विचार उनको ध्यान में लाने वाले व्यक्ति को जितना त्रास देते हैं, उतना त्रास वास्तविक घटना में भी उनकी परवाह न करने वाले व्यक्ति को नहीं होता।"

२. मिलाइये—
शकुन भलां के शामलां, सारा माठां काम।
रथिया रथ हंकारजे, लइ नारायण नाम ।।
—राम कथा, पृष्ठ ७७; शारदा, मई, १९५४

शुक्ल जी ने जो कहा वह ठीक हो सकता है किन्तु ऐसा लगता है कि रहस्यमय अनागत के अज्ञान के कारण मनुष्य शकुन-अपशकुनों की ओर उन्मुख होता है। ऐसा करके वह चिर सुख और चिर जीवन की अपनी अभिलाषाओं को तृप्त करना चाहता है। तो फिर प्रश्न यह है कि अनागत घटनाएँ क्या शकुनों के रूप में अपना पूर्वाभास दे जाती हैं? आश्चर्य की बात तो यह है कि एक तरफ़ तो भाग्य की अमिटता जैसे विश्वास हैं और दूसरी ओर शकुनों से लाभ उठा कर उस भाग्य को अपने अनुकूल बनाने का प्रयास है। शकुन-शास्त्रियों की मान्यता है कि शकुन चाहे भविष्य-वाणी के रूप में न हों किन्तु इस प्रकार की चेतावनी वे अवश्य है जिनसे लाभ उठाने पर हम अनागत विपत्तियों से बच सकते हैं।

(५) **निष्कर्ष**—विज्ञान की उन्नति होने से शकुन-अपशकुन पर लोग अपेक्षाकृत कम ध्यान देने लगते हैं किन्तु फिर भी कभी-कभी ऐसा जान पड़ता है कि अत्युच्च बौद्धिक तथा वैज्ञानिक विकास होने पर भी मनुष्य जाति शकुन-जाल से अपने आपको मुक्त नहीं कर सकेगी। जब तक ससीम मानव अपनी सीमाओं में बँधा है, तब तक भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण-विषयक उसका ज्ञान तथा प्रकृति और मन की शक्तियों पर उसका नियंत्रण कभी भी सम्पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकेगा। अज्ञात और अज्ञेय की भावना उसे सर्वदा दिग्भ्रान्त करती रहेगी, प्रकृति और मन की शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए वह छटपटाता रहेगा। एक क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर लेने पर नित्य नये-नये क्षेत्र उसकी कल्पना के सामने आते रहेंगे। यदि अनागत का आवरण हट जाय, विश्व का रहस्य ज्ञात हो जाय तो शकुन-अपशकुन का प्रश्न ही न रहे। जीवन का अज्ञात अनन्त रहस्य शकुन-भावना को प्रोत्साहन देता है—इतना प्रोत्साहन जिसे देखकर हमारी बुद्धि हैरान हो जाती है। मनुष्य का जन्म ही छटपटाने के लिए हुए हुआ है, उस अज्ञात अनन्त का पता लगाने के लिए। आधुनिक युग की सुप्रसिद्ध कवयित्री भी इसका साक्ष्य भर रही है—

"तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?"

जहाँ तक राजस्थानी जनता का सम्बन्ध है, उसकी अधिकांश संख्या शकुन-अपशकुन की भावना से आक्रान्त है। बहुत सम्भव है, ज्यों-ज्यों शिक्षा का प्रचार बढ़ेगा, यह भावना मन्द पड़ती जायगी किन्तु सर्वांश में इसका उन्मूलन हो सकेगा, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

(ङ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी कहावतें

(क) भाग्यवाद और कर्म-सिद्धान्त—

"ईसवी सन् के आरम्भ में कर्मवाद का विचार भारतीय समाज में निश्चित रूप से स्वीकार कर लिया गया था। जो कुछ इस जगत में हो रहा है, उसका एक अदृष्ट कारण है, यह बात निःसंदिग्ध मान ली गई थी। जन्मान्तर-व्यवस्था तथा कर्मफल-वाद के सिद्धान्त ने ऐसी जबरदस्त जड़ जमाली थी कि परवर्ती युग के कवियों और मनीषियों के चित्त में इस भौतिक व्यवस्था के प्रति भूल से भी असन्तोष का आभास नहीं मिलता। जन्मान्तरवाद के निश्चित रूप से स्वीकृत हो जाने के कारण प्रचलित रूढ़ियों के विरुद्ध तीव्र सन्देह एक दम असम्भव था। कवि कठिन से कठिन दुःखों का वर्णन पूरी तटस्थता के साथ करते थे और ऐसा शायद ही कभी होता था जब कोई कवि विद्रोह के साथ कह उठे कि यह अन्याय है, हम इसका विरोध करते हैं।[1]

कर्मवाद के सम्बन्ध में जो भावना भारतीय साहित्य में देखी जाती है, वही इस देश की कहावतों में भी मिलती है और राजस्थानी कहावतें भी इसका अपवाद नहीं हैं। भवितव्यता होकर ही रहती है, इसके सम्बन्ध में कुछ कहावतें लीजिए—

(१) **लाख जतन कोई करै, कोटि करै किन कोय।**
अनहोणी होणी नहीं, होणी होय सो होय ॥[2]

(२) **करम में घोड़ी लिखी, खोल कुण ले ज्याय।**[3]
जब भाग्य में घोड़ी लिखी है तो उसे खोलकर कौन ले जा सकता है?

(३) **करम में लिख्या कंकर तो के करै सिवसंकर ?**
भाग्य में यदि कंकड़ लिखे हों तो शिवशंकर क्या करें?

(४) **जलम घड़ी 'र मरण घड़ी टाली कोनी टलै।**
जन्म-घड़ी व मरण-घड़ी किसी के टाले नहीं टलती।

(५) **बेमाता का घाल्योड़ा अंक टलै कोन्या।**
विधाता के लिखे हुए अंक नहीं टलते।

(६) **हूणी नै निमस्कार।**
भवितव्यता को नमस्कार।

(७) **भागां का बलिया, रांधी खीर, होगा दलिया।**
भाग्य की बलिहारी है, पकाई थी खीर और होगया दलिया।

(८) **करमहीण खेती करै, के काल पड़ै के बलद मरै।**
भाग्यहीन जब खेती करता है तब या तो अकाल पड़ता है या बैल मर जाते हैं। भाग्यहीन के लिए परिस्थितियाँ प्रतिकूल हो जाया करती हैं।

१. 'हिमालय' संख्या २ में श्री दिनकर का लेख 'हिन्दी कविता में दैव्यकवाद का उत्थान', पृष्ठ संख्या २२।

२. "यदभावि न तद्भावि भावी चेन्न तदन्यथा।"

३. यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्। (पंचतंत्र)

(६) सगलं करमां की बाजं है ।

सभी जगह भाग्य का ही जयजयकार हो रहा है। कर्महीन को सभी जगह विपत्तियाँ घेरे रहती हैं।

(१०) रूप की रोवं, करम की खाय।

भाग्य की प्रतिकूलता के कारण रूपवती स्त्री दुःख उठाती देखी जाती है और विधि की अनुकुलता के कारण कुरूप स्त्री भी सुखमय जीवन व्यतीत करती है।

ऊपर की कहावतों को पढ़कर यह प्रश्न उठता है कि यदि भवितव्यता इतनी प्रबल है तो फिर मनुष्य के कर्त्तव्य और उसकी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति का क्या मूल्य रह जाता है ? सम्भवतः इसीलिए भाग्य की प्रबलता घोषित करने वाली कहावतों के साथ-साथ ऐसी अनेक कहावतें भी मिलती हैं जिनमें पद-पद पर भाग्य को दोषी ठहराने वाले व्यक्तियों को आड़े हाथों लिया गया है। उदाहरण के लिए इस प्रकार की कुछ कहावतें यहाँ दी जा रही हैं।

(१) चालणी में दूद दूवै करमां नै दोस दे ।

अर्थात् चलनी में दूध दुहता है और कर्मों को दोष देता है, स्वयं मूर्खतापूर्ण कार्य करता है और व्यर्थ में भाग्य पर दोषारोपण करता है।

(२) बैरी न्यूत बुलाइया, कर भायां सूं रोस ।
आप कमाया कामड़ा, दई न दीजे दोस ॥

अर्थात् अपने किये हुए कर्मों के लिए दैव को दोषी नहीं ठहराना चाहिए। भाइयों से क्रोध करके जो शत्रुओं को निमन्त्रित करता है, उसे किसी अच्छे फल की आशा नहीं करनी चाहिए।

यद्यपि राजस्थानी कहावतों में भाग्य से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी कहावतें है किन्तु ऐसी कहावतें भी कम नहीं हैं जिनमें इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि जो मनुष्य जैसा करता है, उसको वैसा ही फल मिलता है। कर्म के फल से कोई बच नहीं सकता। कुछ कहावतें लीजिए—

(१) करणी भोगै आपकी, के बेटो को बाप ।

अर्थात् क्या पिता और क्या पुत्र, सब अपनी-अपनी करनी का फल भोगते हैं।

(२) करन्ता सो भोगन्ता, खोदन्ता सो पड़न्ता ।

अर्थात् अपनी करनी का फल भोगना पड़ता है। जो दूसरों के लिए खड्डा खोदता है, वह स्वयं उसमें गिरता है। "**खाड खनै जो और को ताको कूप तयार ।**"

(३) "करणी जिसी भरणी, करणी पार उतरणी, बाही जो लणही" आदि इसी आशय की कहावतें हैं।

कहावतों का सम्बन्ध जीवन के क्रिया-कलापों से है। जीवन में ऐसे अनेक अवसर आते हैं जब पूर्ण प्रयत्न करने पर भी मनुष्य को सफलता नहीं मिलती अथवा कभी-कभी सफलता प्रायः शत-प्रतिशत निश्चित होते हुए भी असफलता के रूप में परिवर्तित हो जाती है। ऐसे अवसरों पर भाग्य की प्रबलता व उसकी अपरिहार्यता

स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगती है। इसलिए ऐसी कहावतों का स्वभावतः ही निर्माण हो जाता है।

बुरे आदमी भी जब सुखी देखे जाते हैं तो "भाग्य की बलिहारी" कहकर समाधान कर लिया जाता है किन्तु जीवन में ऐसे अवसर भी अनेक बार आते हैं जब किसी का बुरा करने पर मनुष्य पर अचानक ही कोई विपत्ति आ पड़ती है। तब **"खोदन्ता सो पड़न्ता"** जैसी कहावतें प्रचलित हो जाती हैं जो मनुष्य को बुराई के मार्ग से पराङ्मुख कर सत्पथ की ओर उन्मुख करती हैं।

केवल राजस्थान की कहावतों में ही नहीं, प्रायः सभी पौरस्त्य देशों की कहावतों में भाग्य और कर्म सम्बन्धी यही दृष्टिकोण दिखाई पड़ता है। ऍम्ब्लम्स ईस्टर्न (Eastern Emblems) में एतद्विषयक तुलनात्मक उदाहरण संगृहीत हुए हैं।

(ख) जन्मान्तरवाद—

भाग्यवाद की तरह जन्मातरवाद की भावना ने भी न केवल राजस्थानी जीवन को ही, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय जीवन को प्रभावित किया है। जन्मान्तरवाद सम्बन्धी एक कहावत लीजिये—

"आगले भौ रा बदला किसा छूटै है ?"

पूर्व-जन्म में जिसके साथ जैसा बर्ताव किया गया है, उसका प्रतिफल इस जन्म में अवश्य भोगना पड़ता है।

किन्तु एक-आध कहावत ऐसी भी मिल जाती है जिनमें जन्मान्तरवाद को सन्देह की दृष्टि से देखा गया है। उदाहरणार्थ—

"ओ भव मीठो, पर भव किण दीठो ?"

अर्थात् दूसरा लोक किसने देखा है, परलोक का किसे पता ? हमारे लिए तो यही लोक मधुर है।

(ग) साहसिकता और कष्ट-सहिष्णुता—

भाग्यवाद और जन्मान्तरवाद से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों को पढ़कर कोई यह निष्कर्ष न निकाले कि राजस्थान के निवासी निष्क्रिय होते हैं तथा हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते है। रेगिरतान में रहने वालों को वास्तव में कठिन परिश्रम करके अपनी जीविका बसर करनी पड़ती है। इसलिए एक कहावत में यथार्थ ही कहा गया है—

"फिरै सो चरै, बैठ्यो भूखां मरै।"

किसी आलसी कायर पति की निम्नलिखित भर्त्सना भी इस सम्बन्ध में पठनीय है—

खाणो पीणो खेलणो, सोणो खूंटी ताण।
आछी ढोबी कंथड़ा, नामर्दी के पाण॥

हे कंत ! खाना-पीना, खेलना और निश्चिन्त होकर घोर निद्रा में शयन करना, तुम्हारा केवल यही एक काम रह गया है, नामर्दी के कारण तुमने सब चौपट कर दिया।

राजस्थान के लोग यदि अकर्मण्य होते तो यहाँ की स्थिति बड़ी शोचनीय हो जाती। किन्तु जहाँ तक व्यापार-व्यवसाय का सम्बन्ध है, राजस्थान के एक वर्ग ने कलकत्ता आदि शहरों में व्यापार कर अपनी साहसिक वृत्ति का विलक्षण परिचय दिया है। जो लोग दाने-दाने को मोहताज थे, वे ही अपनी इस वृत्ति के कारण लाखों करोड़ों के स्वामी बन गये। राजस्थान की एक लोकोक्ति में कहा गया है, **"देह में न लत्ता, लूटैला कलकत्ता"**। इस उक्ति का सम्बन्ध उन मारवाड़ी व्यापारियों से है जो फटी हालत में कलकत्ता, बम्बई आदि की ओर जाते हैं तथा अतुल द्रव्योपार्जन करने में समर्थ होते हैं। 'कलकत्ते का बड़ा बाज़ार तो मारवाड़ियों की अधिक बस्ती के कारण राजस्थान के लोगों का ही बाज़ार-सा लगता है।' साहसिकता के साथ-साथ कष्ट-सहिष्णुता भी इन व्यापारियों का एक विशिष्ट गुण है।

(घ) दार्शनिक उक्तियों का अभाव—

कहावतों में सामान्यतः दार्शनिक उक्तियों का अभाव भी पाया जाता है किन्तु कभी-कभी इस प्रकार की लोकोक्तियाँ भी सुनने में आती हैं जो महाकवियों की उक्तियों से टकरा जाती हैं। कौनसी वस्तु उचित है और कौनसी अनुचित, इसका निर्णय करने में विद्वानों को भी हैरान हो जाना पड़ता है। राजस्थानी भाषा की एक कहावत में इस चिरन्तन प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा गया है—

"आप रो बिरम कंवै जी में फरक नहीं पड़ै।"

अर्थात् अपना ब्रह्म या अन्तःकरण जो कहता है, उसकी सत्यता में कभी कोई अन्तर नहीं पड़ता। बहुत वर्षों पहले अभिज्ञानशाकुन्तल के दुष्यन्त ने भी यही बात कही थी—

"सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः।"

६. राजस्थान की कृषि-सम्बन्धी कहावतें

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के धर्मशास्त्रों तक में कृषि की महिमा का वर्णन हुआ है। पराशर-स्मृति में कहा गया है—

कृषेरन्यतमो धर्मो न लभेत् कृषितोऽन्यतः।
न सुखं कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेण कर्षति॥ ५. १८५

अर्थात् कृषि के तुल्य दूसरा कोई धर्म नहीं, कृषि के समान कोई व्यवसाय इतना लाभदायक नहीं। यदि धर्मानुकूल खेती की जाय तो उससे बड़ा कोई सुख नहीं।

भारत की लगभग ८० प्रतिशत जनता खेती पर अपना जीवन बसर करती है। राजस्थान में भी आजीविका का मुख्य आधार खेती ही है। जैसे भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों में खेती-सम्बन्धी कहावतें प्रचलित हैं, उसी प्रकार राजस्थान में भी कृषि-विषयक अनेक कहावतें सुनने में आती हैं। खेती-सम्बन्धी जो अनुभव लोगों को हुए, वे उनकी कहावतों में सुरक्षित रह गये हैं। यही कारण है कि कृषि-शास्त्र और ज्योतिष का बिना ज्ञान प्राप्त किये भी कहावतों द्वारा किसानों को खेती-सम्बन्धी बहुत सी उपयोगी बातों का पता चल जाता है। जो किसान शिक्षा के नाम एक फूटा

अक्षर भी नहीं जानते, उनके भी खेती की कहावतें कंठस्थ रहती हैं। साधारण बोल-चाल की भाषा और छोटे-छोटे छन्दों में गुम्फित होने के कारण इस प्रकार की कहावतों को याद रखना सरल होता है।

राजस्थान में खेती-सम्बन्धी कहावतें विविध रूपों में प्रचलित हैं। उनमें से कुछ कहावतें यहाँ विभिन्न विषयों में विभक्त कर अलग-अलग दी जा रही हैं।

वायु—

(१) सावण पहली पंचमी, जो बाजे बहु बाय।
काल पड़ै सहु देस में, मिनख मिनख नै खाय॥

सावन वदी पंचमी को यदि गहरी हवा चले तो देश भर में ऐसा अकाल पड़े कि आदमी आदमी को खाने लगे।

(२) सावण में तो सूर्‌यो चालै, भादूड़ै परवाई।
आसोजां में पिछवा चालै, भर भर गाडा ल्याई॥[1]

यदि श्रावण में उत्तर-पश्चिम की हवा, भादों में पूर्व की हवा और आश्विन में पश्चिम की हवा चले तो फसल बहुत अच्छी हो।

'जो बाजै सूरियो, घड़ी पलक में पूरियो' इस लोकोक्ति द्वारा भी श्रावण में उत्तर-पश्चिम की हवा चलने से घड़ी-पलक में भारी वर्षा होने की बात कही गई है।

(३) नाडा टांकण बलद-बिकावण ! तू मत चालै आधै सावण।

एक बार आषाढ़ में वर्षा होकर फिर बीस-पचीस दिन तक जोर की हवा चलती है जिससे खेती को बहुत नुकसान पहुँचता है। ऐसी हवा राजस्थान में **'झांझली'** (झंझावात) के नाम से प्रसिद्ध है। उसी हवा को सम्बोधित करके किसी किसान की उक्ति है कि हे बैलों को बिका देने वाली नाड़ा टांकण वायु ! तू आधे सावन तक मत चलती रहना।

(४) चाली पिरवा पून मतीरी पिल गई।[2]

पूर्व की हवा चलने से मतीरी पीली पड़कर गल जाती है।

१. पाठान्तर :

१. सावण मास सूरियो बाजै, भादरवै परवाई।
आसोजां में समदरी बाजै, काती साख सवाई॥
२. सावण में तो सूर्‌यो बाजै, भादरवै परवाई।
आसोजां आथूणी चालै, ज्यूं ज्यूं साख सवाई॥

मिलाइये :

श्रावणे यदि वायव्यो, भाद्रे वहति पूर्वतः।
आश्विने पश्चिमो वाति, कार्तिके सस्यसिद्धयः॥
कादम्बिनी (पं० मधुसूदनजी ओझा), पृष्ठ १४२

२. पूरा पद्य इस प्रकार है :

चाली पिरवा पून मतीरी पिल गई।
पलियाँ पलियाँ ढोल सगीजी वा पुल तो गई॥

नक्षत्र—भारत के प्राचीन विज्ञान-वेत्ताओं ने जहाँ एक ओर यज्ञ के द्वारा ऋतुओं पर विजय पाने का प्रयत्न किया, वहाँ दूसरी ओर उन्होंने ऋतुओं में होने वाले परिवर्तनों का पूर्व-ज्ञान प्राप्त करने में भी सफलता प्राप्त की। इसके लिए उन्होंने खगोल का सहारा लिया। ऋतुओं पर नक्षत्रों का प्रभाव पड़ता है। अतएव ऋतु-परिवर्तनों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए नक्षत्रों का आश्रय लिया गया। उन्होंने नक्षत्र-विचार से कृषि के विभिन्न कार्यों के लिए ऐसी तिथियाँ निर्धारित कीं जिनमें कार्य करने से ऋतु-प्रकोपों से कृषि की सुरक्षा हो सके। आज का वैज्ञानिक विभिन्न कार्यों के लिए समय का निर्धारण तापमान के अनुसार करता है जैसे गेहूँ की बोनी के लिए ठंड की ऋतु में वह समय उपयुक्त ठहराया गया है जब हवा के अधिक से अधिक और कम से कम तापमान में २०° फेरन-हाइट का अन्तर हो। यह सब दफ़्तरों में बैठकर काम करने वालों के लिए ठीक है, किसान के लिए यह सब सुलभ नहीं। भारतीय किसान के लिए तो **'आद्रा धान, चित्रा गेहूँ'** ही सबसे बड़ा थर्मामीटर है।[1]

राजस्थानी भाषा में कृषि के सम्बन्ध में प्रचलित कुछ नक्षत्र-विषयक कहावत लीजिये :

(१) **दीवा बीती पंचमी, सोम शुकर गुरु मूल।**
डंक कहे है भाडली, निपजे सातूं तूल॥

कार्तिक शुक्ला पंचमी को यदि मूल नक्षत्र में सोमवार, बृहस्पतिवार या शुक्रवार हो तो सातों क़िस्म का अनाज खूब उपजे।

(२) **चित्रा दीपक चेतवे, स्वाते गोधरधन्न।**
डंक कहे हे भड्डली, अथग नीपजे अन्न॥

यदि चित्रा नक्षत्र में दिवाली हो और गोवर्धन पूजने के समय स्वाति नक्षत्र हो तो खूब अन्न पैदा हो।

(३) **पोही मावस मूल बिन, रोहिण (बिन) आखातीज।**
श्रवण बिना सलूणियूं, क्यूं बावै है बीज ?

अगर पोष की अमावस्या के दिन मूल नक्षत्र न हो, अक्षय तृतीया को रोहिणी नक्षत्र न हो, रक्षा बन्धन के दिन श्रवण-नक्षत्र न हो, तो खेत में व्यर्थ बीज क्यों बोते हो ? निश्चय ही अकाल पड़ेगा।

प्रसंगवश यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक योजना बनाई है जिसके अंतर्गत ऋतु तथा कृषि-कर्म के सम्बन्ध में प्रचलित लोकोक्तियों की सत्यता की परीक्षा की जायगी। इसके लिए आवश्यक व्यय की व्यवस्था करदी गई है। यह स्मरणीय है कि प्रचलित अगणित लोकोक्तियों में घाघ और भड्डरी के दोहे और कुछ छंद ज्योतिष के आधार पर प्रचलित बताये जाते हैं और जन साधारण के विश्वास के अनुसार अधिकांशतः सत्य हैं। इस परीक्षा के पश्चात् यदि घाघ और

१. देखिये 'वीणा' फर्वरी, १९५१ ई० में प्रकाशित श्री बांकेबिहारी श्रीवास्तव का 'कृषि और ऋतु विज्ञान' शीर्षक लेख; पृष्ठ २०९।

भड्डरी उत्तीर्ण हो गये तो उनकी प्रामाणिक लोकोक्तियों को संगृहीत कर कृषि-शिक्षा के पाठ्यक्रम में रखा जायगा।[1]

भारतीय कृषि-विज्ञान में खगोल और भूगोल का जो सम्मिश्रण है, वह अनुपम और अद्वितीय है। किन्तु यहाँ यह अवश्य कहा जायगा कि हमारी भौगोलिक और खगोलिक अवस्था में भी तो थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ है, इसलिए तिथि-नक्षत्रों आदि के आधार पर बनी घाघ और भड्डरी की सब कहावतें सम्भवतः कसौटी पर पूरी न उतरें पर इसी कारण उनका महत्त्व कम नहीं हो जाता। आज की वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त किया हुआ ऋतु-ज्ञान भी तो सोलहों आना सही नहीं होता। ऋतु-विज्ञान-विभाग से प्रकाशित होने वाली विज्ञप्तियाँ भी कभी-कभी असत्य सिद्ध होती हैं। इसका कारण यह है कि ऋतुओं में क्षण-क्षण में परिवर्तन होता रहता है। अभी जो मौसम है, वह दूसरे ही क्षण वायुमण्डल की परिस्थितियों के अनुसार बदल सकता है, और उससे किसी दूसरी ही घटना के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। २४ से ४८ घण्टे तक के मौसम पर एक विज्ञप्ति निकलती है। इतनी अवधि में न जाने कितने ही सूक्ष्म परिवर्तन हो जाते हैं और प्रकाशित की हुई विज्ञप्ति में अन्तर आ सकता है। कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि वायुमण्डल में होने वाले परिवर्तन जो बहुत ही सूक्ष्म होते हैं, उपलब्ध उपकरणों से पढ़े नहीं जा सकते। वैज्ञानिक इस बात के प्रयत्न में हैं कि मौसमी विज्ञप्तियाँ अधिक से अधिक सही बनाई जा सकें। घाघ और भड्डरी के बाद किसी का नाम नहीं सुनाई पड़ता जिसने बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार ऋतु-विज्ञान का पुनः परीक्षण किया हो। इसलिए वांछनीय है कि घाघ और भड्डरी की कहावतों का परीक्षण किया जाय और उसके परिणाम प्रकाशित किये जायँ।

खेती के उपकरण—बैल, हल, खेत, खाद आदि खेती के उपकरण कहे जाते हैं। कृषि के लिए उपयोगी होने के कारण धर्म-ग्रन्थों में भी वृषभ के पूजन और उसके माहात्म्य का वर्णन हुआ है। पराशर स्मृति में कहा गया है कि बैलों के द्वारा उत्पादित सस्य से सारे संसार का पालन-पोषण होता है। इसलिए बैल इस संसार में धर्म का साक्षात् रूप ही है।

> उक्षाणो वेधसा सृष्टाः सस्यस्योत्पादनाय च।
> तैरुत्पादितसस्येन सर्वमेतद्विधार्यते॥ ५, ४४.
> वृष एव ततो रक्ष्यः पालनीयश्च सर्वदा।
> धर्मोऽयं भूतले साक्षाद् ब्रह्मणा ह्यवतारितः॥ ५, ४८.

अपभ्रंश और राजस्थानी साहित्य में वृषभ के सम्बन्ध में सुन्दर पद्यों की रचना हुई है। कविराज बाँकीदास की 'धवल पचीसी' इस सम्बन्ध में अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसमें कई क़िस्म के बैलों का उल्लेख हुआ है। 'किलोहड़ा' औ 'बोहलिया' छोटी उम्र के बैल होते हैं। बड़े सीधे सीगों वाला 'बेगड़ा' उत्कृष्ट जाति का बैल बतलाया गया है।

> "बेचै मत तूं बेगड़ो, चित नांणा री चाह।
> बलैं न मिलसी बेगड़ो, नाँणा दीधाँ नाह॥ धवल पचीसी, दोहा २८

---

1. देखिये हिन्दुस्तान, ता० २२ जनवरी, सन् १९५४।

हे स्वामिन् ! धन के लोभ से 'वेगड़' को न बेच देना, फिर द्रव्य व्यय करने पर भी ऐसा अच्छा बैल हाथ नहीं लगेगा ।

जिस बैल के सात अथवा पाँच दाँत हों तथा पूँछ के ऊपर-नीचे के काले बालों के बीच में सफेद बालों का वर्तुलाकार गुच्छा हो, ऐसा काले रंग का बैल निकृष्ट और अशुभ माना गया है जैसा कि निम्नलिखित राजस्थानी लोकोक्ति से प्रकट होता है—

"सातड़ पांचड़ पूँछ पोलालो, मतना लाये कंथा ! कालो ।"[१]

जिस बैल का एक सींग टूटा हुआ हो, वह भी किसी काम का नहीं माना जाता । इस प्रकार के बैल को 'डूँडिया' कहते हैं ।[२]

खेती करने वालों को बैल खरीदते समय बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ता है क्योंकि बिना अच्छे बैलों के, खेती में सफलता नहीं मिल सकती । कहा भी है—

"खेती बलदां अर राज घोड़ां का ।"

जिस प्रकार बिना घुड़सवार सेना के राज्य क़ायम नहीं रहते, उसी प्रकार बिना बैलों के खेती नहीं हो सकती ।

जो किसान बैल रखते हैं, उन्हें बैलों की जोड़ी के साथ-साथ गाडा (शकट) भी रखना होता है क्योंकि बिना शकट के खेती का काम नहीं चल सकता जैसा कि नीचे की कहावत से प्रकट होता है—

राड़ करै सो बोलै आडो ।
खेती करै सो राखै गाडो ॥

किसानों की माली हालत उनके हलों से आँकी जाती है । क़रीब चार-पांच बीघे जमीन की खेती एक हल की खेती कहलाती है । एक हल की खेती में तो हैरान ही होना पड़ता है, दो हल की खेती कामचलाऊ मानी जाती है, तीन हल की खेती नाम को सार्थक करती है, चार हल की खेती हो तो फिर कहना ही क्या, वह तो राज्य-सुख भोगने के समान है ।

"एक हल़ हत्या, दो हल़ काज ।
तीन हल़ खेती, च्यार हल़ राज ।"

कीकर की लकड़ी का हल अच्छा समझा जाता है और पीपल की लकड़ी का निकृष्ट ।[३] हल में यदि हाल अच्छी हो तो खेत में बाह अच्छी लगती है ।

"हल़ हालां खेत फड़ालां ।"

---

१. पाठान्तर—
सातड़ पांचड़ गंडरवाल़ा, मोल काट मत लाये काल़ो ।
'गंडरवालो' से तात्पर्य उस बैल से है जिसके गले में गाँठ-सी निकली होती है ।

२. डूंडियो बैल, मुकन्दो हाल़ा ।
बाले पूत उगाले डाल़ी ॥

३. कीकर काटी हल़ घड्या, रस कस की रांधी खीर ,
न्यूत जिमावै भाणजौ, कदे न निरफल़ जाय ॥
सींव काट खेती करै, खर्च कन्या घर खाय ।
पीपलकाट 'र हल घड़ै, वो जड़ामूल़ सैं जाय ॥

खेत के सम्बन्ध में निम्नलिखित राजस्थानी कहावतें उल्लेखनीय हैं—

(१) खेत बड़ा, घर सांकड़ा ।

खेत बड़े हों तभी किसान के लिए खेती लाभदायक होती है । घर भी बहुत आबाद हों तो वे तंग हो जाते हैं और जन-वृद्धि के कारण मांगलिक समझे जाते हैं । इसलिए किसानों की यह अभिलाषा रहती है कि उनके खेत बड़े और घर तंग हों ।

(२) खेत खोवं गैली ।

खेत के बीच होकर अगर रास्ता जाता हो तो वह खेत के लिए हानिकर होता है ।

(३) ऊँचा ज्यांरा बैठणा, ज्यां रा खेत निवाण ।[1]
ज्यांरा दोखी के करं, ज्यांरा मित दिवाण ॥

उच्च पदाधिकारियों से जिनका सम्पर्क है, ताल में जिनके खेत हैं और दीवान जिनके मित्र हैं, उनका शत्रु क्या बिगाड़ सकते है ?

(४) खेत हुवं तो गांव सैं आथूण ही हुवं ।

खेत हो तो गाँव से पश्चिम में होना चाहिए जिससे प्रातःकाल खेत में जाते समय तथा सायँकाल लौटते समय सूर्य पीठ पीछे रहे ।

खाद के विना भी खेती पनप नहीं सकती । जो किसान खाद के महत्त्व को समझता है, उसी के लिए खेती फलदायिनी होती है । खाद के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावतें लीजिये—

(१) खात अर पाणी, के करं बिनाणी ?

खेत में खाद और पानी देना चाहिए, खेती अवश्य अच्छी होगी, इसमें भगवान क्या करेगा अथवा किसी की चतुराई क्या काम आयेगी ?

(२) खात पड़ं तो खेत, नहीं तो कूड़ो रेत ।

खाद डालने से ही खेती हो सकती है, नहीं तो खेत में कूड़ा-करकट और रेत के सिवा कुछ नहीं होगा ।

जोताई और बोआई—

(१) साहू नांटज्या, पण बाहू नां नांटं ।

साहूकार भी रुपये देने से इन्कार कर सकता है किन्तु खेत में जो जोताई की जाती है, वह कभी निष्फल नहीं जाती ।

(२) साढ़ की साढ़ ही याद आवं ।

आषाढ़ के महीने में खेत जोतते समय यदि कोई कृषि-सम्बन्धी भूल हो गई हो तो आगामी आषाढ़ में दुबारा खेत जोतते समय ही वह याद आती है ।

(३) चणो न मांनी बाहू ।

चणा जोताई नहीं मानता । चने के लिए जमीन में नमी होनी चाहिए ।

१. 'बावणो डहरी को होवै भांवै सेर डी ।'

(४) **जेठ सरीखा बाजरा कोनी, कातक बराबर जो कोनी ।**

ज्येष्ठ मास में बाजरा और कार्तिक में जौ का बोना सर्वश्रेष्ठ है ।

इसी प्रकार एक दूसरी कहावत में कहा गया है—

"जेठ बायो बाजरो, सावरण घाल्या बूंट ।
भर भादू में भर देसी, वो बाजरी का ऊंट ॥

(५) **गाजर बावै भादवा, गोबी आसोजां ।**

गाजर भादों में तथा गोभी आश्विन में लगानी चाहिए ।

(६) **रास पुराणी बाजरो, मींडक फाल् जुंवार ।**
इक्कड़-दुक्कड़ मोठिया, कीड़ीनाल् गुंवार ॥

बाजरा बोते समय उतना ही अन्तर रहना चाहिए जितना **'रास'** और **'पुराणी'** में रहता है । बैलों के बँधी हुई उस रस्सी को जिसे हल चलाने वाला थामे रहता है **'रास'** कहते हैं तथा हाथ डेढ़ हाथ की बैल हाँकने की लकड़ी को **'पुराणी'** कहते हैं । एक मण्डूक-प्लुति और दूसरी में जितनी दूरी होती है, उतनी दूरी पर ज्वार बोना चाहिए । मोठ एक-एक दो-दो करके बोना चाहिए और ग्वार को चींटियों की पद्धति पर बिल्कुल पास-पास बोना चाहिए ।

(७) **बुद्ध बावणी, सुक्कर लावणी ।**

बुधवार को बोना चाहिए और शुक्रवार को काटना ।

(८) **स्यावड़ माता सत करिये ।**
बीज म्होड़ो मत करिये ॥

स्यावड़ माता कृषि की देवी मानी जाती है । उससे प्रार्थना की गई है कि जितना बीज जमीन में डाला गया है, उतनी ही पैदावार न देना, उससे कहीं अधिक देना ।

फसल—

(१) **कन्या फूले, तुल फले वृश्चिक ल्यावै लाण ।**

कन्या राशि (आश्विन) में फूल उत्पन्न हों, तुला राशि (कार्तिक) में फल लगें तो वृश्चिक (मार्गशीर्ष) में फसल काटो ।

(२) **काती सब साथी ।**

फसलें चाहे जब बोई गई हों, कार्तिक में सब साथ ही पकती हैं ।

(३) **तीसां रातां टींडसी, सिट्टा साठी जोग ।**
ग्वार फली चालीस सूं पकै भलेरा भोग ॥[1]

टींडसी ३० दिन से, सिट्टे ६० दिन से तथा ग्वार की फलियाँ चालीस दिन से पकती हैं ।

(४) **सांगर गेहूँ केरां तिल, आकां घणो कपास ।**
फोगज फूट्या भाडली, बँधी समय की आस ॥

१. कलायण (श्री नानूराम संस्कर्ता); पृष्ठ ३६ ।

यदि सांगर अच्छे हों तो गेहूँ की फसल अच्छी होती है, कैर अच्छे हों तो तिलों की फसल अच्छी होती है, आक फले-फूलें तो कपास की फसल अच्छी होती है, फोग के फूटने से समय अच्छा होता है।

(५) माह उबारे ने फागण बाले।[1]

ऐसा कहा जाता है कि माघ मास की ठण्ड से तो फसलें पाला लगने से बच जाया करती हैं किन्तु फाल्गुन की सर्दी कभी-कभी दाह लगा जाती है।

दुर्भिक्ष—

निम्नलिखित कहावती पद्य में अकाल अपना परिचय देता हुआ कहता है—

पग पूंगल सिर मेड़ता, उदर ज बीकानेर।
फिरतो घिरतो बीकपुर, ठावो जैसलमेर।।

मेरे पैर पूंगल में रहते हैं, सिर मेड़ता और उदर बीकानेर में स्थित है, चलता-फिरता बीकानेर पहुँच जाता हूँ और जैसलमेर तो मेरा स्थायी हेडक्वार्टर है।

जिस प्रान्त में दुर्भिक्ष इतना व्यापक हो, उसमें दुर्भिक्ष-सम्बन्धी कहावतों का प्राचुर्य अत्यन्त स्वाभाविक है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(१) न भेवं काकड़ो तो क्यूं टेरै हाली लाकड़ो।

हे किसान! अगर कर्क-संक्रान्ति के दिन वर्षा न हो तो तुम क्यों व्यर्थ में हल जोतते हो? कर्क-संक्रान्ति के दिन वर्षा न होने से अकाल पड़ता है।

(२) दो सावण, दो भादवा, दो काती, दो माह।
ढाँडा धोरी बेचकर, नाज बिसावण जाह।।

यदि दो सावन, दो भाद्रपद, दो कार्तिक अथवा दो माघ हों तो चौपायों को बेचकर अनाज खरीदने के लिए चले जाओ क्योंकि अकाल का पड़ना निश्चित है।

(३) परभाते मेह डंबरा, सांजे सीला बाव।
डंक कहै हे भड्डली, काला तणा सुभाव।।

डंक भड्डली से कहता है कि यदि प्रातःकाल मेघ भागे जा रहे हों और शाम को ठंडी हवा चले तो समझना चाहिए कि अकाल पड़ेगा।

(४) चैत मास उजियाले पाख, नो दिन बीज लुकोई राख।
आठं, नौम निरख कर जोय, ज्यां बरसै ज्यां दुरभख होय।।

चैत्र के शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से नवमी तक बिजली को छिपाये रखो, अष्टमी और नवमी को जहाँ-जहाँ बिजली चमकती दिखाई दे, वहाँ-वहाँ दुर्भिक्ष होगा।

(५) निंबां अधर निबोली सूखे, काल पड़े कबहूँ नहिं चूके।

नीम के फल पककर यदि नीम पर ही सूख जायँ और जमीन पर न गिरें तो अवश्य अकाल पड़ेगा।

(६) दिन में स्याल शब्द जो करे, निश्चय ही काल हलाहल पड़े।

दिन में शृगाल शब्द करें तो भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा।

---

१. मालवी कहावतें (श्री रतनलाल महता); पृष्ठ १०६।

फुटकर कहावतें—

(१) **धन खेती, धिक चाकरी।**

खेती धन्य है, नौकरी को धिक्कार है।

(२) **खेती धणियां सेती।**[1]

खेती मालिक की निगरानी से ही फलदायिनी होती है।

(३) **खेती धनी हेती, आधी खेती बेटा हेती।**
हारी हेती ने हींटा हेती ॥[2]

घर के मालिक की देख-रेख में खेती पूरी, और पुत्र की देख-रेख में आधी फलदायक होती है पर इन दोनों की देख-रेख से हटकर खेती यदि नौकर की देख-रेख में हो तो कुछ भी प्राप्त नहीं होता।[3]

(४) **सावण साध्या गेंतरा, कातक ल्हासो जाय।**
काली पीली बाल में, के हाड बाप का खाय ॥

श्रावण में तो फिरता रहा, कार्तिक में दूसरों के यहाँ काम पर जाता रहा, ऐसा व्यक्ति काली-पीली आँधी चलने पर क्या अपने पिता की हड्डियाँ चबायेगा? समय पर खेती करने और उसकी पूरी सम्हाल रखने पर ही वैशाख की गर्मी में खाने के लिए अन्न सुलभ हो सकता है।

(५) **आये गये नै पूछै बात, खेती में क्यूं आथ न साथ।**

जो अपनी खेती को स्वयं नहीं सँभालता और आने-जाने वाले से उसके बारे में पूछताछ करता रहता है, उस खेती से कोई लाभ नहीं होता।

(६) **खेती बादल में है।**

खेती वर्षा पर निर्भर रहती है।

---

१. पाठान्तर :

खेती खून सेती।
खेती बलदां सेती।
खेती खेचल सेती।
खेती खात सेती।
खेती जमीं सेती।
खेती नेंदण सेती।
बाड खेती हाड खेती।

२. मालवी कहावतें (श्री रतनलाल महता); पृष्ठ २६।

३. मिलाइये :

१. खेती पाती बीनती, मोरां तणी खुजाल।
जे सुख चावै आपणों, हाथां हाथ संभाल ॥

२. पर हथ बिणज, संदेसां खेती,
बिन देखे वर ब्याहै बेटी।
द्वार पराये मैले थाती,
ये च्यारूं मिल कूटै छाती ॥

(७) खेती गोरी मोठ की।[1]

गोरी मोठ की खेती उत्कृष्ट होती है।

(८) के धन खेत खलां।[2]

खलिहानों का अन्न से भरा रहना ही वास्तव में सच्चा धन है।

उत्तर प्रदेश जैसे उपजाऊ प्रदेशों में कृषि-विषयक जितनी कहावतें मिलती हैं, सम्भवतः राजस्थान में उतनी नहीं मिलतीं; फिर भी खेती-सम्बन्धी कहावतें यहाँ अच्छी संख्या में उपलब्ध होती हैं, क्योंकि जैसा पहले कहा जा चुका है, राजस्थान की अधिकांश जनता खेती पर अपना जीवन बसर करती है।

तुलनात्मक कहावतें—राजस्थान में डंक और भड्डली की खेती-सम्बन्धी बहुत सी कहावतें प्रसिद्ध हैं। ऊपर स्थान-स्थान पर इस प्रकार के उदाहरण दिये गये हैं। घाघ और भड्डरी की ऐसी ही कहावतें, उत्तर प्रदेश और बिहार आदि प्रान्तों में भी प्रचलित हैं और इस विषय की पुस्तकें भी पं० रामनरेश त्रिपाठी ने प्रकाशित करवाई हैं। इस प्रकार की कहावतें बंगाल में भी '**खनार वचन**' के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक उदाहरण लीजिये—

"भाद्दुरे मेघे पूर्वे वाय, से दिन वृष्टि के घोचाय।"

अर्थात् भाद्र में जिस दिन पूर्व की हवा चले, उस दिन बड़ी वर्षा होगी।

भाद्र में यदि पूर्व की हवा चले तो सवाई फ़सल होती है, इस आशय की एक राजस्थानी कहावत पहले उद्धृत की जा चुकी है।

इसी प्रकार एक दूसरा '**वचन**' लीजिये—

"श्रावने वय पूवे वाय, हाल छेड़े चाषा वाणिज्ये याय।[3]

श्रावण में पूर्व की हवा चलने से अकाल पड़ता है। यही बात उत्तर प्रदेश में प्रचलित लोकोक्ति में कही गई है—

सावन पुरवाई बहै, भादों में पछियावं।
कंत डंगरवा बेंचिके, लरिका भागि जिआव॥[4]

अर्थात् सावन में पूर्व की हवा चले और भादों में पश्चिम की, तो हे स्वामी! बैलों को बेच डालो और कहीं भागकर बच्चों को जिलाओ।

---

१. पूरा पद्य इस प्रकार है:

खेती गोरी गोठ की, धाणो धोली गाय।
बोरो करणो बाणियो, होयां धन ले ज्याय॥

२. पूरी कहावत इस तरह है:

के धन धमकलां, के धन खेत खलां।
के धन सपूत जायां, के धन पड्यो पायां॥

३. देखिये:
बाङ्लाप्रवाद (श्री सुशीलकुमार दे), प्रथम परिशिष्ट, खनार वचन।

४. ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी); पृष्ठ ५८।

राजस्थान, बिहार, बंगाल, उत्तर-प्रदेश आदि में प्रचलित इस प्रकार की कहावतों के तुलनात्मक अध्ययन से बड़े मनोरंजक परिणाम निकलते हैं। घाघ और भड्डरी चाहे किसी प्रदेश के रहे हों किन्तु घाघ और भड्डरी की कहावतें उक्त सभी प्रदेश वालों की अपनी हो गई हैं।

७. राजस्थान की वर्षा-सम्बन्धी कहावतें

(१) वर्षा-विज्ञान की प्राचीनता

भारतवर्ष में वर्षा-विज्ञान बहुत प्राचीन है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि अग्नि देव वृष्टि को ऊपर भेजता है और मरुत् उत्पन्न हुई वृष्टि को लाता है। जब यह आदित्य किरणों द्वारा नीचे को पर्यावृत्ति करता है, तब वृष्टि होती है।[1] वाल्मीकि के मतानुसार आकाश सूर्य की किरणों द्वारा आठ महीने (कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा से आषाढ शुक्ला प्रतिपदा) तक गर्भ-रूप में धारण किये हुए समस्त समुद्रों के रसायन रूप जल को जन्म देता है अर्थात् वृष्टि करता है।[2] वराहमिहिर (५०५ ई० के लगभग) वृहत्संहिता से पता चलता है कि पूर्वकाल में गर्ग, पराशर, काश्यप और वात्स्य आदि मुनियों को वर्षा के बारे में काफ़ी जानकारी थी, और उनके लिखे हुए ग्रन्थ भी थे।[3]

(२) वर्षा के निमित्त और इनके प्रकार

जिस प्रकार आने वाली घटनाएँ अनेक बार अपना पूर्वाभास दे जाती हैं, उसी प्रकार आकाश में छा जाने वाली घटाओं के भी पूर्व निमित्त होते हैं। उन निमित्तों का ज्ञान यदि हमें पहले से हो जाय तो हम बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। वृष्टि के निमित्तों का बोध कराने वाला एक वृष्टिविद्या-बोधक निमित्त-शास्त्र भी है। जैसा ऊपर कहा गया है, सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी के जल को ऊपर खींचता है और मरुत् की सहायता से पृथ्वी पर जल बरसा देता है किन्तु सूर्य का खींचा हुआ जल कितने समय के पीछे, कितने दिन तक, कितना, किस समय, कहाँ-कहाँ बरसेगा, इन सब बातों का ज्ञान कराने वाला यह उक्त वृष्टिविद्या-बोधक निमित्त-शास्त्र है। इस शास्त्र में वर्षा के निमित्त भौम, आन्तरिक्ष, दिव्य और मिश्र, इन चार भागों में विभक्त हैं—

(क) मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, आदि भौतिक वस्तुओं के द्वारा वर्षा के ज्ञान होने को भौम निमित्त कहते हैं।

(ख) वायु, बादल, आकाश, विद्युत्, इन्द्र-धनुष, आँधी आदि से वर्षा के ज्ञान होने को आन्तरिक्ष निमित्त कहते हैं।

(ग) सूर्य-चन्द्र तथा ग्रहों के उदयास्त आदि द्वारा वृष्टि के ज्ञान प्राप्त करने को दिव्य निमित्त कहते हैं।

---

१. अग्नि इतो वृष्टिमुदीरयति। मरुतः सृष्टां नयन्ति।
यदा खलु वा सावादित्यो न्यङ्रश्मिभिः पर्यावर्तते, अथ वर्षति। तै० सं० २-४-१०।

२. अष्टमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः।
रसं सर्वसमुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम्॥ —वाल्मीकि

३. ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी), पृष्ठ १।

(घ) कार्तिक से आश्विन तक के बारह महीनों तथा विशेषतः अक्षय तृतीया, आषाढ़ी पूर्णिमा आदि के शकुनों तथा उपर्युक्त चिह्नों से वर्षा के ज्ञान प्राप्त करने को मिश्र निमित्त कहते हैं।[1]

उक्त चारों प्रकार के निमित्तों से सम्बन्ध रखने वाली वर्षा-विषयक कहावतें राजस्थानी भाषा में उपलब्ध हैं जिनके उदाहरण यहाँ क्रमशः दिये जा रहे हैं—

(क) भौम निमित्त

(अ) मनुष्यों की चेष्टाएँ—

अत पित वालो आदमी, सोवै निद्रा घोर।
अणपढ़िया आतम थकी, कहै मेघ अति जोर ॥१॥
वात पित्त युत देह ज्यां, होय रहे घाम घूम।
अणभणिया आगम कथै, रहे मेह की धूम ॥२॥

पित्त-प्रकृति वाला मनुष्य अगर घोर-निद्रा में शयन करे अथवा वात-प्रकृति वाले मनुष्य का गर्मी से सिर दुखने लगे तो वर्षा बहुत ज़ोर से हो।

(आ) विभिन्न पेशे वालों के अनुभव—

जब जड़ाव पर कुन्दन नहीं लगे, सलाइयों पर कीट जम जाय, धोबी के कपड़े खूम में देने के माट में खंभीर उठे व कोरे कपड़े वाली खूम के माट में गर्मी अधिक हो अथवा छोटे-छोटे कीड़े पड़ जायँ, बुनकर के कपड़े पर लगाई हुई "पान" शीघ्र न सूखे, जूते बनाते समय चमड़े पर लेही न चिपके, ढोल, दमामा, ताशा आदि चमड़े से मढ़े हुए बाजे यदि ठीक न बजें तथा दही मथने पर यदि मक्खन न निकले तो बहुत ज़ोर से वर्षा हो जैसा कि निम्नलिखित दोहों से स्पष्ट है—

कुन्दन जमे न जड़ाव पर, जमे सलायन कीट।
कहे जड़िया सुणजो जगत, उड़े मेह की रीठ ॥१॥
धोब्यां धोखो मिट गयो, मन में हुओ हुलास।
देख सूदणी बजबजी, मेह आवण की आस ॥२॥
कोरा कपड़ा सूदणी, जब अत गरमी होय।
सूछम कीड़ा सूदणी, मेहा मुकता जोय ॥३॥
बणकर केरी पांजनी, सूखे नहीं सताब।
आवावानी मेह की, लाल रंग कहै आब ॥४॥
देख खुरड़ कहे ढेढ की, कंथा टूटे नेह।
ल्हेई चढ़े न चामड़ै, मुकता बरसे मेह ॥५॥
ढोल दमामा बुड़बड़ी, बोरे सादर बाज।
कहे डोम दिन तीन में, इन्द्र करे आवाज ॥६॥

१. देखिये—
स्व० पं० मधुसूदन जी ओझाकृत कादम्बिनी की भूमिका; पृष्ठ ८-९।

बिगड़े घिरत बिलोवणो, नारी होय उदास।
जद असवारी मेह की, रहे छास की छास ॥७॥[1]

(इ) पशुओं की चेष्टाएँ—

आगम सूजै सांढणी, दौड़ै थलां अपार।
पग पटकै बैसे नहीं, जद मेह आवणहार ॥१॥
साबण काछा भाग सुण, गाडर हंदा हुंत।
दौड़ै सनमुख पवन दिस, जल थल डेल भरन्त ॥२॥
मांडे राड सांप री मासी।
तो जाणो चोकस मेह आसी ॥३॥[2]

अर्थात् ऊँटनी इधर-उधर दौड़े, पैर पटके किन्तु बैठे नहीं, भेड़ के साबुन जैसे झाग आ जायें और वायु के सामने दौड़े तथा बिल्लियाँ लड़ें तो जोर से वर्षा होगी।

(ई) पक्षियों की चेष्टाएँ—

चडी ज न्हावे धूल में, मेहा आवणहार।
जल में न्हावै चड़कली, मेह विदा तिण वार ॥१॥
बग पंखां फैलाय, उभकि चोंच पवनां भखे।
तीतर गुंगा थाय, इन्द्र धड़ूके मावजी ॥२॥
टोलै मिलकी काँवली, आय थलाँ बैठन्त।
बिन चौथै के पांचवें जल थल ठेल भरन्त ॥३॥
पपैयो पिउ पिउ करै, मोरां घणी अजग्ग।
छत्र करै मोर्‌यो सिरै, नदियां बहै अथग्ग ॥४॥
अत तरणावै तीतरी, लखारी कुरलेह।
सारसरे भृंगन भ्रमें, जद अत जोरे मेह ॥५॥

अर्थात् जब चिड़िया धूल में नहाने लगे, बगुले पंख फैलाकर बैठें तथा चोंच से वायु का भक्षण करें, तीतर शब्द न करें, बहुत-सी चीलें भूमि पर आ बैठें, पपीहा "पिउ पिउ" करने लगे, और मोर बारंबार बोलने लगें और पंखों का छत्र बनावें, तीतरी जोर-जोर से चिल्लाने लगे, लखारी दुखी होकर बोलने लगे और सारस पर्वतों के शिखर पर भ्रमण करने लगें तो जोर की वर्षा हो।

(उ) कीट-पतंगों की चेष्टाएँ—

साप गोयरा डेडरा, कीड़ी मकोड़ी जाय।
घर छाडे बाहर भमे, नहीं मेह की हाण ॥१॥
गिरगिट रंग बिरंग हो मक्खी चटके देह।
माकड़िया चहचह करें, जद अत जोरे मेह ॥२॥

---

१. बिड़ला सैंट्रल लाइब्रेरी की एक हस्तलिखित प्रति से साभार उद्धृत।
२. राजस्थानी कृषि-कहावतें (श्री जगदीशसिंह गहलोत); पृष्ठ १५।

कीड़ी मुख अंड ले, दर तज भूमि भमन्त ।
बरखा ऋतु विशेष यो जल् थल् ठेल भरन्त ।।३।।[1]

अर्थात् सांप, गोहरे, मेंढ़क, चींटी, मकोड़े, अपने दरों से निकलकर भूमि पर इधर-उधर फिरने लगें, गिरगिट बार-बार रंग बदले, मक्खी मनुष्यों की देह पर चिपक जाय तथा तिवरी लगातार शब्द करने लगे, वर्षा ऋतु में चींटी बिना किसी कारण अपने अंडों को मुख में लेकर इधर-उधर चलने लगे तो बहुत वर्षा होगी ।

(ख) आन्तरिक्ष निमित्त

(अ) हवा—

१. बिजनस पवन सूरियो बाजे ।
घड़ी पलक मांहे मेह गाजे ।।

यदि उत्तर-पश्चिम से हवा चले तो घड़ी दो घड़ी में वर्षा होती है ।

२. पवन गिरी छूटै परवाई ।
धर गिर छोलां इन्द्र धपाई ।।

यदि पूर्व से हवा चले तो भूमि और पर्वत को वर्षा तृप्त करे ।

(आ) बादल—

१. सवार रो गाजियो, ऐलो नहीं जाय ।

प्रातःकाल बादल का गरजना वृथा नहीं जाता ।[2]

२. बादल् रहै रात रा बासी ।
तो जाणों चोकस मेह आसी ।।

यदि पिछली रात के बादल सुबह तक रह जायँ तो वर्षा अवश्य होगी ।

३. सुकरवार री बादरी, रही सनीचर छाय ।
डंक कहे हे भड्डली, बरस्या बिना न जाय ।।

शुक्रवार की बदली यदि शनिवार तक छाई रहे तो बरसे बिना नहीं जाती ।

(इ) आकाश—

१. अम्मर राच्यो, मे माच्यो ।

लाल आसमान वर्षा का सूचक होता है ।

२. तारा अत तगतग करे, अम्बर नीला हून्त ।
पड़े परल् पाणी तणी, जद संज्या फूलन्त ।।

१. वर्षा विज्ञान (श्री नरोत्तम व्यास); पृष्ठ २८-३० ।

२. मिलाइये—
आप्तभाषितवत् सत्यं प्रभाते देवगर्जितम् ।
यामद्वयेन वर्षा वा वातो वा जायते ध्रुवम् ।।

कादम्बिनी, पृष्ठ १४७

अर्थात् प्रातःकाल के समय की गर्जना आप्त-वाक्य की भाँति सत्य होती है । इससे दोपहर के भीतर-भीतर अवश्य वर्षा होती है या वायु चलती है ।

यदि आसमान नीला हो तो घनघोर वर्षा हो।

३. अम्मर पीलो, मे सीलो।

आसमान यदि पीला हो तो वर्षा मन्द पड़ जाती है।

(ई) बिजली—

चैत महीने बीज लुकोवे।
धुर बैसाखां केसू धोवे ॥

यदि चैत्र भर बिजली न दिखाई दे तो वैशाख के प्रारम्भ में ही वर्षा होगी।

(उ) इन्द्रधनुष—

ऊगंतेरो माछलो, आंथवतेरो मोख।
डंक कहै हे भड्डली, नदियां चढ़सी गोख ॥

यदि प्रातःकाल के समय इन्द्रधनुष और सूर्यास्त के समय किरणें दिखाई दें तो नदियों में अवश्य बाढ़ आयेगी।

(ऊ) आँधी—

१. आंधी साथै मेह आया ही करै।

आँधी के साथ वर्षा हुआ ही करती है।

२. आंधी रांड मेहां री पाली दबै।

राजस्थान में आँधी बड़े जोर से चलती है। वह मेह के आने पर ही दबती है।

(ग) दिव्य-निमित्त

(अ) चन्द्र और सूर्य

१. सांमां सुकरां सुरगुरां, जे चंदो ऊगन्त।
डंक कहै हे भड्डली, जल थल एक करन्त ॥

२. सावण तो सूती भलो, ऊभो भलो असाढ।

३. मंगल रथ आगे हुवे, लारे हुवे जो भान।
आरंभिया यूं ही रहै, ठाली रैवै निवाण ॥

४. सूरज कुंड अर चांद जलेरी।
टूटा टीबा भरगी डेरी ॥[1]

यदि आषाढ़ में चन्द्रमा सोमवार, बृहस्पतिवार या शुक्रवार को उदय हो तो डंक भड्डली से कहता है कि बड़े जोर की वर्षा होगी।

श्रावण मास में द्वितीया का चन्द्रमा सोया हुआ और आषाढ़ में खड़ा हुआ अच्छा है।

---

१. मिलाइये—
रवि सिस रे दोली कुंडारी।
एरापत मघवा असवारी ॥

यदि सूर्य के आगे मंगल हो तो सारी आशाओं पर पानी फिर जायगा और तालाब सूखे पड़े रहेंगे।

यदि सूर्य के चारों ओर कुण्ड हो और वैसे ही चन्द्रमा के चारों ओर जलेरी हो तो इतने जोर से वर्षा होती है कि टीले टूटकर पानी के साथ बह जाते हैं और सरोवर जल से परिपूर्ण हो जाते हैं।

(आ) नक्षत्र और तारे

१. आदरा भरै खावड़ा, पुनरबसु भरै तलाब।
न बरस्यो पुषं तो बरसही घणा दुखं॥
२. पहली आद टपूकड़े, मासां पक्खा मेह।
३. असलेखा बूठां, बैदां घरे बधावणा।
४. मघा माचन्त मेहा, नहीं तो उड़न्त खेहा।
५. अगस्त ऊगा, मेहा पूगा।[1]
६. अगस्त ऊगा मेह न मंडे।
जो मंडे तो धार न खंडे॥

आर्द्रा में वर्षा हो तो खड्डे पानी से भर जायेंगे, पुनर्वसु में बरसे तो तालाब भर जायें और पुष्य नक्षत्र में बरसे तो फिर मुश्किल से वर्षा होगी।

आर्द्रा के शुरू में यदि बूँदें पड़ जायँ तो महीने पन्द्रह दिन में वर्षा होगी। यदि अश्लेषा नक्षत्र में वर्षा हो तो डाक्टर-हकीमों के घर बधाई बँटे अर्थात् रोग खूब फैले।

मघा नक्षत्र में यदि वर्षा हो तब तो अच्छा है, नहीं तो धूल उड़ेगी।

अगस्त्य के उदय होने पर वर्षा का अन्त समझना चाहिए। इस तारे के उदय होने पर प्रथम तो वर्षा ही न हो और यदि हो तो मूसलाधार वर्षा हो।

(घ) मिश्र-निमित्त

संस्कृत भाषा के वृष्टिविद्या-बोधक शास्त्रों में कार्तिक से आश्विन तक के बारह महीनों के प्रत्येक दिन का वर्षा की दृष्टि से फल निर्धारित किया गया है। राजस्थानी भाषा में भी वर्ष के प्रत्येक महीने और उस महीने की अनेक तिथियों से सम्बद्ध वर्षा-विषयक कहावती पद्य प्रचलित हैं जिनमें से कुछ यहाँ दिये जा रहे हैं—

कार्तिक

काती सुद पूनो दिवस, जे क्रितिका रख हुन्त।
जे बादल बीजू खिवं, मास चार बरसन्त॥

मार्गशीर्ष

मंगसर तणी ज अस्टमी, बादल बीजां होय।
सावण बरसै भड़डली, साख सवाई जोय॥

---

१. मिलाइये—
उदित अगस्त्य पंथ जल सोखा।
—रामचरितमानस

पौष

पोस अंधारी दस्समी, चमकै बादल् बीज ।
तो भर बरसै भादवो, सायधण खेलै तीज ।।[1]

माघ

माह् ज पड़वा ऊजली, बादल् वाय ज होय ।
तेल पीव अर दूध सब, दिन दिन मूंघा जोय ।।

फाल्गुन

फागण बद दुतिया दिवस, बादल् होय स बीज ।
बरसै सावण भादवो, चंगी होवै तीज ।।

चैत्र

नव दिन कहिजै नौरता, सुकल चैत के मास ।
जल् वूठै बिजल़ी हुवै, जाणो गरभ विनास ।।

वैसाख

वद बसाख अमावसी, रेवति होय सुगाल् ।
मध्यम होवै अस्विनी, भरणी करै दुकाल् ।।

ज्येष्ठ

जेठ बदी दसमी दिवस, जे सनि बासर होय ।
पाणी होय न धरण में, विरला जीवै कोय ।।

आषाढ़

पैली पड़वा गाजै तो दिन बहोत्तर वाजै ।

श्रावण

सावण पैली पंचमी, जो बाजूकै मेव ।
च्यार मास बरसै सही, सत भाखै सहदेव ।।

भाद्रपद

भाद्रव छठ छूट्यो नहीं, बिजली रो झणकार ।
तूं पिव ! जायै मालवै, हूं जाऊं मौसाल् ।।

आश्विन

धुर आसोज अमावसां, जे आवै सनिवार ।
समयो होसी करवरो, पिंडत कहै बिचार ।।

पुनः कार्तिक

भूल्या फिरै गंवार, काती भालं मेहड़ा ।

१. बिड़ला केन्द्रीय पुस्तकालय पिलानी की एक हस्तलिखित प्रति से साभार उद्धृत ।

मिश्र महीने

माघ मसक्कां जेठ सी, सावण ठंडी वाव।
भीम कहै सुण भड्डली, नहिं बरसण रो दाव ॥[1]

अर्थात् कार्तिक सुदी पूर्णमासी को यदि कृत्तिका नक्षत्र हो तथा बादलों में बिजली चमके तो अगले चार महीनों तक लगातार वर्षा होगी। मार्गशीर्ष बदी अष्टमी को यदि बादल और बिजली दोनों हों तो श्रावण में वर्षा हो तथा सवाई उपज हो। पौष बदी दसमी को यदि बादलों में बिजली चमकती हो तो पूरे भाद्र में वर्षा हो और स्त्रियाँ तीज का त्यौहार अच्छी तरह मनायें। माह सुदी प्रतिपदा को यदि बादल और पवन हों तो तेल, घी और दूध, ये सब दिनों-दिन मँहगे होंगे। फाल्गुन बदी द्वितीया के दिन यदि बिजली के साथ बादल हो तो सावन और भादों दोनों बरसेंगे और तीज का त्यौहार खूब मनाया जायगा। चैत शुक्ल पक्ष नवरात्रों में यदि पानी बरसे तो समझ लो कि वर्षा के गर्भ का नाश हो गया, आगे वर्षा नहीं होगी। बैसाख बदी अमावस को यदि रेवती नक्षत्र हो तो सुकाल हो, अश्विनी हो तो मध्यम हो और भरणी हो तो दुर्भिक्ष करे। जेष्ठ बदी दसमी को यदि शनिवार हो तो पृथ्वी पर पानी नहीं बरसेगा और कोई बिरले ही जीवित रहेंगे। यदि अषाढ़ बदी प्रतिपदा के दिन बादल गरजें तो ७२ दिनों तक हवा चले, वर्षा न हो। सावन बदी पंचमी को यदि बादल गड़गड़ावें तो चार महीने अवश्य बरसे, सहदेव सत्य कहता है। भाद्रपद की छठ को यदि बिजली की चमक नहीं छूटी (बिजली नहीं चमकी) तो हे प्रिय! तुम मालवे जाना, और मैं पीहर जाऊँगी। आसोज बदी अमावस्या को यदि शनिवार आये तो पंडित विचार कर कहता है कि जमाना साधारण होगा। वे गँवार भूले हुए फिरते हैं जो कार्तिक में मेह खोजते हैं। माव में गर्मी, जेठ में शीत और सावन में ठण्डी हवा चले तो भीम कहता है कि हे भड्डुली! सुन, ये बरसने के आसार नहीं।

वर्षा का गर्भ—ऊपर दिये हुए पद्यों में एक स्थान पर वर्षा के गर्भ-नाश का उल्लेख हुआ है। यहाँ पर प्रसंगवश हम यह कह देना चाहते हैं कि संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों में वर्षा के गर्भ के उपक्रम, प्रसव, उपघात, दोहद आदि सभी का विस्तार से वर्णन हुआ है। प्रसिद्ध है कि गर्भ-धारण के साढ़े छः महीने अथवा १९५ दिन बाद वर्षा के गर्भ का प्रसव होता है। इस सम्बन्ध में राजस्थानी भाषा का निम्नलिखित दोहा उल्लेखनीय है—

जिण दिन होवै गरभड़ो, तिण थक्की छ मास।
ऊपर पनरा दीहड़ै, बरसै मेह सुगाज ॥

इस प्रकार के पद्यों का मूल आधार बृहत्संहिता आदि ग्रन्थों में मिल जाता है। वराहमिहिर कहते हैं—

यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चन्द्रवशात्।

१. देखिये—
राजस्थानी भाग २ में प्रकाशित वर्षा-सम्बन्धी कहावतें। (श्री नरोत्तमदास स्वामी)

पंचनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ॥[1]

अर्थात् चन्द्रमा के जिस नक्षत्र में प्रवेश करने से मेघ को गर्भ होता है, चन्द्रमा के वश से १९५ दिन में उस गर्भ का प्रसव होता है।

अक्षय तृतीया और आषाढी पूर्णिमा—शकुन-परीक्षा के लिए ये बड़ी महत्त्व-पूर्ण तिथियां हैं। कुछ उदाहरण लीजिये—

अक्षय तृतीया

आखातीज दूज की रैण, जाय अचानक जांचै सैण।
कछुक बीच मांगी नट जाय तो जाणीजै काल् सुभाय॥
हँस कर देय, नटै नहिं कोय, माघा सही जमानो होय॥

अक्षय तृतीया के अवसर पर द्वितीया की रात अचानक जाकर किसी स्वजन मित्र से कोई चीज़ मांगे। यदि मांगने पर वह इन्कार कर जाय तो अकाल के लक्षण समझो। पर यदि हँसकर चीज़ दे, इन्कार न करे तो हे माघजी, अवश्य सुकाल हो।

कादम्बिनी के निम्नलिखित श्लोकों में भी यही बात कही गई है—

राधे शुक्ले द्वितीयायां, तृतीयासंभवे निशि।
याचेतान्यगृहं गत्वा कर्तुं वर्षपरीक्षणम्॥ २१९॥
तस्मै प्रसन्नो दद्याच्चेच्छुभं प्रीतं च भाषते।
तदा वर्षशुभं विद्यादन्यथा त्वन्यथा भवेत्॥ २२०॥

अब एक कहावती पद्य आषाढ़ी पूर्णिमा के सम्बन्ध में लीजिए--

आषाढ़ी पूनम दिनां, निरमल् ऊगै चन्द।
कोइ सिंध कोइ मालवै, जायां कटसी फन्द॥

आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन यदि चन्द्रमा निर्मल उदय हो तो किसी के कष्ट सिंध जाने से और किसी के मालवा जाने से मिटेंगे अर्थात् अकाल पड़ेगा।

आषाढ़ी परीक्षा के प्रकरण में विद्यावाचस्पति पं० मधुसूदनजी ओझा अपने वृष्टिविषयक प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बिनी में लिखते हैं—

दृष्टो यदीन्दुर्नाषाढ्यां वर्षर्तु बहु वर्षति।
यदि तत्रामलश्चन्द्रो नावृष्टिर्दारुणा भवेत्॥ ४२०॥

आषाढ़ी पूर्णिमा को यदि बादलों के कारण चन्द्रमा दिखाई न दे तो वर्षा

---

१. मिलाइये—
यस्मिन् पक्षे भवेद्‌गर्भस्ततः पक्षे चतुर्दशे।
स गर्भदिवसान् सार्द्धषण्मासान्त्ये निह वर्षति॥—कादम्बिनी, पृष्ठ ८

जिस पक्ष में गर्भ-स्थिति हो उससे १४वें पक्ष में अर्थात् गर्भ-स्थिति से साढ़े छः महीनों के अन्त के दिन वर्षा होती है।

मिलाइये—

आसाढ़ी पूनो दिना, बादर भीनो चन्द।
तो भड्डर जोसी कहैं, सगला नरां अनंद॥

ग्राम साहित्य, तीसरा भाग। (रामनरेश त्रिपाठी) पृष्ठ ३१।

ऋतु में खूब वर्षा होगी और यदि चन्द्रमा स्वच्छ दृष्टिगत हो तो भयंकर अनावृष्टि समझनी चाहिए।

(३) कहावतों के निर्माता और उनके अनुभव—

वर्षा-विषयक निमित्तों के विश्लेषण के पश्चात् दो प्रश्न हमारे सामने विचारार्थ उपस्थित हैं।

(१) वर्षा-सम्बन्धी इन कहावती पद्यों का निर्माता कौन है और किस प्रदेश का निवासी है?

(२) वर्षा-विषयक पद्य परम्परा-प्राप्त संस्कृत के वृष्टि-विद्या बोधक ग्रन्थों से प्रादेशिक भाषाओं में आये हैं अथवा स्वतन्त्र रूप से निर्मित हैं?

वर्षा-द्योतक कहावती पद्यों में घाघ, भड्डरी और डाक या डंक—ये तीन नाम प्रमुख रूप से आते हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार "घाघ पहले-पहल हुमायू के राजकाल में गंगा पार के रहने वाले थे। अकबर की भी उन पर बड़ी कृपा थी। उन्होंने 'सराय घाघ' नामक गांव बसाया और फिर उसी में रहने लगे।"[1]

भड्डरी के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि "कोई एक पण्डित काशी से ऐसा मुहूर्त शोध कर घर को चले, जिसमें गर्भाधान होने से बड़ा विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता। पर घर तक पहुँच न पाये और रास्ते ही में शाम हो गई। विवश होकर वे एक अहीर के दरवाज़े पर टिक गये। यह भी प्रवाद है कि वे किसी गड़रिये के घर पर टिके थे भोजन बनवाते समय उनको उदास देखकर अहीरिन ने उनकी उदासी का कारण पूछा और उनके मन का भेद जानकर स्वयं उनसे पुत्र की कामना की। उसी के फलस्वरूप भड्डरी का जन्म हुआ। अतएव ब्राह्मण पिता और अहीरिन माता से भड्डरी की उत्पत्ति मानी जाती है। किन्तु स्वामी नरोत्तमदासजी के मतानुसार अहीरिन माता से भड्डरी की नहीं, डाक की उत्पत्ति हुई। वे भड्डरी को पुरुष नहीं मानते, स्त्री मानते हैं।[2]

एक दूसरी कहानी में भड्डरी सुप्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिर के पुत्र कहे गये हैं किन्तु वराहमिहिर का समय सन् ५०५ ई० के लगभग पड़ता है और भड्डरी के पद्यों की भाषा किसी भी हालत में इतनी पुरानी हो नहीं सकती। इसलिए इस कहानी में कोई तथ्य नहीं जान पड़ता।[3]

राजपूताने में भड्डली नामक एक स्त्री प्रसिद्ध है जो भंगिन थी। उसके पति का नाम डंक ऋषि बताया जाता है जो ब्राह्मण था। "कहते हैं कि भड्डली को शगुन का इल्म खूब आता था और डंक ज्योतिष विद्या अच्छी तरह जानता था। इस सबब से दोनों में बहुत वाद-विवाद हुआ करते थे जो एक पुस्तक में इकट्ठे किये गये हैं

१. घाघ और भड्डरी (रामनरेश त्रिपाठी), भूमिका, पृष्ठ १७-१८।
२. राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, पृष्ठ ६०।
३. ग्राम साहित्य, तीसरा भाग (रामनरेश त्रिपाठी), पृष्ठ १२।

जिसका नाम 'भडली पुराण' है।[1]

भड्डरी की भाषा में मारवाड़ी शब्दों के प्रयोग बहुत मिलते हैं, इससे पं० रामनरेश त्रिपाठी अनुमान लगाते हैं कि या तो दो भड्डरी या भड्डली हुए होंगे, या एक ही भड्डरी युक्त प्रान्त से मारवाड़ में जा बसे होंगे और उन्होंने यहाँ और वहाँ दोनों प्रान्तों की बोलियों में अपने छन्द रचे होंगे।[2]

त्रिपाठीजी का अनुमान ठीक नहीं जान पड़ता। वस्तुतः मौलिक रूप में प्रचलित जो लोकोक्तियाँ अथवा कहावती छन्द एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की यात्रा करते रहते हैं, उनकी भाषा भी प्रान्त-भेद से बदलती रहती है। ऐसा नहीं होता कि छन्दों का निर्माता विभिन्न प्रान्तों में बसकर उन प्रान्तों की भाषाओं में छन्दों का निर्माण करता है।

त्रिपाठी जी के सामने एक दूसरी उलझन यह है कि राजपूताना और युक्त प्रान्त के भड्डरी में स्त्री-पुरुष का अन्तर है। ऐसी दशा में उनके विचारानुसार यह कहना दुःसाहस की बात होगी कि दोनों प्रान्तों के भड्डली एक ही व्यक्ति हैं।

किन्तु स्वामी नरोत्तदास जी त्रिपाठी जी के मत से सहमत नहीं। वे दो भड्डरी स्वीकार नहीं करते। उनके मतानुसार डाक की उक्तियाँ भड्डरी को सम्बोधित करके लिखी गई हैं। राजस्थान में पद्यों के अन्दर वक्ता की जगह सम्बोधित व्यक्ति का नाम देने की प्रथा है। इन पद्यों के अन्दर केवल भड्डरी का नाम देखकर कुछ लोगों ने भूल से भड्डली को ही रचयिता समझ लिया और इन कहावतों को भड्डली की कहावत कहने लगे, यहाँ तक कि सुदूर युक्त प्रान्त में जाकर भड्डली स्त्री से पुरुष भी बन गई।

'कह भड्डरी' जैसे पद्य जहाँ मिलते हैं, वहाँ यह भी सम्भव है कि डाक जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति के सम्पर्क से भड्डली में प्रतिभा का उन्मेष हुआ हो और उसने भी कुछ कहावतें बना डाली हों।[3]

जहाँ तक मैं समझता हूँ, भड्डरी द्वारा कहावतों के रचे जाने के सम्बन्ध में किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हो सकता है, डाक के सम्पर्क से भी भड्डली को कहावतों के निर्माण-कार्य में प्रेरणा मिली हो किन्तु वैसे यह स्वयं भी प्रतिभाशालिनी स्त्री थी। राजस्थान में प्रचलित एक प्रवाद के अनुसार तो डंक ने भड्डली की प्रतिभा को देखकर ही उसे अपने घर में रखना स्वीकार किया था। कहा जाता है कि किसी वर्ष जब डंक ऋषि तपस्या करते थे तो मेह नहीं बरसा। लोग आ-आ कर वर्षा के बारे में उनसे पूछते थे। डंक ने एक दिन भड्डली से पूछा कि तुझे भी कुछ मेह बरसने की खबर है? उसने कहा—मैं तभी बतलाऊँगी जब आप

---

१. रिपोर्ट मरदुमशुमारी, राज मारवाड़ बाबत सन् १८९१ ई०, तीसरा हिस्सा, पृष्ठ २१२-२१३।
२. घाघ और भड्डरी (भूमिका), पृष्ठ २७।
३. देखिये :
'राजस्थान भारती' भाग १ में प्रकाशित स्वामी नरोत्तमदासजी का 'राजस्थान' की वर्षा-सम्बन्धी कहावतें' शीर्षक लेख, पृष्ठ ६०-६१।

मुझसे 'घरवासा' (नाता) करना स्वीकार कर लें। डंक ने कहा—तुम्हारी बात सच्ची निकलने पर मैं तुम्हें स्वीकार कर लूंगा। तब भड्डली ने कहा कि आज ही जब आप गांव से लौटेंगे तो इतनी वर्षा होगी कि वृक्ष की डालियों तक पानी पहुँच जायगा। ऐसा ही हुआ और डंक ने अपने दिये हुए वचन के अनुसार भड्डली से 'घरवासा' कर लिया।[1]

घाघ तथा डाक दोनों के साथ भड्डरी का नाम आता है। इसलिए स्वभावत: ही यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि घाघ और डाक दो व्यक्ति हैं या एक ही व्यक्ति के ये दो नाम हैं? पं० रामनरेश त्रिपाठी के मतानुसार "घाघ के अन्य कई नाम भी बिहार में प्रचलित हैं जैसे डाक, खोना, भाड आदि। मारवाड़ में 'डंक कहै सुनु भड्डली' का प्रचार है। सम्भवत: मारवाड़ का डंक ही बिहार का 'डाक' है।[2] डाक्टर उमेश मिश्र भी डाक और घाघ को एक ही व्यक्ति मानने के पक्ष में हैं।[3]

यदि घाघ और डाक दोनों एक ही हैं तो फिर घाघ को गंगापुर का निवासी मानना मुश्किल है। राजस्थान के विद्वानों की मान्यता है कि डाक राजस्थान के ही किसी प्रान्त का निवासी था। स्वामी नरोत्तमदासजी ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दलीलें उपस्थित की हैं—

(१) राजस्थान में डाकोत नाम की एक याचक जाति है। डाकोत लोग अपने को डाक की सन्तान कहते हैं। डाकोत शब्द डाक-पुत्र शब्द का अपभ्रंश हैं जिसका अर्थ है डाक के वंशज डाकपुत्र-डाकपुत्त-डाक उत्त-डाक उत-डाकौत-डाकोत। पुत्र का अपभ्रंश 'उत' राजस्थानी भाषा में संतानवाचक प्रत्यय बन गया है।[4]

(२) जहाँ तक मालूम हो सका है, डाकोत लोग राजस्थान के बाहर नहीं पाये जाते।[5]

इतना तो पं० रामनरेश त्रिपाठी भी स्वीकार करते हैं कि राजपूताने में डाकोतों की संख्या अधिक है। डाकोत लोग भी डाक और भड्डली को राजस्थान-निवासी बतलाते हैं।

इसलिए बहुत सम्भव शायद यही है कि डाक और भड्डली राजस्थान के ही निवासी हों और दोनों में स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध रहा हो। किन्तु अभी तक विद्वान् इस विषय में एकमत नहीं हैं।

डाक भड्डरी अथवा डंक और भड्डली के बनाये हुए जो वर्षा-सम्बन्धी पद्य

१ 'राजस्थान की जातियाँ, प्रकाशक श्री बंजरगलाल लोहिया, पृष्ठ ७५।

२. घाघ और भड्डरी (श्री रामनरेश त्रिपाठी), भूमिका, पृष्ठ २६।

३. देखिये :

'हिन्दुस्तानी' भाग ४, अंक ४ में प्रकाशित डाक्टर उमेश मिश्र का 'मैथिली साहित्य में डाक' शीर्षक निबन्ध।

४. मिलाइये :

नारणोत (नारायण की सन्तान), किसनसिंहोत (किसनसिंह की सन्तान) आदि।

५. राजस्थान भारती, भाग १, अंक १, पृष्ठ ५६-६०।

कहे जाते हैं उनमें से बहुतों के संस्कृत रूपान्तर आज भी प्राप्त हैं। ऐसे कुछ उदाहरण मैं पहले दे भी चुका हूँ। ब्यावर-निवासी श्री मीठालाल अटलदास व्यास के वृष्टिप्रबोध या भारत का वायु शास्त्र नामक ग्रन्थ में वर्षा-सम्बन्धी पद्यों का विस्तृत संकलन किया गया है और साथ में हिन्दी, गुजराती एवं राजस्थान की वर्षा-सम्बन्धी कहावतें भी दी गई हैं। इसी प्रकार साहित्यवाचस्पति पंडित मधुसूदन जी ओझा द्वारा रचित "कादम्बिनी" में वृष्टि-विद्या-सम्बन्धी अमूल्य सामग्री उपलब्ध होती है। पंडित जी ने संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर ही उक्त ग्रन्थ का निर्माण किया था जिसमें से तुलना के लिए केवल दो उदाहरण मैं नीचे दे रहा हूँ—

१. **कातिक सुद एकादसी, बादल बिजुली जोय।**
तो असाढ़ में भड्डरी, वर्षा चोखी होय॥ —राजस्थानी
एकादश्यां तु शुक्लायां द्वादश्यां वापि कार्तिके।
अभ्रच्छन्नं यदि नभस्तदाषाढे ऽति वर्षति॥६॥—कादम्बिनी, पृ० १६

२. **माह सप्तमी ऊजली, बादल मेह करन्त।**
तो आसाढां भड्डली, मेह घणो बरसन्त॥ —राजस्थानी

३. **माघ शुक्ले तु सप्तम्यां वृष्टयाऽषाढेऽति वर्षति॥६६॥**—कादम्बिनी, पृ० ३४

इस प्रकार के अगणित उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि राजस्थान, बिहार और संयुक्त प्रान्त में प्रचलित बहुत-से वर्षा-विषयक पद्य ऐसे हैं जो संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों से लोक-भाषा में आये हैं अथवा यह भी सम्भव है कि बहुत प्राचीन काल के लौकिक अनुभवों को ही संस्कृत पद्यों में गुंफित कर दिया गया हो। राजस्थान के एक कहावती दोहे में गूजर के लड़के ने पंडितों की भर्त्सना करते हुए सहदेव से कहा है कि ये पंडित तो चोर हैं जिन्होंने लौकिक ज्ञान को चुराकर पुस्तकों में रख दिया है—

"लोक तणो उनमान ले, लियो ग्रन्थ में मेल।
चोरी कीधी पंडतां, सुण जोसी सहदेव॥"

जो भी हो, डाक, भड्डरी, सहदेव, माघा, माघसी, माघजी, फोगसी आदि अनेक नाम ऐसे हैं जिन्होंने वृष्टि-विषयक अनुभवों को कहावती पद्यों के रूप में जड़ कर अतुल यश प्राप्त किया है। संस्कृत के पद्यों को इस प्रकार की लोक-प्रियता प्राप्त नहीं हो सकती थी। बहुत-से तथ्य उक्त कवियों द्वारा अनुभूत रहे होंगे, बहुत-से तथ्य ऐसे भी होंगे जो इन कवियों को परम्परा से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त हुए होंगे।

(४) ठेठ राजस्थानी कहावतें

अब तक वर्षा के सम्बन्ध में जो कहावतें उद्धृत की गई हैं, उनमें से अधिकांश ऐसी हैं जो केवल राजस्थान की कहावतें नहीं कही जा सकतीं, ये कहावतें देश की सर्व-सामान्य सम्पदा हैं, केवल प्रदेश-विशेष के अनुसार इनके परिधान में अन्तर दिखलाई पड़ता है किन्तु राजस्थान में ऐसी कहावतें भी प्रचलित हैं जो स्थानीय रंगत लिये हुए हैं। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

(१) **मेव ने पावणां किताक दिनां रा।**

अर्थात् मेह और अतिथि कितने दिनों के ? जिस प्रकार अतिथि बहुत दिनों तक नहीं ठहरता, उसी प्रकार वर्षा भी राजस्थान में बहुत दिनों तक नहीं ठहरती।

(२) एक मेह एक मेह करता, बडेरा ही मर गया।

एक मेह, एक मेह करते हुए पूर्वज ही चल बसे। राजस्थान में वर्षा कहाँ !

(३) राजा मान्या तो मानवी, मेवां मानी धरती।

राजा जिनको मानते हैं, जिनका सम्मान करते हैं, वे ही मानव हैं और वर्षा की जिस पर कृपा है, वही वस्तुतः धरती है।

(४) मोरिया तो मेहू मेहू करै, पण बरसणं तो इन्दर कै हाथ है।

मयूर तो वर्षा की रट लगाये हुए हैं किन्तु मेह बरसाना तो इन्द्र के हाथ है।

(५) मेहा तो त्यां बरससी, ज्यां राजी होसी राम।

वर्षा तो वहाँ होगी, जहाँ भगवान् की कृपा होगी।

(६) मेवां की माया, बिरखां की छाया।

वृक्षों की छाया की भाँति सब वर्षा की ही माया है।

निम्नलिखित कहावत में तो उक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई है—

(७) सौ सांढीया सौ करहलां, पूत निपूतो होय।
मेवड़ला बूठा भला, होणी होय सो होय॥

यदि वर्षा के कारण सौ ऊँट और ऊँटनियाँ नष्ट हो जायँ, माता के सब पुत्र भी चल बसें तब भी वर्षा का तो स्वागत ही करना चाहिए, जो होना हो वह हो।

इस प्रकार की कहावतें राजस्थान की ठेठ कहावतें हैं। रेगिस्तान के अतिरिक्त अन्य किसी प्रदेश में ऐसी कहावतों का जन्म नहीं हो सकता था।

राजस्थान में जब वर्षा का आगमन होता है तो कितने हर्ष और उल्लास से उसका स्वागत किया जाता है, यह इस प्रदेश के निवासी ही जानते हैं। यहाँ का लोक-साहित्य भी वर्षा की रंगरलियों और उमंगों से भरपूर है।

८. अन्य ऋतुओं-सम्बन्धी कहावतें

वर्षा-ऋतु राजस्थान की सबसे पुरानी ऋतु है तथा यहाँ कृषि भी वर्षा पर ही निर्भर है। इसलिए इस प्रदेश में वर्षा-सम्बन्धी कहावतों की प्रचुरता है किन्तु अन्य ऋतुओं से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें भी यहाँ उपलब्ध हैं। यथा,

१. धान का का तेरा, मकर पचीस, जाड़ा दिन दो कम चालीस।

अर्थात् १३ दिन धन संक्रान्ति के और २५ दिन मकर के, इस प्रकार दो कम चालीस अर्थात् ३८ दिन तक जाड़ा पड़ता है।

२. गरमी गरीब की, र स्यालो साहूकारां को।

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु गरीबों की और और जाड़ा साहूकारों का होता है। निर्धन व्यक्ति वस्त्रों के अभाव में भी गर्मी के दिन सुगमता से बिता देते हैं किन्तु जाड़े में उन्हें मुश्किल पड़ती है। जाड़े में धनी लोग ऊनी वस्त्रों के प्रचुर प्रयोग तथा पौष्टिक खान-पान द्वारा आनन्द मनाते हैं।

३. पोस अर खालड़ी खोस ।

अर्थात् पौष मास में इतनी सर्दी पड़ती है कि उससे चमड़ा खिंच जाता है।

४. आधे माह कांधे कामल बाह ।

अर्थात् आधा माघ बीत जाने पर जाड़ा कम होने लगता है, अतः कम्बल कन्धे पर ही पड़ी रहती है ।

५. सावण सूतां साथरी, माह अखरोड़ी खाट ।
आपू ही मर जावसी, जेठ चलंतां बाट ॥ [१]

अर्थात् श्रावण में कोरे आँगन पर तथा माघ में बिना बिछौने की खाट पर सोने वाले और ज्येष्ठ की गर्मी में चलने वाले अपने आप ही मर जाते हैं ।

६. प्रकीर्ण कहावतें

(१) पशु-पक्षी सम्बन्धी

ऊँट

राजस्थानी भाषा की पशु-सम्बन्धी कहावतों में ऊँट के विषय में सबसे अधिक कहावतें मिलती हैं और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि ऊँट रेगिस्तान के जहाज के रूप में सर्वत्र प्रसिद्ध है । ऊँट धरती का करौत और घर की शोभा समझा जाता है । उसका मस्तक नगाड़े जैसा तथा उसके कान रत्ती की तरह छोटे होते हैं । वह जंगल का संन्यासी होता है । सूखे डंठल और कँटीली झाड़ियों को खाकर ही किसी तरह अपना गुजारा कर लेता है ।[२]

ऊँट जब ६ वर्ष का होता है तो उसके दाँत निकल आते हैं जिन्हें "नेस" कहते हैं । दस वर्ष का होने पर उसकी पूँछ के बाल सफ़ेद हो जाते हैं जैसा कि राजस्थान की एक कहावत "**नो नेसां, दस केसां**" से प्रकट है । दाँतों की संख्या से पशुओं की अवस्था का अनुमान पाणिनि के युग में भी लगाया जाता था ।[3]

जिसकी टाँगें छोटी हों और जिसके "**नेस**" निकल आये हों, ऐसा ऊँट बड़ी लम्बी मंजिलें पार कर सकता है । इस प्रकार के ऊँट पर जो सवारी करता है, उसे प्रातःकाल से लेकर सायँकाल तक ऊँट की पीठ से उतरने की आवश्यकता नहीं । ऐसा ऊँट कभी धोखा नहीं देता, वह बराबर धरती को चीरता हुआ चला जाता है । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावती पद्य उल्लेखनीय है—

"ओछी गोडी, नेस कढ, बहै उलालां बग्ग ।
बो ओठी बो करहलो, आथण होय अलग्ग ॥"

---

१. मेवाड़ की कहावतें, भाग १ (ले० पं० लक्ष्मीलाल जोशी, पृ० १८६) ।

२. माथा टामक जेहड़ा, कान रतीक रतीह ।
दे नादावत भीमड़ा, जंगल तणा जतीह ॥
माथा टामक जेहड़ा, बाहू डंड प्रचण्ड ।
दे नादावत भीमड़ा, धर करवत घर मण्ड ॥
—राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान; पृष्ठ ७६-८०

3. India as known to Panini by Dr. V. S. Agrawala, p. 222.

ऊँट की तेज चाल को "ढाण" कहते हैं। चढ़ते ही ऊँट को बड़ी तेजी से नहीं दौड़ाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से कुछ दूर तेज चलकर वह शिथिल पड़ जाता है।[1]

कंकेड़े (एक कँटीला वृक्ष-विशेष) को ऊँट बड़े चाव से खाता है।[2] फिटकरी देते समय भी ऊँट अर्राता है और गुड़ देते समय भी।[3] जब उस पर कोई सामान लादा जाता है अथवा कोई सवारी करता है तब भी वह अर्राकर अपना क्षोभ प्रकट करता है किन्तु उसके अर्राने पर कोई ध्यान नहीं देता।[4]

प्रसिद्ध है कि ऊँट जब मरता है तो अपनी जन्मभूमि को याद कर मारवाड़ की ओर देखता है। **"ऊँट मरै जब मारवाड़ सामो जोवै।"**[5]

राजस्थान में प्रवाद प्रचलित है कि पाबू जी ऊँटों को लंका से लाये थे, इसलिए **"ऊँट मरै जद लंका कानी"** यह उक्ति भी कभी-कभी सुनने में आती है।

राजस्थान के प्रसिद्ध लोक-काव्य **"ढोला मारू रा दूहा"** में ऊँट का बड़ा स्वाभाविक वर्णन हुआ है जिसमें से एक दोहा यहाँ दिया जा रहा है—

दूजा दोबड़ चोवड़ा, ऊंटकटालउ खाण।
जिण मुखि नागरबेलियां, सो करहउ केकांण ॥३०९॥

अर्थात् दोहरे-चोहरे शरीरधारी, काँटेदार घास को चरने वाले ऊँट साधारणतः बहुत मिलते हैं परन्तु जो नागरवेलि के पत्तों को चरने वाला उत्तम जाति का ऊँट होता है, वही ऊँटों में शिरोमणि गिना जाता है।[6]

घोड़ा

राजस्थान के एक कहावती दोहे में कहा गया है कि जिसने तेज़ चलने वाले घोड़े की सवारी का आनन्द नहीं उठाया, उसका जन्म व्यर्थ ही गया। इसी प्रकार एक दूसरे दोहे में घोड़े की पीठ को 'स्वर्ग की निशानी' बतलाया गया है।

१. **तीखा तुरी न माणिया, भड़ सिर खग्ग न भग्ग।**
जलम अकारथ ही गयो, गौरी गलॆ न लग्ग ॥

२. **चौथी पीठ तुरंग री, सुरग निशानी च्यार।**

१. ऊँट नै उठतां ही ढाण नहीं घालणो।
२. काणो ऊँट कंकेड़ा कानी देखै।
मिलाइये—प्रवीचते केलिवनं प्रविष्टः क्रमेलकः कण्टकजालमेव।
३. ऊँट फिटकड़ी दियां ही अरलावै, गुड़ दियां ही अरलावै।
४. ऊँट तो अरड़ावता हीज लादीजै।
५. मिलाइये—
ऊँट मरे त्यारे मारवाड़ सामुं जुए। (गुजराती कहावत)।
ऊँट बउराला तो पछिमे जाला। (भोजपुरी कहावत)।
पाठान्तर—
"ऊँट मरै जद पूंगल कानी।"
६. ढोला मारू रा दूहा (भूमिका), पृष्ठ ७८।

भारतीय इतिहास, भारतीय राजाओं और भारतीय परम्पराओं से परिचय रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि भारतीय सम्राटों के उत्थान व पतन में घोड़ों का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। श्रीकृष्ण ने कौरवों की सहायता के लिए जो अक्षौहिणी सेना दी थी, उसमें घोड़ों का प्रमुख स्थान था। ऐतिहासिक युग में घुड़सवार-सेना का सर्वोत्तम संगठन मौर्य-साम्राज्य में हो सका था। राजा पुरु से सिकन्दर का जो युद्ध हुआ, उसमें सिकन्दर को अपनी घुड़सवार-सेना से बड़ी सहायता मिली थी। हूणों की विजय का बहुत कुछ श्रेय भी उनकी अश्वारोही सेनाओं को था। राजपूत-युग में तो घोड़ों ने जो चमत्कार दिखलाया, उसकी गाथाएँ देश के बच्चे-बच्चे की जबान पर हैं। हल्दीघाटी का युद्ध और महाराणा प्रताप का चेतक देश के इतिहास में अमर हैं। घोड़ों के इस ऐतिहासिक महत्त्व के कारण ही 'घोड़ां राज' जैसी कहावत राजस्थान में प्रचलित हुई होगी, यद्यपि आज के वैज्ञानिक युग में युद्ध-पद्धति में परिवर्तन हो जाने के कारण घोड़ों का वह महत्त्व नहीं रह गया।

किन्तु जिस प्रकार खिलाड़ी ही खेल खेलना जानता है, उसी प्रकार घोड़े का उचित उपयोग सवार ही कर सकता है।[1] घोड़े की पकड़ के सम्बन्ध में भी निम्नलिखित कहावत प्रसिद्ध है—

"घोड़ो मर्द मकोड़ो, पकड़्यां पाछै छोड़ै थोड़ो।"

आकृति-प्रकृति में पुरुष मातृ-कुल का अनुसरण करता है और घोड़ा पितृकुल का, जैसा कि निम्नलिखित कहावतों से स्पष्ट है—

(१) **नर नानेरं, घोड़ो दादेरं।**

(२) **मा पर पूत पिता पर घोड़ो, घणो नहीं तो थोड़म थोड़ो।**

अन्य पशु

बैल जब खरीदा जाता है तो उसके दांतों की संख्या से उसकी अवस्था की परीक्षा की जाती है।[2] बैल हमेशा बन्धन में रहता है।[3] आलसी बैल या तो चलता नहीं, अगर चलता है तो सात गाँवों तक को पार कर जाता है।[4] जो बैल नया-नया लाया जाता है, वह खूंटा तोड़ता है।[5] खेती तो वास्तव में बैलों से ही होती है।[6]

परवशता, आत्म-समर्पण तथा दया आदि के प्रतीक के रूप में 'गाय' शब्द का प्रयोग होता है। दूध न देने वाली गाय अपने बछड़े से अधिक प्रेम दिखलाती है किन्तु यह प्रेम गाय के मालिक को नहीं सुहाता।[7] इस प्रकार की गाय हमेशा दुःखद होती

---

१. खेल खिलाड्यां का, घोड़ां असवारां का।

२. देखिये—
मालवी कहावतें भाग १, (श्री रतनलाल महता), पृष्ठ ३६।

३. बलद जूड़ो कोनी गे्यो।

४. कै तो पैल बलद चालै कोनी र चालै तो सात गावां की सींव फोड़ै।

५. नयो बलद खूँटो तोड़ै।

६. बलदां खेती।

७. काटर कै हेज घणो (ठांगर कै हेज घणो)

है।[1] दूध वाली गाय की तो लात भी अच्छी लगती है किन्तु बिना दूध वाली को कोई नहीं पूछता।[2] जिस गाय को हरे घास की चाट लग जाती है, वह चरती-चरती दूर निकल जाती है।[3]

दूध आदि के लिए तो भैंस ही रखनी चाहिए चाहे वह सेर दूध ही क्यों न दे।[4] भैंस अपना रंग तो नहीं देखती किन्तु छाते को देखकर चौंकती है।[5] भैंस के आगे बाँसुरी बजाना व्यर्थ है।[6] जूते में कांटा जिस प्रकार कष्टदायक होता है, उसी प्रकार प्रथम बार ब्याही हुई भैंस भी दुःखदायक होती है।[7]

भैंसे से अधिक काम लिया जाता है, इसलिए उसका भगवान ही मालिक है।[8]

बकरी दूध तो देती है लेकिन मेंगनी करके।[9] प्रसिद्ध है कि गूगा जांटी अर्थात् भाद्र कृष्णा नवमी के बाद बकरियाँ दूध देना बन्द कर देती हैं—

"आयी गूगा जांटी, बकरी बूदां नाटी।"

बकरे की माँ कब तक कुसल मनावे ?[10] उसकी तो कभी-न-कभी बलि दे दी जायगी। शनिवार को पाडे, बकरे आदि की बलि दी जाती है। बकरे की माँ कितने शनिवार टाल सकेगी ?[11]

सिंहं नैव गजं नैव, व्याघ्रं नैव च नैव च।
अजापुत्रं बलिं दत्ते दैवो दुर्बलघातकः॥

एक भेड़ जब कुएँ में गिरती है तब सभी साथ जा पड़ती हैं।[12] यही भेड़िया-धसान है।

कुत्तों की लड़ाई प्रसिद्ध है। यदि उनमें मेल हो तो वे गंगा जी स्नान करके आ जायँ।[13] कुत्ते की पूँछ १२ वर्षों तक दबी रही किन्तु जब निकली तभी टेढ़ी।[14]

बिल्ली तो हमेशा चूहों को मारती रहती है, इसलिए उससे कभी कोई भलाई का काम नहीं होता।

१. कै मारै सीरी को काम, कै मारै काटर को जाम।
२. धीणोड़ी कै सागै हीणोड़ी मारी जाय।
३. चूंटी लागी गाय, बावड़ै तो बावड़ै नहिं आघी नीकल जाय।
४. धीणूं भैंस को, हो भांवैं सेर ही।
५. भैंस आपको रंग तो देखै ना, छत्तै नै देख कर बिदकै।
पाठान्तर : भैंस बोरो देख 'र चमकै।
६. भैंस आगै बाँसरी बजाई गोबर को इनाम।
७. भैंस्यां में लाटी ने पगरखी में कांटी।
८. पाडै को अर पराई जाई को राम बेली।
९. बकरी दूद तो दे पण दे मींगणी करके।
१०. बकरे की मा कद तांई खैर मनावैं।
११. बकरा की मा के थावर टालही।
१२. एक भेड़ कुवैं में पड़ै तो सै जा पड़ै।
१३. कुत्तां रे संप होबै तो गंगा जी नहायि आवै।
१४. कुत्तै की पूँछ बारा बरस दबी रही पण जद निकली जद ही टेढी।

"बिल्ली नै मंगल गावतां देख्या कोनी ।"

एक कहावत में बतलाया गया है कि काम करने के लिए जाते समय बिल्ली की भाँति चुपचाप तथा सावधानीपूर्वक जाना चाहिए और काम करके आते समय कुत्ते की भाँति जल्दी से आ जाना चाहिए ।

"मिन्नी री चाल जावणों, कुत्ते री चाल आवणों ।"

गधा मूर्खता का प्रतीक समझा जाता है । लाख साबुन से धोने पर भी वह घोड़ा नहीं बन सकता । कूड़े के ढेर पर लोटना उसको अच्छा लगता है । ज्येष्ठ के महीने में उसके मस्ती चढ़ती है ।[1]

शृगाल की जब मौत आती है तब वह गाँव की तरफ़ भगता है ।[2] गीदड़ और लोमड़ी के सम्बन्ध में निम्नलिखित कहावत राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध है—

गादड़ मारी पालखी, मे धड़ूक्यां हालसी ।
लूंगां चढ़गी बाँस, उतरै चोथै मास ।।

अर्थात् पलत्थी मार कर गीदड़ बैठ गया है, बादल गरजने पर ही वह हिलेगा । लोमड़ी बाँस पर चढ़ गई है, वह चौथे महीने नीचे उतरेगी । इस कहावत के मूल में गीदड़ और लोमड़ी की प्रसिद्ध लोक-कथा है ।

पक्षियों-सम्बन्धी

पक्षियों के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत कम संख्या में कहावतें उपलब्ध होती हैं । कुछ कहावतें नमूने के तौर पर यहाँ दी जा रही हैं—

१. **काग पढ़ायो पींजरो, पढग्यो च्यारूं वेद ।**
समझायो समझै नहीं, रह्यो ढेढ को ढेढ ।।

अर्थात् कौवा यदि चारों वेद पढ़ जाय तब भी उसमें समझ नहीं आती ।

२. **कागा किसका धन हड़ै, कोयल किसकूं देय ।**
जीबड़ल्यां के कारणै, जग अपणो कर लेय ।।

अर्थात् कौवा किसका धन हरण करता है और कोयल किसको देती है ? मधुर वाणी के कारण ही कोयल सब का मन हर लेती है ।

३. **कबूतर नै कुवो हीं दीखै ।**

कबूतर को कुआँ ही दिखाई देता है ।

४. **कमेड़ी बाज नै कोनी जीतै ।**

पंडुकी बाज को नहीं जीत सकती ।

"**पखेरवां में काग**" कहकर कौवे को सब पक्षियों में चालाक बतलाया गया है ।

राजस्थानी भाषा में ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनमें पक्षियों की चेष्टाओं द्वारा वर्षा-विषयक तथ्यों को प्रकट किया गया है । ऐसी कहावतों का उल्लेख वर्षा-सम्बन्धी कहावतों के प्रसंग में किया गया है ।

(२) क्षुद्र-जन्तु सम्बन्धी

क्षुद्र जन्तुओं में पतंजलि ने नकुल, गोधा, सर्प, भ्रमर, चींटी आदि का समावेश

---

१. गधेड़ै कै जेठ में भूदी चढ़ै ।
२. गादड़ा की मौत आवै जणा गाँव कानी भाजे ।

किया है ।[1] राजस्थान में जहाँ "बिस्वे बिस्वे पर सर्प" बतलाये जाते हैं, क्षुद्र-जन्तुओं में से सर्प के सम्बन्ध में सबसे अधिक कहावतें मिलती हैं । उदाहरणार्थ कुछ कहावतें लीजिये—

(१) **सांप चालती मौत है ।**
(२) **सांप रै खायोड़ै नी अदीतवार कद आवै ?**
(३) **सांपां कै मांवसियां को के साख ?**
(४) **सांप को खायोड़ो बीछ्यां सैं के डरै ?**
(५) **सांप सगलै टेढो मेढो चालै पण बिल में बड़ै जद सीदो हो ज्याय ।**
(६) **सांप सलीट्या सदा ई देख्या इजगर बाबो अबकै ।**
(७) **सांप कै चीखलै को के बडो अर के छोटो ?**
(८) **सांपां का ब्या में जीभां की लपालप ।**
(९) **सांप रो सोवै, बिच्छू रो रोवै ।**
(१०) **सांप की रांद झाड़ूलो काटै ।**
(११) **बिरड़िये को गारड़ कोनी ।**

अर्थात् साँप चलती हुई मौत है । झाड़-फूँक कर इलाज करने वाले रविवार के दिन साँप के काटे का इलाज करते हैं किन्तु जिसे साँप काट खाय, उसका तो तुरत-फुरत इलाज होना चाहिए । इतवार तक वह प्रतीक्षा कैसे करे ? साँपों में मौसी का कोई सम्बन्ध नहीं होता । जिसे एक बार साँप ने काट लिया है, वह बिच्छुओं के काटने से फिर नहीं डरता । साँप सब जगह टेढ़ा-मेढ़ा चलता है किन्तु अपने बिल में प्रवेश करते समय सीधा हो जाता है । छोटे-मोटे साँप तो अब तक बहुत देखे थे किन्तु अजगर बाबा तो अभी देखने को मिला । साँप के बच्चे का क्या छोटा और क्या बड़ा ? साँपों के विवाह में केवल जीभों की लपालप होती है । साँप का काटा हुआ सोता है और बिच्छू का काटा हुआ रोता है । गारुड़ी ही साँप का इलाज करता है किन्तु बिरड़िये सर्प का उपचार उसके पास भी नहीं । बिरड़िया एक छोटा बिलांद (सं० वितस्ति) के बराबर ज़हरीला सर्प होता है । यह "**कुम्हारिया सांप**" भी कहलाता है ।

कुछ कहावतों में गोह (गोधा), सांडा, छिपकली आदि का भी उल्लेख हुआ है । जैसे,

(१) **गोह की मौत आवै जरां ढेढ रा खालड़ा खड़बड़ावै ।**

गोह की मौत आती है तब वह चमार के चमड़ों को खड़खड़ाती है ।

(२) **गोह चाली गूगै नै, सांडो बोल्यो मेरी भी जात है ।**

गोह गूगे की जात देने के लिए चली तो साँडे ने कहा कि मुझे भी "जात" देनी है ।

साँडा छिपकली की जाति का, पर आकार में उससे कुछ बड़ा एक प्रकार का जंगली जन्तु होता है ।

---

1. India as known to Panini by Dr. V. S. Agrawala. p. 221-222.

(३) सूधी छिपकली चुग चुग जिनावर खाय ।

ऊपर से सीधी दिखलाई पड़ने वाली छिपकली चुन-चुनकर छोटे-छोटे कीड़ों को खा जाती है ।

क्षुद्र कीटों से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों के भी उदाहरण लीजिये—

(१) आसी चाँदा छठ, कातर मरसी पट ।

भाद्र कृष्णा षष्ठी के बाद कातरें नष्ट हो जाते हैं ।

(२) भेभल राणी चोरटी, रातों सिट्टा तोड़ती ।

"भेभल" एक पंखों वाला छोटा कीट होता है जो आश्विन के महीने में फसल को नुकसान पहुँचाता है ।

(३) पेड़-पौधों-सम्बन्धी

राजस्थान में पेड़-पौधों-सम्बन्धी बहुत-सी कहावतों की आशा नहीं की जा सकती । फिर भी इस प्रकार की कहावतों का यहाँ अभाव नहीं है । यथा,

(१) कैर को ठूँठ टूट ज्यागो, लुलंगो नहीं ।

करील की लकड़ी टूट भले ही जाय पर झुक नहीं सकती ।

(२) गाँव गाँव खेजड़ी ।

राजस्थान के गाँव-गाँव में शमी का वृक्ष मिलता है ।

(३) रूप का रूड़ा रोहीड़ै का फूल ।

रोहीड़े के फूल देखने में ही सुन्दर होते हैं ।

(४) भाँखड़ी का काँटा को आगड़ा तांई जोर ।

भाँखड़ी से तात्पर्य छोटे गोखरू (गोक्षुरक) से है । भाँखड़ी का काँटा अपने उद्गम-स्थान तक ही शरीर के अन्दर चुभ सकता है अर्थात् वह बहुत छोटा होता है ।

(५) **अंवल् अंवल् मेवाड़ ।**
बंबूल बंबूल मारवाड़ ॥

अर्थात् अंवल द्वारा मेवाड़ तथा बबूल द्वारा मारवाड़ की सीमा निर्धारित होती है । अंवल एक पीले फूलों वाले झाड़-विशेष का नाम है और बबूल एक सुपरिचित काँटेदार वृक्ष-विशेष है ।

(४) आशीर्वादात्मक

कुछ कहावतें आशीर्वादात्मक होती हैं । **"सीली हो, सपूती हो, सात पूत की मा हो, बूड सुहागण हो, दूधां न्हाओ, पूतां फलो"** जैसे कहावती वाक्य इसी वर्ग के अन्तर्गत समझिये । इस प्रकार की आशीर्वादात्मक लोकोक्तियाँ विश्व की प्रायः सभी भाषाओं में मिलती हैं । कश्मीर की एक इसी प्रकार की कहावत में कहा गया है कि अगर तुम ज़मीन खोदो तो वह तुम्हारे लिए सोना बन जाय ।

(५) खेल-सम्बन्धी

राजस्थानी भाषा में ऐसी भी अनेक कहावतें हैं जिनका सम्बन्ध खेलों से है । खेल-सम्बन्धी कुछ लोकोक्तियाँ लीजिये—

(१) देखो राजा भोज नै, कूण जिनावर खाय।
सरण वरण की ठीकरी, सरणाटा करती जाय ।।

ठेकरी (घड़े के खंडित टुकड़े) फेंकने के खेल में लड़के उमंग में भरकर इन पंक्तियों को दोहराया करते हैं।

(२) अगड़ बुहार जीजी बगड़ बुहार, तूंबी पटकूँ तेरे द्वार।
अगड़ बगड़ में पड़्या जंजीर, कोइ ल्यो तुक्को, कोइ ल्यो तीर ।।

(३) क—मे बाबो आयो सिट्टा फली ल्यायो।
ख—आयो बाबो परदेसी, घणा जमाना कर देसी।
ग—ढकणी में ढेकलो, मेह बरसै मोकलो।
घ—मेह मामो आयो, मंगल गीत गवायो।
ङ—डोकरिया कै डरूँ डरूँ, खाली कोठा भरूँ भरूँ।

वर्षा-ऋतु में अत्यन्त हर्षित होकर खेल खेलते हुए बच्चे इन उक्तियों का प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं।

ऊपर की पंक्तियों में मेह को बाबा के रूप में कल्पित कर लिया गया है। इस प्रकार के सम्बन्ध-स्थापन से एक प्रकार की आत्मीयता आ जाती है।

(६) वार्त्ता-सम्बन्धी

कुछ ऐसी उक्तियाँ भी राजस्थान में कहावत की भाँति प्रचलित हैं जिनका प्रयोग लोग बातचीत अथवा कथा कहने में करते हैं। उदाहरणार्थ—

(१) बात केतां बार लागे, हुंकारे बात प्यारी लागे।
अर्थात् बात कहने में देर लगती है, 'हुँकारा' देने से बात प्रिय लगती है।

(२) बात में 'हुंकारो', फोज में नंगारो।
फौज में जैसे नगारा, उसी तरह बात में 'हुँकारा' वांछनीय है।

(३) जियै बात को कैणहार, जियै हुंकारा को देवणहार।
बात का कहने वाला चिरंजीवी हो और चिरंजीवी हो 'हुँकारा' देने वाला।

(४) बात जसी झूठी नहीं अर साकर जसी मीठी नहीं।
अर्थात् बात जैसी कोई वस्तु झूठी नहीं और शक्कर जैसी मीठी नहीं।

(५) रामजी भला दिन दें।
भगवान् भले दिन दें।

वार्त्ता के प्रारम्भ में निम्नलिखित कहावती दोहे का प्रयोग किया जाता है—

सदा भवानी दाहणी, सनमुख होय गणेश।
पंच देव रिच्छा करें, ब्रह्मा विष्णु महेश ।।

आशीर्वाद, खेल, वार्त्ता आदि के सम्बन्ध में जो कहावतें ऊपर दी गई हैं, उनको बहुत से विद्वान् अर्थतः कहावतें स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार के वाक्य बहुप्रचलित होकर रूढ़ हो गये हैं किन्तु फिर भी इन्हें कहावत के महत्त्वपूर्ण पद पर आसीन नहीं

किया जा सकता ।[1]

(७) हास्य और व्यंग्य-सम्बन्धी—

यथार्थ जगत् से सम्बद्ध होने के कारण प्राय: सभी भाषाओं की कहावतों में हास्य और व्यंग्य की मात्रा किसी न किसी रूप में अवश्य मिलती है। राजस्थानी भाषा की कहावतों में भी स्थान-स्थान पर हास्य और व्यंग्य का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण लीजिये—

(क) हास्य

(१) **ठाकरां ठाडा किसाक ? कह—कमजोर का तो बैरी पड़्यां हां !**

हे ठाकुर ! आप कितने पराक्रमी हैं ? उत्तर—कमजोर के तो पूरे शत्रु हैं।

(२) **साधवां कै कसो सुवाद ? माई, अणबिलोयो ही आवा दे !**

एक साधु किसी के घर छाछ माँगने गया। छाछ मथने वाली स्त्री ने कहा कि छाछ अभी मथी नहीं गई है। साधु ने कहा—बिना मथी हुई (मलाईयुक्त) ही आने दो, हम साधुओं को स्वाद से क्या मतलब ?

(३) **सोनार थोड़ो सोनो दीजे। के सोनो मांग्यो थोड़ो ई मलं तो कै पड़ी जीभ कंइ करं !**

किसी ने सुनार से थोड़ा सोना माँगा। सुनार ने उत्तर दिया कि सोना भी कहीं माँगे मिलता है ? तब उस माँगने वाले ने कहा—यह तो ठीक, किन्तु मेरी ठाली जीभ क्या करे ? इसे भी कुछ काम चाहिए।

(४) **बाबाजी संख तो सुदियां बजायो कह—देव को ना देव का बाप को, टका नो काट्या है।**

किसी ने कहा—बाबाजी ! आज तो शंख सदा से जल्दी बजाया। बाबाजी ने उत्तर दिया—शंख न तो देवता का है, न देवता के बाप का है, नौ टके देकर मैंने इसे खरीदा है, मैं जो चाहे सो करूँ !

राजस्थानी कहावतों में ठाकुर, चौधरी तथा बाबाजी को लेकर अनेक स्थानों पर हास्य की अच्छी सृष्टि की गई है।

(ख) व्यंग्य

हास्य की अपेक्षा भी इन कहावतों में व्यंग्य के अधिक उदाहरण मिलते हैं। यथा—

(१) **कुराड़ा सूं कपड़ा धोवै, र करतार मारी रक्षा करज्यै।**

कुल्हाड़े से कपड़े धोता है और कहता है कि मैं करतार ! मेरा रक्षा करना।

(२) **ऐरण की चोरी करं, करं सुई को दान।**
चढ़ चौबारे देखसी, कद आवं बीमाण ॥

निहाई जैसी बड़ी वस्तु की तो चोरी करता है और सुई जैसी तुच्छ वस्तु का

---

१. देखिये :
Introduction to Racial Proverbs by S. G. Champian. p. XIV.

दान करता है। तिस पर भी आप अपने को बड़ा भारी दानी समझते हैं और आशा करते हैं कि आप को लेने के लिए स्वर्ग से विमान आयेगा !

(३) **सारी रामायण सुणली पण यो बेरो कोन्या पड़्यो के राकस राम हो क रावण।**[1]

सारी रामायण सुन ली पर यह पता नहीं चला कि राक्षस राम था या रावण !

(४) **म्हारै सें आग ल्याई, नाँव धर्‌यो वैसुन्दर।**

हमारे यहाँ से आग माँग कर लाई और नाम रखा वैश्वानर !

(५) **आप गरूजी कातरा मारै चेलाँ नै परमोद सिखावै !**

स्वयं गुरुजी तो कातरे मारते हैं और शिष्यों को उपदेश देते हैं। कातरा एक प्रकार का कीट होता है जो वर्षा-ऋतु में पैदा होकर उसी ऋतु के अन्त में नष्ट हो जाता है।

प्रबन्ध में स्थान-स्थान पर राजस्थानी कहावतों के हास्य और व्यंग्य पर संकेत किया गया है। इसलिए अतिप्रसंग के भय से यहाँ और उदाहरण नहीं दिये जा रहे हैं।

१. पाठान्तर—

"सगली रामायण सुण' र पूछी कै सीता कुण ही ?"

चतुर्थ अध्याय

उपसंहार

राजस्थानी कहावतों का भविष्य

यह अनुभव-सिद्ध बात है कि हमारे पूर्वज कहावतों का जितना प्रयोग करते थे, उतना हम नहीं करते। शहरों की अपेक्षा गाँवों में कहावतों का अधिक प्रचार है किन्तु अब गाँवों के भी बहुत से लोग शहरों की तरफ़ जाने लगे हैं। इसके अतिरिक्त गाँवों में भी अब क्रमशः बढ़ते हुए शिक्षा-प्रचार के कारण कहावतें अपेक्षाकृत कम सुनने में आ रही हैं।

ऐसी स्थिति में नई कहावतों का बनना भी एक प्रकार से रुक-सा गया है। इसका अर्थ यह तो नहीं है कि इस जमाने में एक भी नई कहावत नहीं बनती, कुछ कहावतें तो नई बनती ही होंगी किन्तु वे प्रकाश में उतनी नहीं आतीं। क्या हुआ, यदि कभी कोई नई कहावत सुनने को मिल गई किन्तु अधिकांश में पीढ़ी-दर-पीढ़ी हम लोग पुरानी कहावतों की ही आवृत्ति देखते आ रहे हैं।

नई कहावतें क्यों नहीं बनतीं ?

नई कहावतों का निर्माण आज क्यों नहीं होता ? इस प्रश्न पर विचार करना आवश्यक है। ऐसा जान पड़ता है कि आज शिक्षा के बहुविध प्रचार के कारण विचारों को अभिव्यक्त करने की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हमारे सामने आ रही हैं और उन्हीं को लेकर शिक्षित व्यक्ति अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। पुरानी कहावतों को याद रखने तथा नई कहावतों के निर्माण करने की उनको कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

परिस्थितियों की भिन्नता के कारण हमारे जीवन के अनुभवों के मूल्य भी बदल रहे हैं। ऐसी स्थिति में कुछ कहावतें तो ऐसी हैं जो पुरानी पड़ रही हैं। उदाहरण के लिए कुछ राजस्थानी कहावतें लीजिये—

(१) **"ढलगो नामीनोरै तो क्यूं हलियो टोरै"**—अर्थात् सारस्वत व्याकरण के **'नामिनोरः'** सूत्र तक जो अध्ययन कर चुका, उसे जीविकोपार्जन के लिए खेती करने की आवश्यकता नहीं होती किन्तु हम देखते हैं, सारस्वत व्याकरण तो दूर, संस्कृत के शास्त्री और व्याकरणाचार्यों को भी जीवन-संघर्ष के इस युग में जीविकोपार्जन के लिए बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा रहा है।

(२) **"हजारी बजारी"**—अर्थात् जो सहस्राधीश है, वह बाजार से चाहे जो चीज उधार खरीद सकता है, उसे कोई रोकने वाला नहीं। किन्तु आज हम देखते हैं कि जिसके पास केवल एक हजार रुपया है, उसकी इतनी साख कहाँ ? यह तो उस जमाने की बात है जब रुपये की क्रय-शक्ति बहुत थी, रुपये के अवमूल्यन से अब पहले जैसी स्थिति नहीं रह गई। इसलिए 'हजारी बजारी' जैसी लोकोक्तियाँ भी अब कहावत-विषयक संग्रहों की ही शोभा बढ़ा रही हैं।

(३) "राजाजी रे गुळ री भींतां"—अर्थात् राजा के यहाँ तो गुड़ की दीवारें होंगी। वह जब चाहता होगा, उनमें से गुड़ तोड़-तोड़ कर खा लेता होगा। यह उस अबोध व्यक्ति की कही हुई उक्ति है जिसकी दृष्टि में गुड़ ही समस्त वैभव का प्रतीक और दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है, किन्तु इस प्रकार की कहावतें आज शिक्षित-वर्ग द्वारा उपहास की दृष्टि से देखी जा रही हैं।

अन्य विश्वासों से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी कहावतें भी ग्रामीण लोगों में बहुधा सुनाई पड़ती हैं जिनसे चिपटे रहना उनके स्वभाव में शामिल हो जाता है। कहावतों में ऐसी अद्भुत शक्ति पाई जाती है कि वे प्रयोक्ताओं की ओर से अपने लिए आस्था और विश्वास के भाव उत्पन्न करा लेती हैं किन्तु जिस आस्था के मूल में अन्ध-विश्वास काम कर रहा हो, वह अनर्थ की ही जड़ सिद्ध हो सकता है। समय-परिवर्त्तन के साथ-साथ जहाँ परम्परागत रूढ़ियों और रीति-रिवाजों में भी परिवर्त्तन होना चाहिए, वहाँ कहावतें कभी-कभी बाधक सिद्ध होती हैं। हमारे देश में स्वर्णिम अतीत के स्वप्न देखने की प्रथा-सी चल पड़ी है, वर्त्तमान परिस्थितियों के अनुरूप अपने जीवन को साँचे में ढाल कर उज्ज्वल भविष्य की कल्पना करना हमें नहीं भाता। अतीत से प्रेरणा प्राप्त करना बुरा नहीं किन्तु इसका ध्यान रहना चाहिए कि अतीत हमारी उन्नति के मार्ग में रोड़े न अटकाने पावे। कहावतों की आधार-शिला पर हमारी परम्परागत रूढ़ियों के स्तूप चिरकाल तक प्रतिष्ठित रहते हैं। इस दृष्टि से कुछ कहावतों में वह गतिशीलता नहीं मिलती जो पल-पल परिवर्त्तित और विकसित होते हुए जीवन का अनिवार्य अंग है; कभी-कभी तो वे पुराण-पंथी मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने लगती हैं जिसमें आधुनिक जीवन का स्पन्दन नहीं मिलता, इसलिए जो निश्चेष्टता, निर्जीवता अथवा जड़ता की प्रतीक मात्र रहकर लोक-जीवन के समुचित विकास में बाधा पहुँचाने लगती हैं। विचार-स्वातन्त्र्य की भावना को भी इस प्रकार की कहावतें पनपने नहीं देतीं क्योंकि अधिकतर कहावतें आदेशात्मक हैं। वे व्यक्ति के कर्त्तव्य पर तो ज़ोर देती हैं किन्तु व्यक्ति को समाज से भी कुछ विशेषाधिकार प्राप्त होने चाहिएँ, इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख वहाँ नहीं मिलता। वे एक प्रकार से नुसखा रख देती हैं, ऐसा नुसखा जो बाबा आदम के जमाने में बना था। जीवन के प्रति नये दृष्टिकोण को वे ग्रहण नहीं करने देतीं, प्रतिभा को जीवन के नये-नये मार्गों की ओर वे उन्मुख नहीं करतीं। वातावरण की एकरूपता जड़ता का ही दूसरा नाम है। निष्क्रिय भाव से वातावरण को अपना लेना सजीवता का लक्षण नहीं है। कुछ व्यंग्यात्मक कहावतें ऐसी होती हैं जिनमें व्यक्तिगत और सामाजिक बुराइयों की ओर कटाक्ष किया जाता है। बुराइयों की ओर ध्यान आकृष्ट करके ऐसी कहावतें अवश्य हमारा सुधार करने में सहायक होती हैं।

जो हो, कहावतों के विरुद्ध आधुनिक शिक्षित वर्ग की एक प्रतिक्रिया-सी आज दृष्टिगोचर हो रही है। ग्रामीण जीवन में परिवर्त्तन बहुत कम होता है, सभ्यता का आलोक भी वहाँ धीरे-धीरे पहुँचता है किन्तु नागरिक जीवन में नूतन विचारों का परस्पर आदान-प्रदान होता रहता है। नागरिक जीवन में बुद्धि की काट-छाँट और कतर-ब्योंत बहुत चलती है, इसलिए विश्लेषण की प्रधानता होने के कारण कहावतें

वहाँ प्रायः नहीं सुनाई पड़तीं। दार्शनिक ग्रन्थों में भी जहाँ विचार-विश्लेषण की प्रमुखता रहती है, बाल की खाल निकाली जाती है, कहावतों का प्रयोग नहीं के बराबर होता है।

किन्तु आज कल लोकोक्तियों के निर्माण न होने का सबसे बड़ा कारण तो शायद यह है कि आधुनिक युग का मनुष्य जीवन के सत्यों के प्रति बड़ा संशयालु हो गया है। इस संशयालुता में उसे अपनी ज्ञान-गरिमा के भी दर्शन होते हैं। सामाजिक गोष्ठियों में भी विदग्धतापूर्ण वाक्य मौक़े बे मौक़े कहे जाते हैं। श्रोतागण उन वाक्यों को सुनकर आनन्द उठाते हैं, थोड़ी देर के लिए उनका मनोरंजन हो जाता है। वाक्यों पर काट-छाँट भी चलती है, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से उन पर विचार भी कर लिया जाता है। सत्य आज अनेक रूपों में अपने आपको प्रकट कर रहा है। विभिन्न विषयों पर विभिन्न दृष्टिकोणों से लिखी हुई इतनी पुस्तकें आज दिखलाई पड़ रही हैं कि जिनको देखकर मनुष्य की बुद्धि हैरान है। इसलिए कोई तथ्य जब उपस्थित किया जाता है तो उसके अनेक अपवाद सहज ही निकल आते हैं, क्योंकि एक ही तथ्य को विभिन्न दृष्टिकोणों से परखने के साधन आज उपलब्ध हैं और फिर विज्ञापन की कृपा से ज्ञान किसी एक स्थान पर संचित नहीं है। पुस्तकों और शोध-पत्रिकाओं के मुक्त आदान-प्रदान द्वारा ज्ञान किसी एक देश अथवा जाति-विशेष का एकाधिकार नहीं रह गया है। पुस्तकों में जीवन के अमोल अनुभव सुरक्षित हैं, इसलिए आधुनिक युग के मानव को कहावतों की उतनी आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

कोई युग ऐसा था जब लिखित पुस्तकों और प्रेस के अभाव में सूत्र-शैली का विशेष महत्त्व था और लोग ज्ञान के लिए तरसते थे किन्तु अब पुस्तकों की बाढ़-सी आ रही है। इतनी पुस्तकें आज निकल रही हैं कि सामान्य पाठक के लिए यह भी मुश्किल हो रहा है कि वह किस पुस्तक को पढ़े और किसको न पढ़े?

नई कहावतों के न बनने का एक मुख्य कारण यह भी हो सकता है कि आज उनके निर्माण के लिए कोई क्षेत्र ही नहीं रह गया है। अकेले यूरोप में तीस-चालीस हज़ार से कम कहावतें न होंगीं। कहते हैं कि केवल स्पेन में लगभग १५,००० कहावतें होंगीं।[१] हिन्दुस्तान और एशिया को भी यदि सम्मिलित कर लिया जाय तो कहावतों की संख्या लाखों पर जा पहुँचेगी। इनमें जीवन के प्रायः प्रत्येक क्षेत्र से सम्बद्ध कहावतें मिल जायँगी। गुण-दोष की कहावतें, जातिगत विशेषताओं को प्रकट करने वाली कहावतें, पेशे-सम्बन्धी कहावतें, नीति-बोधक कहावतें, व्यवहारोपयोगी कहावतें, अंग-उपांगों की त्रुटियाँ प्रकट करने वाली कहावतें, निर्धन और रङ्क-विषयक कहावतें, पुरुषार्थ और प्रारब्ध-सम्बन्धी कहावतें, वंशानुगत संस्कारों की प्रबलता प्रकट करने वाली कहावतें, स्वभाव-सम्बन्धी कहावतें, ऋतु, नक्षत्र तथा त्योहार-विषयक कहावतें, स्त्री-चरित्र तथा स्त्री-विषयक कहावतें, पुरुषों तथा स्त्रियों के नामों-सम्बन्धी कहावत, परमेश्वर की कृपा तथा उसकी शक्ति का परिचय देने वाली कहावतें, बनी बनाई मिल जाती हैं

१. किसी किसी ने अकेले स्पेन की कहावतों की संख्या करीब २५-३० हज़ार मानी है। देखिये—Lessons in Proverbs by R. C. Trench, p. 51-52.

जिससे नवीन कहावतों के निर्माण का कोई अवकाश ही नहीं रह जाता।[1]

विश्व का लोकोक्ति-साहित्य भी कम नहीं है। सन् १९३० में Wilfrid Bonser ने "Bibliography of Works Relating to Proverbs" नामक एक पुस्तक प्रकाशित की थी जिसमें कहावतों-सम्बन्धी ४००४ पुस्तकों का उल्लेख है। सन् १९३० के बाद भी अनेक पुस्तकें छपी होंगीं, Bonser से अनेक पुस्तकों के नाम छूट भी गये होंगे। फिर भी कुल मिलाकर विश्व का कहावती साहित्य ६,००० पुस्तकों से तो किसी हालत में कम न होगा।

हमारा कर्तव्य—कहावतें चाहे आज न बन पा रही हों और चाहे शिक्षितों के एक वर्ग की कहावतों के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी हो रही हो किन्तु फिर भी मानव-विज्ञान और लोकवार्त्ता-शास्त्र का जब से वैज्ञानिक अध्ययन होने लगा है तब से कहावतों के अध्ययन का भी महत्त्व बढ़ा है। राजस्थानी भाषा में भी, जैसा ग्रन्थ के प्रारम्भ में कहा गया है, कहावतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं किन्तु उन संग्रहों में सब कहावतें आ गई हैं, ऐसा किसी भी हालत में नहीं कहा जा सकता। कहावतों के संग्रह को पूरा कर लेना वास्तव में किसी एक व्यक्ति का काम नहीं, इसके लिए अनेक दिशाओं में सामूहिक प्रयत्न किये जाने चाहिएँ। "प्रबोध बत्रीशी" का उपसंहार करते हुए गुजराती भाषा के प्रसिद्ध कवि मांडण ने यथार्थ ही कहा था—

> **"अवनी रही उखाणा भरी, ते किम सकाइ पूरी करी ?**
> **इम करतां जे जे सांभर्या, ते ते ग्रन्थ मांहि विस्तरा।"[2]**

यह पृथ्वी ही कहावतों से भरी है; जहाँ से खोदिये, कहावतें निकल पड़ेंगीं। किन्तु यदि कहावतें संगृहीत न हुईं तो आज के युग में उनके विलुप्त हो जाने का भय है। राजस्थान के बड़े-बूढ़ों के मुख से विशेष कहावतें सुनने को मिलती हैं, कहावतों का अर्थ और प्रयोग भी वे भली भाँति समझते हैं। हो सकता है, संग्रह के अभाव में उनके साथ ही वे कहावतें भी समाप्त हो जायें। इसलिए राजस्थानी भाषा की जितनी कहावतें मिल सकें, उन सबका संग्रह किया जाना चाहिए। संगृहीत कहावतें वैज्ञानिक पद्धति पर वर्गीकृत की जाकर प्रकाशित होनी चाहिए। वर्तमान में उपलब्ध सामग्री के आधार पर राजस्थानी कहावतों का जो अध्ययन मैंने किया है, आशा है, इस क्षेत्र में आगे काम करने वालों के लिए यह किसी अंश में उपयोगी सिद्ध हो सकेगा।

१. देखिये—चबराकियानुं तत्त्वदर्शन (फिरोजशाह रुस्तमजी महेता); पृष्ठ २०४--२०५।
२. कवि मांडणकृत प्रबोध बत्रीशी, फार्बस गुजराती सभा द्वारा प्रकाशित; पृष्ठ ७९।

परिशिष्ट १

"अधूरा पूरा" तथा कहावती पद्य

"अधूरा पूरा" तथा असंख्य कहावती पद्य राजस्थान में प्रचलित हैं जिनमें से प्रमुख यहाँ दिये जा रहे हैं। "अधूरा पूरा" के स्वरूप के विषय में प्रबन्ध में यथास्थान विचार प्रकट किये जा चुके हैं।

अ

१. अकज सरीरां ऊरजं, दिवी न आवै सीख।
अणमांग्या मोती मिलै, माँगी मिलै न भीख॥
२. अणबोल्यो थो लाख को, बोलि अर पाको बाट।
तीनूँ म्होर गमाय कै, अन्त जाट को जाट॥

आ

३. आ ए धानी पर करां, पड़ै दुनी सें सोर।
तेरा मरगा बादस्या, मेरा मर्‌या वजीर॥
४. आड़ तरन्ती देख कर, तू क्यूँ तरियो काग।
होड पराई जे करै, तल मुंडी ऊपर पग्ग॥
५. आदर बिन पिउ उठ गयो, चली मनावण धाय।
घर आयो नाग न पूजियै, बाँबी पूजण जाय॥
६. आधो रह्यो ऊखली, आधो रह्यो छाज।
सांगर साटै धण गई, मधरो मधरो गाज॥
७. आया सूँ बोली नहीं, पिउ चाल्यो करि रोस।
आप कमाया कामड़ा, दई न दीजे दोस॥
८. आरत मोठी आपकी, घर में मांदो पूत।
सांवण छाछ न घालती, जेठ में काचो दूद॥
९. आसोजां रा तावड़ा, जोगी होग्या जाट।
बामण होग्या रोवड़ा, बणिया होग्या भाट॥

ऊ

१०. ऊँची टोपी गुहिर गंभीर, एक भेड़ नै नव जण सीर।
तिण बाँधण नै नहीं को ठाम, सूधी चिड़ी कपूरी नाम॥
११. ऊँटां के अक्कल नहीं, अकल बिना का ऊत।
पगां उभाणा वै फिरै, क्यूँ न करावै जूत॥
१२. ऊगे जिम दूणा अमल, लीजे खूब अठेल।
मर जाणी रा खेल में, घर जाणी रा खेल॥
१३. ऊजड़ खेड़ा फिर वसै, निरधनियां धन होय।
गयो न जोबन बावड़ै, मुवा न जीवै कोय॥

१४. ऊपर थाली नीचे थाली, माँय परोसी डोड सुहाली ।
पुरसण वाली तेरा जणी, हांती थोड़ी हलहल घणी ।।

ए

१५. एक गाडर सात जणां सीर, नित को नाइ रंधावै खीर ।
तिण खीर रो करो विचार, देखे तने तीर की धार ।।
१६. एक गाय नै गोकल बासो, पड़ै धणी नै नित को साँसो ।
दही दूध नै बिलोय खाधो, ऊंगतड़ी बीछावण लाधो ।।
१७. एक टट्टू ने चहु जण सीर, जा बांध्यो सागर के तीर ।
समदर तीर नहीं छ जायगा, डोड घोड़ो डीडवाणै पायगा ।।
१८. एक तो बहू अर कूदणी, जोवन नन्दन छायो ।
भागण कूदण नाचण लागी, ज्यूँ बानर नै बीछू खायो ।।
१९. एक भेड़ सात रो सीर, नितरा जेठ रंधावै खीर ।
रात्यूं रही खेंचाताणी, खातां खाण न पीतां पांणी ।।
२०. एक मोर पाखे ही सारी, ता पर अब मैं बात गुदारी ।
अब तो कछू न आवै दाय, बासी बचै न कुत्ता खाय ।।

ऐ

२१. ऐरण की चोरी करै, करै सुई को दान ।
बार निकल कै देखसी, कद आवै बीमान ।।
२२. ऐराकी री पागड़ी, सापुरसाँ री बाँह ।
बालो ठाकुर सेवियै, बलती लीजै छांह ।।

क

२३. कँवरजी म्हैलां सें उतर्या, भोडल को भलको ।
बतलायाँ बोलै नहीं, र बोलै तो डबको ।।
२४. कई नै बैंगण बायला, कई नै बैंगण पच्च ।
कई नै चढ़ै आफरो, कई नै चढ़ै मच्च ।।
२५. कड़वी बेल की कड़वी तूमड़ी, अड़सठ तीरथ न्हाई ।
गंगा न्हाई गोमती न्हाई, मिटी नहीं कड़वाई ।।
२६. कबहुँ न हँस कर कर गहे, रिस कर गहे न केस ।
जैसा कंथा घर भला, वैसा ही परदेस ।।
२७. करड़ो बाँधै पागड़ी, घुरड़ लिवावै रुक्ख ।
करड़ी पैरै मोचड़ी, अणसरज्या ही दुक्ख ।।
२८. करम हीण को ना मिलै, भली बस्त रो भोग ।
दाख पकै जद काग कै, होत कंठ में रोग ।।
२९. कहणी तो राचे नहीं, रहणी राचे राम ।
सपने री सौ मोहर सूँ, कोड़ी सरे न काम ।।
३०. कांकर बोरी करहलां, थल बोरी तुरियाँह ।
गाडी बोरी गिरवराँ, लांबी नार नराँह ।।

३१. कां गोरख कां भरथरी, कां गोपीचंद गोड़ ।
सिद्ध गया ही पूजियै, सिद्ध रह्यां री ठोड़ ॥
३२. काग पढ़ायो पींजरै, पढगो च्यारूं बेद ।
समझायो समझ्यो नहीं, रह्यो ढेड को ढेड ॥
३३. कागा लाख बिकाइया, कोठी लाख पंचाय ।
बंधो भारी लाख की, खुल्ली बीखर ज्याय ॥
३४. काच कथीर न सोहै मोती, ढेढ चमार न सोहै धोती ।
दुसमण बात कहै अणहूती, जद तद खता खुवावै गोती ॥
३५. काज सर्‌या दुख बीसर्‌या, बैरी होग्या बैद ।
साजी तन साजा हुया, काढण लागा कैद ॥
३६. का तो तिल कोरा भला, का लीजे तेल कढाय ।
अध बिचली कूलर बुरी, तेल तिलां सूं जाय ।
३७. कारज किणही न आवसी, वास विहूणो गुल्ल ।
रुप रूड़ो गुण बाहरो, रोहीड़ै रो फुल्ल ॥
३८. कित कासी कित कासमिर, खुरासान गुजरात ।
दाणो पाणी परसराम, बांह पकड़ ले जात ॥
३९. किरपण कै दालद नहीं, ना सूरां कै सीस ।
दातारां कै धन नहीं, ना कायर कै रीस ॥
४०. कूण सुणै किण कहूं, सुण तो समझै नांय ।
कहवो सुणबो समझबो, मन ही को मन मांय ॥

ख

४१. खड़ सूखा गोभू मुआ, बाला गया बिदेस ।
औसर चूका मेहड़ा, बूठा काह करेस ।
४२. खोटा करम आद सूं कीन्या, घर खाती मांग्या दीन्या ॥
के कहूं राजा बेर बेर, घड़ै थो गडुवो होगी भेर ॥

ग

४३. गंगाजी कै घाट पर, बामण बचन परमाण ।
गंगाजी की रेणका, तूं बन्नण कर कै मान ॥
गंगाजी कै घाट पर, जाट बचन परमाण ।
गंगा जी की मींडकी, तू गऊ करकै जाण ॥
४४. गई बात नै जाण दे, रही बात नै सीख ।
तूं क्यूं कूटै बावली, मुवै सांप की लीक ॥
४५. गटमण गटमण माला फेरै, अै ही काम सिधां का ।
दीखत का बाबाजी दीखै, मीचै खोज गधां का ॥
४६. गड़गड़ हंसे कुम्हार की, माली का घर रह्या बूंट ।
तूं के हंसै कुम्हार की, किण कड़ बैठै ऊंट ॥

४७. गये जोबन डंबर करें, सो माणस अग्यान।
भकृती भूँडा दीसजै, पाके भांडे काम ।।
४८. गरज दिवानी गूजरी, अब आई घर कूद।
सांवण छाछ न घालती, अर बेसाखां दूव ।।
४९. गरज दिवानी गूजरी, नूत जिमावै खीर।
गरज मिटी गूजरि नटी, छाछ नहीं रे वीर ।।
५०. गरू चेलो लालची, दोनूं खेलै डाव।
दोनूं ही बे डूबसी, बैठ पथर की नाव ।।
५१. गाडर आणी ऊन नैं, बैठी चरै कपास।
बहू ज आणी काम नैं, बैठी करै फरमास ।।
५२. गाय न जाणें गीत, और अलापै राग में।
परिहां बोढ बकाइन, रूँख, मियांजो बाग में ।।
५३. गुड़ कोनी गुलगुला करती, ल्याती तेल उधारो।
परींडे में पाणी कोनी, बलीतो कोनी न्यारो ।।
५४. गूँगा तेरी सैन में, समझै कुल में दोय।
कै गूँगा की मावड़ी, कै गूँगा की जोय ।।
५५. गैली पैली समझी नहीं, मेंवी का रंग कहाँ गया।
अब प्रेम नहीं उस प्यारी से, वह पानी मुलतान गया ।।
५६. गोव लडायो गीगलो, चढ्यो कचेड्यां जाट।
पीर लडाई पदमणी, तीनूं हि बाराबाट ।।

घ

५७. घण गाजण बरसे नहीं, घुसण कुता नहं खाय।
घण बोल्या घर जावसी, अणबोल्या मर जाय ।।
५८. घण मेहा मंदिर चुवै, भूपति ही भाजन्त।
वैदां ही री रांड हुवै, तेरू डूब मरन्त ।।

च

५९. चाल कंथ घर आपणें, छोड पुराणी आँट।
जे धन दीखे जावतो, (तो) आधो दीजै बाँट ।।
६०. चिड़ी चीख मारती, कागलिया जी सुणै।
साँची कही है सायरां, जो बावै सो लुणै।
६१. चेला ल्यावै माँग कर, बैठ्या खावै म्हन्त।
राम भजन को नाँव है, पेट भरण को पंथ ।।

छ

६२. छाछ घालतां छाती फाटै, दूध घालतां दोरो।
रोटी वेलां रोज आवै, बातां करणो सोरो ।।
६३. छोटो छोटो मत करो, छोटो मूं मोटी बात।
छोटो चंदा दूज को, दुनिया जोड़ै हात ।।

ज

६४. जद की परणी तद की परखी, कदे न बोलै मन की हरखी ।
जद बतलाऊँ कड़की बोलै, बालूं सोनूं कान जे तोड़ूं ।।
६५. जाँचै जोखै देखै परवांण, सूनी सेखी खाख में छांण ।
बोखा ऊंवर सुलया धान, जहड़ा गुर तहड़ा जजमान ।।
६६. जीमणा न जूठणां, ना कंघी ना खाट ।
साप साप रै पावणा, जीभाँ रा लवलाट ।।
६७. जीव उहाँ पँजर इहाँ, हुई ज डामाडूल ।
कहो केतोइक जीवसी, बेल बिछूटो फूल ।।
६८. जूआ खेलै नै धन चाहै, पत्थर माँह तुरंगम चाहै ।
पाणी ऊपर ऊडै गूडी, आज न बूडी काल्हे बूडी ।।
६९. जे निरदूखण परिहरी, तो हिय केही लाज ।
गाडै रै उलल्यां पछै, किसो बिनायक काज ।।
७०. जोवन गया बुढापा आया, प्रीत पुरांणी तूटी ।
भला भया गुड़ मक्खी खाया, भिणभिणाट थैं छूटी ।।
७१. ज्यूं छै त्यूं ही राखियै, बिण सेवा तन काय ।
बँधी बुहारी लख लहै, खुल्ली बीखर जाय ।।

ठ

७२. ठाकर सूं घर छूटगी, भांडां लीनो भोग ।
तेली सूं खल ऊतरी, हुई बलीते जोग ।।
७३. ठाली बैठी डूमणी, घर में घाल्यो घोड़ो ।
दूध बाजरी खावती, घास खोवबो बोरो ।।

ढ

७४. ढाँढण रूँख न बैसियै, न छाया न धुप्प ।
बोलियै तो निबाहियै, नहितर भली ज चुप्प ।।

त

७५. तूं खत्राणी में पाँडियो, तूं वेस्या में भांड ।
तेरे जिमाये मेरे जीमणं में पत्थर पड़ियो रै रांड ।।
७६. तूं है माता बावली, भैंस गई है रावली ।
मै हूं खाती सैंसो, बो हो कुहाड़ो बो ही बैंसो ।।
७७. तैं ही कंत उतार्यो चित्त, हूं ही और करूंगी मित्त ।
तूं मुज सेती कीधो ऐसो, नाचण पैठी घूंगट कैसो ।
७८. तन तोलो मन ताखड़ी, नैणां बिणजणहार ।
ओसर देख न विणजियो, सो वाणियूं गिंवार ।।
७९. तेरो गई टपकलो, मेरी गई हमेल ।
बिना मन का पावणा, तनै घी घालूं क तेल ।।

थ

८०. थं भाभीजी जीमल्यो, थारा काढ़ूं न्होरा।
ऊँट तो कूद्यो ही कोनी, पैली कूदै बोरा॥

द

८१. दाव पाय दोनूं बढ़े, कै हरि कै हरिनाथ।
उण बढ़ लम्बे पद किये, इण पद लम्बे हाथ॥
८२. दौलत ही नीको लगै, भंवर न जाने भूल।
रँग रूड़ो गुण बायरो, रोहीड़ रो फूल॥
८३. दी सुरही हाजर हुई, विनय सुणावै बात।
गादी हूंत भजावियो, जमराजा इण जात॥
८४. दीहा जे कारज करत, सौ बैरी न करन्त।
दीह पलट्ट्यां रावणा, पाथर नीर तरन्त॥
८५. दुश्मन की किरपा बुरी, भली सैन की त्रास।
आडंग कर गरमी करै, जद बरसण की आस॥
८६. देख पराई चोपड़ी, पड़ मर बेईमान।
दोय घड़ी की सरमासरमी, आठ पहर आराम॥
८७. देख्या ख्याल खुदाय का, किसा रचाया रंग।
खानजादा खेती करैं, तेली चढै तुरंग॥
८८. देवा दुबधा दूर कर, हर चरणां चित लाय।
मस्तक में घोड़ी लिखी (तो) खोल कुण ले ज्याय॥
८९. दैणो हूं तो तुरत हि दीजै, कालिह सवारे देण न कीजै।
घड़ी माँहि घड़ियाला बाजै, गाँम गयोड़ो सूतो जागै॥

ध

९०. धनवंता काँटो लग्यो, स्हाय करी सब कोय।
निरधन पड़्यो पहाड़ सूं, बात न पूछी कोय॥
९१. धान न मिलतो धापको, लास पलासां तेल।
सीरो ही गरमी करै, बेख दई का खेल॥

न

९२. नदी बहै सावण की दूण, पैलै कांठै गुल री गूण।
हिया माँह बिचारी दोठो, नै पिण ऊँडी, गुल पिण मीठो॥
९३. नणद भौजाई इसी लड़ी, सासू जाय कुए में पड़ी।
सुसरै जाय रै खाई फांसी, घर री हाँण लोक री हांसी॥
९४. नाथे रा तिल, नाथो ही तोलारो, घर री निजर घर रो थुथकारो।
मामे रो ब्याव, माँ पुरसारी, जीमो बेटा रात अंधारी॥
९५. निगुणो मांणस सगुणो कर लीजै, आप सो भार उसके सिर दीजै।
यूं ही करतां आपै छेह, बाँके लाकड़ बाँको बेह॥

९६. नोपत बाबर साह की, लैगो सांगो राण।
नवा घड़ाया बाजसी, नरवर गढ़ नीसाण।।

प

९७. पटै लिखाई मोठ बाजरी, माँगै चावल दाल
राघोचेतन यूं कहै, चिट्ठी तो संभाल
९८. पर नारी पैनी छुरी, तीन ओड़ सैं खाय।
धन छीजै जोबन हड़ै पत पंचां में जाय।।
९९. पर नारी सूं प्रीतड़ी, वैर्यां बिच में बास।
नदी किनारे रूंखड़ो, जब तब होय बिणास।।
१००. पारेवा पाथर चुगै, करहा चुगै करी·
कू भोजिन कासूं दहै, चिन्त्या दहै सरीर।
१०१. पाव खाँड ने जणाँ पचास, किण किण री हूं पूरूं आस।
ठाकर माँडे बे बे टाम, बूथी चिड़ी कपूरी नाम।।
१०२. पिव पासै सूता थकां, हेज नहीं लवलेस।
जैसो कंथो घर रह्यो, तैसो गयो विदेस।।
१०३. पीपल पूजण हूं गई, कुल अपणे री लाज।
पीपल पूज्यां हर मिलै, एक पंथ दो काज।।
१०४. पुजारी की पागड़ी, ऊँटवाल की जोय।
बिणजारा की मोचड़ो, पड़ी पुराणी होय।।

ब

१०५. बखत बखत का मोल है, वाण्यो अकल उपाई।
राई का भाव रातै गया, अब टक्कै की सिर ढाई।।
१०६. बखत पड्यां रै वीर, तूं म्हानै मोटा कर्‌या।
तिय टूटै रै बीर, बार कदे टूटै नहीं।।
१०७. बहु जीम्या भोजन दहै, चिंता दहै शरीर।
अघसीखी विद्या दहै, दहैं कुबुद्धी बीर।।
१०८. बहुत दिनां घर प्रीतम आयो, आछो चीर पटोली लायो।
लाभी राँड न पूछी सैर, कालो मूंडो लीला पैर।।
१०९. बांका रहज्यो बालमा, बांका आदर होय।
बांकी बन में लाकड़ी, काट न सक्कै कोय।।
११०. बांदर हो अर बड़ चढ़्यो, बिच्छू लाग्यो गात।
गैलो होय होय मद पियो, क्यूं न करै उतपात।।
१११. बांमण रै घर बेटी जाई, ते लेई घर में परणाई।
कांण खोडी कुलखण घणा, धरम री गाय रा किसा दांत देखणा।।
११२. बाई रा बंधन कट्या, भलो करी रुगनाथ।
सहजै चुड़लो फूटग्यो, हलका हुयग्या हाथ।।

११३. बागर गाय बिडै में-बासो, नित उठ रवै जीव नें सांसो ।
दूध दही मैं कदे न लाधो, अलगे ही बिछायो लाधो ।।
११४. बाजण दे बाजंतरी, कुरदम्भी मत छेड़ ।
तनै बिराणी के पड़ी, तूं तेरी ही नमेड़ ।।
११५. बाड़ करी ही खेत नै, वाड़ खेत नै खाय ।
राजा डंडै रैयत नै, कूक किसै घर जाय ।।
११६. बाप चराया बाछड़ा, माय उगाई बींत ।
कै जाणंगी बापड़ी, बड़े घरां की रीत ।।
११७. बाबो गयो नो दिन, नौऊं आया एक दिन ।
लेखो कियो मन परचायो, बाबो कित गयो न आयो ।।
११८. बिगर बुलाई आगी आवै, काम करै अणहूवा ।
मांडो गिणै न जानियां, हूं लाडै री भूवा ।।
११९. बींझा बाड़ पलास री, अणछेड़ी खरराय ।
नुगरा माणस री प्रीतड़ी, पत सुगणां री जाय ।।
१२०. बूडा गिणया न बालका, तड़को गिणयो न सांझ ।
जणजण को मन राखतां, वेश्या रहगी बांझ ।।
१२१. बैठी सूती डूमणी घर में घाल्यो घोड़ो ।
दूद कचोलां पीवती, अब दूब खोदवा दोड़ो ।।
१२२. बैरी न्यूत बुलाइया, कर भायां सें रोस ।
आप कमाया कामड़ा, दई न दीजै दोस ।।
१२३. बोलण री हिम्मत नहीं, डर लागै सुण भूत ।
रांडां में रुलता फिरै, बै मावड़िया पूत ।।

भ

१२४. भंडारी रस्ते लग्यो, आई दवारे चालि ।
औसर चूकी डूमणी, गावै आलपताल ।।
१२५. भणियां मांगै भीख, अणभणियां घोड़ां चढ़ै ।
सैणां मानो सीख, भाईड़ां भणज्यो मती ।।
१२६. मारिया सो झिलकै नहीं, झिलकै सो आधा ।
इण पुरखां की पारखा, बोल्या अर लाधा ।।
१२७. भाई को धन भाई खायो, बिना बुलाए जीमण आयो ।
आलड़ियो पण पड़ियो नहीं, घी ढुल्यो सो मूंगा नहीं ।।
१२८. भोलो अर भूंडो भलो, प्यारो घर रो पीव ।
देख पराई चोपड़ी, क्यूं तरसावै जीव ।।

म

१२९. मन जाणै हाथी चढ़ूं, मोती पैरूं कान ।
हाथ कतरणी राम रै, राखैलो उनमान ।।
१३०. मन बात मन ही जाणै, काया जाणै आपदा ।
गीता अर्थ कृष्ण जाणै, माता जाणै सो पिता ।।

१३१. मरद को जोबन साठ बरस जे घर में होय समाई ।
नार को जोबन तीस बरस हर बैल को जोबन ढाई ॥
१३२. माँगियै लूगड़ै तोरी करै, घर घर बड़ाई करती फिरै ।
घर में नहीं खाँण नै धाँन, चाबै ल्याय उधारो पान ॥
१३३. मूँड मुँडायो नाक कटाई, घर घर को फेर्‌यो द्वार ।
दोनूँ खोई रे बूबना, आवेसां र जुहार ॥
१३४. मैं नहिं रूठी तूँ किन रूठो, सारी रात सूतो अपूठो ।
उठि उठि कंथा करूँ निहोरा, ऊँट न कूद्‌या कूद्‌या बोरा ॥

र

१३५. राघो तूँ समझ्यो नहीं, घर आया था स्याम ।
दुबधा में दोनूँ गया, माया मिली न राम ॥
१३६. राजा जोगी अगन जल, इनकी उलटी रीत ।
अलगा रहज्यो परसराम, थोड़ी पालैं प्रीत ॥

ल

१३७. लाख सयाणप कोडि बुध, कर देखो सहु कोय ।
अणहोणी होणी नहीं, होणी होय सु होय ॥
१३८. लाखाँ लोहाँ चम्मड़ाँ, पहली किसा बखाण ।
बहू बछेरा डोकराँ, नीवटियाँ परवाण ॥
१३९. लूँगाँ चढ़गी बाँस, उतरै चौथै मास ।
गादड़ मारी पालखी, मे धड़ूक्याँ हालसी ॥
१४०. ले पाड़ोसण झूँपड़ी, नित उठ करती राड़ ।
आधो बगड़ बुहारती, अब सारो ही बुहार ॥

व

१४१. बहू फिरी ऊ वेला सात, सासू जागी आधी रात ।
विरह चढी नै काढ़ै कैद, कुठोड खाधी सुसरो वैद ॥
१४२. वानर कहै मयारड़ी, साँभल तूँ मुझ वाँणी ।
हूँ अन्याय न को करूँ, दूध को दूध पाणी को पाणीं ॥

स

१४३. सगूणाँ केरी प्रीतड़ी, सापुरसाँ री बाँह ।
बालो ठाकुर सेवियै, ढलती लीजै छाँह ॥
१४४. सत मत छोड़ो सूरमा, सत छोड्याँ पत जाय ।
सत की बाँधी लिछमड़ी, फेर मिलैगी आय ॥
१४५. सन्यासी घर माँडियो, नवरंगी नारी परणियो ।
बुढापै बिसल्यो डोकरो, बूढी गाय गलै टोकरो ॥
१४६. समै बड़ो बलवान है, नर को के बलवान ।
काबाँ लूटी गोपका, वै अरजन वै बाण ॥

१४७. सम्पत थोड़ी रिण घणो, बैरीवाड़ै वास ।
नदी किनारै रूंखड़ो, जद तद होय विणास ॥
१४८. सम्मन समय विचार कर, अपणें कुल की रीत ।
स्यारीखं सूं कीजियें, ब्याह बैर अर प्रीत ॥
१४९. सरद ऋतू री चानणी, हीण पुरुष री नार ।
बिन बरत्यां बोदी हुवै, मोतै री तरवार ॥
१५०. साँई केरा डर नहीं, ना कुल केरी लाज ।
तिण सूं केहा बोलणा, मुष्ट भली बछराज ॥
१५१. साँच कहै थी मावड़ी, झूठ कहै था लोग ।
खारी लागी मावड़ी, मीठा लाग्या लोग ॥
१५२. साली घर कर लूंकड़ी, दीना दाम उधार ।
खिरियां बेल न बिणजियौ, सो बाँणियौ गिवार ॥
१५३. साठी कौ मिलियौ सखी, विरहण बाले वेस ।
जैसो कंतो घर रह्यौ, तैसो गयो विदेस ॥
१५४. सापे मेल्हीं कांचली, सज्जन छोड्यो नेह ।
सोढ़ं मेल्हीं चाटसूं, जो भावै सो लेह ॥
१५५. साहण हँसी साह घर आयो, विप्र हँस्यो गयो धन पायो ।
तूं के हंस्यो रै बरड़ा भिखी, एक कला मैं नई सीखी ॥
१५६. सीख सरीरां नीपजें, दियां न आवे सीख ।
अणमांग्या मोती मिलै, मांगी मिलै न भीख ॥
१५७. सुगन सरोधा, सिध का वाचा ।
कोइक झूठा, कोइक साचा ॥
१५८. सुख सोवै कुम्हार की, चोर न मटिया लेय ।
गधियो बांध्यो खाट कै, चाक सिरहाणै देय ॥
१५९. सुण कूंभा रावण कहै, आँण भराणां अंक ।
पाव पड़्यां ही ना रहै, लाखां बातां लँक ॥
१६०. सुण पाड़ोसण पापणी, भल रीझाये सैण ।
चार दिनां री चानणी, फेर अँधेरी रैण ॥
१६१. सैलो पूछै पेल नै, कूंकर छूटै गैल ।
घड़ी स्यात की धामामस्ती, सारा दिन की सैल ॥
१६२. सो घोड़ा सो करहला, पूत सपूती जोय ।
मेहा तो बरसत भला, होणी होय सो होय ॥
१६३. सोक मुई नै पिउ घर आया, मन रा चींतीया फल पाया ।
दुरजन केरा हियड़ा फूटा, बिल्ली भागे छींका टूटा ॥

ह

१६४. हंस आपकै घर गया, काग हुया परधान ।
जाओ विप्र घर आपणै, सिंघ किसा जजमान ॥

१६५. हंसा जेहा ऊजला, पथ्थर जेहा चित्त।
काँधे घाली मेखली, जोगी किसका मित्त ॥
१६६. हंसा समद न छोडियै, जै जल खारो होय।
डाबर डाबर डोलतां, भलो न कहसी कोय ॥
१६७. हल्दी जरदी ना तजै, खटरस तजै न श्राम।
शीलवन्त श्रोगण तजै, गुण नै तजै गुलाम ॥
१६८. हाथ छिटक कूए गिरी, काढ न सक्कै कोय।
ज्यूं ज्यूं भीजै कामली, त्यूं त्यूं भारी होय ॥
१६९. हाडा खीचो कूकिया, धाए लड्याँ घमसांण।
नवा घड़ाया वाजसी, नरवर रा नीसांण ॥
१७०. हिरण खुरी दो श्रांगली, धरती लाखपसाव।
वेह का घाल्या ना टलै, ज्यां फाँसी त्यां पाव ॥
१७१. हिलन मिलन चिंतन मिटी, वय बीते करतूत।
जोगीड़ा रमता रया, श्रासण रही बभूत ॥
१७२. हीयो फूटो हाली रो, ज्यो दूध भावै छाली रो।
हीयो फूटो घालवा वाली रो, ज्यो पींदो दीखै थाली रो ॥
१७३. हूँ श्राई जद तन्नै लाई, सागण भैण री सोक कवाई।
खूंणै बैठी सुरमो सारै, मारी नहीं पण पलको मारै ॥
१७४. हे सखि कासूं करै घर बैठी, म्हारै साथि तू श्रावहि केठी।
न म्हे जांवां न बुरो कुहावां, गुड़ खावां न म्हें कान बिधांवां ॥

परिशिष्ट २

प्रदेशों की तुलनात्मक कहावतें

(क) राजस्थानी और काश्मीरी कहावतें

नोट—काश्मीरी कहावतों के उद्धरण "A Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings by Rev. J. Hinton Knowles" से लिये गये हैं।

राजस्थानी	Kashmiri
१. राजा कै बेटै केरड़ो मारवी, म्हे क्यूं कहां !	1. The pirs killed an ox, what have I lost that I should tell anyone.
२. जेवड़ी बलगी पण बल को गयो ना ।	2. The rope is burnt coal-black, but the twist is there plain enough.
३. सीदी आंगलियां घी कोन्या नीकलै ।	3. Ghee is not to be taken with a straight finger.
४. साठी बुद नाठी ।	4. A man at sixty years is a fool.
५. अठै ही भेड़ां को र्याड़ो, अठै ही भेड्या की घुरी ।	5. Where the shepherd's flock, there the leopard's lair.
६. गूंगा तेरी सैन में समझै तेरी माय ।	6. Only a dumb man's parents understand a dumb man's speech.
७. घाघरी को साल नजीक हो ज्याय ।	7. A Woman's relations are honoured but a man's relatives are despised.
८. आओ मीयां छान उठाओ, हम बुड्ढा कोइ ज्वान बुलाओ। आओ मीयां खाणा खावो, बिसमिल्ला झट हात धुपाओ।	8. "Get up, youngster and work." "I am weak and cannot." "Get up youngster, and eat something". "Where is my big pot ?"
९. मरे पूत की आंख कचोला सी ।	9. A lost horse is valued at sixty sovereigns.
१०. काजीजी की बकरी मरी तो सारो गांव भेलो हुयो, काजीजी मर्या	10. If a friend's mother dies, a thousand people remain

राजस्थानी	Kashmiri
तो कोई बात ईकोनीपूछी !	beacause the friend is alive, but if the friend is dead, then there is nobody left.
११. नाम धापली, फिरै टुकड़ा माँगती ।	11. Not a rag over the body and her name Mali (wealthy).
१२. मैं बी राणी तूं बी राणी, कूण भरै पैंडे को पाणी !	12. The mother-in-law is great, the daughter-in-law is also great; the pot is burnt, who will take it off the fire ?
१३. आप मरयां जुग परलै ।	13. A Jackal got into the river, and it was as though the whole world had got in.
१४. हाथियाँ की गैल घणाँ ही कुत्ता घुसै ।	14. The dogs bark but the caravan goes on.

(ख) राजस्थानी और गुजराती कहावतें

नोट—गुजराती कहावतों के उद्धरण जमशेद जी नगरवानजी पीतीत द्वारा सम्पादित "केहवत माला" भाग २ से लिये गये हैं ।

राजस्थानी	गुजराती
१. ब्याया नहीं तो जनेत तो गयाहाँ।	१. परण्या नहि, पण जाने तो गया ।
२. कीड़ी सँचै तीतर खाय, पापी को धन परलै जाय ।	२. पापी नुं धन पल्ले जाय, कीडी संचरे ने तीतर खाय ।
३. धणी सराही खीचड़ी दाँताँ कै चिपै ।	३. वखाणी खीचड़ी दाँते वलगे ।
४. मानै तो देव नहीं तो भींत को लेव ।	४. पूजे तो देव नहि तो पथ्थर ।
५. पीसा भाड़्याँ कै कोनी लागै ।	५. पैसा कांई झाड पर पाकता नथी ।
६. सै आपकी रोट्याँ कै नीचै आँच लगावै ।	६. पोतानी रोटली हेटल सौ ईगार लाणे ।
७. काल मरी सासू, आज आया आँसू ।	७. भोर मुई सासु ने होण आव्यां आंसु ।
८. बामण कह छूटै, बलद बह छूटै ।	८. ब्राह्मण कहि छूटे ने बलद वही छूटे ।
९. बिणज करै सो बाणियूँ ।	९. वाणियो होय ते वणज करे ।
१०. बाई का फूल बाई कै ही लागगा ।	१०. बाई माँ फूल बाई ने, ने शोभा माहरा भाई ने ।
११. लुगाई कै पेट में टाबर खटा ज्याय पण बात कोनी खटावै ।	११. बायडीनां पेट माँ छोकरूं रहे, पण बात नहि रहे ।
१२. बासी बचै न कुत्ता खाय ।	१२. बासी रहे न कुत्ता खाय ।

राजस्थानी	गुजराती
१३. कमजोर गुस्सा ज्यादा ।	१३. बोत नबला से बोत गुस्ता ।
१४. बंधी मूठी लाख की, खुल्ली बीखर ज्याय ।	१४. बांधी मुट्ठी लाख नी, ने उँघाडी तों राखनी ।
१५. करले सो काम भजले सो राम ।	१५. भजे जेनो राम ।
१६. टाबर आप आपको भाग साथ ल्यावै ।	१६. बच्चु पोतानु नसीब साथे लेतु ज आवे छे ।
१७. मकोड़ो कह मा मैं गुड़ की भेली उठा ल्याऊँ । कह कड़तू कानी देख ।	१७. मकोडो माश्रेने कहे जे गोलनी गुण लाँउ तो के दीकरा ताहरी कमर नो लोंख एवोज छे ।
१८. पूछता नर पंडित ।	१८. पुछतो नर पंडित ।
१६. राजा कं लड़कं कैरडी मारदी, म्हे क्यूं बहां !	१६. बनिया ने बकरी मारी, मश्रें कायकु कहुँ !
२०. बामण को टाबर तो भीख मांग लेसी ।	२०. ब्राह्मण नो दीकरो भीख मागी ने खाय ।
२१. बाबाजी नमो नारायण ! कह आज तेरं ही न्यूतो ।	२१ बाबाजी नमो नारायण ! तो कं तेरे ज घर धामा ।
२२. बाबाजी ! रामराम ! कह आज तेरं ही न्यूतो ।	२२ बाबाजी सीताराम ! तो कं 'तारे घेर धाम ।'
२३. तीन बुलाया तेरा आया, भई राम की वाणी । राघोचेतन यूं कहै, बुयो दाल में पाणी ।	२३ पटेल कहै पटलाणी ने, साँभल् माहरी वाणी । त्रण बोलाव्या, तेर आव्या, वे दाल् माँ पाणी ।

(ग) राजस्थानी और बंगला कहावतें

नोट—बंगला कहावतों के उदाहरण A Collection of Proverbs in Bengali and Sanskrit edited by an experienced teacher तथा श्री सुशीलकुमार दे के "वाङ्ला प्रवाद" से लिये गए हैं ।

राजस्थानी	बंगला
१. नाचण लागी तो घूंघट किसो ?	१. नाचिते लागिले घोमटार कि काज ?
२. सुई, सुहागो सापुरष सांठै ही सांठै ।	२. छुँट, सोहागा सुजन, भांगा गडेन तिन जन ।
३. सौ सुनार की, एक लुहार की ।	३. सेकवार ठूकठाक, कामारेर एक घा ।
४. बगल में छोरो, गांव में ढिंढोरो ।	४. कोले छेले, सहरे ढेंडरा ।
५. भलै को जमानो ही कोनी ।	५. भाल मनुषेर काल नाइ ।
६. आपकै हार्योड़ै की अर लुगाई कै मार्योड़ै की कठेई दाद फरयाद कोनी ।	६. आपनार हारा अर स्त्रीर मारा ।
७. बिल्ली कै भाग को छींको टूटगो ।	७. बिडालेर भाग्ये शिका छिंडियाछे ।

राजस्थानी	बंगाली
८. छाज तो बोलै तो बोलै चालणी के बोलै जंकै ठोतर सो बेज।	८. चालनी बले छुँटके तोर पोंदे बड़ छेंदा।
९. खोई नथ नणद के नांव।	९. उडो खई गोविंदाय नमः।
१०. काम करै कोनी, खावण नैं नार।	१०. काजे कम, खेते यम।
११. नांव धापली, फिरै टुकड़ा मांगती।	११. काना पूतेर नाम पद्मलोचन।
१२. सोडी सिणगार करै इतणै में बाजार उठ जाय।	१२. साज करिते बोल फुराइल।
१३. इन्दर की मा भी तिसाई ही रही।	१३. अन्नपूर्णा यार घरे, से काँदे अन्नेर तरे।
१४. पाव चून चोबारै रसोई।	१४. चाल नाइ चूला नाई, हाटेर माझे राजत्व।
१५. घणा मीठा में कीड़ा पड़ै।	१५. मिष्टि आमेइ पोका धरे।

(घ) राजस्थानी और मराठी कहावतें

नोट—मराठी कहावतों के उदाहरण "Racial Proverbs by S. G. Champion" से लिये गये हैं।

राजस्थानी	Marathi
१. फिरै सो चरै, बँध्यो भूखां मरै।	1. The animal that moves about will find pasture.
२. ज्यूं ज्यूं भीजै कामली, त्यूं त्यूं भारी होय।	2. A blanket becomes heavier as it becomes wetter.
३. क्यूं आंधो न्यूतै, क्यूं दो बुलावै।	3. If you invite a blind man, you will have two guests.
४. धर्म री गाय रा दांत कंई देखणा?	4. A gift cow - Why, has it no teeth?
५. राई घटै न तिल बधै या करमां री रेख।	5. Who is able to wipe off what is written in the forehead?
६. ब्या कह मनै मांड देख। चेजो कै मनै चलाय देख।	6. Marriage says "Try me and see," a house says, "Build me and see."
७. सात मामां को भाणजो भूखो मरै।	7. The guest of two houses dies of hunger.

(ड) राजस्थानी और पंजाबी कहावतें

नोट—पंजाबी कहावतों के उदाहरण C. F. Usborne की 'Punjabi Lyrics & Proverbs' से लिये गये हैं।

राजस्थानी	Punjabi
१. भगवान दे जणा छप्पर फाड़ र ई दे दे।	1. When God gives, he gives through the roof.
२. बालक देखं हीयो, बडो देखं कीयो।	2. Man looks to deeds; the child to love.
३. मियां बीबी राजी तो के करेगो काजी ?	3. When man and woman agree, what can the Kazi do ?
४. चतर नं चौगणी, मूरख नं सौ गणी।	4. One's own wit and one's neighbour's wealth, a wise man multiplies them by four, a fool by hundred.
५. चोरी को गुड़ मीठो।	5. Stolen sugar is sweetest.
६. म्हारी ई बिल्ली र म्हानं ई म्यांऊँ।	6. Our own cat and it mews at us.
७. ऊँट तो अरड़ावता ही ज लदीजं।	7. A camel will always grunt, load or no load.
८. सीर की होली फूकण की होय है।	8. Form a partnership and have your hair pulled.
९. हाकिम कं अगाड़ी र घोड़ं कं पिछाड़ी।	9. Never stand before a judge or behind a horse.
१०. धान पुराणा, घृत नया, अर कुलवंती नार। चौथी पीठ तुरंग री, सुरग निसानी च्यार॥	10. Old grain, new butter, a well-bred wife and the back of a horse, these are the four marks of heaven.
११. आप मर्‌यां जुग परलं।	11. When one dies, it's the end of the world,
१२. आंधा कं आगं रोवं, आपका दीदा खोवं।	12. It's wasting your eyes to weep before a blind man.
१३. कागलो हंस हाली सीखं हो, आपकी भी भूलग्यो।	13. The crow wanted to learn how to walk like partridges; they came back having forgotten how to walk like crows.

१४. राख पत रखाय पत।	14. One's honour is in one's own hands.
१५. उतावलो सो बावलो, धीरो सो गम्भीर।	15. The hasty are mad; the slow wise.

(च) राजस्थानी और भोजपुरी कहावतें

नोट—भोजपुरी कहावतों के उदाहरण हिन्दुस्तानी, जून १९४६ के अंक में प्रकाशित 'मध्य भोजपुरी कहावतें' शीर्षक लेख से लिये गये हैं।

राजस्थानी	भोजपुरी
१. एक टको मेरी गाँठो, रगद खाऊँ क माठी!	१. अधेला गाँठी चूरी पहिरों की माठी।
२. आव बैल मनै मार।	२. आव बैल मोहि मार।
३. एक तवा की रोटी, के छोटी के मोटी।	३. एक तवा क रोटी, का छोटी का मोटी।
४. फूड़ चालै, नो घर हालै।	४. फहर चलैं नव घर डोलै।
५. ठाडो मारै भी अर रोण भी कोनी दे।	५. बरियरा मारै रोयै न वेय।
६. बाप न मारी मींडकी बेटो तीरंदाज।	६. बाप न मारल भेजुरी बेटा तीरंदाज।
७. ब्याया नहीं तो जनेत तो गयाहां।	७. बिग्राह न भयल बाय त मड़वो मैं ना गयल बाटी।
८. पाँवरी साँड र बनाती कूँची।	८. रहर क टट्टी, गुजराती ताला।

(छ) राजस्थानी और तेलुगु कहावतें

नोट—तेलुगु कहावतों के उदाहरण 'Selection of Telugu Proverbs by Captain M. W. Carr, Madras 1869.' मे लिये गये ।

राजस्थानी	Telugu
१. लुगाई की अक्कल गुद्दी में होय।	1. A woman's sense is in the back of the head.
२. उतावलो सो बावलो।	2. A hasty man is not wise.
३. घावरी को साख नजीक हो ज्याय।	3. Your wife's people are your own relations; your mother's people are distant relations; your father's people are enemies because they are co-heirs.
४. आहारे व्योहारे लज्जा न कारे।	4. In eating and in business you should not be modest.
५. चोर नै कह चोरी कर, साहूकार नै	5. Like waking the master, and

राजस्थानी	Telugu
कह् आग ।	*giving the thief a stick.* He opens the door for the robber and then awakens the master.
६. चेजो कह् मनै चलार देख, ब्या कह् मनैं मांडर देख ।	6. Try building a house, try making a marriage.
७. एक हाथ सैं दे अर दूसरै सैं ले ।	7. Doing with this hand and receiving the reward with that.
८. सांच कहयाँ झाल् उठै ।	8. A man starts with anger when the truth is told him.[1]
९. हाथी कै गैल अयां ही कुत्ता घुसै ।	9. Like dogs barking at an elephant.
१०. एक आँख को के खोलै अर के मीचै ?	10. One eye is no eye, one son is no son.
११. पेट सै किसब करावै ।	11. Ten million arts only for getting food.
१२. बंदर नारेल् को के करै ?	12. Like a monkey with a coconut who can't use it but won't give it up.
१३. मीठै कै कीड़ी लागै ।	13. Ants come of themselves where there is sugar-cane.
१४. रोयां बिना मा भी बोबो कोनी दे ।	14. Unless the child cries, the mother will not give it suck.
१५. मा गैल डीकरी ।	15. As is the mother, so is her daughter.
१६. मूंड मुंडातां ही ओला पड्या ।	16. When the poor man was about to anoint his head, it began to hail.
१७. जीभड़ली मेरी आल्पताल्, ठोला सह मेरो लाडलो कपाल् ।	17. The tongue talks at the head's cost.
१८. राख पत, रखाय पत ।	18. Give honour, get honour.
१९. दाई सैं पेट छानो कोनी ।	19. Like covering the body before the mid-wife.

1. It is truth that makes a man angry (Latin Proverb) Truth produces hatred (Latin Proverb).

राजस्थानी	Telugu
२०. सारी रामायण सुणली और पूछै सीता कैंकी भू ?	20. Like asking what relation Sita was to Rama after listening to the whole Ramayana.
२१. सीधी आंगली घी कोनी नीकलै ।	21. Without bending the finger even butter cannot be got.
२२. सेर नै सवा सेर मिल ज्याय ।	22. For one seer, a seer and a quarter.
२३. चिड़ा चिड़ी की के लड़ाई ? चाल चिड़ा, मैं आई ।	23. A quarrel between man and wife only lasts as long as Pesara seed stays on a looking glass.
२४. गोद मैं छोरो गांव में ढिढोरो ।	24. He looks for his ass and sits on its back.
२५. जूठ्या हाथ सैं गंडकड़ो भी कोन्या मारै ।	He will not even throw his leavings to the crows.
२६. एक चणू ँ को दाल ।	26. One blow and two pieces.
२७. टुकड़ा दे दे बछड़ा पाल्या । सींग हुया जब मारण चाल्या ।	27. He petted it as a Kitten, but when it grew into a big cat, it tried to bite him.
२८. निकमो नाई पाटला मूंडै ।	28. The barber without work shaved the cat's head.
२९. घी ढूल्यो तो मूंगा मांही ।	29. (a) Like the ghee falling into milk pudding. (b) The bread broke and fell into the ghee.
३०. कीड़ी पर कटक ।	30. Are you to attack a sparrow with a ब्रह्मास्त्र ?
३१. मरे पूत की आंख कचोला सी ।	31. The dead infant is always a fine child.
३२. बारै बरस सैं बांझ ब्याई पूत ल्याई पांगलो ।	32. When after being long childless, Lokaya was born to them, Lokaya's eye was sunken.
३३. आग लग्यां कुओ खोदै ।	33. To make swords when the

राजस्थानी	Telugu
	war comes.
३४. खाल पराई लीकड़ो, ज्याणू भुस में जाय।	34. To cut into another man's ear is like cutting into a felt hat.
३५. आंगली पकड़तो पकड़तो पूंच्यो पकड़ लियो।	35. Like taking possession of the whole house when asked to come in for a while.
३६. बासी बचै न कुत्ता खाय।	36. No food for a fly nor offering for a snake.

(ज) राजस्थानी और तमिल कहावतें

नोट—तमिल कहावतों के उदाहरण S. G. Champion की 'Racial Proverbs' से लिये गये हैं।

राजस्थानी	Tamil
१. लुगाई के गुदवी में अक्कल हुवै।	1. A woman's thoughts are after-thoughts.
२. घर री माँडण इस्तरी।	2. A wife is the ornament of the house.
३. बांदरै वाली चाँदी है।	3. A soar on a monkey never heals.
४. साची कह्यो 'र भाटै की दई।	4. He who is truthful may be the enemy of many.
५. साप कै चोखलै को के बडो र के छोटो ?	5. There is no distinction between big and little when you are talking about snakes.
६. भूख कै लगावण कोनी, नींद कै बिछावण कोनी।	6. Hunger knows no taste nor sleep comfort.
७. चालणो रस्ता को हो भाँवं फेर ही।	7. Although the way goes round, go by it.

टिप्पणी—इन उदाहरणों में कहीं-कहीं कहावतों के साथ मुहावरे भी आ गये हैं।

परिशिष्ट ३

राजस्थानी भाषा के कुछ "लौकिक न्याय"

(क) जीभ-रस न्याय

एक व्यक्ति चलते-चलते किसी के घर पहुँचा। गृह-स्वामी उपस्थित नहीं था। उसने गृह-स्वामिनी से कहा—मेरे पास दाल-आटा सब कुछ है, केवल चूल्हे पर रसोई बना लेने दे। गृह-स्वामिनी ने उसे ऐसा करने की इजाजत दे दी। उसने चूल्हे पर दाल चढ़ा दी किन्तु जब दाल भली भाँति उबल नहीं पाई तो उसने गृह-स्वामिनी से कहा—"अरी निपूती! कुछ अच्छी-सी लकड़ी तो दे जिससे दाल उबल जाय।" "निपूती" संबोधन गृह-स्वामिनी को बहुत अखरा। उसने कहा—"जैसे तुम आये हो, वैसे ही यहाँ से चले जाओ। यदि कहीं गृह-स्वामी आ गये तो तुम्हारी खैर नहीं।" इतने में गृह-स्वामी भी आ गये और उस व्यक्ति को दाल हाथ में लेकर उसी समय घर से बाहर निकल जाना पड़ा। लोगों ने पूछा—"यह पानी क्या टपक रहा है?" उसने उत्तर दिया—"यह मेरी जीभ का रस है। यदि मैं अपनी जीभ वश में रखता और शिष्टजनोचित बर्ताव करता तो आज मेरी यह हालत क्यों होती?"

(ख) पाली पंचायती न्याय

पाली में किसी समय पंचों का बड़ा जोर था। सब तरह के झगड़े-टंटे पंच ही निपटाया करते थे और उनके फैसले को भी सभी शिरोधार्य करते थे। एक बार दो जनों के लेन-देन का झमेला उनके पास आया। एक ने दूसरे को १०० रुपये उधार दे रखे थे। लेने वाला अत्यन्त गरीब था और पूरा रुपया चुकाने में असमर्थ था। पंच भी इस बात को भली भाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने फैसला दिया कि कर्जदार ऋण-दाता को १०० रुपये के स्थान में केवल पचास रुपये दे दे। ऋणदाता से उन्होंने कहा—देख भई, पूरे सौ रुपये तो वापिस मिलने मुश्किल हैं। २०-२५ रुपये तो तुम भी छोड़ ही देते, २५ रुपये हम लोगों के कहने से छोड़ दो। इस प्रकार कम से कम आधी रकम तो तुम्हारे पल्ले पड़ जायगी, अन्यथा तुम पूरी रकम से हाथ धो बैठोगे। कर्जदार से उन्होंने कहा—देख भई, १०० रुपये तुमने उधार लिये थे, हमने आधे कर दिये हैं। अब ५० रुपये तो तुम्हें हर हालत में चुका ही देने चाहिएँ। दोनों ने पंचों की बात मान ली और झगड़ा निपट गया। इस प्रकार पाली के पंच दोनों आसामियों को समझा-बुझा कर "अधफाड़िया" न्याय कर दिया करते थे।

(ग) बारहठ थोड़ी-न्याय

एक बारहठजी किसी बड़े सरदार के यहाँ ठहरे हुए थे। संयोगवश उन्हीं सरदार के पास एक दूसरे समीपवर्ती ठिकाने के ठाकुर साहब का भी आगमन हुआ। अपना बड़प्पन दिखाने के लिए समागत ठाकुर साहब ने बारहठ से बड़ी नम्रता के साथ कहा कि कभी इस सेवक की झोंपड़ी को भी पवित्र कीजिये। थोड़ी देर अपने

काम की बातें करके ठाकुर साहब वापस चले गये। उन्हें यह स्वप्न में भी ख्याल न था कि बारहठजी सचमुच ही आ धमकेंगे। दस-बीस दिनों के बाद बारहठजी सरदार के यहाँ से सम्मानित होकर विदा हुए। वे अपने साथ एक घोड़ी रखते थे। ज्यों ही घोड़ी पर सवार होकर बारहठजी अग्रसर हुए, उन्हें उन ठाकुर साहब के आग्रहपूर्ण निमंत्रण की याद आ गई। ठाकुर साहब का गाँव अधिक दूर नहीं था। मध्याह्न होने के पहले-पहले बारहठजी ठाकुर साहब के दरवाजे पर जा पहुँचे। बारहठजी को घोड़ी के साथ देखते ही ठाकुर साहब के होश उड़ गये। बारहठजी घोड़ी से उतर पड़े और लगाम थामकर ठाकुर साहब से "जय गोपीनाथजी की" की। ठाकुर साहब स्तब्ध हो गये। बारहठजी ने कहा "ठाकराँ ! इस घोड़ी को कहाँ बाँधूँ ?" ठाकुर साहब ने चुप-चाप अपनी जीभ निकाल दी और बोले—इसके बाँध दीजिये। यह उस समय चुप रहती तो आज यह नौबत क्यों आती ?

(घ) भंडार कुत्ता न्याय

एक कुत्ता किसी साधु के भण्डार में घुस गया। बाबाजी के यहाँ धरा ही क्या था ? शिष्य ने कहा—बाबाजी, भंडार में कुत्ता घुस गया। बाबाजी ने उत्तर दिया—कुत्ते को भंडार में ही बन्द कर दो। कुत्ता आया था कुछ खाने के लोभ से, बन्द अलग हो गया !

(ङ) मूँछ-चावल-न्याय

एक ठाकुर था जिसके घर की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी किन्तु ठकुराई की ठसक के कारण वह अपनी हालत का किसी को पता नहीं चलने देता था। घर में बाजरे की खिचड़ी बनती और घी तो कभी वार-त्योहार ही सुलभ होता। किन्तु ठाकुर भोजन करके जब कभी बाहर निकलता तो चन्द्र-धवल वस्त्र पहने रहता और मूँछों पर चावल चिपके रहते। लोग समझते कि ठाकुर बड़ा रईस है, तभी तो प्रति दिन चावल खाता है, दूसरों को तो चावल के दर्शन भी दुर्लभ हैं।

इस प्रकार ठाकुर मूँछों के चावलों द्वारा अपनी लाज ढकता रहता था।

टिप्पणी—इस प्रकार के बहुत से न्याय लेखक ने संग्रहीत किये हैं, जिनमें से नमूने के तौर पर पाँच ऊपर दे दिये गये हैं।

सहायक पुस्तकों की सूची

English

A Dictionary of Hindustani Proverbs *by* S. W. Fulton; Edited *by* R. C. Temple; Trubner & Co., London; 1886.

Bihar Proverbs *by* John Christian; Published *by* Kegan Paul, Trench Trubner & Co. Ltd., 57 & 58 Ludgate Hill, London; 1891.

Burmese Proverbs & Maxims *by* James Gray; Published *by* Trubner & Co., Ludgate Hill, London; 1886.

Dictionary of Kashmiri Proverbs and Sayings *by* Rev. J. Hinton Knowles; Published *by* Thacker Spink & Co., London.

Encyclopaedia of Religion & Ethics Vol. X *by* Hastings; Published *by* T. & T. Clark, 38, George Street, Edinburgh, 1918.

Marathi Proverbs *by* Rev. A. Munwaring; Printed at the Clarendon Press Oxford; 1899.

On the Lessons in Proverbs *by* R. C. Trench; Published *by* John W. Parkar & Sons, London; 1854.

Oxford Dictionary of Proverbs *by* W. G. Smith; Printed at the Clarendon Press, Oxford; 1935.

Preface to Eastern Proverbs and Emblems (illustrating old truths) *by* Rev. J. Long; Published *by* Trubner & Co., London; 1881.

Proverbs & Common Sayings from the Chinese *by* H. Smith; Published *by* American Presbyterian Mission Press, Sanghai; 1902.

Puranic Words of Wisdom *by* A. P. Karmarkar; Published *by* Bhartiya Vidya Bhawan, Bombay; 1947.

Racial Proverbs *by* S. G. Champion; Published *by* Routledge & Kegan Paul Ltd., Broadway House : 68-74 Carter Lane, E. C. 4., London; 1938.

The Ocean of Story *by* N. M. Penzer; Published *by* Chas. J. Sawyer Ltd. Grafton House W. 1. Mcm XXVIII, London; 1880-1884.

The People of India *by* Sir Herbert Hope Risley; Published *by* W. Thacker & Co. London; 1915.

The Philosophy of Proverbs *by* Disraele.

संस्कृत

कादम्बिनी—(मधुसूदन ओझा) प्रकाशक— प्रद्युम्न शर्मा ओझा; सं० १९९९।

भुवनेश लौकिक न्यायसाहस्री--(भुवनेश) प्रकाशक—खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई।

लौकिक न्यायाञ्जली—(जी० ए० जैकब) प्रकाशक—पांडुरंग जावजी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई; १९२५।

संस्कृत लोकोक्ति-सुधा—(जगदम्बाशरण) प्रकाशक—श्री अजन्ता प्रेस लि० नया टोला, पटना-४; १९५०।

गुजराती

कहेवतमाला—(जमशेदजी नसरवानजी पेतीत) प्रकाशक—जीजीभाई पेस्तनजी मिस्तरी; १९०३।

गुजराती कहेवत-संग्रह—(आशाराम दलीचन्द शाह) प्रकाशक—मूलचन्द आशाराम शाह, अहमदाबाद; सन् १९२३।

चबराकियानुं तत्त्वदर्शन—(फिरोजशाह रुस्तमजी महेता) प्रकाशक—मीरझां खुशरो एण्ड कं०, प्रकाश प्रिंटिंग प्रेस, जामनगर; सन् १९४९।

रूढ़िप्रयोग-कोश—(भोगीलाल भीखाभाई गांधी) प्रकाशक—गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी; सन् १८९८।

बंगला

बाङ्ला-प्रवाद—(श्री सुशीलकुमार दे) प्रकाशक—रंजन पब्लिशिंग हाउस, २५/२, मोहनबागान रो, कलिकाता; आश्विन १३६२।

मराठी

महाराष्ट्र वाक्-सम्प्रदाय कोश—(श्री यशवन्तराव रामकृष्ण दाते और चिंतामण-गणेश कर्वे) विभाग पहिला, प्रकाशक—महाराष्ट्र कोश मंडल, लिमिटेड, पुणें; सन् १९४२।

हिन्दी-राजस्थानी

घाघ और भड्डरी—(रामनरेश त्रिपाठी) प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू० पी०, इलाहाबाद; १९३१।

चौहान कुल कल्पद्रुम—(लल्लूभाई भीमभाई) प्रकाशक—देसाई लल्लूभाई भीमभाई, संदलपुर, जिला नवसारी; वि० सं० १९८३।

जातक—(भदन्त आनन्द कौसल्यायन) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; १९४१।

ढोला मारू रा दूहा—(संपादक—ठा० रामसिंह, सूर्यनारायण और नरोत्तमदास स्वामी) प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; सं० १९९१।

बाँकीदास-ग्रंथावली—(बाँकीदास) प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी; १९३८।

बुद्धचर्या—(राहुल सांकृत्यायन) प्रकाशक—सेवा उपवन, काशी; सं० १९८८।

बोलचाल—(अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध')।

भोजपुरी ग्राम-गीत—(कृष्णदेव उपाध्याय) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; सं० २००५।

मारवाड़ रा ओखाणा—(लक्ष्मण आर्य) प्रकाशक—लक्ष्मण आर्य, सरदार सागर, जोधपुर; सन् १८९३।

मारवाड़ सेंसस रिपोर्ट सन् १८९१, जोधपुर राज्य द्वारा प्रकाशित। विद्यासाल जोधपुर सन् १८९५।

मालवी कहावतें—(रतनलाल मेहता) प्रकाशक—राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर।

मुहावरे—(रामदहिन मिश्र) प्रकाशक—बाल-शिक्षा-समिति, पटना।

मेवाड़ की कहावतें—(प्रथम भाग)—(लक्ष्मीलाल जोशी) प्रकाशक—राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर।

राजस्थान रा दूहा—(नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित) प्रकाशक—नवयुग-साहित्य-मन्दिर, पोस्ट बॉक्स नं० ७८ दिल्ली; १९३५।

राजस्थानी कहावतां—(नरोत्तमदास स्वामी और मुरलीधर व्यास) प्रकाशक—राजस्थानी साहित्य परिषद् ४, जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता; १९४९।

राजस्थानी कृषि कहावतें—(जगदीशसिंह गहलोत) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर, घंटाघर, जोधपुर।

राजस्थानी भाषा और साहित्य—(मोतीलाल मेनारिया) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग; सं० २००६।

राजस्थानी रनिवास—(राहुल सांकृत्यायन) प्रकाशक—राहुल प्रकाशन, मसूरी; १९५३।

राजिया के सोरठे—(जगदीशसिंह गहलोत) प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर, घंटाघर, जोधपुर; १९३४।

व्रजलोक साहित्य का अध्ययन—(डॉ० सत्येन्द्र) प्रकाशक—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा; १९४९।

हमारा ग्राम साहित्य—(रामनरेश त्रिपाठी) प्रकाशक—हिन्दी मन्दिर, प्रयाग; १९४०।

हिन्दी मुहावरे—(ब्रह्मस्वरूप शर्मा) प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, २०३, हरीसन रोड, कलकत्ता; १९३८।

पत्रिकाएँ

कल्पना, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, मरु-भारती, राजस्थान भारती, राजस्थानी, सम्मेलन पत्रिका, Journal of the Royal Asiatic Society of Bengal, Indian Antiquary आदि।